सन्तसाहित्य-ग्रन्थमाला—१

Santa Sahitya Series—1

श्रीदादूबाणी
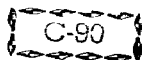
सम्पादक :

पण्डित चन्द्रिकाप्रसाद त्रिपाठी

(अजमेर वाले)

स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

[illegible] Series—1

SHRĪ DADU BANI

Of

Santa Shri Dadu Dayalaji Maharaja

Edited By

Let. Pt. Chandrika Prasad Tripathi

Swami Dwarika Das Shastri

Santa Sahitya Academy

VARANASI

2041 V. E.] **[1985 C. E.**

श्रीदादूवाणी

[श्रीस्वामी दादूदयालजी महाराज की अनभै वाणी]

(अंगवंधु सटीक)

आपा मेटै हरि भजै, तन मन तजै विकार ।
निर्बैरी सब जीव सौं, दादू यहु मत सार ॥

सम्पादक एवं व्याख्याकार
स्वर्गीय पण्डित श्रीचन्द्रिकाप्रसाद त्रिपाठी
(अजमेर वाले)

स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

सन्त साहित्य अकादमी
वाराणसी

२०४१ वि०] [१९८५ ई०

इस ग्रन्थ के प्रकाशन मे आर्थिक सहायता देने वाले सन्त जन

१. महन्त श्रीजुगलकिशोर जी, दुबलधन, जि० रोहतक (हरियाणा) २०००) रु०
२. महन्त श्रीसाधुरामजी शास्त्री, ग्वालीखेड़ा, जि० मेरठ (उ० प्र०) २०००) रु०
३. स्वामी भगवानदास जी शास्त्री, जमात उदयपुर (शेखावाटी, राज०) १५००) रु०

प्रकाशक :
सन्त साहित्य अकादमी
पो० बॉ० १०४९,
वाराणसी (उ. प्र.)
पिन : २२१००१

Publisher :
Santa Sahitya Academy
P. B. 1049,
Varanasi (U. P.)
Pin : 221001

प्रथम संस्करण : १९८५

First Edition : 1985

मूल्य : ६०) रु० (साठ रुपया)

Price : 60/= (Sixty Rupees)

मुद्रक :
डीलक्स आफसेट प्रिण्टर्स
दिल्ली–३५

Printed at :
The Delux Offset Printers
Delhi–35

प्रकाशकीय

समग्र मानवजाति को इस कराल कलिकाल में विश्वबन्धुत्व की ओर आगे बढाने के लिये मध्यकालीन भारतीय सन्तों के उपदेशों का प्रचार-प्रसार बहुत आवश्यक है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये इस सन्तसाहित्य अकादमी की स्थापना की गयी है। इससे सर्वप्रथम स्वामी श्री १००८ दादूदयाल जी महाराज के समग्र कृत्य-संग्रह (श्रीदादूवाणी) का प्रकाशन किया जा रहा है।

स्वामी श्री दादूदयाल की वाणी सम्पूर्ण अंगवध् सटीक, जिसका सन् १९०७ ई० में स्वर्गीय पण्डित श्रीचन्द्रिकाप्रसाद त्रिपाठी ने अनेक प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों से मिलान करके सम्पादन-शोधन किया था, विशिष्ट वाक्यों के अर्थ टिप्पणी में दिये थे, जिसमें साखी और शब्दों के प्रत्येक विभाग एक-एक पंक्ति में अलग-अलग स्पष्ट रूप से छापे गये थे, कायावेली ग्रन्थ की सम्पूर्ण टीका और महात्मा चम्पारामजीकृत 'दृष्टान्तसंग्रह' ग्रन्थ से उत्तमोत्तम दृष्टान्त उचित स्थानों पर टिप्पणी में दिये गये थे। (जो वैदिक यन्त्रालय, अजमेर में सुन्दर मोटे टाइप और चिकने कागज पर छपी थी।) जनता के हितार्थ उसका वही संस्करण आज पुनः अविकल रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। क्योंकि सन्त-साहित्य के प्रगाढ़ मनीषियों ने इसी संस्करण को श्रीदादूवाणी के शुद्ध पाठ को मान्यता प्रदान की है।

यह ग्रन्थ सभी जनों के पढ़ने योग्य है। इसमें श्रीदयालजी महाराज ने अक्षर-अक्षर में आत्म-ज्ञान की महिमा प्रतिपादित की है। मनुष्यों के कल्याण के उचित साधन सरल सरस शब्दों में बताये हैं, जिनके पठनमात्र से मनुष्य प्रेम में मग्न होकर ईश्वर में लयलीन हो सकते हैं। इसमें निर्गुण भक्ति, ईश्वर की प्राप्ति के साधन योगादि अनेक भांति से बतलाये हैं, जिनका जानना प्रत्येक मनुष्य को आध्यात्मिक उन्नति के लिये अत्यावश्यक है।

इसमें आत्मज्ञान के साथ-साथ उस भारी सच्चाई को भी बतलाया है, जिससे मनुष्य आपस के विरोध छोड़ कर सब में अपनी आत्मा को ही

देखता है, अर्थात् सबको अपने ही तुल्य मानता है। जहाँ एक आप ही आप है, वहाँ वैर-विरोध किससे हो! इसी अद्वैत ज्ञान के उपदेश से बादशाह अकबर के दरबार (फतेहपुर सीकरी) में महाराज ने हिन्दू-मुसलमानो म परस्पर मेल कराया था। जहाँ राजा भगवन्तदास, बीरबल, अब्बुलफजलादि अकबर बादशाह के मन्त्री भी उपस्थित थे। जिस प्रकार के धर्मोपदेश तथा सामाजिक और व्यावहारिक रीति संशोधन पर पक्षपातरहित निर्भयता से सत्य मार्ग का श्रीदयालजी महाराज ने उस समय उपदेश किया था, उनम से अनेक बातें हमारे लिये आज भी उपयोगी है।

इस वाणी में आत्मज्ञान, धर्मोपदेश, सामाजिक और व्यावहारिक रीति-नीति के अतिरिक्त साहित्य का भी भण्डार भरा पड़ा है। भाषा के पुराने रूप, पुरानी बोल-चाल, पुरानी लिखावट के अनेक उदाहरण इस वाणी मे ऐसे मिलते है, जिनसे विज्ञजन पुरानी हिन्दी का व्याकरण बना सकते है। यह विषय भूमिका में काफी विस्तार से वर्णित किया गया है।

इस संस्करण की विशेषता यह है कि यह स्वाध्याय और प्रवचन—दोनों के लिये उपयोगी है।

हम जानते हैं कि इस प्रकाशन के बाद भी वाणी जी के प्रामाणिक अक्षरानुवाद की आवश्यकता है। हम प्रयास कर रहे है कि अकादमी की तरफ से अग्रिम वर्ष तक यह अनुवाद जिज्ञासु जनता तक पहुँच जाय।

साथ ही हमारा संकल्प यह भी है कि अकादमी की तरफ से सम्पूर्ण दादूपन्थी सन्तसाहित्य वैज्ञानिक रीति से सम्पादित-संशोधित होकर जिज्ञासु जनता तक पहुँचे। इस पवित्र कार्य मे विद्वान् सन्तजनों तथा भक्तजनों का सर्वविध सहयोग अत्यन्त अपेक्षित है।

वाराणसी
वसन्तपंचमी,
२०४१ वि०

—प्रकाशक
(मन्त्री, सन्त साहित्य अकादमी)

विषय-सूची

अनन्तश्रीविभूषित सन्त श्रीदादूदयालजी महाराज का

जीवनचरित्र

गुजरात प्रदेश के अहमदाबाद नगर में पण्डित लोधीराम जी नागर को पुत्र न था। वे पुत्र के लिये बहुत लालायित थे। वे अपनी इस इच्छा-पूर्ति के लिये सन्तों की सेवा करते थे। एक दिन उन्हें एक सिद्ध सन्त का दर्शन हुआ, उन्होंने उनको बड़े ही स्नेह से प्रणाम किया। सन्त प्रसन्न होकर बोले—"इच्छा हो सो माँगो।" पं० लोधीराम बोले—"आपकी कृपा से सब आनन्द है, केवल एक पुत्र न होने से दुःखी हूँ।" सन्त ने कहा—"तुम प्रातः साबरमती नदी पर स्नान करने जाते हो, कल वहाँ मञ्जूषा में तैरता हुआ एक बालक तुम्हें मिलेगा, उसे ही अपना पुत्र मानकर घर ले आना। वह महान् ब्रह्मज्ञानी होगा।"

सन्त के आशीर्वाद से वि० सं० १६०१ फाल्गुन शुक्ला अष्टमी, गुरुवार को प्रातःकाल पं० लोधीराम को नदी में मञ्जूषा में तैरता हुआ बालक मिला। उन्होंने उसे लाकर अपनी पत्नी को दे दिया। बालक को देखकर वात्सल्य-प्रेम से उसके स्तनों में दूध आ गया। बड़े स्नेह से बालक का लालन-पालन होने लगा।

जब वे ११ वर्ष की आयु के हुए, तब एक दिन तीसरे पहर सायंकाल से कुछ पहले बालकों के साथ कांकरिया तालाब पर खेल रहे थे, उसी समय भगवान् एक वृद्ध ऋषि के रूप में बालकों के पास प्रकट हुए। उन्हें देखकर अन्य बालक तो भाग गये, किन्तु श्रीदादूजी ने पास जाकर बड़े प्रेम से प्रणाम किया और उनके पास एक पैसा था उसे उनको भेंट चढा दिया। भगवान् ने कहा—"इस पैसे की जो प्रथम वस्तु मिले वही ले आ"। बाजार में पहले पान की दुकान आयी। श्री दादू जी पान लेकर शीघ्र चले आये और भगवान् को समर्पित कर दिया। भगवान् उनके व्यवहार से बहुत प्रसन्न हुए और प्रसाद देकर कृपापूर्वक उनके सिर पर हाथ रखा और उन्हें निर्गुण भक्ति का उपदेश देकर वहीं अन्तर्ध्यान हो गये। सात वर्ष के पश्चात् फिर भगवान् ने राजस्थान में जाकर निर्गुण भक्ति का प्रचार करने की आज्ञा दी।

१९ वें वर्ष में महाराज ने अहमदाबाद से राजस्थान के लिये प्रस्थान किया। आबू पहाड़ होते हुए मार्ग में ज्ञानदास जी माणकदास जी को केदार देश का हिंसा से उद्धार करने का आदेश दिया और पुष्कर होते हुए कुचामण रोड से दक्षिण लगभग १२ मील करडाला ग्राम के पर्वत को अपना साधना-

स्थल चुना और लगभग १२ वर्ष वहां ही रहे। पर्वत के मध्य कर्कड़े का वृक्ष था, उनके नीचे जाकर वे प्रायः ध्यानस्थ रहते थे।

फिर वे करडाले से सांभर आये। वहां उनके उपदेश का प्रभाव देख कुछ हिन्दू तथा मुसलमान दोनों को ईर्ष्या हुई। उन्होंने तत्कालीन शासन से एक ऐसा विधान (हुक्मनामा) बनवाया—"जो दादू के पास जायगा वह अपनी आय में से प्रतिशत ५ रुपये दण्ड देगा।" इस विधान का प्रचार नगर में करवा दिया गया। फिर भी दो सन्तप्रेमी दर्शनार्थ दूसरे दिन चले आये। महाराज ने कहा—"तुम लोग क्यों आये हो, तुम दोनों इतने धनी नहीं हो, आय का प्रतिशत ५ रुपये दण्ड देने से तुम्हारा बहुत पैसा व्यर्थ सरकार में जायगा!" उन्होंने कहा—"जब तक पैसा है, दण्ड देंगे और दर्शन करेंगे।" उनकी श्रद्धा देखकर महाराज ने कहा—"तो फिर पत्र को अच्छी तरह पढ़कर ही दण्ड देना।" आश्रम से बाहर आते ही राजपुरुषों ने उनको पकड़ लिया, और कचहरी ले गये। उन सबों ने पत्र दिखाने को कहा। पत्र में लिखा मिला—"जो श्रीदादू के पास न जायगा, उसे प्रतिशत ५ रुपये दण्ड देना होगा।" राजकर्मचारी यह देखकर अवाक् रह गए और उन्हें छोड़ दिया।

एक दिन एक काजी ने कहा—"तुम हिन्दू तथा मुसलमान दोनों धर्मों के अनुसार न चलकर इच्छानुसार चलते हो, यह ठीक नहीं, तुम काफिर हो।" महाराज ने कहा—"जो मिथ्या बोले, चाहे कोई हो, काफिर वही है।" इस पर काजी ने रुष्ट होकर महाराज के गाल पर मुक्का मारा। महाराज ने कहा—"यदि तुम्हें मारने से प्रसन्नता है तो दूसरी ओर भी मार लो"। जब उसने दूसरी ओर मारने को हाथ उठाया, तब उसका हाथ ऊपर ही रह गया। वह मार न सका और तीन मास के भीतर ही उसका वह हाथ गल-सड़ गया और स्वयं भी मर गया।

एक दिन महाराज बाहर से नगर में आ रहे थे, उसी समय वहां के शासकों ने उनपर मतवाला हाथी छोड़ा, मार्ग की जनता में हाहाकार मच गया, किन्तु महाराज निर्भय रहे। हाथी ने आकर अपनी सूंड़ से महाराज के चरण छूए और प्रणाम करके लौट गया।

एक दिन प्रातःकाल श्रीमहाराज पद गा-गा कर कीर्तन कर रहे थे, वह काजी-मुल्लाओं को अच्छा न लगा। उनकी आज्ञा से दस-बीस मुसलमान आये और महाराज को पकड़ कर बिलन्द खां खोजा के पास ले गये। उन्होंने

महाराज को कैद की कोठरी में बन्द करा दिया। उस समय विलन्द खां को तथा समस्त जनता को महाराज का एक शरीर कैद की कोठरी में तथा एक बाहर दिखायी पड़ा। यह देखकर विलन्द खाँ महाराज के चरणों मे गिर पड़ा और क्षमा मांगी। दयालु सन्त ने क्षमा प्रदान कर दी।

उक्त चमत्कारों को देखकर जनता ने एक साथ सात महोत्सव आरंभ किये, सातों में एक ही साथ पधारने का निमन्त्रण दिया गया। महाराज ध्यानस्थ रहे, वे किसी में नहीं गये। भगवान् ही महाराज के सात शरीर धारण करके सातों महोत्सवों मे जा पहुंचे। तब से नगर-निवासियों की महाराज पर और भी विशेष श्रद्धा हो गयी।

महाराज की विशेषताओं को देखकर उनको अपने सम्प्रदाय मे मिलाने के लिये गलता (जयपुर) के वैष्णव महन्त ने माला, तिलक देने के लिये चार साधु साँभर भेजे, किन्तु महाराज ने उनसे कहा—"मेरा मन ही हमारा माला है, गुरु-उपदेश ही तिलक है। मुझे माला या तिलक नहीं चाहिये।" इस पर वे रुष्ट होकर बोले—'यदि आमेर का राज्य होता तो हम अवश्य तुम्हे अपने सम्प्रदाय मे मिला लेते।" महाराज ने कहा—'ठीक है, आमेर राज्य में भी यह शरीर कभी आ ही जायगा।" फिर महाराज आमेर पधारे। वहाँ के राजा तथा प्रजा सभी महाराज के भक्त हो गये। महा-पण्डित जगजीवन जी रज्जबजी आदि आँमेर मे ही महाराज के शिष्य हुए।

उन्हीं दिनों महाराज के शिष्य माधवदासजी घूमते हुए सीकरी जा पहुंचे और एक मन्दिर मे मध्याह्न के समय शयन कर रहे थे, निद्रा मे पैर मन्दिर की ओर हो गये। पुजारियों ने कहा—"तू बड़ा नामदेव बन गया है, जो भगवान की ओर पैर करके सोया है !" माधवदास जी ने कहा—"नामदेव ने क्या किया था ?" पुजारी बोले—' भगवान् को दूध पिलाया था !" माधव-दास जी ने कहा—"प्रेम होने से भगवान् अब भी दूध पी सकते हैं।' दूध लाया गया। माधवदास जी ने प्याला दीवाल की ओर किया। भगवान् ने दीवाल से मुख निकालकर दूध पी लिया। यह देख तुलसीराम ने बादशाह अकबर को कहा—"यह साधु दम्भी है, इसे मार देना ही ठीक होगा।" फिर उन्हें सिंह के पिंजरे में बन्द कर दिया गया। प्रातः लोग देखने आये तो सिंह डरा हुआ पिंजरे के एक कोने में बैठा था और सन्त माधवदासजी बीच मे ध्यानस्थ थे। बादशाह अकबर स्वयं आये और उन्हें पिंजरे से निकालकर उनसे क्षमा माँगी। उस समय प० तुलसीराम ने कहा—' इनके गुरु दादू जी महाराज इनसे भी अच्छे सन्त हैं, आँमेर में विराजमान हैं।' बादशाह अक-

वर ने आमेर-नरेश भगवन्तदासजी से कहा—"सन्तों को यहाँ बुलाओ, न आयेंगे तो हम स्वयं दर्शन के लिये वहाँ चलेंगे।" भगवन्तदास जी ने सूर्यसिंह (सूजा) खींची को आमेर भेजा। किन्तु सूर्यसिंह ने जाकर कहा—'यदि आप न पधारेंगे तो मैं प्रायोपवेशन व्रत द्वारा यहीं शरीर छोड़ दूँगा।"

तब महाराज ने प्राणिहिंसा उचित न जानकर अपने सात शिष्यों के साथ सीकरी को प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचने पर भगवन्तदासजी बड़े सत्कार से उन्हे अपने यहाँ ले गये और दो तीन दिन बाद बादशाह को सूचना दी। बादशाह की प्रार्थना से आतिशखाना नामक स्थान में रहे। बादशाह ने अब्बुलफजल, राजा बीरबल और तुलसीराम इन तीनों को कहा—'तुम महाराज के पास जाओ।" तुलसीराम ने आते ही कहा—"अकबराय नमः।" महाराज ने कहा—'नमो निरंजन आत्मरामा!" फिर तीनों ने महाराज से अपने विचारों के अनुसार प्रश्न किये, और महाराज के समाधान रूप विचारों से सन्तुष्ट हुए, बादशाह के पास जाकर महाराज की विशेषताएँ बतायीं। शेख अब्बुलफजल और राजा भगवन्तदास के द्वारा अक्बर ने महाराज को बुलाया और सत्संग किया।

फिर अकबर को ज्ञात हुआ कि महाराज राज-अन्न नहीं खाते। कुछ लोगों ने कहा—"किले के भीतर ठहरे हैं, भिक्षा को जावें तब द्वार बन्द करा दो, अपने आप खायेंगे।" वैसा ही किया गया। जग्गा जी भिक्षा को जाते थे। द्वार बन्द देखकर द्वारपाल को आवाज दी। न बोलने पर इन्होंने अपने योग-बल से सब बात जान ली और अपना शरीर बढ़ा कर दीवाल लाँघकर भिक्षा ले आये। यह जानकर बादशाह डर गया और आज्ञा दे दी कि सन्तों को अपनी इच्छानुसार रहने दिया जाय। फिर बादशाह ने चालीस दिन तक सत्संग किया। अन्त में, वह महाराज को भेंट के रूप में विशाल धन-राशि देने लगा, महाराज ने उसे इन्कार कर दिया।

बादशाह द्वारा सेवा करने के लिये विशेष आग्रह करने पर महाराज ने कहा—"गोवध बन्द कर दो, यही हमारी सबसे बड़ी सेवा है।" अकबर ने स्वीकार किया। यह देखकर वहाँ के काजी-मुल्लाओं ने अकबर से कहा—आपने एक साधारण साधु के कहने से ही गोवध-बन्दी की आज्ञा दे दी, उनकी कोई करामात तो देखी होती।" अकबर ने उन लोगों के कहने से महाराज को सभा में बुलाया और बैठने के योग्य स्थान खाली नहीं रखा। महाराज उनके मन की बात जान गये और अपने योग-बल से सभा के मध्य आकाश में तेजोमय सिंहासन रचकर उस पर विराजमान हो गये। यह देखकर सभी सभासदों को महान् आश्चर्य हुआ।

बादशाह अकबर को ४० दिन उपदेश देकर उनसे विदा होकर महाराज। बीरबल के यहाँ रहे। उसे उपदेश कर आमेर-नरेश भगवन्तदास के बुलाने पर उनके यहां रहे। आमेर-नरेश ने बहुत सत्कार-पूर्वक सीकरी से विदा किया। वहाँ से विदा होकर सात दिन महाराज वन के रास्ते से ही आये, क्योंकि ग्रामों में जाने से जनता की भीड़ लग जाती। बीच में महाराज दौसा भी ठहरे थे। दौसा में परमानन्द साह को पुत्र-प्राप्ति का वर दिया। बाद में साह के यही पुत्र सुन्दरदास नाम से महाराज के शिष्य बने। इस प्रकार घूमते हुए आमेर आ पहुँचे। आमेर के पास एक योगी रहता था। एक दिन महाराज और टीलाजी मार्ग से जा रहे थे। योगी बोला—"ऐ दादूड़ा! आजकल कहाँ आता जाता है? अकबर के पास जाकर अपने को बहुत बड़ा मानने लगा है, किन्तु तुझमें कुछ भी शक्ति नहीं। तुझे तो मैं अभी आकाश में उड़ा सकता हूँ।" महाराज कुछ भी न बोले, किन्तु टीला जी ने कहा—"जो कहता है, वही उड़ेगा।" इतना कहकर टीला जी ने कहा—"उड़ जा शिला सहित।" वह योगी तत्काल उड़ गया, फिर उसने करुणापूर्ण शब्दों में महाराज से प्रार्थना की, तब महाराज ने टीला जी को कहा—"उतार दो।" महाराज की आज्ञा मानकर टीला जी ने उसे भूमि पर उतार दिया। उसने फिर चरणों में पड़कर महाराज से क्षमा माँगी।

आमेर में एक तुर्क ने सत्संग-सभा में मोहरबन्द माँस का पात्र इस भावना से लाकर रख दिया कि महाराज पहचान जायँगे तो मैं उन्हें उच्च कोटि का सन्त मानूँगा। महाराज उसके दिल की बात को जान गये। उसे खोलने पर उसमें खांड-भात निकला।

आमेर में रहते हुए ही समुद्र में डूबते हुए व्यापारियों के एक जहाज को उनकी प्रार्थना से अपने योगबल द्वारा जानकर तार दिया था।

धरया जैमल नरेश और उनकी प्रजा की प्रार्थना से योगबल से केदार (कच्छ) देश में देवी के मन्दिर में प्रकट हुए। वहाँ के नरेश पद्मसिंह उस समय देवी की पूजा कर रहे थे। महाराज ने उन्हें अहिंसा का उपदेश किया। इस प्रकार महाराज की कृपा से केदार देश अहिंसक बन गया। ज्ञानदास जी और माणकदास जी का प्रयत्न सफल हुआ।

आमेर में रहते हुए ही उन्होंने योगबल से हिमालय की भँभर घाटी में राजा वीरब्रल की हिम से रक्षा की थी।

बीकानेर नरेश भुरटिया राव ने उन्हें खाटू ग्राम में बुलाया। महाराज ने स्वीकार कर लिया। किन्तु बाद में किसी मन्त्री ने राव को बहका दिया।

इस लिये राव को अश्रद्धा हो गयी। महाराज के आने पर राव ने प्रश्न किया—"आपका धर्म और कर्त्तव्य क्या है ? रहनी और कथनी क्या है ?" महाराजा बोले 'राम-नाम का चिन्तन ही हमारा धर्म है। सन्तों ने जो किया है वही हमारा कर्तव्य है। पांचों इन्द्रियों का संयम ही हमारी रहनी है और 'राम में वृत्ति लगाओ'— यही हमारी कथनी है।" फिर राव ने कहा—"यह ज्ञान नहीं चतुराई है।" महाराज शान्तिप्रिय थे, वे चुप रहे। फिर राव ने महाराज को मारने का षड्यन्त्र किया और जहाँ महाराज ठहरे थे, उस स्थान के मार्ग में मतवाला हाथी छोड़ दिया। हाथी को देख कर स्वामी गरीबदासजी ने कहा—"इस मार्ग में तो षड्यन्त्र मालूम होता है।" महाराज बोले—"षड्यन्त्रकारियों को उनके कर्म का फल मिलेगा और हमारी रक्षा निरंजन राम अवश्य करेंगे।" स्वामी गरीबदास जी तथा श्री रज्जब जी आदि सन्त बड़ी सावधानी के साथ महाराज के साथ चल रहे थे। हाथी जब समीप आया तो श्री रज्जब जी उसे हटाने के लिये आगे बढ़ना चाहते थे, किन्तु महाराज ने उनको रोक दिया। हाथी आया और मन्त्रमुग्ध हो खड़ा रह गया। उसने सूंड से महाराज के चरण छूये, मस्तक नमाया। फिर वह हाथी शांतिपूर्वक लौट गया।

भुरटिया राव ने यह विचित्र घटना देखी, तब उसने बहकाने वाले मन्त्री को उलाहना दिया और श्रद्धापूर्वक महाराज के पास गया, सत्संग किया तथा अपने यहाँ ले जाने का आग्रह करके बोला—"सब सन्तों के स्थान भोजनादि का प्रबन्ध मैं कर दूंगा, आप सदा ही मेरे यहाँ रहा करें।" महाराज बोले—"हम तो एक परब्रह्मरूप राजा के ही आश्रय में रहते हैं, अन्य राजाओं के नहीं।" फिर उधर से अनेक ग्रामों में भक्तों को सत्‌शिक्षा देते हुए नरेना में आये।

मार्ग में जाते हुए वखना को होली गाते हुए देखकर कहा—"जिन भगवान् ने तेरा सुन्दर शरीर बनाया है, उनके गुण क्यों नहीं गाता, अपने पतनकारक ऐसे गन्दे गीत क्यों गाता फिरता है ? यह उचित नहीं।" सुनते ही वखनाजी महाराज के चरणों में गिर पड़े और उनके शिष्य बन गये।

इसी समय रम्मत करते हुए महाराज दौसा पधारे, और वहाँ उन्होंने श्रीसुन्दरदास जी को शैशवावस्था में ही उपदेश देकर अपना शिष्य बनाया।

वि० सं० १६५९ में जब महाराज को भगवान् की ब्रह्मलीन होने की आज्ञा हुई तब शिष्य सन्तों के मन में कहीं धाम बनाने की इच्छा हुई। उनके मन की बात जानकर महाराज ने नरेना गांव के सरोवर तट पर धाम बनाना

उचित समझा। नरेना-नरेश श्री नारायणसिंह दक्षिण में थे। उसके मन में भी यह फुरणा हुई कि महाराज को नरेना लाकर सत्संग करना चाहिये। उसने महाराज को बुलाया। महाराज तीन दिन श्रीरघुनाथमन्दिर में रहे, फिर ७ दिन त्रिपोलिया (तालाब पर बने स्थान) पर रहे। वहाँ राजा प्रतिदिन सत्संग करने जाते थे। आठवें दिन महाराज के आसन के पास एक सर्प प्रकट हुआ उसने अपने फन से तीन बार वहाँ से उठने का संकेत किया। महाराज भगवान् की आज्ञा मानकर, उसके पीछे-पीछे चल पड़े। कुछ दूर आगे एक खेजड़े के वृक्ष के नीचे जाकर सर्प ने फन से वहाँ विराजने का संकेत किया। महाराज वहाँ विराज गये।

वहाँ तालाब के तट और बाग के बीच एक मास में धाम तैयार हो गया। फिर एक दिन वहाँ भूत काल में हुए कई प्रसिद्ध सन्त पधारे और रात्रि भर ब्रह्म-विचार होता रहा। प्रातः टीलाजी ने पूछा—"भगवन्! रात्रि में बाहर से तो कोई आया नहीं, फिर भी रात्रिभर आपके पास कई महानुभावों के शब्द सुनायी दे रहे थे, क्या बात थी?" महाराज ने कहा—"भूत काल में हुए संत आकाशमार्ग से ब्रह्मविचारहेतु आये थे और आकाशमार्ग से ही वापस चले गये।"

अन्त में, स्वामी गरीबदास जी ने प्रश्न किया—"स्वामिन्! आपने ऐसा मार्ग दिखाया है जो हिन्दू-मुसलमानों की संकीर्ण मर्यादा से ऊपर का है, किन्तु इसका आगे कैसे निर्वाह होगा"? महाराज ने कहा—"तुम ऐसा विचार मत करो। जो अपने धर्म में रहेंगे, उनकी रक्षा राम करेंगे। तुम और विशेष चाहो तो हमारा शरीर रख लो। जो भी पूछना चाहोगे उसका उत्तर इससे मिलता रहेगा। ऐसा न समझो कि यह शरीर खराब हो जायेगा क्योंकि यह पंचतत्त्व से बना हुआ नहीं है। अपितु यह दर्पण में प्रतिबिम्बित शरीर के समान है। यदि तुम्हें संशय हो तो हाथ फेर कर देख लो।" स्वामी श्री गरीबदास जी ने हाथ फेरा तो शरीर दीपक ज्योति सा प्रतीत हुआ। वह दीखता तो था, किन्तु पकड़ में नहीं आता था। फिर स्वामी श्री गरीबदास जी ने कहा—"जब आपने ऐसा देह बना लिया तो कुछ दिन इसे और रखने की कृपा करें।" महाराज बोले—"हरि आज्ञा नहीं है।" स्वामी गरीबदास जी ने कहा—"शरीर के रखने से तो हम शव-पूजक कहलायेंगे और आपके उपदेश के अनुसार यह उचित नहीं है।" महाराज बोले—"तो फिर यहाँ एक बिना तेल घृत और बत्ती के अखण्ड ज्योति रहेगी, उससे

तुम्हारे सभी कार्य सिद्ध होते रहेंगे।" स्वामी गरीबदास जी ने कहा—"उस ज्योति का महान् चमत्कार देखकर यहाँ जनता का अधिक आना-जाना रहेगा जो हमारी साधना में पूर्ण विघ्नकारक बनेगा। हम पंडे बन जायेंगे, अतः यह भी ठीक नहीं है।" स्वामी गरीबदासजी की निष्कामता देखकर महाराज बहुत प्रसन्न हुए और बोले—"जा हमारी वाणी का आश्रय लेकर निर्गुण भक्ति करेंगे, उनकी रक्षा परब्रह्म करेंगे और जो इष्टोपासना से च्युत होगा, उसे परम पद नहीं मिलेगा।"

ब्रह्मलीन होने से पूर्व महाराज ने सब सन्तों को बुलाया। उन्हें दर्शन देकर स्नान करके वे एकान्त स्थान में बिराज गये। उस समय भगवान् की तीन बार "आओ, आओ" यह आज्ञा हुई। तीसरी आज्ञा के साथ ही महाराज ने अपना देह-त्याग दिया।

वि० सं० १६६० ज्येष्ठ कृष्णा शनिवार को एक पहर दिन चढ़े उक्त प्रकार से महाराज ब्रह्मलीन हुए। तब उस शरीर को एक सुन्दर पालकी में रखकर महाराज की आज्ञानुसार कीर्तन करते हुए भैराना पर्वत पर ले जाया गया। वहाँ पालकी ले जाकर रख दी गयी। वहाँ अन्त्येष्टि-संस्कार सम्बन्धी विचार चल ही रहा था कि उसी समय टीलाजी को पर्वत के मध्य भाग की गुफा के द्वार पर महाराज के दर्शन हुए। टीला जी ने सबसे कहा। उन सबने दर्शन किया। इतने में ही महाराज "सन्तो! सत्यराम"—यह बोलकर अन्तर्ध्यान हो गये और पालकी में शरीर के स्थान पर पुष्प मिले।

फिर स्वामी गरीबदास जी ने महान् महोत्सव किया।

इस प्रकार महाराज ५८ वर्ष २॥ मास इस भूमण्डल पर रहे और लोककल्याणार्थ उपदेश करते हुए अपने १५२ शिष्य बनाकर ब्रह्मलीन हुए। उनमें से १०० शिष्यों ने निरंजन राम का भजन किया और ५२ शिष्यों ने महाराज द्वारा उपदिष्ट मत को समग्र भारत में प्रचार किया।

श्री दयालवे नमः ।

भूमिका ॥

दयालजी का जीवन समय ॥

श्री स्वामी दादूदयाल गुजरात देश के अहमदाबाद नगर में लोदीराम नागर ब्राह्मण के घर संवत् १६०१ विक्रम के फाल्गुण मास शुक्लपक्ष ८ मी गुरवार के दिन प्रगट हुये थे। उस समय को आज ३६२ वर्ष हुये हैं। १८ वर्ष की अवस्था तक उसी नगर में रहे, उसके पीछे ६ वर्ष मध्य देश में फिरते हुये काटे। पश्चात् जयपुर राज्य में सांभर (जहां सांभर नाम का लवण बनता है) में आ बसे, कई वर्ष वहां रहे, पीछे आंबेर आये। आंबेर जयपुर राज्य की उस समय राजधानी थी। महाराजा भगवंतदास (राजा मानसिंह के पिता) का उन दिनों में वहां राज्य था। १४ वर्ष स्वामीजी आंबेर रहे, पीछे मारवाड़ बीकानेरादि राज्यों में विचर कर नराणे ग्राम में (जो राजपूताना–मालवा रेलवे पर फुलेरा और अजमेर के बीच अब एक स्टेशन है) विश्राम किया और संवत् १६६० के थावर (शनिवार) ज्येष्ठ बदी ८ मी को ५८ वर्ष २ मास और १५ दिवस की अवस्था पर शरीर त्याग दिया। इसी नराणे में दादू-द्वारा नामक दादूपंथी साधुओं का मंदिर है और यही उनका मुख्य स्थान है, जहां प्रतिवर्ष फाल्गुण सुदी ४ से पूर्णमासी तक एक भारी मेला होता है, दूर २ से हज़ारों दादूपंथी साधु एकत्र होते हैं। दयालजी की जीवन लीला अति रोचक है। इस ग्रंथ का आकार बहुत बढ़ गया है, इसलिये स्वामीजी का संपूर्ण जीवनचरित्र और उनके ज्ञान उपदेशों का आशय दूसरी पुस्तक में अलग छपाया जायगा।

वाणी के भाग और महिमा ॥

दयालजी की वाणी के दो भाग हैं, एक में साखी और दूसरे में पद (भजन) हैं। आदि से अंतपर्यंत दोनों भाग ज्ञान उपदेशों और दयालजी के अद्भुत अनुभवों से परिपूर्ण हैं। साधारण लोक भाषा में गंभीर तत्त्वज्ञान

ऐसी रीति से दर्शाये हैं कि जिज्ञासु उनको सहज में समझ जांय और वाणी के पाठ से ही शब्दों के मीठे रस में मग्न होकर आनंद प्राप्त करें। योगीराज स्वामी दादूदयाल जी के वाक्य ऐसे प्रभावशाली हैं कि प्रेम से पढ़ने वाले के हृदय में तत्वज्ञान भले प्रकार से पहुंचा देते हैं।

आत्मज्ञान की महिमा ॥

जैसा कि ईशावास्योपनिषद् के तीसरे मंत्र में कहा है कि आत्मज्ञान को संपादन न करके पुरुष आत्म हत्यारे बनते हैं अर्थात् अपना सर्वस्व गंवा देते हैं। उसी प्रकार से दयालजी ने भांति २ से अनेक बार कहा है कि आत्मराम की प्राप्ति बिना मनुष्य जन्म निष्फल जाता है। आत्मज्ञान से मनुष्य सब रोग दुःख भय क्लेश पीड़ादि संसार के तापों से छूट कर निर्भय निःशंक आनंद मंगलमय भाव को प्राप्त होता है, और सर्व प्रकार से तृप्तपरिपूर्ण सर्वसंपत्तिमान सर्वमित्र समदर्शी शीतलहृदयवान होकर सहज भाव से जगत् में रहता है और उचित व्यवहार निपुणता से चलाता है। ऐसे आत्मपद की प्राप्ति की इच्छा किस को न होगी? आत्मलाभ से केवल परलोक ही नहीं किंतु यह लोक अवश्य सुधरता है। दयालजी ने जीवन्मुक्ति ही को सच्ची मुक्ति बताया है, सो आत्मज्ञान जीवनकाल में पूर्ण आनंद देता है, जिस आनंद को पाकर मनुष्य तृप्त हो जाता है, उसे दुनियावी विषय सुख तुच्छ (फीके) दीखने लगते हैं, जैसे करोड़पती कौड़ी पैसों की ओर नहीं लुभाता, जैसे स्वादिष्ट ताज़े भोजन करके कोई बासी सड़े गले पदार्थों की तरफ नहीं देखता है, तैसे आत्मानंद को पाकर ज्ञानी संसार के भूसी के फोंकवत निःसार पदार्थों के पीछे अपना जीवन मूल नहीं गंवाते, किन्तु आत्म तत्व को अच्छी तरह से दृष्टि में सदैव रख कर दुनिया के व्यवहार करते हैं। दुनिया के व्यवहार किये बिना निर्वाह नहीं होता, सो दुनिया के व्यवहार उचित रीति भांति से करते हुये आत्मतत्व को सर्वोपर लक्ष्य में रखना उचित है। ज्ञानवान का आचार व्यवहार ऐसा निपुण और सफल होगा कि जिस २ पदार्थ की वह इच्छा करेगा वह २ पदार्थ उस को अवश्य प्राप्त होंगे, जैसा कि मुण्डकोपनिषद् में कहा है:—

यं यं लोकं मनसा संविभाति विशुद्धसत्त्वः कामयते यांश्चकामान् । तं तं लोकं जायते तांश्च कामांस्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद्भूतिकामः ॥

दयालजी के अमृतरूपी वाक्य जिज्ञासु जनों को सर्व कामना देने वाले हैं। उनका आशय विस्तार पूर्वक हमने एक पुस्तक में लिखा है जो स्वामी "दादूदयाल के जीवनचरित्र और ज्ञान उपदेश" नाम से अलग छपेगी ॥

वेदांत की प्रक्रिया ॥

दादूजी की वाणी का अर्थ अच्छी तरह से समझने के लिये वेदांत की प्रक्रिया का ज्ञान अत्यावश्यक है। वेदांत की प्रक्रिया दादूपंथी साधु पंडित निश्चलदास कृत विचारसागर और वृत्तिप्रभाकर ग्रन्थों में बहुत उत्तम रीति से दीगई है। यह दोनों ग्रंथ हिंदी भाषा में हैं और सर्व जिज्ञासु जनों के लिये अति उपयोगी हैं। वृत्तिप्रभाकर विशेष कर के पंडितों के देखने लायक है, पर विचारसागर साधारण जिज्ञासु समझ सकते हैं, जिसने यह ग्रंथ देख लिया है उसको उपनिषद् भगवद्गीतादि का आशय समझना अति सरल होजाता है। वेदांत की प्रक्रिया जाने बिना इन ग्रंथों का आशय नहीं मिलता है। विचारसागर वा संस्कृत में विद्यारण्य स्वामी रचित पंचदशी वेदांत प्रक्रिया के मुख्य ग्रंथ हैं, इन को सर्व वेदांत वाक्यों की कूंची समझना चाहिये। जो महाशय वेदांत प्रक्रिया को अच्छी तरह से समझते हैं उनके लिये दयाल जी की वाणी का तात्पर्य समझना कुछ कठिन नहीं है ॥

वाणी में भाषायें ॥

दयालजी की वाणी में कई भाषायें आई हैं, अर्थात् हिंदी (बृज) मारवाड़ी वा जयपुरी, गुजराती, मरहठी, पंजाबी, सिंधी, फारसी इत्यादि। अधिक भाग बृज और मारवाड़ी वा जयपुरी में है, कुछ साखी और पद एक ही एक भाषा में हैं, पर कोई २ मिश्रित भाषाओं में भी हैं। स्वामीजी की मातृभाषा गुजराती थी, सो गुजराती शब्द कहीं २ हिंदी अथवा मारवाड़ी साखी और पदों में भी आगये हैं। इतनी भाषाओं का समझना कठिन काम है, पर जहांतक

बन सका हमने कठिन वाक्यों के अर्थ टिप्पण में कर दिये हैं और इस पुस्तक के अंत में एक कोष आकारादि क्रम से देदिया है जिस में कठिन शब्दों का भावार्थ मिल जायगा ॥

भाषा की प्राचीनता ॥

दयालजी ने अपने समय की लोक भाषा में यह काव्य रचे थे। उस समय को साढ़े तीन सौ वर्ष हो चुके हैं, उन दिनों की भाषा आज कल की हिंदी के सदृश न थी, वर्तमान बोल-चाल तथा लिखने पढ़ने में बहुत कुछ अदल बदल होगया है । दयालजी की बाणी में जो शब्दों के रूप में अथवा मात्राओं में भेद देख पड़ते हैं उन को लिखने वालों की भूल न समझना चाहिये । भाषा पुराने ज़माने की है, उन दिनों में उस का वैसाही वर्ताव था । और जहांतक हम देखते हैं वह बर्ताव नियमानुसार था, जैसा कि आगे हम दिखाते हैं । यदि पाठकों को किसी तरह से प्राचीन भाषा अड़बड़ी जान पड़े तो धैर्य से इस खुलासे को पहले पढ़लें, पीछे दयालजी की बाणी में प्रवेश करें ।

पुरानी भाषा के उपयोग ॥

पुरानी भाषा की असलियत बनाये रखना हम ने अति आवश्यक समझा है और इस अभिप्राय को पूरा करने में हमने अति श्रम भी किया है । आदि में जो प्रति छापने के लिये हम ने लिखाई थी उस में पुरानी रीति भांति के शब्द वर्तमान हिंदी के रूपों में कर दिये गये थे। जब हम को इसका भेद मालूम हुआ तो हम ने उस प्रति को अनेक पुरानी पुस्तकों से मिलान करके फिर से शोधा और जो असली रूप मूल पुस्तकों में अधिकता से पाये सोई रक्खे, कहीं २ मूलपुस्तकों में ही दो भांति के रूप मिले, उन के शोधने में कठिनता हुई, पर जहां तक बनसका हम ने पुरानी रीति भांति को रक्खा है। जो कुछ इस में चूकें रहगई हैं उन को हम ने लिख लिया है सो दूसरी आवृत्ति में सुधर जांयगी । पुरानी रीति का उपयोग विशेष करके हिंदी की उत्पत्ति के इतिहास में आवेगा । जैसे संस्कृत से प्राकृत बनी थी वैसे प्राकृत से हिंदी बनी है । इस बनावट के रूप इस ग्रंथ में बहुतायत से मिलते हैं । इस-

लिये हिंदी के इतिहास में इस पुस्तक का विशेष उपयोग है। इस काम के साधन में महात्मा सुंदरदासजी के ग्रंथ भी अति उपयोगी हैं, किंतु जो कुछ ग्रंथ (सुंदरविलासादि) छापे गये हैं उन में असली भाषा नहीं रक्खी गई है। छापनेवालों ने अथवा उन के शोधकों ने शब्द वा मात्रा बदल दिये हैं। सुंदरदासजी की वाणी तथा और कई ग्रंथ उन के रचे अभी तक छपे भी नहीं हैं, तैसे ही दयालजी के अन्य शिष्यों के ग्रंथ भी संपादन करके छपवाने योग्य हैं। यदि हिंदी के प्रेमियों ने चाहा तो यह संपूर्ण ग्रंथ हम उनकी भेट करेंगे॥

पुस्तक का शोधन॥

दयालजी की वाणी जो हम ने छपवाई है सो बीस वर्ष के श्रम से हमने तैयार करी है। लगभग आठ पुरानी हस्तलिखित पुस्तकों से (जो अति कठिनता से हमारे हाथ लगीं) अन्य पंडितों को साथ लेकर एक २ अक्षर हम ने मिलान कर शोधा है। जहां कहीं लेखकों की स्पष्ट भूल पाई वह सुधार दी है। जहां पाठांतर पाया वहां टिप्पण में भेद दिखा दिया है, जिस से पाठक आप देखलें कि दो पाठों में से कौनसा पाठ ठीक है। शेष हमने मूल पुस्तकों के अनुसार ही शब्दों के पुराने रूप अक्षर और मात्रा रक्खे हैं। अपने टिप्पणों तथा अन्य लेखों में हम ने वर्तमान हिंदी ही की रीति भांति रक्खी है, सो हमारे लेख मूल वाणी से निराले हैं॥

हस्त लिखित पुस्तकों का वृत्तांत॥

कुछ पुस्तकें हम को किंचित ही काल के लिये मांगे मिली थीं, उन को देख कर हमने पीछे मालिकों को देदीं, अब हमारे पास निम्नलिखित पुस्तकें हैं, इन्हीं से हमने विशेष मिलान किया है। टिप्पण में जो पुस्तकों के नम्बर दिये हैं सो नम्बर इस भांति से हैं:—

(१) पुस्तक नंबर १ उदयपुर की लिखी संवत् १८३६ मिती ४ मंगलवार मास (फटगया) शुक्लपक्ष॥

(२) दूसरी पुस्तक चानसेण की छावनी में लिखी संवत् १६०८ मार्गसिर बदी १२ बृहस्पतिवार। बावा मंगलदास जी बोरिये की कृपा से मिली॥

(३) अंगबंधू वाणी लिखी संवत् १८०१ मिती श्रावण बदी १ साध रामदयाल दादूपंथी ने चम्पावती मध्ये । संत राममुखजी जोबनेर निवासी से मिली ॥

(४) अंगबंधू वाणी लिखी आसोज सुद ४ संवत् १८८५ बाबा सेसरामजी बाबा विष्णुदासजी तिनके जिज्ञासी बालभज बुधरामजी ने ॥

(५) अंगबंधू त्रिपाठी सटीक लिखी कृष्णपक्ष १४ शनिवार संवत् १९३४, पंडित नंदरामजी नराणे के गुरुद्वारे निवासी की कृपा से प्राप्त ॥

मूल वाणी का संपादन और भेद ॥

दयालजी के साधुओं के मुख से सुना है कि वाणी दयालजी ने अपने हाथ से नहीं लिखी । समय २ पर जब उनकी मौज आई अथवा किसी ने प्रश्न किया तब उन्होंने साखी और पद रचे और उनके शिष्यों ने लिख लिये । उन शिष्यों में रजबजी, जगन्नाथदासजी और संतदासजी के नाम बताते हैं॥

रजबजी ने जो पुस्तक लिखी उस को 'अंगबंधू' कहते हैं अर्थात् इसमें साखियों और पदों पर विषय सूचक अवांतर अंग रजबजी ने लगा दिये हैं, जिनसे दयालजी की वाणी का आशय मिलता है । और अंगबंधू पोथियों में एक अंग की साखी दूसरे अंग में बहुत कम दोहराई गई है ॥

दूसरी "हरडे वाणी" जगन्नाथदासजी और संतदासजी की लिखी है । इस के अंगों में अवांतर अंग नहीं दिये गये हैं और कितनी साखियां विषय संबंध से अंग अंगांतर में दोहराई गई हैं । जैसे गुरुदेव के अंग की २० वीं साखी उपजणि के अंग में ८ वीं साखी डाली गई है । ऐसा पुनः लिखाव हमने इस पोथी में स्पष्ट दिखा दिया है । जो २ साखियां फिर कर लिखी गई हैं उनकी प्रथम पंक्ति के अंत में दोहरैनी के अंग का नम्बर और उस अंग की साखी का नंबर इस प्रकार से हमने दे दिया है, जैसे गुरुदेव के अंग की २० वीं साखी के अंत में २८-८ लिखा है, जिससे २८ वें (उपजणि के) अंग की ८ वीं साखी में वह दोहराई गई है । इस प्रकार के अंक जहां २ मिलें उन से समझना चाहिये कि पहला अंक अंग का नम्बर बताता है और दूसरा अंक

साखी का नम्बर। इन अंकों से पाठकों को दोहराई साखियों के अन्य स्थान खोजने में सुगमता होगी ॥

साखियों के अंक तौ मूल पुस्तकों हीं में लगे हैं। अंगों के नम्बर हमने अपनी तरफ से दे दिये हैं, जिसमें उन का हवाला देने में सुगमता हो। आदि से अंत तक जो ३७ अंग हैं उनको क्रम से १ से ३७ नंबर दिये हैं ॥

मूल पुस्तकों में पद प्रत्येक राग-रागिनी के अलग २ नम्बर वार थे। उन सब को आदि से अंत तक हमने एक ही सिलसिले से नम्बर दिये हैं। इससे यह सुगमता है कि जहां कहीं पद का हवाला देना हो तौ केवल पद का ही नंबर दिया जाय, हवाला देने में नंबर के साथ राग लिखने की आवश्यक्ता न रही ॥

साखियों के दोहराने में कुछ फरक है, जो पांच पुस्तकों से हमने मिलान किया है उससे विदित हुआ कि दोहराई हुई साखियां सर्व पुस्तकों में नहीं हैं, कोई साखी किसी पुस्तक में है पर किसी दूसरी पुस्तक में वहां नहीं है॥ यह भेद भी हमने इस प्रकार से दिखा दिया है, पांच हस्तलिखित पुस्तकों के नंबर और वृत्तांत जो पहले हम लिख आये हैं उन पांचों को क्रम से क ख ग घ ङ चिन्ह दे दिये हैं। और यह चिन्ह उन साखियों की दूसरी पंक्ति के अंत में अथवा टिप्पण में दे दिये हैं जो किसी पुस्तक में उस ठिकाने नहीं मिली हैं, अर्थात् जिस साखी के अंत में—

(क) लिख दिया है वह साखी पुस्तक नम्बर १ में वहां नहीं है ॥
(ख) „ „ „ २ „ „
(ग) „ „ „ ३ „ „
(घ) „ „ „ ४ „ „
(ङ) „ „ „ ५ „ „

जहां इन अक्षरों में से दो तीन अथवा चार एक ही साखी के अंत में दिये, हैं वहां क्रम से समझना चाहिये कि वह साखी दो तीन अथवा चार पुस्तकों में उस ठिकाने नहीं है, किन्तु शेष पुस्तकों में ही है।

साखियों की दोहरानी सब पुस्तकों में एकसां न होने से प्रतीत होता है

कि यह दोहरानी समय समय पर अनेक महात्माओं ने की है। इस से कुछ हानि नहीं है किन्तु विषय संबंधी साखी एकत्र करदी गई हैं, जिन से आशय समझने में सुगमता है, केवल लिखने वा छापने का काम और खर्च बढ़ गया है॥

हमने कोई साखी छोड़ी नहीं है, जहां तक हमने दोहराई साखी पाई हैं सब को इस पोथी में शामिल करलिया है। जो कोई साखी अंगबंधु पुस्तकों के अनुसार छोड़ दी गई है, उसका पता नीचे टिप्पण में लिखा गया है॥ साखियों के ऊपर अर्वांतर अंग हमने अंगबंधु पोथियों से लेकर इसमें रख दिये हैं। इस प्रकार से हमारी संपादित पोथी सब भावों से पूरण है।

पोथी का आकार बहुत बढ़ गया है और छपाई तथा कागज़ का खर्च दूना होगया है। टाइप के अक्षर भी उत्तम बड़े रक्खे हैं और प्रत्येक साखी और पद के चरण एक २ पंक्ति में रक्खे हैं, जिस से काव्य के पठन में केवल सुगमता ही नहीं किंतु विषय का खोज सहज में मिल जाय और काव्य का रूप बराबर प्रतीत हो। कागज़ भी उत्तम चिकना मोटा मज़बूत लगाया है॥

कठिन शब्दों का कोष, सूची तथा विषयानुक्रमणिका देकर सर्व प्रकार से ग्रंथ परिपूरण और उपयोगी कर दिया है॥ संभव है कि किसी साखी वा पद का तात्पर्य ठीक न दिया गया हो। यदि कोई महात्मा ऐसी त्रुटियां पावें तो कृपा कर के उन वाक्यों का ठीक तात्पर्य मुझे लिख भेजें, तो दूसरी आवृत्ति में वह आशय प्रगट कर दिया जायगा॥

छापने में कहीं २ अशुद्धियां होगई हैं जिन के लिये हम पाठकों से क्षमा के प्रार्थी हैं॥

भाषा की विलक्षणतायें॥

दयालजी की बाणी में अनेक शब्द ऐसे आये हैं जिन के रूप विभक्ति अक्षर संस्कृत अथवा वर्तमान हिंदी के शब्दों के रूपादि से विलक्षण हैं। उनका खुलासा पाठकों को उपयोगी होगा इसलिये संक्षेप से मुख्य २ बातों को यहां हम लिखते हैं॥

स्वरों में भेद ॥

अ बदल कर इ होगया है जैसे स्मरण से सुमिरण, परमानंद से परिमानंद, सज्ञान से सियान, तरुणं से तिरना, सवन से सवनि, इत्यादि ।

आ के बदले ए आया है जैसे दा से देना बना है वैसे किताब से कतेब, हिसाब से हसेब ॥

ऐ के बदले अै काम में लाते हैं जैसे ऐसे को अैसे लिखा है। यह रीति पुराने लेखों में प्रचलित थी और गुजराती में अब भी ए ऐ के बदले अे अै लिखे जाते हैं। दयालजी की वाणी के साखी भाग में हमारे लेखकों ने अै की जगह ऐ अनेक स्थानों में रखदी है, सो भूल से छपने में भी आगई है ॥

इ बहुधा य के बदले लगाई गई है जैसे—

लेइ, देइ, जाइ,	बदले	लेय, देय, जाय		के
उदिम, मधिम	"	उद्यम, मध्यम		के
मधि, धनि (पद३७८)	"	मध्य, धन्य		के
पुनि, सुनि	"	पुण्य, शून्य		के
अनि, अनिनि	"	अन्य, अनन्य		के
सति	"	सत्य	(१३–१३७)	के
इह, इक	"	यह, यक		के

ऐसे शब्दों में इ का उच्चारण य और इ के बीचले स्वर का होता है, जैसे अंग्रेजी e का bed में, देखो पृष्ठ १४३ Comparative Grammar of the Modern Aryan Languages of India by John Beames C. S., Vol. 1, 1872.

कहीं इ के बदले य लिखा गया है जैसे—

ब्यंद, भ्यंन	बदले	बिंद, भिन्न के	
च्यंता	"	चिंता के	(२–३, ४–२६)
च्यंत	"	चिंत के	(४–८४, १८–३)

अ इ उ के पीछे जब य व आते हैं तब दोनों मिल जाते हैं, अ+य सदृश अ+इ के मिलकर ए ऐ बन जाते हैं, अ+व सदृश अ+उ के मिलकर ओ

भी हो जाते हैं, इ+य सदृश इ+इ=ई और उ+न् सदृश उ+उ के मिल कर ऊ होते हैं, * जैसे—

(१)	भय, लय के	बदले में,	भै, लै ।
	हय (घोड़ा)	"	है
	हृदय के	"	हिरदै वा रिदै
	नयन	"	नैन
	निश्चय	"	निहचे वा निश्चै
	समय	"	समै

(२) लवण = लूण, अवसर = औसर, भवसागर=भौसागर, पवन= पौन, नव = नौ, हवस = हौंस, अवधूत = औधूत, इत्यादि ।

(३) प्रियतम = प्रीतम, इंद्रिय = इंद्री ।

(४) दिवस = दौंस ।

ओं की जगह ऊ वा औं की मात्रा आई है, जैसे—

पंचों	के बदले	पंचूं वा पंचौं (१-१०१)
ज्यों	"	ज्यूं वा ज्यौं
क्यों	"	क्यूं वा क्यौं
दोनों	"	दून्यूं वा दोनौं
को	"	कूं वा कौं
भूमि	"	भोमि

ए और ओ के बदले ऐ और औ की मात्रा आई है, जैसे होरी के बदले हौरी, मेरे के बदले मैरै, जैसे के बदले जैसै, अपने के बदले अपनैं, इत्यादि। तैसे आधुनिक कहे सुने और करो धरो के बदले कहै सुनै और करौ धरौ आये हैं। Hoernle महाशय ने अपने व्याकरण में लिखा है कि अ के साथ इ वा उ के आने से ऐ वा औ बन जाता है जैसे चलइ कहउं के बदले चलै

* See para 79 b page 47 of "a Grammar of the Hindi Language" by Rev. S. H. Kellogg, D. D., L. L. D., 1893.

कहीं बने हैं‡। इस नियम के अनुसार दयालजी की वाणी के लेखकों की रीति शुद्ध है।

ऋ और र के उपयोग में नीचे लिखे दृष्टांतों से भेद मिल जायगे—

संस्कृत रूप	वाणी में लिखित रूप	संस्कृत रूप	वाणी में लिखित रूप
ऋषि	रिषि	सर्वस्व	सर्बस वा श्रबस
वृक्ष	बिरष	समर्थ	समथ्र वा समरथ
गृह	गेह	गर्व्व	ग्रब वा गरब
हृदय	हिरदै वा रिदै	परमानन्द	प्रमानन्द वा
कर्म	क्रम (८–४४)		परिमानन्द
सगुण	श्रगुण	श्रेष्ठ	सिष्ट (१६—६)
निर्गुण	नृगुण वा	दृष्टि	दिष्टि (४—८३)
	न्रिगुण (८-८५)	सृष्टि	सिष्टि
निर्मल	नृमल वा न्रिमल		
निर्फल	नृफल वा	कृश, मिष्ण	कस, मिष्ण
	न्रिफल (८–६१)	प्रौढ़	पौढ़ा
कर्तार	क्रतार वा करतार		
स्वर्ग	सरग वा श्रग	दृढ़	द्रिढ़ वा दिढ़
सर्व	सरब वा श्रब	अन्यत्र	अनत
सर्प	श्रप (४-३५०)	निर्धन	नीधना
भ्रम	भ्रम (१६–६,	ग्रहण	गहन
	२१–११)	दारिद्री	दालिद्री
भ्राता	भ्रता (१३–७१)	समुद्र	समंद

‡ See clause b para. 88 (3) page 53 of Kellogg's Hindi Grammar, and paras 71 & 77 pages 48 & 50 of "a Comparative Grammar of the Gaudian Languages" by A.F. Rudolph Hoernle, 1880.

व्यञ्जनों में भेद ॥

क के बदले ग हो गया है, जैसे—

उपकार	के बदले	उपगार।	कौतुक	के बदले	कौतिग
सेवक	"	सेवग।	युक्ति	"	जुगत
प्रकट	"	प्रगट।	बक	"	बग
विकाश	"	बिगास।	घातक	"	घातिग
भक्ति	"	भगति।			

ख की जगह ष प्राचीन हिन्दी में और गुजराती में तथा मारवाड़ी में सर्वथा लिखा जाता है। कैथी महाजनी वा शराफी में भी ख का रूप ष ही से मिलता है। इस प्रकार से ख की जगह ष का चलन मारवाड़ के बाहर भी होता आया है। इस चलन के अनुकूल दयालजी की बाणी के लेखकों ने सर्वत्र ख की जगह ष ही लिखा है। ७०० वर्ष से ऊपर समय के तांबे के सिक्के जो दिल्ली के बादशाहों (शमसुद्दीन अल्तमश सन् ६०७ हिजरी, अलाउद्दीन मसाऊदशाह सन् ६३९ हिजरी) ने टकसालों में चलाये थे, उन पर

"श्री षलीफः" अथवा "श्री षलीफा॰"

शब्द खुदे मिलते हैं। षलीफा خليفه अरबी शब्द है और इस का उच्चारण खलीफा है। इन ताम्रपत्रों से पुरानी रीति का पुष्ट प्रमाण मिलता है॥

ष का उच्चारण जैसा संस्कृत में होता है, सो बोल प्राकृत में ही उठगया था, जैसा कि वररुचिकृत प्राकृत प्रकाश के द्वितीय परिच्छेद के ४३ वें सूत्र में और ११ वें परिच्छेद के तीसरे सूत्र में लिखा है। तदानुकूल पुरानी हिन्दी, मारवाड़ी, गुजराती, पंजाबी, मराठी, बंगाली आदि सब गौड़ीय भाषाओं में ष का उच्चारण ष न रहा, किन्तु ख का उच्चारण देने लगा। पूर्व में पण्डित लोग संस्कृत शब्दों में भी ष का उच्चारण ख की भांति ही करते हैं। आधुनिक हिन्दी के लेखकों ने ष के पुराने (संस्कृत के) उच्चारण को फिर से जिलाया है और तत्सम और तद्भव शब्दों में लिखने लगे हैं॥

ण कहीं २ य के बदले लगाया गया है और कहीं ज के बदले य, जैसे–

युक्ति के बदले जुगत। आश्चर्य के बदले अचरज।
याचना ,, जाचना। अयान ,, अयान (८–१४१)
कार्य ,, कारिज। सूर्य ,, सूरिज।

जूर्झ को झूर्झ लिखा है (२४–६४। २४–५६)।

झ का रूप बहुत करके ञ हस्तलिखित पोथियों में मिलता है।

न के बदले ण बहुधा लिखा गया है जैसा कि निम्नलिखित शब्दों में–

अपणां बदले अपना के माणस बदले मानुष के (२५—७६)
आसण ,, आसन के हींण ,, हीन के
चुंणै ,, चुनै के सुंणै ,, सुनै के
जांणै ,, जानै के हूंणा ,, होना के
पांणी ,, पानी के उपजणि ,, उपजनके, इत्यादि।

प्राचीन सिक्कों पर निम्नलिखित नामों में भी ण पाई जाती है—

"श्री अणंगपालदेव"
"सुरिताण श्री समसदीण" (सुलतान शम्सुद्दीन अल्तमश संवत् १२८८)
"श्री हसण कुरल" (हसन करलघ)
"सुरिताण श्री रुकणदीण" (रुकनुद्दीन)
"सुरिताण श्री मुअजदीं"
"सुरिताण श्री अलावदिण श्री पतीफा०"

इन सिक्कों से पुरानी बोल चाल और लिखावट की रीति पाई जाती है, दयालजी की बाणी के शब्द भी उसी पुरानी रीति के अनुसार हैं।

कहीं म के बदले व और कहीं व के बदले म रक्खा गया है जैसे गमन के बदले गवन, विवेक के बदले बमेक।

य के बदले कहीं व रक्खा गया है और कहीं व की जगह य–

वायु = बाव अथवा बाह।

आयु = आउ
आयुध = आवध
न्यारा = निवारा (४-३१२)
वियोग = बिवोग (३—८८, पद ६१)
„ बिओग (पद ६०)
मुनिवर = मुनियर (१३-१७५)
भाव = भाइ (१६—८)
अनुभव = अनभै ।

जयपुरी वा मारवाड़ी संज्ञाओं के अंत में आ के बदले या रक्खा है—

दुविधा = दुविध्या	रत्ता = रत्या
छुधा = छुध्या	भित्ता = भिष्या
निंदा = निंद्या	मजा = मज्या
लज्जा = लज्या	हरा = हरया (रंग)
दीक्षा = दष्या	

तैसे ही क्रियाओं के सामान्यभूत रूप में अंतिम आ के पूर्व या रक्खा गया है—

बंधा = बंध्या ।	भरा = भरया
लागा = लाग्या ।	रहा = रह्या
बना = बन्या ।	मारा = मारया
सौंपा = सौंप्या ।	पाया = पाइया
फिरा = फिरया ।	आया = आइया
हरा = हरया ।	लाया = लाइया
मिला = मिल्या, मिलिया ।	सुना = सुण्या
माना = मानिया ।	बेधा = बेधिया, इत्यादि

ष का उच्चारण बदल कर ख हुआ और संस्कृत में जहां २ श ष स के उच्चारण होते हैं तहां केवल स ही लिखा गया है—

शीर्ष के बदले सीस । दिशांतर के बदले दिसंतर

शब्द के बदले	सबद ।		विश्वास के बदले		बेसास
शेष	,,	सेस ।	निशि	,,	निस
शौच	,,	सुच्या ।	श्रोता	,,	सुरता
शंका	,,	संक्या ।	संशय	,,	संसा
शून्य	,,	सुनि, सुंनि ।	त्रिषा	,,	तिस
पुरुष	,,	पुरिस (१५—५०)	श्रोत्र	,,	सुत्र

ह के बदलने के उदारण यह पाये जाते हैं—

लाभ के बदले	लाह ।		इक (एक) के बदले		हिक ।
शोभा	,,	सोहा ।	और	,,	हौर
क्रोध	,,	कोह ।	दुहना	,,	दूझना
मेघ	,,	मेह ।	बिछड़े	,,	बिहड़े
पुष्प	,,	पुहप ।	गुह्य	,,	गुझ
पाषाण	,,	पाहण ।	हृदय	,,	रिदै
पहाड़	,,	पाड़ ।	सिंह	,,	सिंघ

युक्ताक्षरों में अदल बदल ॥

युक्त व्यञ्जन शुद्ध संस्कृत शब्दों में आते हैं । युक्त अक्षरों के उच्चारण में साधारण जनों को कठिनता होने से संस्कृत शब्दों का अपभ्रंश हुआ है, संस्कृत से प्राकृत और हिंदी साधारण जनों की बात चीत की भाषायें बनी हैं, दयालजी की बाणी भी उस समय की साधारण लोक भाषा ही में है । इस बाणी में युक्त अक्षरों में फेरफार आगे लिखी भांति से पाये जाते हैं ॥

क्ष के बदले ष या ष्य रक्खा है, जैसे—

अक्षय के बदले	अषय वा अषै ।		लक्षण के बदले		लषन वा लष्यन ।
अक्षर	,,	अष्यर ।	भिक्षा	,,	भिष्या ।
अलक्ष	,,	अलष ।	शिक्षा	,,	सीष ।
क्षेम	,,	षेम ।	रक्षा	,,	रष्या ।
क्षीर	,,	षीर ।	प्रत्यक्ष	,,	परतषि ।

क्षेत्रपाल के बदले षेतरपाल। वृक्ष के बदले बिरष।
प्रक्षालन ,, पषालन। सूक्ष्म् ,, सूषिम।
पक्ष ,, पष। क्षय ,, षै वा षय।
परीक्षक ,, पारिष। क्षीण ,, षीन।
दीक्षा ,, दिष्या। शिक्ष ,, षिष(२८-१७
लक्ष ,, लष (२४-१०)

ज्ञ के बदले ग्य लिखा है जैसे ज्ञान की जगह ग्यान, आज्ञा के बदले आग्या, यज्ञ के बदले जागि।

जिन संस्कृत शब्दों के आदि में स् के साथ दूसरा व्यञ्जन आया है उन में स् का लोप हो गया है अथवा स् के पूर्व अ लग गया है जैसेः—

स्कंध = कंध। स्थान=थान, अस्थान (१-२२)
स्तन = अस्तन, थन। स्थिर=थिर, अस्थिर।
स्तुति = अस्तुति। स्थल=थल, अस्थल।
स्थिति = थाती (पद २४)। स्पर्श=परस, सपरस।
स्थापन = थापन। स्मरण=सुमिरण।

शब्दों के मध्य के व का लोप—

तत्व = तत। स्वास = सास (२५—२१,२-६)
स्वर्ग = सरग वा सुरग (१९-४२) विश्वास = बेसास
द्वंद्व = दंद (२६-११) सारस्वती = सुरसती
स्वेत = सेत (२५-६१) परमेश्वर = परमेसुर
स्वाद = साद

जहां क्क च्च ज्ज ट्ट त्त त्थ द्द इत्यादि युक्त व्यञ्जन संस्कृत वा वर्तमान हिंदी के शब्दों में पाये जाते हैं वहां दयालजी की बाणी में केवल एक ही अक्षर लिखा गया है, जैसे—

पक्का=पाका व पका। भक्षन=भाषण
उच्चारण=उचारण। कच्छप=कछिप (१-८६)
उज्वल वा उज्जल=उजल (१७-११) विच्च (पंजाबी) विच

इस्वां = इधां (पद ३५३) शुद्ध = सुध (१-२७)
इत्य = इय (१६-२१) उद्धार = उधार ।

लिखने में जो धुध सुध इय पथर तत इत्यादि आये हैं उनका उच्चारण शुद्ध सुद्ध इत्य पत्थर तत्त सा ही होता है, बछा का उच्चारण बच्छा अगली चौपाई में स्पष्ट हैः—

जैसे जल विन तलफै मंछा ।
सर विन हंस गाय बिन बछा ॥

तैसे ही रजब का उच्चारण रज्जब है, कहीं २ मूल पुस्तकों में ऐसे शब्दों के शुद्ध संस्कृत रूप भी पाये जाते हैं, कहीं हमारे लेखकों ने छापने वाली मति में संस्कृत रूप लिख दिये थे सो छप गये हैं, (यह भूल द्वितीय आवृत्ति में निकाल दी जायगी) पर पुरानी लिखित पुस्तकों में इन युक्त अक्षरों के बदले एकही अक्षर लिखने की विशेष रूढ़ी पाई जाती है ॥

इस के विपरीत एक अक्षर के बदले वाणी में युक्ताक्षर भी मिलते हैं, जैसे साबित के बदले स्याबति, बिंब = ब्यंब, दोनों = दोन्यूं, शौच = सुच्या, शंका = संक्या, त्यों = त्यौं ।

कहीं युक्ताक्षरों को अलग २ करके भी लिखा है, जैसे—

स्नेह = सनेह	प्रसंग = परसंग
स्नान = सनांन	वर्ण = बरण
प्रगट = परगट	वृक्ष = विरष
प्रलय = परलै	श्रम = सुरम
ग्रास = गिरास	स्वार्थ = सवारथ
स्पर्श = सपरस	स्वादी = सवादी
मुक्ति = मुकति	प्रत्यक्ष = परतष
भक्ति = भगति	समर्थ = समरथ वा सम्रथ
पर्यन्त = परजंत	आश्चर्य = अचरज
आत्म = आतम	तप्त = तपत वा ताता

निम्नलिखित शब्दों में व्यञ्जन अनेक भांति से बदले हैं:—

देषना = देखना	बाइक = बाक्य
ठाली = खाली	मूका = मूक्या
दांवु = दांव	पखि = पख्य
दिढ़ = दिढ़	फेध = फंदा
डफांण = तोफान	पहुंता = पहुंचा
पासी = फांसी	गर्भ = गर्व
पयाल = पताल	गुझ = गुह्य
बधना = बढ़ना	दुर्लभ = दुल्पभ (पद १६४)
तलपत = तलफत	पैसना = पैठना
मींडक = मेंढक	दूझना = दुहना
मड़हट(१०—६८) = मरघट	बिहड़े = बिछुड़े
मंछर = मत्सर	बैसनो = बैठना

दयालजी की बाणी के लेखकों ने अनुनासिक॰ कहीं भी नहीं लगाया है। इस के बदले अनुस्वार ही सर्वत्र बाणी में मिलता है। यहां निम्न लिखित शब्दों में अनुस्वार विशेष पाया जाता है—

मांडे, टांडे	करनां, भरनां
रांम, नांम	अयांनां, सुपिनां
ग्यांनी, ध्यांनां	मांहि, नांहिं
भांन, सनांन	नैंन, बैंन
हींन, मींन	कोंण, भांणां
रांणां, ध्यांनां	इत्यादि ॥

सांई की ई के पीछे अनुस्वार नहीं लगाया है सो गुजराती रीति के अनुसार शुद्ध है ॥

विसर्ग भी बाणी में कहीं नहीं लगाया गया है, कहीं तो इसे छोड़ ही दिया है, और कहीं इस की जगह ह रक्खा है, जैसे दुष, निहकामी, निहचल, इत्यादि ॥

कॉमा का चिन्ह , जो मूल साखी वा पदों में छपा है सो हमने अपनी तरफ से लगाया है, मूल पुस्तकों में उस के स्थान पाइयाँ । थीं ॥

विभक्ति ।

कर्म्म और संप्रदान की विभक्ति में को के बदले कूं अथवा कौं आया है, कहीं नें वा नैं भी लिया है ॥

करण की विभक्ति में अ वा आकारांत संज्ञाओं के अंत में ऐ की मात्रा लगाई है जैसे सहजै वा सहजैं=सहज से, घोड़ै=घोड़े ने, यह रीति गुजराती में भी है ॥

अपदान की विभक्ति में से के बदले सूं साँ तैं वा थैं आया है ॥

संबंध की विभक्ति साधारण हिंदी में का के की है, सोई यहां भी आई है, कहीं २ का के बदले कौ और के के बदले कै आया है ॥

अधिकरण को कई प्रकार से रक्खा है, कहीं शब्द के पीछे माँहिं, माँहें वा मैं लगाया है, कहीं अंत के ह्रस्व स्वर को दीर्घ करके अनुस्वार लगा दिया है, कहीं केवल इ, ए वा ऐ की मात्रा लगा दी है, जैसे—

आत्म माँहिं १-२० ।
मांन सरोवर माँहिं जल (१-४६)
सो घी दाना पलक मैं (१-४६)
जब मन लागै साँचै (साचे में) पद १८३ ।
सतगुर चरणां मस्तक धरणां (पद ३७४)
भगति मुकति बैकुठां जाइ, (,, ,,)
ईंधाँई रहिमांन वे, (पद ३५३)
दादू आत्मराम गलि (गले में) (४-२६६)
जाणौ जोगी जगि (जग में) रहै, (५-१८)
तब माँथै मीच न जागै, (पद १८३)
तूं हीं तूं नांनि माहरे गुसांई (पद १३०)
जियरा जाइ अंदेहे (पद १२६)

ऊपर लिखे इकारांत गलि, जगि, तनि शब्दों में इ का बड़ा उपयोग है। तनि का अर्थ "तन में" होता है. यदि यहां इ न होती तो अर्थ होता तू ही तू हमारा तन है बदले "तू ही तू हमारे तन में है" के। इस प्रकार से संज्ञाओं के अंत अनेक शब्दों में इ लगाई गई है, उस को पाठक वृथा न समझें। यद्यपि यह आधुनिक हिंदी से विलक्षण है और नये पाठकों को अशुद्ध प्रतीत हो, तथापि इस प्रकार से सप्तमी विभक्ति में इ का लगाना संस्कृत व्याकरण को लेकर है॥

विधि क्रियाओं के अंत में आज्ञार्थ बताने के लिये भी इ लगाई गई जैसे—

बसि	अर्थात्	बासकर॥
धरि	"	धर
देखि	"	देख (पद ३७०)
तारि	"	तार दे (पद ३२३)
समझि	"	समझ ले (पद २८१)
सोधि ले	"	सोधले (१५-११५)

कहीं इ केवल स्त्री लिंग ही दिखाती है, जैसे कामणि, नागणि, सापणि (१२-१६१)

कहीं २ अंतिम ई बदले इये के लगाई गई है, जैसे—

बूझी, जूझी	बदले	बूझिये, जूझिये के (६-४)
कीजी, पीजी	"	कीजिये, पीजिये के (६-४)
लीजी	"	लीजिये के (६-८)
जाणी	"	जानिये के (१०-१२८, १६-४५)
बांधी, डरी	"	बांधिये, डरिये के (१६-४१)
बिसारी	"	बिसारिये के (२-४०) १६-४४)
राखी, बरजी	"	राखिये, बाजियेके (१०-२,२०-११)
पाली	"	पालिये के (१८-४५)
बोली	"	बोलिये के (१-१०८)
करी, समझी	"	करिये, समझिये के (२-४, ४७)

दिपलाई, दिपाई बदले दिखलावो, दिखावो के (१८-२७)

दयालजी की वाणी के उन मुख्य २ भेदों को यहां हम ने सरल रीति से दिखाने की कोशिश की है जो आधुनिक हिंदी से निरे विलक्षण हैं। जो महाशय प्राचीन भाषा का व्याकरण बनाना चाहें उनके लिये यह सामग्री अति उपयोगी होगी। इन के सिवाय और भी अनेक विलक्षणतायें भाषा में हैं सो विचारवान स्वयम् देख लेंगे॥

उपसंहार।

दयालजी की वाणी के संपादन में हमको अनेक महात्माओं और सज्जनों से सहायता मिली है, तिनको हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं। प्रथम धन्यवाद हैं योगीराज बाबा सत्यराम (गोविंददासजी) को, जिनकी कृपादृष्टि से दयालजी के ज्ञान से हमें परिचय हुआ। फिर धन्यवाद हैं बाबा मंगलदासजी बोरिये किशनगढ़ निवासी को, जिन्होंने उदारता से पुस्तक नं० २ मुझे संवत् १९३९-४० में दी। अन्य महात्माओं में से हम परमहंस परिव्राजकाचार्य स्वामी कृष्णानंदजी को और पंडित भगवानदासजी (बाबा नंदराम के गद्दी नशीन) को विशेष धन्यवाद देते हैं, कि उन्होंने दयालजी के गूढ़ वाक्यों के अर्थों में अनेक वार सहायता दी। इनमहात्माओं के पीछे यह अनुचित न होगा जो मैं अपनी दुहिता बाई रामदुलारी को भी धन्यवाद दूं. क्योंकि पुरानी पुस्तकों को मिलान करके शुद्ध पाठ उन्हीं के हाथों से लिखा गया था। तैसे ही पंडित श्रीधर शर्म्मा पुष्कर निवासी और बाबू राधाकृष्ण भी हमारे धन्यवाद के पात्र हैं, इन्होंने ग्रंथ के शोधन मिलानादि में हमारे साथ अतिश्रम किया है।

यह स्वामी दादूदयाल की वाणी अंगवंधु सटीक, जिसमें कायावेली ग्रंथ की टीका सम्मिलित है, और महात्मा चंपाराम कृत दृष्टांत संग्रह ग्रंथ से उचित २ स्थान में दृष्टांत भी टिप्पण में धरे हैं, पहली ही बार इस पूर्णरूप से छपी है। यह ग्रंथ अभी तक सर्व साधारण को अप्राप्त था, केवल दयालजी की संप्रदाय में ही रहता आया है। इन महात्माओं की अधिकतर इच्छा यह रही है कि दयालजी का पुनीत कृत्य अनधिकारियों के हाथ में न जाय, किंतु इस प्रतिबंध से अनेक अधिकारी सज्जन भी दयालजी के उपदेशों से अपरिचित

रहे हैं, और जो कुछ महिमा दयालजी की जगत् में होनी चाहिये थी सो नहीं हुई है। इस ग्रंथ के छपने और प्रचार से दयालजी का कृत्य देश देशांतर में अधिक फैलेगा और महिमा भी बढ़ेगी। इस हेतु से हम आशा करते हैं कि संतजन वाणी के प्रकाश से प्रसन्न और आदरमान होंगे। दयालजी के उपदेश सर्व प्रकार से आदरणीय हैं, इन के प्रगट करने में किसी प्रकार के संकोच का स्थल नहीं है। जिन उपदेशों से सांप्रदायिक जन निर्मल ज्ञान को प्राप्त करते आये हैं उन्हीं से अब सर्व जनों को अपना जीवन उद्धार करने का अवसर मिला है॥

विवेकी जनों को अनेक उत्तमोत्तम उपदेश इस ग्रंथ में मिलेंगे। आत्मज्ञान तो एक २ अक्षर में दयालजी ने रक्खा है, जिसके साथ सामाजिक रीति, सदाचार, निष्कुल, धर्माचरण, परस्पर प्रेम पूर्वक बर्ताव, सब मतमतांतरों में समता, अद्वैत ब्रह्म में निष्ठा, उसी की भक्ति, निर्गुण उपासना, उसी का ध्यान, सुमिरण, उसी में लयलीन रहना, इत्यादि मनुष्य के संपूर्ण धर्म दयालजी ने भलीभांति से बतलाये हैं। आत्मज्ञान के साथ उस भारी सचाई को नाना भांति से निरूपण किया है, जिस से मनुष्य आपस के विरोध छोड़कर सर्वत्र अपने आत्मा को ही देखता है, अर्थात् सर्व को अपने ही समान मानता है। जहां एक आपही आप है वैर विरोध किस से हो। ऐसे अद्वैत ज्ञान को स्पष्ट दर्शाकर शाह अकबरशाह के दर्बार फतेपुर सीकरी में दयालजी ने हिंदु मुसलमानों में परस्पर हेल मेल कराया था, जहां राजा भगवंतदास, बीरबल, अब्बुलफ़जलादि अकबर शाह के मंत्री उपस्थित थे॥

आदि में दयालजी की वाणी का संपादन हम ने केवल अपने बोध के लिये किया था। पीछे ज्यूं २ इस के गूढ़ार्थ हम को मिलते गये त्यूं २ इन परम पावन वाक्यों को सर्व जनों के हितार्थ तैयार करने की रुचि हमारे हृदय में बढ़ती गई। वेदांत के अमूल्य आशयों और साधनों की रीतियों को दयालजी ने सरलभाव से रसीले शब्दों में प्रगट किया है। जिज्ञासु जन जो प्रेम से वाणी का पाठ करते हैं वो आनंद में लयलीन होकर मग्न हो जाते हैं। जिन सज्जनों को जीवन्मुक्त होकर इस संसार सागर में विचरना

हो, जिन को सहज ही में परमानंद लेना हो, जिन को सर्व क्लेश और चिंताओं से छूटना हो, राग द्वेष भय कलह शारीरिक मानसिक संपूर्ण रोग दुःखों से बचना हो, जिन को अपना आत्मसुख अपने अंदर ही लेना हो, मन की दुर्बलता, जीवन मरण के भय क्लेशों से मुक्त होना हो, जिन को सर्व प्राणियों से मेल कर के समभाव से वर्त्तना हो, जिन को सदेह अथवा विदेह मुक्ति लेकर परमपद में रहने की इच्छा हो, तो उन को उचित है कि नित्यप्रति इस वाणी का थोड़ा २ पाठ प्रेम पूर्वक करते रहें। दयालजी के ज्ञान उपदेशों के आशयों में जो अलग छपनेवाले हैं, हम स्पष्ट रीति से दिखावेंगे कि किस प्रकार से रोग दुःखों से छूटकर मनुष्य सदेह मुक्त अपनी इच्छानुसार चिरञ्जीव रह सकता है।

मिती वैशाख शुक्ल अक्षय्य तीज बुधवार संवत् १९६४ विक्रम्
तारीख १५ मई सन् १९०७ ई०

चंद्रिकाप्रसाद त्रिपाठी
जोन्सगंज—अजमेर

श्री रामजी सत्य ॥

सकल साध सहाय ॥

श्रीस्वामी दादूदयालजी की अनभै वाणी

(प्रथमे साषी)

प्रथम गुरदेव कौ अंग ॥

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुर देवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

परब्रह्म परापरं, सो ममदेव निरंजनम् । (२०—४)
निराकारं निर्मलम्, तस्य दादू वंदनम् ॥ २ ॥ (क,ग,घ)

॥ गुर प्राप्ति और फल ॥

दादू गैब मांहि गुरदेव मिल्या, पाया हम परसाद ।
मस्तकि मेरे कर धरया, दप्या अगम अगाध ॥ ३ ॥

---

(२) परापरं=परात्परम्=कारणभाव से परे=कारणरूप माया विशिष्ट चेतन (ईश्वर) से परे शुद्ध चेतन सो परब्रह्म है ॥

(३) *दृष्टान्त—बालपने दर्शन दियो, भगवत वृद्धरु होय ।*
नगर अहमदाबाद में, दादू भज तूँ मों हिं ॥
निमित्त निगम आगम अगम अनवंच्छित है जाय ।
रायाँ राम रसायनी, मिले गैब में आय ॥
ज्यों गुर दादू कों मिले, त्यों नानक जदुराय ।
कान्हा कों गैब हि मिले, नृप रघुगण गुर पाय ॥

दादू सतगुर सहज मैं, कीया बहु उपगार ।
निरधन धनवंत करि लिया, गुर मिलिया दातार ॥ ४ ॥
दादू सतगुर सूं सहजैं मिल्या, लीया कंठि लगाइ ।
दया भई दयाल की, तब दीपक दिया जगाइ ॥ ५ ॥
दादू देषु दयाल की, गुरू दिपाई बाट ।
ताला कूंची लाइ करि, षोले सबै कपाट ॥ ६ ॥

॥ सतगुर समर्थाई ॥

दादू सतगुर अंजन बाहि करि, नैन पटल सब षोले ।
बहरे कानौं सुणने लागे, गूंगे मुख सौं बोले ॥ ७ ॥
सतगुर दाता जीव का, श्रवन सीस कर नैन ।
तन मन सौंज संवारि सब, मुष रसना अरु बैन ॥ ८ ॥
राम नाम उपदेस करि, अगम गवन यहु सैन ।
दादू सतगुर सब दिया, आप मिलाये अैन ॥ ९ ॥
सतगुर कीया फेरि करि, मन का औरै रूप ।
दादू पंचौं पलटि करि, कैसे भये अनूप ॥ १० ॥
साचा सतगुर जे मिलै, सब साज संवारै ।
दादू नाव चढ़ाइ करि, ले पार उतारै ॥ ११ ॥
दादू सतगुर पसु मानस करै, मांणस थैं सिध सोइ ।
दादू सिध थैं देवता, देव निरंजन होइ ॥ १२ ॥
दादू काढ़े काल मुषि, अंधे लोचन देइ ।
दादू अैसा गुर मिल्या, जीव ब्रह्म करि लेइ ॥ १३ ॥

(१२) सिध, सिद्धिवान ॥

दादू काढ़े काल मुषि, श्रवनहु सबद सुनाइ ।
दादू औसा गुर मिल्या, मृतक लिये जिलाइ ॥ १४ ॥
दादू काढ़े काल मुषि, गूंगे लिये बुलाइ ।
दादू औसा गुर मिल्या, सुष में रहे समाइ ॥ १५ ॥
दादू काढ़े काल मुषि, मिहरि दया करि आइ ।
दादू औसा गुर मिल्या, महिमां कही न जाइ ॥ १६ ॥
सतगुर काढ़े केस गहि, डूबत इहि संसार ।
दादू नाव चढ़ाइ करि, कीये पैली पार ॥ १७ ॥
भौ सागर में डूबतां, सतगुर काढ़े आइ ।
दादू षेवट गुर मिल्या, लीये नाव चढ़ाइ ॥ १८ ॥
दादू उस गुर देव की, मैं वलिहारी जांउं ।
जहं आसण अमर अलेप था, ले राषे उस ठांउं ॥ १९ ॥

॥ ज्ञानोत्पत्ति ॥

आतम मांहैं ऊपजै, दादू पंगुल ज्ञान । (२८–८)
कृतम जाइ उलंघि करि, जहां निरंजन थान ॥ २० ॥
आतमबोध वंझ का बेटा, गुर मुषि उपजै आइ । (२८–७)
दादू पंगुल, पंचविन, जहां राम तहं जाइ ॥ २१ ॥

॥ अनहद शब्द ॥

साचा सहजैं ले मिले, सबद गुरू का ज्ञान ।
दादू हमकूं ले चल्या, जहं प्रीतम का अस्थान ॥ २२ ॥

---

(२०) कृतम्=विधि निषेध, कर्तव्यता ॥
(२१) वंझ=भक्ति । पंचविन=पंच विषयों को त्यागकर ॥

दादू सबद विचारि करि, लागि रहै मनलाइ ।
ज्ञान गहै गुरुदेव का, दादू सहजि समाइ ॥ २३ ॥

॥ दया विनती ॥

दादू कहै सतगुर सबद सुणाइ करि, भावै जीव जगाइ ।
भावै अंतरि आप कहि, अपने अंग लगाइ ॥ २४ ॥
दादू बाहरि सारा देषिये, भीतरि कीया चूर ।
सतगुर सबदौं मारिया, जाण न पावै दूर ॥ २५ ॥
दादू सतगुर मारे सबद सौं, निरषि निरषि निज ठौर ।
राम अकेला रहि गया, चीति न आवै और ॥ २६ ॥
दादू हमकौं सुख भया, साध सबद गुर ज्ञान ।
सुधि बुधि सोधी समझि करि, पाया पद निर्वाण ॥ २७॥

॥ सतगुर शब्द बाण ॥

दादू सबद बाण गुर साधके, दूरि दिसंतरि जाइ (२२-२१)
जिहि लागे सो ऊबरे, सूते लिये जगाइ ॥ २८ ॥
सतगुर सबद मुषसौं कह्या, क्या नेड़ै क्या दूर ।
दादू सिष श्रवणहु सुण्या, सुमिरन लागा सूर ॥ २९ ॥

॥ करनी बिना कथनी ॥

सबद दूध, घृत रामरस, मथि करि काढै कोइ ।
दादू गुर गोविंद विन, घटि घटि समझि न होइ ॥३०॥

(२९) दृष्टांत- दोहा- रज्जब वरननो आदि जे, नेड़ै लागे बाण ।
साधू तेजानंदजी, माता दूरिहि जाण ॥

सबद दूध घृत रामरस, कोई साध विलोवण हार ।
दादू अमृत काढि ले, गुरमुषि गहै विचार ॥ ३१ ॥
घीव दूध में रमि रह्या, व्यापक सवही ठौर ।
दादू वकता वहुत हैं, मथि काढैं ते और ॥ ३२ ॥
कामधेनि घटि घीव है, दिन दिन दुरवल होइ ।
गोरू ज्ञान न ऊपजै, मथि नहिं पाया सोइ ॥ ३३ ॥

॥ योगाभ्यास ॥

साचा समरथ गुर मिल्या, तिन तत दिया वताइ ।
दादू मोटा महावली, घटि घृत मथि करि पाइ ॥ ३४ ॥
मथि करि दीपक कीजिये, सव घटि भया प्रकास ।
दादू दीवा हाथि करि, गया निरंजन पास ॥ ३५ ॥

---

(३३) वाक्यार्थ—कामधेनु के शरीर में घीव है, तौभी वह दिन २ दुर्बल होती है (और घी से बलवान-सुखी-होनी चाहिये) परन्तु उस गोरू (पशु) को ज्ञान नहीं उपजता जो उस को मथकर खाय ॥

तात्पर्य—मनुष्य के शरीर ही में ब्रह्मानंदरूपी घृत है, पर उस आनंद को मनुष्य जानता नहीं, जिस कारण से वह दुखी रहता है, कवतक ? जब तक उस पशुरूपी (अज्ञानी) मनुष्य को ब्रह्मज्ञान नहीं प्राप्त होता और उस आनंदरूपी घृत को नहीं प्राप्त करता है ॥

(३४) तात्पर्य—सच्चा समर्थ गुरु मिला उसने तत्वरूपी ज्ञान दिया, तब वह मनुष्य मोटा महावली हुआ, काहे से ? अपने अंदर से ब्रह्मानंदरूपी घृत खा करके ॥

(३५) तात्पर्य—अनहद शब्द को शोधकर आनंदरूपी घृत निकाल ज्ञानरूपी दीपक कीजिये, तब सब घट (शरीर) में प्रकाश होगा, ऐसा दीवा (ज्ञान) हाथ में करके दादूजी निरंजन परमात्मा को प्राप्त हुये ॥

दीवे दीवा कीजिये, गुर मुष मारगि जाइ ।
दादू अपणे पीवका, दरसन देषे आइ ॥ ३६ ॥
दादू दीवा है भला, दीवा करो सब कोइ ।
घरमें धरया न पाइये, जे कर दिया न होइ ॥ ३७ ॥
दादू दीये का गुण ते लहैं, दीया मोटी बात ।
दीया जगमें चांदिणां, दीया चाले साथ ॥ ३८ ॥
निर्मल गुर का ज्ञान गहि, निर्मल भगति विचार ।
निर्मल पाया प्रेम रस, छूटे सकल विकार ॥ ३९ ॥
निर्मल तन मन आतमा, निर्मल मनसा सार ।
निर्मल प्राणीं पंच करि, दादू लंघे पार ॥ ४० ॥
परापरी पासैं रहै, कोई न जाणैं ताहि ।
सतगुर दिया दिषाइ करि, दादू रह्या ल्योंलाइ ॥ ४१ ॥

---

(३६) दीवे दीवा कीजिये=ज्ञान ही से ज्ञान बढ़ाइये ॥

(३७) इस साखी के दो अर्थ बनते हैं ॥

(१) दीवा (ज्ञान) ही जगत में सार है, तिस को यत्न करके संपादन करना चाहिये । घर (शरीर) में स्थित आत्मस्वरूप सो ज्ञान विना नहीं मिलता है ।

(२) दीवा (दान) उत्तम है, सो दान सब को देना चाहिये, घरमें रक्खा हुआ धन परलोक में काम न आवेगा ॥

(३८) "ते" शब्द पूर्वोक्त ज्ञानियों का वाचक है, अर्थात् उपरोक्त ज्ञानी ही ज्ञानरूपी दिये को अनुभव कर सक्ते हैं, ज्ञान बड़ी बात है, जगत का चांदना और साथ चलने वाला है ॥

॥ शिष्य जिज्ञासा ॥

जिन हम सिरजे सो कहां, सतगुर देहु दिषाइ ।
दादू दिल अरवाहका, तहं मालिक ल्यौ लाइ ॥ ४२ ॥
मुझही में मेरा धणी, पड़दा पोलि दिषाइ ।
आत्मसों परआत्मा, परगट आणि मिलाइ ॥ ४३ ॥
भरि भरि प्याला प्रेमरस, अपणे हाथि पिलाइ ।
सतगुरु के सदिके किया, दादू बलि बलि जाइ ॥ ४४ ॥
सरवर भरिया दह दिसा, पंषी प्यासा जाइ ।
दादू गुरप्रसाद विन, क्यों जल पीवे आइ ॥ ४५ ॥
मांन सरोवर मांहि जल, प्यासा पीवे आइ ।
दादू दोस न दीजिये, घर घर कहण न जाइ ॥ ४६ ॥

॥ गुरु लक्षण ॥

दादू गुर गरवा मिल्या, तांथैं सब गमि होइ ।
लोहा पारस परसतां, सहजि समांनां सोइ ॥ ४७ ॥
दीन गरीबी गहि रह्या, गरवा गुरु गंभीर ।
सूषिम सीतल सुरति मति, सहज दया गुर धीर ॥ ४८ ॥
सो धीदाता पलक में, तिरै, तिरावण जोग ।
दादू औसा परम गुर, पाया किहिं संजोग ॥ ४९ ॥

---

(४२) इस साखी का प्रथमार्द्ध प्रश्न है और दूसरा अंश उत्तर—प्रथम में शिष्य पूछता है कि जिसने हमको पैदा किया है उसको, हे सतगुर, मुझे दिखाओ। तिसका उत्तर गुरु देते हैं कि जीव के दिल (हृदय-गुहाबुद्धि) में परमात्मा है, उसी मालिक की तरफ लय लगाये रहो, अर्थात् अन्तर्मुखवृत्ति अनहद में एकाग्र करो ॥
(४९) तिरै = तारै ॥

दादू सतगुर अैसा कीजिये, रामरस माता ।
पार उतारे पलक में, दरसनका दाता ॥ ५० ॥
देवे किरका दरदका, टूटा जोड़े तार ।
दादू सांधे सुरति कूं, सो गुर पीर हमार ॥ ५१ ॥
दादू घाइल व्है रहे, सतगुर के मारे ।
दादूं अंगि लगाय करि, भौसागर तारे ॥ ५२ ॥
दादू साचा गुर मिल्या, साचा दिया दिपाइ ।
साचे कूं साचा मिल्या, साचा रह्या समाइ ॥ ५३ ॥
साचा सतगुर सोधिले, साचे लीजी साध । (२०–१४)
साचा साहिब सोधि करि, दादू भगति अगाध ॥ ५४ ॥
सनमुप सतगुर साधसौं, सांई सूं राता ।
दादू प्याला प्रेम का, महा रसिमाता ॥ ५५ ॥
सांई सौं साचा रहे, सतगुरसौं सूरा ।
साधूं सौं सनमुप रहे, सो दादू पूरा ॥ ५६ ॥
सतगुर मिले त पाइये, भगति मुकति भंडार ।
दादू सहजें देपिये, साहिब का दीदार ॥ ५७ ॥
दादू सांई सतगुर सेविये, भगति मुकति फल होइ ।
अमर अभै पद पाइये, काल न लागै कोई ॥ ५८ ॥

---

(५४) साध = साधन ॥ "लीजी" की जगह पुस्तक नं० १–२ में "लीजे" है ॥

(५५) अंतर गुरु और साधनों में तत्पर रहे और परमात्मा में मग्न, ऐसी समाधि में जो अनहद अमृत मिले वही प्रेम का प्याला और मस्त रखने वाला महारस है ॥

॥ गुर बिन ज्ञान नहीं ॥

इक लप चन्दा आणि घरि, सूरज कोटि मिलाय।
दादू गुर गोव्यंद बिन, तौभी तिमर न जाय ॥ ५९ ॥
अनेक चंद उदै करै, असंप सूर प्रकास।
एक निरंजन नांव बिन, दादू नहीं उजास ॥ ६० ॥
दादू कदि यहु आपा जाइगा, कदि यहु बिसरै और। (२३–२६)
कदि यहु सूषिम होइगा, कदि यहु पावै ठौर ॥ ६१ ॥
दादू विपम दुहेला जीवकौं, सतगुर थैं आसान।
जब दरवै तब पाइये, नेड़ा ही असथान ॥ ६२ ॥

॥ गुरुज्ञान ॥

दादू नैंन न देपैं नैन कूं, अंतर भी कुछ नांहि।
सतगुर दर्पन करि दिया, अरस परस मिलि मांहिं ॥ ६३ ॥
घटि घटि रामरतन है, दादू लपै न कोइ।
सतगुर सबदौं पाइये, सहजैं ही गम होइ ॥ ६४ ॥
जबहीं कर दीपक दिया, तब सब सूझन लाग।
यूं दादू गुर ज्ञान थैं, राम कहत जन जाग ॥ ६५ ॥

---

(६२) जब परमात्मा प्रसन्न हो तभी उसकी प्राप्ति होती है, जैसा मुण्डकोपनिषद् में लिखा है कि "यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनुं स्वाम्" ॥

(६३) करि दिया = कर (हाथ) में दिया ॥

॥ आत्मार्थी भेष ॥

दादू मनमाला तहं फेरिये, जहं दिवस न परसे रात ।
तहां गुर बानां दिया, सहजें जपिये तात ॥ ६६ ॥
दादू मन माला तहं फेरिये, जहं प्रीतम बैठे पास ।
आगम गुर थैं गम भया, पाया नूर निवास ॥ ६७ ॥
दादू मन माला तहं फेरिये, जहं आपै येक अनंत ।
सहजें सो सतगुर मिल्या, जुगि जुगि फाग वसंत ॥ ६८ ॥
दादू सतगुर माला मन दिया, पवन सुरति सूं पोइ ।
बिन हाथों निसदिन जपै, परम जाप यूं होइ ॥ ६९ ॥
दादू मन फकीर माहें हुवा, भीतरि लीया भेष ।
सवद गहै गुरदेव का, मांगे भीष अलेष ॥ ७० ॥

---

(६६) मनमाला = मन के अन्दर माला, अर्थात् अजपा जाप ॥ दिवस = सूर्य, रात = चंद्र, अर्थात् सूर्य और चन्द्रस्वर रहित सुषमना नाड़ी के समय अजपा जाप धारण करै, तहां गुरु का वाना यह है कि उस जाप को सहज ही बिना परिश्रम और सूक्ष्म वेग से चलावै अर्थात् जोर से स्वास प्रस्वास न करै ॥

(६७) आगम = अगम्य आत्मा गुरु द्वारा गम (प्राप्त) हुआ ॥

(६८) यह अजपा जाप की विधि है, दयालजी कहते हैं कि मन के अंदर माला सतगुरु ने दिया, सो कैसा है कि, पवन (स्वास प्रस्वास) को सुरति से पिरोये अर्थात् सोऽहमहंसः रूपी अजपा जाप स्वास प्रस्वास में लगाते हुये मन को अनहद में स्थिर करे । यह जाप बिना हाथों के दिन रात जपै । यह परम जाप है ॥

(७०) भिक्षा अलेख जो मनादि की विषय न हो, अर्थात् निर्गुण ब्रह्म ॥

दादू मन फकीर सतगुर किया, कहि समझाया ज्ञान ।
निहचल आसणि बैसि करि, अकल पुरिस का ध्यान ॥ ७१ ॥
दादू मन फकीर जगथैं रह्या, सतगुर लीया लाइ ।
अहनिसि लागा येक सौं, सहज सुंनिरस पाइ ॥ ७२ ॥
दादू मन फकीर अैसैं भया, सतगुर के परसाद ।
जहां क था लागा तहां, छूटे वाद विवाद ॥ ७३ ॥
नां घरि रह्या न वनि गया, नां कुछ किया कलेस । (१६–३३)
दादू मनहीं मन मिल्या, सतगुर के उपदेस ॥ ७४ ॥

॥ भ्रम विध्वंस ॥

दादू यहु मसीति यहु देहुरा, सतगुर दिया दिपाइ । (१६–५४)
भीतरि सेवा वंदिगी, वाहरि काहे जाइ ॥ ७५ ॥

॥ कस्तूरिया मृग ॥

दादू मंझे चेला मंझि गुर, मंझे ही उपदेस ।
वाहरि ढूंढैं बावरे, जटा बंधाये केस ॥ ७६ ॥

॥ मन का दमन ॥

मन का मस्तक मूंडिये, काम क्रोध के केस ।
दादू विषै विकार सब, सतगुर के उपदेस ॥ ७७ ॥

॥ भ्रम विध्वंस ॥

दादू पड़दा भरम का, रह्या सकल घटि छाइ ।
गुर गोव्यंद कृपा करैं, तौ सहजैं हीं मिटि जाइ ॥ ७८ ॥

(७१) अकल = अकाल, अमर ॥
(७२) सहज सुंनिरस = अनहद अमृत ॥

॥ सूषिम मार्ग ॥

दादू जिहि मत साधू उधरे, सो मत लीया सोध ।
मनलै मारग मूल गहि, यहु सतगुर का परमोध ॥ ७६ ॥
दादू सोई मारग मनि गह्या, जेंहि मारग मिलिये जाइ ।
वेद कुरानूं नां कह्या, सो गुर दिया दिषाइ ॥ ८० ॥

॥ विचार ॥

दादू मन भुवंग यहु विष भरया, निरविष क्योंही न होइ ।
दादू मिल्या गुर गारड़ी, निरविष कीया सोइ ॥ ८१ ॥
एता कीजे आपथें, तनमन उनमन लाइ ।
पंच समाधी राषिये, दूजा सहज सुभाइ ॥ ८२ ॥
दादू जीव जंजालों पड़ि गया, उलझाया नौ मण सूत ।
कोइ एक सुलझै सावधान, गुर बाइक अवधूत ॥ ८३ ॥

॥ मन का रोकना ॥

चंचल चहुं दिसि जात है, गुर बाइक सूं बंधि ।
दादू संगति साधकी, पारब्रह्म सूं संधि ॥ ८४ ॥

---

(७६) मनलै मारग = मन को शांत करनेवाला मार्ग ॥

(८२) अपने पुरुषार्थ से तन से मन से वचन से उनमनी (शांत) वृत्ति को प्राप्त करे । पंच समाधी = पंच इंद्रियों को रोके रहे । दूजा सहज सुभाइ = बाकी व्यवहारों में सरल रीति से प्रकृति के अनुकूल वर्तता जाय ॥

(८३) गुरबाइक अवधूत = गुरु वाक्य से मन वासनाका त्यागी ॥

(८४) चंचल मन चहुंदिशा जाता है, इसको गुरुवाक्य से बांध, और साधनों के अभ्यास से अथवा संतों की संगति से परमात्मा में लगा ॥

गुर अंकुस मानें नहीं, उदमद माता अंध ।
दादू मन चेते नहीं, काल न देषै फंध ॥ ८५ ॥
दादू मारयां विन मानें नहीं, यह मन हरि की आन ।
ज्ञान पड़ग गुरदेव का, ता संगि सदा सुजान ॥ ८६ ॥
जहां थैं मन उठि चलै, फेरि तहां ही राषि ।
तहं दादू लैलीन करि, साध कहैं गुर साषि ॥ ८७ ॥
दादू मनही सूं मल ऊपजै, मन हीं सूं मल धोइ ।
सीष चली गुर साधकी, तौ तूं नृमल होइ ॥ ८८ ॥
दादू कछिव अपने करि लिये, मन इंद्री निज ठौर ।
नांइ निरंजन लागि रहु, प्राणी परहरि और ॥ ८९ ॥
मनके मतै सब कोइ पेलै, गुरमुष विरला कोइ ।
दादू मनकी मानै नहीं, सतगुर का सिष सोइ ॥ ९० ॥
सब जीवों कौं मन ठगै, मनकौं विरला कोइ ।
दादू गुरके ज्ञान सौं, सांई सनमुष होइ ॥ ९१ ॥
दादू येक सूं लै लीन हूणां, सबै सयानप येह ।
सतगुर साधू कहत हैं, परमतत्त जपि लेह ॥ ९२ ॥
सतगुर सबद वमेक विन, संजमि रह्या न जाइ ।
दादू ज्ञान विचार विन, विषै हलाहल षाइ ॥ ९३ ॥

(८९) जैसे कछुआ अपने अंगों को समेट लेता है तैसे मनुष्य अपने मन इन्द्रियों को एकाग्र कर रामनांव में लगें और सब (रागद्वेषादि) त्याग दे ॥

घरि घरि घट कोल्हू चलै, अमी महारस जाइ ।
दादू गुरके ज्ञान विन, विषै हलाहल पाइ ॥ ९४ ॥

॥ गुरु शिष्य परमोध ॥

सतगुर सवद उलंघि करि, जिनि कोई सिष जाइ ।
दादू पग पग काल है, जहां जाइ तहं पाइ ॥ ९५ ॥
सतगुर वरजै सिष करै, क्यूं करि वंचै काल ।
दह दिसि देषत वहि गया, पाणी फोड़ी पाल ॥ ९६ ॥
दादू सतगुर कहै सु सिष करै, सव सिधि कारिज होइ ।
अमर अभै पद पाइये, काल न लागै कोइ ॥ ९७ ॥
दादू जे साहिव कूं भावै नहीं, सो हम थैं जिनि होइ ।
सतगुर लाजै आपणां, साध न मांनैं कोइ ॥ ९८ ॥
दादू हूंकी ठाहर है कहौ, तनकी ठाहर तूं ।
री की ठाहर जी कहौ, ज्ञान गुरूका यौं ॥ ९९ ॥

॥ गुरुज्ञान ॥

दादू पंच सवादी पंच दिसि, पंचे पंचौं वाट ।
तव लग कह्या न कीजिये, गहि गुरू दिपाया घाट ॥१००॥

---

(९४) घर २ शरीररूपी कोल्हू चलता है और अमीरस (ब्रह्मानंद) व्यर्थ जाता है, ज्ञान के विना पुरुष विषयरूपी विष खाता है ॥

(९९) किसी कलावंत (गानेवजानेवाले) ने दादूजी के पास आकर नाद भरा था, तब यह साखी दयालजी ने कही थी, तात्पर्य इसका यह है कि हरि के नाव विना वात चीत व्यर्थ है ॥

(१००) पंच सवादी=पंच ज्ञान इन्द्रियां। पंचदिसि=पंच विषयों में। पंचे पंचौं वाट=पांचौं के अपने २ पांच विषय ॥

दादू पंचूं येक मत, पंचूं पूर्‌या साथ ।
पंचौं मिलि सनमुष भये, तब पंचौं गुर की बाट ॥ १०१ ॥

॥ सतगुर विमुष ज्ञान ॥

दादू ताता लोहा तिणै सूं, क्यूं करि पकड़्या जाइ ।
गहण गति सूझै नहीं, गुर नहिं बूझै आइ ॥ १०२ ॥

॥ गुरमुख कसौटी ॥

दादू औगुण गुण करि मानै गुरके, सोई सिष सुजाण ।
सतगुर औगुण क्यों करै, समझै सोई सयाण ॥ १०३ ॥
सोने सेती बैर क्या, मारै घण के घाइ ।
दादू काटि कलंक सब, राषै कंठि लगाइ ॥ १०४ ॥
पांणी मांहैं राषिये, कनक कलंक न जाइ (२२-३१)
दादू गुरके ज्ञान सौं, ताइ अगनि मैं बाहि ॥ १०५ ॥
दादू मांहैं मीठा हेत करि, ऊपरि कड़वा राषि ।
सतगुर सिषकौं सीष दे, सब साधूं की साषि ॥ १०६ ॥

॥ गुरुशिष प्रबोध ॥

दादू कहै सिष भरोसै आपणै, व्है बोली हुसियार ।
कहैगा सो बहैगा, हम पहली करैं पुकार ॥ १०७ ॥
दादू सतगुर कहै सु कीजिये, जे तूं सिष सुजाण ।
जहं लाया तहं लागि रहु, बूझै कहा अजाण ॥ १०८ ॥

(१०४) तात्पर्य—शिष्य से गुरू का कोई बैर नहीं है, जैसे सोने को तप्त करके उस का मल निकाल देते हैं और कूटपीट (गढ़) कर माला बनाय कंठ में धारण करते हैं, तैसे ही शिष्य को गुरू ताड़ना देकर उस की बुद्धि शुद्ध करके अपना मित्र बनाये रखते हैं ॥

गुर पहली मनसौं कहे,—पीछे नैन की सैन ।
दादू सिष समझै नहीं, कहि समझावै बैन ॥ १०६ ॥
कहें लपै सो मानवी, सैन लपै सो साध ।
मनकी लपै सु देवता, दादू अगम अगाध ॥ ११० ॥

॥ कठोरता ॥

दादू कहि कहि मेरी जीभ रही, सुणि सुणि तेरे कान ।
सतगुर बपुरा क्या करै, जो चेला मूढ़ अजाण ॥ १११ ॥

॥ गुर शिष प्रबोध ॥

एक सबद सब कुछ कह्या, सतगुर सिष समझाइ ।
जहं लाया तहं लागै नहीं, फिर फिर बूझै आइ ॥ ११२ ॥

॥ कुई स्वभाव अपलट ॥

ज्ञान लिया सब सींपि सुणि, मनका मैल न जाइ ।
गुरू बिचारा क्या करै, सिष बिषै हलाहल पाइ ॥ ११३ ॥
सतगुर की समझै नहीं, अपणे उपजै नांहिं ।
तौ दादू क्या कीजिये, बुरी बिथा मन मांहिं ॥ ११४ ॥

॥ सत्यासत्य गुरु पारख ॥

गुर अपंग पग पंप बिन, सिप सापां का भार ।
दादू पेवट नाव बिन, क्यूं उतरेंगे पार ॥ ११५ ॥
दादू संसा जीव का, सिप सापां का साल ।
दोनों कों भारी पड़ी, ह्वैगा कोण हवाल ॥ ११६ ॥

(१०६) दृष्टांत—दोहा— मनकी जग जीवन लही, नैन सैन गोपाल ।
बचन रज्जब बखनैं लही, गुर दादू मतिपाल ॥
(११५) ज्ञान हीन गुरू जिस पर शिष्यादिकों का बोझ लदा है सो खेवट और नाव (परमेश्वर के भजन) बिना कैसे पार उतरेंगे ॥

अंधे अंधा मिलि चले, दादू बंधि कतार ।
कूप पड़े हम देषतां, अंधे अंधा लार ॥ ११७ ॥

॥ पर परमोध ॥

सोधी नहीं सरीर की, औरों कौं उपदेस ।
दादू अचिरज देषिया, ये जांहिंगे किस देस ॥ ११८ ॥

दादू सोधी नहीं सरीर की, कहैं अगम की बात ।
जान कहावैं बापुड़े, आवध लीये हाथ ॥ ११९ ॥

॥ सत्यासत्य गुरपारष लक्षण ॥

दादू माया मांहैं काढि करि, फिरि माया में दीन्ह ।
दोऊ जन समझैं नहीं, येकौ काज न कीन्ह ॥ १२० ॥

दादू कहै सो गुर किस कामका, गहि भरमावै आन ।
तत्त बतावे निर्मला, सो गुर साध सुजान ॥ १२१ ॥

तूं मेरा हूं तेरा, गुर सिष कीया मंत ।
दून्यों भूले जात हैं, दादू विसरया कंत ॥ १२२ ॥

दुहि दुहि पीवै ग्वाल गुर, सिष हैं छेली गाइ ।
यहु औसर योंहीं गया, दादू कहि समझाइ ॥ १२३ ॥

सिष गोरू, गुर ग्वाल है, रष्या करि करि लेइ ।
दादू राषै जतन करि, आणि धणी कौं देइ ॥ १२४ ॥

झूठे अंधे गुर घणें, भरम दिढावैं आइ ।
दादू साचा गुर मिलै, जीव ब्रह्म ह्वै जाइ ॥ १२५ ॥

---

(११९) जान=जानकार, बुझक्कड़ ॥

(१२०) माया=गृहस्थी, एक गृहस्थी में निकाल कर दूसरी साधों की मंडलीरूपी माया में डालना ॥

झूठे अंधे गुर घणें, वंधे विषै विकार ।
दादू साचा गुर मिलै, सनमुख सिरजनहार ॥ १२६ ॥
झूठे अंधे गुर घणें, भरम दिढावैं कांम ।
वंधे माया मोहसौं, दादू मुपसौं राम ॥ १२७ ॥
झूठे अंधे गुर घणें. भटकैं घर घरवारि ।
कारिज को सीझै नहीं, दादू माथे मारि ॥ १२८ ॥

॥ वे परचविसनी ॥

दादू भगत कहावैं आपकों, भगति न जाणैं भेव ।
सुपिनै हीं समझैं नहीं, कहां वसै गुरदेव ॥ १२९ ॥

॥ भ्रम विधूसण ॥

भरम करम जग वंधिया, पंडित दिया भुलाइ ।
दादू सतगुर ना मिलै, मारग देइ दिपाइ ॥ १३० ॥
दादू पंथ वतावैं पापका, भर्म कर्म वेसास ।
निकटि निरंजन जे रहै, क्यों न वतावैं तास ॥ १३१ ॥

॥ विचार ॥

दादू आपा उरझैं उरझिया, दीसै सव संसार । (१८-३३)
आपा सुरझैं सुरझिया, यहु गुरज्ञान विचार ॥ १३२ ॥

(१३०-१३१) वेद मांहि सब भेद हैं, जानैं विरला कोइ ।
सुंदर सो सतगुर विना, निर्वारा नहिं होइ ॥
सुंदर ताला सवद का, सतगुर पोल्या आइ ।
भिन्न २ समझाइ करि, दीया अर्थ वताइ ॥

(१३२) यह साखी दयालजी के महावाक्यों में से है। जगत के संपूर्ण जाल जंजालों से छूटने की इस में एक कुंजी है। दयालजी कहते हैं कि

॥ गुरमुष कसौटी ॥

साधू का अंग निर्मला, तामैं मल न समाइ ।
परमगुरू परगट कहै, तार्थे दादू ताइ ॥ १३३ ॥

॥ सुमिरण नाम चितावणी ॥

रांम नांम गुर सवदसौं, रे मन पेलि भरंम । (२—१४)
निह करमी सूं मन मिल्या, दादू काटि करंम ॥ १३४ ॥

आपनपौ में उलझ रहने से अर्थात् इस स्थूल शरीर ही में अपना सर्वस्व मानने से, सब संसार उलझा हुआ (कठिन दुःखरूप) प्रतीत होता है। अथवा जो जन अपने आप को बंध जगत में फंसा, दुःखी, दीन, दासादि, स्वतंत्रता नाशक भावों से मानता है, उस को उसी प्रकार से सब जगत दुःख-दाई प्रतीत होता है ॥

जिसने अपना आत्म स्वरूप निश्चय करके अपने आप को स्वतंत्र निर्भय सच्चिदानन्दरूप माना है, वह जन मुक्त है। ऐसे महाज्ञान का जो मनन है उसको दयालजी "गुरज्ञान विचार" कहते हैं ॥

आप जो जगत जाल में उलझ रहे हैं उनको सब जगत उलझा ही दीखता है ॥ और सकल जीव परस्पर ममत्व बांधकर आप ही उलझ रहे हैं, यथाः—

सारंग छुर सुं विनास, मीन रसना रस आसा ।
पावक पेपि पतंग, भंवर नासिक भिद वासा॥
परछल वारण बाघ, मुग्ध मति मर्कट सूवा ।
मूस चुरावत वाति, पवन पावग जलि मूवा ॥
स्वान मीच दर्पन महल, मकरी मूंदि सुद्वार ।
रजव मरहि सिंयोर वग, पाया नहीं विचार ॥

(१३३) पुस्तक नं० १ और ४ में "परम" की जगह "प्रम" आया है ॥

(१३४) राम नाम का साधन करके सब भ्रमों को त्याग, परमेश्वर से मन मिलाकर कर्म के बंधन को काट ॥

॥ सूक्ष्म मार्ग ॥

दादू विन पाइन का पंथ है क्यों करि पहुंचे प्राण। (७—१०)
विकट घाट औघट परे, मांहि सिपर असमांन ॥ १३५ ॥
मन ताजी चेतन चढ़े, ल्यौ की करे लगांम ।
सवद गुरू का ताजणां, कोइ पहुंचे साध सुजाण ॥ १३६ ॥

॥ पारष लछण ॥

साधों सुमिरण सो कह्या, जिहि सुमिरण आपा भूल ।
दादू गहि गंभीर गुर, चेतन आनंद मूल ॥ १३७ ॥

॥ स्वार्थी पर्मार्थी ॥

दादू आप सवारथ सव सगे, प्राण सनेही नांहि ।
प्राण सनेही राम है , के साधू कलि मांहि ॥ १३८ ॥
सुष का साथी जगत सव, दुष का नाही कोइ ।
दुष का साथी सांइयां, दादू सतगुर होइ ॥ १३९ ॥
सगे हमारे साध हैं सिर परि सिरजनहार ।
दादू सतगुर सो सगा, दूजा धंध विकार ॥ १४० ॥

॥ दया निर्वैरता ॥

दादू के दूजा नहीं, एकै आतम राम ।
सत गुर सिर परि साध सव, प्रेम भगति विश्राम ॥ १४१ ॥

---

(१३५) विन पाइन का (अगम्य) पंथ । औघट खरे = अति कठिन। मांहि सिपर असमांन = जिसका शिखर आसमान है । सारांश परमेश्वर का रास्ता अति कठिन है ॥

॥ उपजनि ॥

दादू सुध बुध आत्मा, सत गुर परसें आइ ।
दादू भृंगी कीट ज्यौं, देषत ही ह्वै जाइ ॥ १४२ ॥
दादू भृंगी कीट ज्यूं, सतगुर सेती होइ ।
आप सरीपे कर लिये, दूजा नांहीं कोइ ॥ १४३ ॥
दादू कछब रापै दृष्टि मैं, कुंजों के मन माहिं ।
सत गुर रापै आपणां, दूजा कोई नांहि ॥ १४४ ॥
बच्चों के माता पिता, दूजा नांहीं कोइ ।
दादू निपजै भावसूं, सतगुर के घटि होइ ॥ १४५ ॥

॥ बे परवाही ॥

एकै सबद अनंत सिप, जब सतगुर बोलै ।
दादू जड़े कपाट सब, दे कूंची पोलै ॥ १४६ ॥
बिनही कीया होइ सब, सनमुष सिरजनहार ।
दादू करि करि को मरै, सिप सापा सिरि भार ॥ १४७ ॥
सूरिज सनमुष आरसी, पावक किया प्रकास ।
दादू सांई साध बिचि, सहजैं निपजै दास ॥ १४८ ॥

---

(१४२) शुद्ध बुद्ध आत्मा सतगुर के स्पर्श से आता (प्राप्त होता) है, जैसे कीट भृंगी के मेल से भृंगी हो जाता है ॥

(१४४) कछुवा अपने बच्चों को दृष्टि से पालता है, कुंज पक्षी अपने बच्चों का पालन सुरति से करती है; वैसे सतगुर शिष्य की रक्षा करता है दूसरा कोई नहीं ॥

(१४८) सूर्य में अग्नि साधारण रूप से है पर सब पदार्थों में वह अग्नि प्रगट नहीं होती, किन्तु शुद्ध आतशी शीशे ही द्वारा प्रगट होती है; इसी

॥ मन इंद्रिय निग्रह ॥

दादू पंचों ये परमोधि ले, इनहीं कौं उपदेस ।
यहु मन अपणा हाथि·कर, तौ चेला सब देस ॥ १४६॥
अमर भये गुरज्ञान·सौं, केते इहि कलि मांहि ।
दादू गुर के ज्ञान बिन, केते मरि मरि जांहि ॥ १५० ॥
औषदि पाइ न पछि रहे, बिषम व्याधि क्यों जाइ ।
दादू रोगी बावरा, दोस वेद कौं लाइ ॥ १५१ ॥
वैद बिथा कहै देषि करि, रोगी रहै रिसाइ ।
मन मांहें लीये रहै, दादू व्याधि न जाइ ॥ १५२ ॥
दादू वैद बिचारा क्या करै, रोगी रहै न साच ।
षाटा मीठा चरपरा, मांगै मेरा वाच ॥ १५३ ॥

॥ गुर उपदेस ॥

दुर्लभ दरसन साध का, दुर्लभ गुर उपदेस ।
दुर्लभ करिबा कठिन है, दुर्लभ परस अलेप ॥ १५४ ॥
दादू अविचल मंत्र, अमर मंत्र, अषै मंत्र,
अभै मंत्र, राममंत्र निजसार ।
सजीवनमंत्र, सबीरजमंत्र, सुन्दर मंत्र,
सिरोमणि मंत्र, निर्मल मंत्र, निराकार ॥

तरह से सांई (परमेश्वर) सर्वत्र परिपूर्ण है परंतु स्वच्छ अंतःकरण वाले अधिकारी साधू वा दास के ही हृदय में प्रगट होता है, अन्य के नहीं ॥

(१५३) "वाच" की जगह पुस्तक नं० १,२ और ३ में "वाछ" है । इस का अर्थ बछा, पुत्र निकलता है ॥

अलप मंत्र, अकल मंत्र, अगाध मंत्र,
अपार मंत्र, अनंत मंत्र राया ।
नूर मंत्र, तेज मंत्र, जोति मंत्र,
प्रकास मंत्र, परम मंत्र पाया ॥
उपदेस दष्या (दादू गुरराया) ॥ १५५ ॥

दादू सबही गुर किये, पसु पंषी बन राइ ।
तीनि लोक गुण पंचसौं, सबही मांहिं षुदाइ ॥ १५६ ॥

जे पहली सत गुर कह्या, सो नैनहुं देष्या आइ ।
अरस परस मिलि एक रस, दादू रहे समाइ ॥ १५७ ॥

इति श्री गुरदेव कौ अंग संपूर्ण समास ॥

---

(१५५) यह गुर दीक्षा है, इन मंत्रों से गुरू शिष्य को उपदेश देता है कि तू अविचल है, अमर है, अक्षय है इत्यादि ॥ इस के अन्त में "दादू गुरराया" शब्द केवल एक पुस्तक नं० १ में है अन्य पुस्तकों में नहीं हैं ॥

(१५६) दादू जी कहते हैं कि हम ने सब ही पशु पक्षी बनराय (वृक्षों) को गुरू किया है क्योंकि सब में परमात्मा व्यापक है ॥

अथ सुमिरण को अंग ॥ २ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
एकै अष्पर पीव का, सोई सत करि जाणि ।
राम नाम सतगुर कह्या, दादू सो परवाणि ॥ २ ॥
पहली श्रवण, दुती रसन, तृतीये हिरदै गाइ ।
चतुर्दसी चिंतन भया, तब रोम रोम ल्यौ लाइ ॥ ३ ॥

॥ मन परमोध ॥

दादू नीका नांव है तीनि लोक ततसार ।
राति दिवस रटिबो करी, रे मन इहै बिचार ॥ ४ ॥
दादू नीका नांव है, हरि हिरदै न बिसारि ।
मूरति मन मांहिं बसै, सासैं सास संभारि ॥ ५ ॥
सासैं सास संभालतां, इकदिन मिलि है आइ ।
सुमिरण पैंडा सहज का, सतगुर दिया बताइ ॥ ६ ॥
दादू नीका नांव है, सो तूं हिरदै राषि ।
पाषंड प्रपंच दूरि करि, सुनि साधू जनकी साषि ॥ ७ ॥
दादू नीका नांव है, आप कहै समझाइ ।
और आरंभ सब छाडि दे, राम नाम ल्यौ लाइ ॥ ८ ॥

राम भजन का सोच क्या, करतां होइ सो होइ।
दादू राम संभालिये, फिरि बूझिये न कोइ ॥ ६ ॥

॥ नाम चेतावनी ॥

राम तुम्हारे नांव बिन, जे मुप निकसै और।
तौ इस अपराधी जीव कौं, तीनि लोक कत ठौर ॥१०॥
छिन छिन राम संभालतां, जे जिव जाइ त जाउ।
आतम के आधार कौं, नांहीं आन उपाउ ॥ ११ ॥

॥ सुमिरण माहात्म ॥

एक महूरत मन रहै, नांव निरंजन पास।
दादू तब हीं देषतां, सकल करम का नास ॥ १२ ॥
सहजैं हीं सब होइगा, गुण इंद्री का नास।
दादू राम संभालतां, कटैं करम के पास ॥ १३ ॥

॥ नाम चिंतावणी ॥

राम नाम गुर सबद सौं, रे मन पेलि भरम। (१–१३४)
निहकरमी सौं मन मिल्या, दादू काटि करम ॥ १४ ॥
एक राम के नांव बिन, जीव की जलनि न जाइ।
दादू के ते पचि मुए, करि करि बहुत उपाइ ॥ १५ ॥
दादू एक राम की टेक गहि, दूजा सहजसुभाइ।
राम नाम छाडैं नहीं, दूजा आवै जाइ ॥ १६ ॥

॥ नाम अगाधता ॥

दादू नाम अगाध है, परिमित नांहीं पार।
अवरण बरण न जांणिये, दादू नांइ अधार ॥ १७ ॥

दादू राम अगाध है, अविगत लपै न कोइ ।
निर्गुण सर्गुण का कहे, नांइ विलम्ब न होइ ॥ १८ ॥
दादू राम अगाध है, बेहद लप्या न जाइ ।
आदि अंति नहि जाणिये, नांव निरंतर गाइ ॥ १९ ॥

॥ अद्वैत ब्रम्ह ॥

दादू राम अगाध है, अकल अगोचर एक ।
दादू नांउ विलंबिये, साधू कहैं अनेक ॥ २० ॥
दादू एकै अलह राम है, सम्रथ सांई सोइ ।
मैदे के पकवांन सब, पातां होइ सो होइ ॥ २१ ॥
सर्गुण निर्गुण ह्वै रहे, जैसा है तैसा लीन ।
हरि सुमिरण ल्यौ लाइये, काजाणौं का कौन ॥ २२ ॥

॥ नाम चित्त आवै सो लेय ॥

दादू सिरजनहार के, केते नांव अनंत ।
चिति आवै सो लीजिये, यौं साधू सुमिरैं संत ॥ २३ ॥
दादू जिन प्रांण पिंड हम कौं दिया, अंतर सेवैं ताहि ।
जे आवै औसाण सिरि, सोई नांव संवाहि ॥ २४ ॥

---

(१८) राम अपार है और अगम्य है, इंद्रियों करके उसे कोई नहीं लख सकता है, निर्गुण सर्गुण का विचार क्या करना, राम नाम का सुमिर्ण करने में विलम्ब न करना चाहिये ॥

(२०) "एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति" अर्थात् जो है सो एक है पर विप्र उसको बहुभांति कहते हैं, ऋग्वेद ॥

(२२) दृष्टांतः—दोहा—गुरु दादू ढिग बाद तैं, आये द्वैरूप देषि ।
तिन दोनों को बान सुनि, भाष्यौ भजन विशेष ॥

॥ चितावणी ॥

दादू औसा कौण अभागिया, कछू दिढावै और ।
नांव बिना पग धरन कूं, कहौ कहां है ठौर ॥ २५ ॥

॥ सुमिरण नाम महिमा माहात्म ॥

दादू निमष न न्यारा कीजिये, अंतर थैं उरि नाम ।
कोटि पतित पावन भये, केवल कहतां राम ॥ २६ ॥

॥ मन परमोध ॥

दादू जे तैं अब जाण्यां नहीं, राम नाम निज सार ।
फिरि पीछैं पछिताहिगा, रे मन मूढ गंवार ॥ २७ ॥

दादू राम संभालि ले, जब लग सुषी सरीर ।
फिरि पीछैं पछिताहिगा, जब तन मन धरै न धीर ॥ २८ ॥

दुष दरिया संसार है, सुष का सागर राम ।
सुषसागर चलि जाइये, दादू तजि बे काम ॥ २९ ॥

दादू दरिया यहु संसार है, तामैं राम नाम निज नाव ।
दादू ढील न कीजिये, यहु औसर यहु डाव ॥ ३० ॥

॥ सु० नाम निःसंशय ॥

मेरे संसा को नहीं, जीवण मरण क राम ।
सुपिनैं ही जिनि वीसरै, मुख हिरदै हरि नाम ॥ ३१ ॥

॥ सु० नाम विरह ॥

दादू दूषिया तब लगै, जब लग नांव न लेहि ।
तब हीं पावन पम्म सुष, मेरी जीवन येहि ॥ ३२ ॥

(३२) पावन=पवित्र अथवा प्रमें प्राप्त हो ॥

॥ सु० नाम पारष लषन ॥

कछु न कहावै आपकों, सांई कूं सेवै ।
दादू दूजा छाडि सब, नांव निज लेवै ॥ ३३ ॥

॥ सु० नाम निःसंशय ॥

जे चित चहुटै राम सौं, सुमिरण मन लागै ।
दादू आतम जीवका, संसा सब भागै ॥ ३४ ॥

॥ सु० नाम चिंतावणी ॥

दादू पिवका-नांवले, तौ मिटैं सिरि साल ।
घड़ी महूरत चालणा, कैसी आवै काल्हि ॥ ३५ ॥

॥ सुमिरण विना सांस न ले ॥

दादू औसरि जीव तैं, कह्या न केवल राम ।
अंति कालि हम कहैं गे, जम वैरी सौं काम ॥ ३६ ॥

दादू ऐसे मंहगे मोल का, एक सास जे जाइ ।
चौदह लोक समान सो, काहे रेत मिलाइ ॥ ३७ ॥

॥ अमोल स्वास ॥

सोई सास सुजाण नर, सांई सेती लाइ ।
करि साटा सिरजनहार सूं, मंहगे मोलि विकाइ ॥ ३८ ॥

---

(३३) दान पुण्य भजन करके अपनी प्रशंसा न करावै ॥

(३५) प्रति घड़ी और प्रति महूर्त सुमिरण करते रहना चाहिये, नहीं मालूम कल का दिन कैसा होवै, अर्थात् यह शरीर रहै वा न रहै अथवा सुखी वा दुःखी हो, जिस करके सुमिरण न हो सके ॥

(३७) ऐसे अमोल चौदह लोक समान जन्म को क्यों रेत (धूल) में मिलावै, अर्थात् व्यर्थ गवांवै ॥

॥ व्यर्थ जीवन ॥

जतन करै नहिं जीवका, तन मन पवना फेरि ।
दादू मंहगे मोलका, द्वै दोवटी इक सेर ॥ ३६ ॥

॥ सफल जीवन ॥

दादू रावत राजा राम का, कदे न विसारी नांव ।
आत्मराम संभालिये, तौ सूवस काया गांव ॥ ४० ॥

॥ निरंतर सुमिरण ॥

दादू अह निसि सदा सरीर में, हरि चिंतत दिन जाइ ।
प्रेम मगन लै लीन मन, अन्तर गति ल्यो लाइ ॥ ४१ ॥
निमष एक न्यारा नहीं, तन मन मंभि समाइ ।
एक अंगि लागा रहै, ताकौं काल न पाइ ॥ ४२ ॥
दादू पिंजर पिंड सरीर का, सुवटा सहजि समाइ ।
रमता सेती रमि रहै, विमलि विमलि जस गाइ ॥४३॥

(३६) जो तन मन और स्वाम को फेरि करके साधन नहीं करता है, सो इस अमोल जीवन को केवल दो धोति और एक सेर अन्न का ही रखता है, अर्थात् अपना जीवन व्यर्थ गंवाता है ॥

(४०) जो शूरवीर राजा राम का नाम कभी न विसारै और आत्मराम को संभाले रहे, उसका वास, काया, और गाम सब सफल है ॥

(४१) "चिंतत" की जगह "चितवत" पुस्तक नं० १ में आया है ।

(४३) पिंड (स्थूल) शरीर रूपी पिंजरे में जीवरूपी सुवटा (सुवा) सहज (आनंद) भाव को प्राप्त होकर रमतारूपी राम से रमि रहै और प्रफुल्लित हो २ कर यश गावे ॥

अविनासी सो एक है, निमप न इत उत जाइ ।
बहुत बिलाई क्या करै, जे हरि हरि सबद सुणाइ ॥४४॥
दादू जहां रहूं तहं राम सौं, भावै कंदलि जाइ ।
भावै गिरि परवति रहूं, भावै ग्रेह बसाइ ॥ ४५ ॥
भावै जाइ जल हरि रहूं, भावै सीस नवाइ ।
जहां तहां हरि नांव सौं, हिरदै हेत लगाइ ॥ ४६ ॥

॥ मन परमोध ॥

दादू राम कहे सब रहत है, नष सष सकल सरीर ।
राम कहे बिन जात है, समझी मनवां बीर ॥ ४७ ॥
दादू राम कहे सब रहत है, लाहा मूल सहेत ।
राम कहे बिन जात है, मूरख मनवां चेत ॥ ४८ ॥
दादू राम कहे सब रहत है, आदि अंति लौं सोइ ।
राम कहे बिन जात है, यहु मन बहुरि न होइ ॥ ४९ ॥
दादू राम कहे सब रहत है, जीव ब्रम्ह की लार ।
राम कहे बिन जात है, रे मन हो हुसियार ॥ ५० ॥

---

(४४) अविनाशी परमात्मा में लय लीन हो । और एक क्षण भी इधर उधर न जाय, ऐसे सूवे का बिल्लीरूपी माया कुछ नहीं कर सकती है, यदि वह हरि हरि (अनहद) शब्द सुनाता रहे ॥

(४६) जल हरि= मछली की तरह जलवास । (२) सीसनवाइ=चिमगादड़ की तरह उलटे लटकना ॥

॥ परोपकार ॥

हरि भजि साफिल जीवना, पर उपगार समाइ ।
दादू मरणा तहां भला, जहां पसु पंषी षाइ ॥ ५१ ॥

॥ सुमिरण ॥

दादूराम सबद मुषि ले रहै, पीछै लागा जाइ ।
मनसा वाचा क्रमना, तिहिं तत सहजि समाइ ॥ ५२ ॥

दादू रचिमचि लागे नांव सौं, राते माते होइ ।
देषैंगे दीदार कौं, सुष पावैंगे सोइ ॥ ५३ ॥

॥ चेतावनी ॥

दादू सांई सेवैं सब भले, बुरा न कहिये कोइ ।
सारौं मांहैं सो बुरा, जिस घटि नांव न होइ ॥ ५४ ॥

दादू जियरा राम बिन, दुषिया इहि संसार ।
उपजे बिनसै षपि मरै, सुष दुष वारंवार ॥ ५५ ॥

रामनाम रुचि ऊपजै, लेवै हित चित लाइ ।
दादू सोई जीयरा, काहे जमपुरि जाइ ॥ ५६ ॥

दादू नीकी बरियां आय करि, राम जपि लीन्हां ।
आतम साधन सोधि करि, कारिज भल कीन्हां ॥५७॥

दादू अगम वस्त पानैं पड़ी, राषी मंझि छिपाइ ।
छिन छिन सोइ संभालिये, मति वै वीसरि जाइ ॥५८॥

॥ सुमिरण नाम महिमा माहात्म ॥

दादू उजल निर्मला, हरि रंग राता होइ ।
काहे दादू पचि मरै पानी सेती धोइ ॥ ५९ ॥

सरीर सरोवर राम जल, मांहै संजम सार ।
दादू सहजैं सब गये, मनके मैल विकार ॥ ६० ॥
दादू राम नामं जलं कृत्वा, स्नानं सदाजितः ।
तन मन आत्म निर्मलं, पंच भूपापंगतः ॥ ६१ ॥
दादू उत्तम इंद्री निग्रहं, मुच्यते माया मनः ।
परम पुरुष पुरातनं, चिंतते सदातनः ॥ ६२ ॥
दादू सब जग विष भरया, निर्विष विरला कोइ ।
सोई निर्विष होयगा, जाके नांव निरंजन होइ ॥ ६३ ॥
दादू निर्विष नाव सौं, तन मन सहजैं होइ ।
राम निरोगा करैगा, दूजा नांहीं कोइ ॥ ६४ ॥
ब्रह्म भगति जब ऊपजै, तब माया भगति बिलाइ ।
दादू निर्मल मल गया, ज्यूं रवि तिमर नसाइ ॥ ६५ ॥

मनहरि भांवरि ॥

दादू विषै विकार सौं, जब लग मन राता ।
तब लग चीति न आवई, त्रिभुवनपति दाता ॥ ६६ ॥
दादू का जाणौं कब होइगा, हरि सुमिरण इकतार ।
का जाणौं कब छाडिहै, यहु मन विषै विकार ॥ ६७ ॥

---

(६१) सदाजित=इन्द्रियजित। पंच भूप(इन्द्रिय) अपंगतः, निर्जीव होगये।
(६२) मुच्यते=छूटजाता है । सदातनः-नित्यप्रति ॥
(६५) दृष्टांतः—दोहा—लछमी विष्णु भक्त पै, लंगर भेट बनाय । -
वे अचाह, नाहत भये, आइ मुंह लपकाय ॥

है सो सुमिरण होता नहीं, नहीं सु कीजै काम ।
दादू यहु तन यों गया, क्यूं करि पइये राम ॥ ६८ ॥

॥ सुमिरण नाम महिमा माहात्म ॥

दादू राम नाम निज मोहनी, जिनि मोहे करतार ।
सुर नर संकर मुनि जनां, ब्रह्मा सिष्टि विचार ॥ ६९ ॥
दादू राम नाम निज औषदी, काटे कोटि विकार ।
विषम व्याधि थें ऊबरे, काया कंचन सार ॥ ७० ॥
दादू निर्विकार निज नांव ले, जीवन इहै उपाइ ।
दादू कृतम काल है, ताके निकटि न जाइ ॥ ७१ ॥

॥ सुमिरण ॥

मन पवना गहि सुरति सौं, दादू पावै स्वाद ।
सुमिरण मांहै सुष घणा, छाडि देहु बकवाद ॥ ७२ ॥
नांव सपीड़ा लीजिये, प्रेम भगति गुण गाइ ।
दादू सुमिरण प्रीतिसौं, हेत सहित ल्यौ लाइ ॥ ७३ ॥
प्राण कवल मुषि राम कहि, मन पवना मुषि राम ।
दादू सुरति मुषि राम कहि, ब्रह्म सुंनि निज ठाम ॥ ७४ ॥
दादू कहतां सुणतां राम कहि, लेतां देतां राम ।
पातां पीतां राम कहि, आत्म कवल विश्राम ॥ ७५ ॥

(७१) कृतम= कपटी ॥
(७४) प्राण मन-सुरति इन तीनों के मुखमें राम ही का सुमिरण होना चाहिये, अर्थात् प्राण मन और सुरति ब्रम्ह की ओर ही लगे रहें ॥ सो ब्रम्ह कैसा है? सुंनि=आनंदघन, निर्वात, शांत रूप, जहां प्रपंच का अत्यंत अभाव है ॥

ज्यूं जल पैसै दूध में, ज्यूं पाणी में लूण ।
  ऐसें आतमराम सौं, मन हठ साधै कूंण ॥ ७६ ॥
दादू राम नाम में पैसि करि, राम नाम ल्यौ लाइ ।
  यहु इकंत त्रिय लोक में, अनत काहे कौं जाइ ॥७७॥

॥ मध्य ॥

ना घर भला न वन भला, जहां नहीं निज नांव ।
  दादू उनमनी मन रहे, भला त सोई ठांव ॥ ७८ ॥

॥ नाम महिमा माहात्म ॥

दादू निर्गुणं नामं मई, हृदय भाव प्रवर्ततं ।
  भरमं करमं कलिविषं, माया मोहं कंपितं ॥ ७९ ॥
कालं जालं सोचितं, भयानक जम किंकरं ।
  हरिषं मुदितं सतगुरं, दादू अविगत दर्शनं ॥ ८० ॥
दादू सब सुष सरग पयाल के, तोलि तराजू वाहि ।
  हरि सुष एक पलक का, तासमि कह्या न जाइ॥ ८१ ॥

---

(७७) दृष्टांत—दोहाः—जगजीवन आंबेर में, भूर कूवे जाय ।
भजन करत भरियो नहीं, गुर दादू समझाय ॥
गये भाजि वशिष्टजी, छोडि यहै ब्रह्मांद ।
रची कुटी संकल्प की, अंतर हिरदे मांहि ॥

(७९-८०) निर्गुण नाम में जब हृदय प्रवर्त होता है, तब भ्रम कर्म और कलिविष (पाप) मायामोह की जड़ कटजाती है काल जाल, शोक, भयानक यमदूत कंपायमान होते हैं, और हर्ष, मोद सतगुरु और परमात्मा के दर्शन प्राप्त होने हैं ॥ ८० ॥

(८१) इस साखी में "सरग" की जगह "भ्रग" अधिक पुस्तकों में मिलता है ॥

सुमिरण नाम पारिष लषन ॥

दादू राम नाम सब को कहै, कहिये बहुत बमेक ।
एक अनेकों फिरि मिले, एक समाना एक ॥ ८२ ॥
दादू अपणी अपणी हदमें, सब को लेवै नांउ ।
जे लागे बेहद सौं, तिनकी मैं बलि जांउ ॥ ८३ ॥

॥ सुमिरण नाम अगाधता ॥

कौण पटंतर दीजिये, दूजा नांहीं कोइ ।
राम सरीषा राम है, सुमिरयां हीं सुष होइ ॥ ८४ ॥
अपणी जाणे आप गति, और न जाणे कोइ ।
सुमिरि सुमिरि रस पीजिये, दादू आनंद होइ ॥ ८५ ॥

॥ करणी बिना कथणी ॥

दादू सबही वेद पुरान पढ़ि, नेटि नांउं निरधार ।
सब कुछ इनहीं मांहि है, क्या करिये विस्तार ॥ ८६ ॥

दृष्टांतः-दोहा-विश्वामित्र बशिष्ट के, भइवी (विवाद) पड़ो विशेष ।
शिव ब्रह्मा हरि पचि रहे, न्याय निवेरयो शेष ॥

शेष जी का निर्णय यह था कि हरि के भजन में जो आनंद है सो स्वर्ग पताल में नहीं है ॥

(८२) रामनाम सब कोई कहता है पर कहने में बहुत विवेक (भेद) है। कोई फिर अनेक जीवों में जन्म पाते हैं और कोई एक परमात्मा में जा मिलते हैं। अथवा कोई राम नाम लेते हुये अनेक विषयों में मन दौड़ाते हैं और कोई एक परमात्मा में ही मग्न रहते हैं ॥

(८४) पटंतर=उपमा ॥

॥ नाम अगाध ॥

पढि पढि थाके पंडिता, किनहूं न पाया पार।
कथि कथि थाके मुनि जना, दादू नाइ अधार ॥ ८७ ॥

निगमहि अगम विचारिये, तऊ पार न आवे।
ताथें सेवग क्या करे? सुमिरण ल्यो लावे ॥ ८८ ॥

॥ कथणी बिना करणी ॥

दादू अलिफ एक अल्लाः का, जे पढि जाणे कोइ।
कुरान कतेबां इलम सब, पढि करि पूरा होइ ॥ ८९ ॥

दादू यहु तन पिंजरा, मांहीं मन सूवा।
एकै नांव अलह का, पढि हाफिज हूवा ॥ ९० ॥

॥ सुमिरण नाम पारष लषण ॥

नांव लिया तव जाणिये, जेतन मन रहै समाइ।
आदि अंति मधि एक रस, कबहूं भूलि न जाइ ॥ ९१ ॥

॥ विरह पतिव्रत ॥

दादू एकै दसा अनिनि की, दूजी दसा न जाइ।
आपा भूलै आन सब, एकै रहै समाइ ॥ ९२ ॥

---

(८७) दृष्टांतः—दोहा—बृहस्पति गुर पै इंद्र पढि, गरब भयो मन मांहिं।
समंद, कुंभ अरु सींक ज्यों, किंचित तैंने पाहि ॥
मिथ्र कथा बहु तैं करी, रह्यो वार को वार।
नांव सुनिश्चय धारिके, भई गूजरी पार ॥

(८९) अलिफ से तात्पर्य सच्चे सुमिरण से है, अर्थात् जो सच्ची उपासना करता है वह कृतार्थ है ॥

(९०) दृष्टांतः—दोहा-गुर दादू अकबर मिले, कही सुवां ले जाइ।
हमरे संग तो आप है, सुनो अकब्बर शाह ॥

॥ सुमिरण बीनती ॥

दादू पीवै एक रस, बिसरि जाइ सब और ।
अबिगत यहु गति कीजिये, मन राषौ इहि ठौर ॥९३॥
आतम चेतनि कीजिये, प्रेमरस पीवै ।
दादू भूलै देह गुण, ऐसैं जन जीवै ॥ ९४ ॥

॥ सुमिरण नाम अगाध ॥

कहि कहि केते थाके दादू, सुंणि सुणि कहु क्या लेई ।
लूंण मिलै गलि पाणियां, तासमि चित यौं देई ॥९५॥
दादू हरिरस पीवतां, रती बिलंब न लाइ ।
बारंबार संभालिये, मतिवै बीसरि जाइ ॥ ९६ ॥

॥ सुमिरण नाम बिरह ॥

दादू जागत सुपना ह्वै गया, चिंतामणि जब जाइ ।
तबहीं साचा होत है, आदि अंति उरि लाइ ॥९७॥
नांव न आवै तब दुषी, आवै सुष संतोष ।
दादू सेवग रामका, दूजा हरष न सोक ॥ ९८ ॥
मिलै तो सब सुष पाइये, बिछुरे बहु दुष होइ ।
दादू सुष दुष रामका, दूजा नाहीं कोइ ॥ ९९ ॥
दादू हरिका नांव जल, मैं मीन ता मांहि ।
संगि सदा आनन्द करै, बिछुरत ही मरि जाहि ॥ १०० ॥

(९७) जाग्रदवस्था का विषय प्रपंच जब स्वप्नवत होजाय, और जगत का चिंतन बिसर जाय, तब साचे ब्रम्ह का साक्षात्कार होता है, ऐसी वृत्ति को आदि अंति (निरंतर) हृदय में लगाये रहना चाहिये ॥

दादू राम बिसारि करि, जीवैं किंहि आधार ।
ज्यूं चातृग जल बूंद कौं, करे पुकार पुकार ॥ १०१ ॥
हम जीवैं इहि आसिरैं, सुमिरण के आधार ।
दादू छिटकै हाथथैं, तो हमकौं वार न पार ॥ १०२ ॥

॥ पतिव्रत निःकाम सुमिरण ॥

दादू नांव निमति रामहि भजै, भगति निमति भजि सोइ ।
सेवा निमति सांई भजै, सदा सजीवनि होइ ॥१०३॥

॥ नाम संपूर्णता ॥

दादू राम रसाइण नित चवै, हरि है हीरा साथ ।
सोधन मेरे सांइयां, अलप षजीना हाथ ॥ १०४ ॥
हिरदै राम रहै जा जनकै, ताकौं ऊरा कौण कहै ।
अठ सिधि नौ निधि ताकै आगै, सनमुष सदा रहै ॥१०५॥
वंदित तीनौं लोक बापुरा, कैसैं दरस लहै ।
नांव निसान सकल जग ऊपरि, दादू देषत है ॥१०६॥
दादू सब जग नीधना, धनवंता नहिं कोइ ।
सो धनवंता जाणिये, जाकै राम पदारथ होइ ॥१०७॥
संगहि लागा सब फिरै, राम नाम के साथ ।
चिंतामणि हिरदै बसै, तो सकल पदारथ हाथ ॥ १०८ ॥

(१०४) राम रसाइण = दसवें द्वार का अमृत ॥
(१०५) दृष्टांतः वाल दिद्री कबीर के, दादू गे ढोलाव ।
भारद्वाज मुनि प्रयाग में, भरथ जिमायो साव ॥

दादू आनंद आत्मा, अविनासी के साथ ।
प्राणनाथ हिरदै बसै, तौ सकल पदारथ हाथ ॥ १०६ ॥

॥ पुरुष प्रकासीक ॥

दादू भावै तहां छिपाइये, साच न छाना होइ (१३–१७२)
सेस रसातलि गगनधू, प्रगट कहीये सोइ ॥ ११० ॥
दादू कहां था नारद मुनि जना, कहां भगत प्रहलाद ।
परगट तीन्यूं लोक मैं, सकल पुकारैं साध ॥ १११ ॥
दादू कहं सिव बैठा ध्यान धरि, कहां कबीरा नाम ।
सो क्यौं छांनां होइगा, जे रू कहेगा राम ॥ ११२ ॥
दादू कहां लीन सुखदेव था, कहं पीपा रैदास ।
दादू साचा क्यौं छिपै, सकल लोक परकास ॥ ११३ ॥
दादू कहं था गोरप भरथरी, अनंत सिधौं का मंत ।
परगट गोपीचंद है, दत्त कहैं सब संत ॥ ११४ ॥
अगम अगोचर राखिये, करि करि कोटि जतन ।
दादू छाना क्यौं रहै, जिस घटि राम रतन ॥ ११५ ॥
दादू अग पयाल मैं, साचा लेवै नांव ।
सकल लोक सिरि देपिये, परगट सबही ठांव ॥ ११६ ॥

सुमिरण लांति रस ॥

सुमिरण का संसा रह्या, पछितावा मन मांहि ।
दादू मीठा राम रस, सगला पीया नांहि ॥ ११७ ॥
दादू जैसा नांव था, तैसा लीया नांहि ।
हौंस रही यहु जीव मैं, पछितावा मन मांहि ॥ ११८ ॥

सुमिरण नाम चिंतावणी ॥

दादू सिरि करवत वहै, बिसरै आतम राम ।
माँहिं कलेजा काटिये, जीव नहीं बिश्राम ॥ ११६॥
दादू सिरि करवत वहै, राम रिदै थी जाइ ।
मांहि कलेजा काटिये, काल दसौं दिसि पाइ ॥ १२० ॥
दादू सिरि करवत वहै, अंग परस नाहिं होइ ।
माँहिं कलेजा काटिये, यहु बिथा न जाणै कोइ ॥ १२१ ॥
दादू सिरि करवत वहै, नैनहु निरपै नांहि ।
मांहि कलेजा काटिये, साल रह्या मन मांहि ॥ १२२ ॥
जेता पाप सब जग करै, तेता नांव बिसारैं होइ ।
दादू राम संभालिये, तो येता डारै धोइ ॥ १२३ ॥
दादू जबही राम बिसारिये, तबही मोटी मार ।
षंड षंड करि नाषिये, बीज पड़े तिंहिंवार ॥ १२४ ॥
दादू जबही राम बिसारिये, तबही झंपै काल ।
सिर ऊपरि करवत वहै, आइ पड़ै जम जाल ॥ १२५ ॥
दादू जबही राम बिसारिये, तबही कंध बिनास ।
पग पग परलै पिंड पड़ै, प्राणी जाइ निरास ॥ १२६ ॥
दादू जबही राम बिसारिये, तबही हांनां होइ ।
प्राण पिंड सर्वस गया, सुषी न देष्या कोइ ॥ १२७ ॥

(१२३) परमेश्वर का सब जगह होना, सर्वज्ञभाव, और उसकी भक्ति भूल जाने ही से मनुष्य पापों में फंसता है। जो परमेश्वर को सदैव अपने सन्मुख रखता है वह पापों से छूट जाता है ॥

॥ नाम संपूरण ॥

साहिबजी के नांव्मां, बिरहा पीड़ पुकार ।
तालाबेली रोवणां, दादू है दीदार ॥ १२८ ॥

॥ सुमिरण विधि ॥

साहिबजी के नांव्मां, भाव भगति वेसास ।
लै समाधि लागा रहै, दादू सांई पास ॥ १२९ ॥
साहिब जी के नांव्मां, मति बुधि ज्ञान बिचार ।
प्रेम प्रीति सनेह सुप, दादू जोति अपार ॥ १३० ॥
साहिबजी के नांव्मां, सब कुछ भरे भंडार ।
नूर तेज अनंत है, दादू सिरजनहार ॥ १३१ ॥
जिस में सब कुछ सो लिया, निरंजन का नांउं ।
दादू हिरदै रापिये, मैं बलिहारी जांउं ॥ १३२ ॥

इति श्री सुमिरण कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥

अथ विरह को अंग ॥ ३ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
रतिवंती आरति करै, राम सनेही आव ।
दादू औसर अब मिलैं, यहु विरहनि का भाव ॥ २ ॥
पीव पुकारै विरहनी, निस दिन रहै उदास ।
राम राम दादू कहै, तालाबेली प्यास ॥ ३ ॥
मन चित चातृग ज्यूं रटै, पिव पिव लागी प्यास ।
दादू दरसन कारनैं, पुरवहु मेरी आस ॥ ४ ॥
दादू विरहनि दुप कासनि कहै, कासनि देइ संदेस ।
पंथ निहारत पीव का, विरहनि पलटे केस ॥ ५ ॥ (ग)
दादू विरहनि दुख कासनि कहै, जानत है जगदीस ।
दादू निसदिन विरहि है, विरहा करवत सीस ॥ ६ ॥
सबद तुम्हारा ऊजला, चिरिया क्यों कारी ।
तुंहीं तुंहीं निस दिन करौं, विरहा की जारी ॥ ७ ॥

---

(२) रतिवंती बुद्धि है सो याचना करती है कि हे राम, मेरे स्नेही, मुझ को प्राप्त हो। आप की प्राप्ति का अवसर मुझे अब मिलै अब मिलै। इस तरह का भाव विरहनि-मुमुक्षु-बुद्धि का होता है ॥

(६) "विरहि है" की जगह पु० नं० १ में "विरहै", पु० नं० २ में "विहर है", पु० नं० ३, ५ में "विहरि है" है ॥

(७) हे प्रभु ! नाम तुम्हारा पवित्र है जिस को रटते २ विरह से जली

॥ बिरह बिलाप ॥

बिरहनि रोवै राति दिन, झूरै मनही माहिं ।
दादू औसर चलि गया, प्रीतम पाये नाहिं ॥ ८ ॥
दादू बिरहनि कुरलै कुंज ज्यूं, निसदिन तलपत जाइ ।
राम सनेही कारणै, रोवृत रैनि बिहाइ ॥ ९ ॥
पासैं बैठा सब सुणै, हम कौं ज्वाब न देइ ।
दादू तेरे सिरि चढै, जीव् हमारा लेइ ॥ १० ॥
सब कौं सुषिया देषिये, दुषिया नांही कोइ ।
दुषिया दादू दास है, अैन परस नहिं होइ ॥ ११ ॥
साहिब मुषि बोलै नहीं, सेव्ग फिरै उदास ।
यहु बेदन जिय मैं रहै, दुषिया दादू दास ॥ १२ ॥
पिव बिन पल पल जुग भया, कठिन दिवस क्यौं जाइ ।
दादू दुषिया राम बिन, कालरूप सब षाइ ॥ १३ ॥
दादू इस संसार मैं, मुझ सा दुषी न कोइ ।
पीव् मिलन के कारणै, मैं जल भरिया रोइ ॥ १४ ॥
ना वहु मिलै न मैं सुषी, कहु क्यौं जीव्न होइ ।
जिन मुझकौं घाइल किया, मेरी दारू सोइ ॥ १५ ॥
दरसन कारनि बिरहनी, बैरागनि होवै ।
दादू बिरह बियोगनी, हरि मारग जोवै ॥ १६ ॥

हुई चिड़िया रूपी मेरी बुद्धि क्यों काली (मलीन) है ? जिज्ञासू को यही हालत होती है, जब तक आत्मानंद नहीं मिलता तब तक जिज्ञासू साधन करता हुआ भी दुःखी ही रहता है ॥

॥ विरह उपदेश ॥

अति गति आतुर मिलन कौं, जैसें जल विन मीन ।
सो देखै दीदार कौं, दादू आतम लीन ॥ १७ ॥

राम विछोही विरहनी, फिरि मिलन न पावै ।
दादू तलपै मीन ज्यूं, तुझ दया न आवै ॥ १८ ॥

॥ छिन विछोह ॥

दादू जब लग सुरति समिटै नहीं, मन निहचल नाहिं होइ ।
तब लग पिव परसै नहीं, बड़ी विपति यहु मोहि ॥१९॥

ज्यूं अमली कै चित अमल है, सूरे कै संग्राम ।
निर्धन कै चित धन बसै, यौं दादू कै राम ॥ २० ॥

ज्यूं चातृग कै चिति जल बसै, ज्यूं पानी विन मीन ।
जैसे चंद चकोर है, औसें दादू हरिसौं कीन ॥ २१ ॥

ज्यूं कुंजर कै मन वन बसै, अनल पंषि आकास ।
यूं दादू का मन राम सौं, ज्यूं वैरागी वन षंडि वास ॥२२॥

भवरा लुबधी वासका, मोह्या नाद कुरंग ।
यौं दादू का मन रामसौं, ज्यौं दीपक जोति पतंग ॥ २३ ॥

श्रवना राते नाद सौं, नैनां राते रूप ।
जिभ्या राती स्वाद सौं, त्यौं दादू एक अनूप ॥ २४ ॥

॥ विरह उपदेस ॥

देह पियारी जीवकों, निसदिन सेवा मांहि ।
दादू जीवन मरण लौं, कबहूं छाडै नांहि ॥ २५ ॥

---

(२४) जैसे कान को गाना मीठा है, नेत्रों को रूप, और जिभ्या को स्वाद तैसे दादू को एक अनूप परमात्मा प्रिय है ॥

देह पियारी जीव़कौं, जीव़ पियारा देह ।
दादू हरि रस पाइये, जे श्रैसा होइ सनेह ॥ २६ ॥
दादू हरदम मांहि दिवान, सेज हमारी पीव़ है ।
देषौं सो सुबहान, ये इसक हमारा जीव़ है ॥ २७ ॥
दादू हरदम मांहि दिवान, कहूं दरूनें दरदसौं ।
दरद दरूनें जाइ, जब देषौं दीदार कौं ॥ २८ ॥

॥ बिरह बीनती ॥

दादू दरूनें दरदवंद, यहु दिल दरद न जाइ ।
हम दुषिया दीदार के, मिहरवान दिषलाइ ॥ २६ ॥
मूये पीड़ पुकारतां, बैद न मिलिया श्राइ ।
दादू थोड़ी बात थी, जे टुक दरस दिषाइ ॥ ३० ॥

॥ बिनती ॥

दादू मैं भिष्यारी मंगिता, दरसन देहु दयाल ।
तुम दाता दुष भंजिता, मेरी करहु संभाल ॥ ३१ ॥

---

(२७) हर स्वास मैं श्रातुर हूं, मेरा पीव़ परमात्मा मेरी सेज में (शरीर के अंदर) है, उस को देखूं तो श्रानंद हो। इस प्रकार के प्रेम ही से मेरा जीव़न है ॥

(२८) हरदम मैं दीवाना हो रहा हूं, दर्द से मैं अपने अंदर पुकार रहा हूं। जब परमात्मा का दर्शन पाउं तब मेरे अंदर का दुःख जाय ॥

(२६) दर्द बंद का भीतरी दर्द दिल से नहीं जाता। क्यों ? वह दुखिया दीदार का है। जब दयालु परमात्मा अपना दर्शन दे तो वह दुःख जाय॥

॥ बिन बिछोह ॥

क्या जीयेमें जीवणां, विन दरसन वेहाल ।
दादू सोई जीवणां, परगट परसन लाल ॥ ३२ ॥
इहि जगि जीवन सो भला, जब लग हिरदै राम ।
राम विना जे जीवनां, सो दादू वेकांम ॥ ३३ ॥

॥ विरह बीनती ॥

दादू कहु दीदार की, सांई सेती बात ।
कब हरि दरसन देहुगे, यहु औसर चलि जात ॥३४॥
विथा तुम्हारे दरस की, मोहि व्यापै दिन राति ।
दुषी न कीजे दीन कों, दरसन दीजै तात ॥ ३५ ॥
दादू इस हियड़े ये साल, पिव विन क्योंहि न जाइसी ।
जब देषों मेरा लाल, तब रोम रोम सुप आइसी ॥३६॥
तूं है तैसा प्रकास करि, अपनां आप दिषाइ ।
दादू कों दीदार दे, वलि जाउं विलंब न लाइ ॥३७॥
दादू पिवजी देषै मुझकों, हूं भी देषों पीव ।
हूं देषों, देषत मिलै, तो सुप पावै जीव ॥ ३८ ॥

॥ विरह कसौटी ॥

दादू कहै तन मन तुम परि वारणें, करि दीजै कै बार ।
जे ऐसी विधि पाइये, तो लीजै सिरजनहार ॥ ३९ ॥

---

(३२) परगट परसन लाल=लाल परमात्मा तिस का दर्शन,पर्शन रूप साक्षात्कार ॥

॥ वि० पतिव्रत ॥

दीन दुनी सदके करौं, टुक देषण दे दीदार ।
तन मन भी छिन छिन करौं, भिस्त दोजग भी वार ॥४०॥

॥ वि० करुणा ॥

दादू हम दुषिया दीदार के, तूं दिल थैं दूरि न होइ ।
भावै हमकौं जालि दे, हूंणां है सो होइ ॥ ४१ ॥

॥ वि० पतिव्रत ॥

दादू कहै जे कुछ दिया हमकौं, सो सब तुम ही लेहु ।
तुम बिन मन मानै नहीं, दरस आपणां देहु ॥ ४२ ॥

दूजा कुछ मांगैं नहीं, हम कौं दे दीदार ।
तूं है तब लग एक टग, दादू के दिलदार ॥ ४३ ॥

बिरह बिनती ॥

दादू कहै तूं है तैसी भगति दे, तूं है तैसा प्रेम ।
तूं है तैसी सुरति दे, तूं है तैसा पेम ॥ ४४ ॥

दादू कहै सदिकै करौं सरीर कौं, बेर बेर बहु भंत ।
भाव भगति हित प्रेम ल्यौ, परा पियारा कंत ॥ ४५ ॥

दादू दरसन की रली, हम कौं बहुत अपार ।
क्या जाणौं कबहीं मिलै, मेरा प्राण अधार ॥ ४६ ॥

दादू कारणि कंत के, परा दुषी बेहाल ।
मीरां मेरा मिहर करि, दे दरसन दरहाल ॥ ४७ ॥

तालाबेली प्यास बिन, क्यों रस पीया जाइ ।
बिरहा दरसन दरद सौं, हम कौं देहु पुदाइ ॥ ४८ ॥

(४०) भिस्त दोजग=बहिश्त दोज़ख़=स्वर्ग नर्क ॥

तालाबेली पीड़सौं, बिरहा प्रेम पियास ।
दरसन सेती दीजिये, बिलसे दादू दास ॥ ४६ ॥
दादू कहे, हमकों ध्यपणां आप दे, इस्क मुहब्बति दर्द ।
सेज सुहाग सुप प्रेमरस, मिलि पेलें लापर्द ॥ ५० ॥
प्रेम भगति माता रहै, तालाबेली अंग ।
सदा सपीड़ा मन रहै, राम रमै उन संग ॥ ५१ ॥
प्रेम मगन रस पाइये, भगति हेत रुचि भाव ।
बिरह बेसास निज नांवसों, देव दया करि आव ॥५२॥
गई दसा सब बाहुड़े, जे तुम प्रगटहु आइ ।
दादू ऊजड़ सब बसै, दरसन देहु दिषाइ ॥ ५३ ॥
हम कसियें क्यां होइगा, बिड़द तुम्हारा जाइ ।
पीछें हीं पछिताहु गे, ता थें प्रगटहु आइ ॥ ५४ ॥

॥ छिण बिछोह ॥

मींयां मैंडा आव घरि, वांढी वत्तां लोइ ।
डुपंडे मुंहिडे गये, मरां बिछोहै रोइ ॥ ५५ ॥

---

(५०) इस्क मुहब्बति की जगह मूल पुस्तकों में " इसक महुबति " आया है ॥

(५३) गई दसा=ब्रम्हभाव, जो जीवभाव से पूर्व था ।.

(५४) "हम कसियें"=हम को कसने से, अर्थात् दुःख देने से ।

(५५) हे मेरे मियां (मालिक) मेरे घर आव, अर्थात् मेरे मन में बास कर, मैं दुहागणी लोक में फिरती हूं, मेरे दुःख बढ़ गये हैं और तेरे वियोग से मैं मरती हूं ।

॥ विरह पतिव्रत ॥

है, सो निधि नहिं पाइये, नहीं, सो है भरपूर ।
दादू मन मानै नहीं, तातैं मरिये झूरि ॥ ५६ ॥

॥ बिरही विरह लष्यण ॥

जिस घटि इसक अलाह का, तिस घटि लोही न मास ।
दादू जियरे जक नहीं, ससकै सासैं सास ॥ ५७ ॥

रत्ती रब ना वीसरै, मरै संभालि संभालि ।
दादू सुहदायी रहै, आसिक अल्लह नाल ॥ ५८ ॥

दादू आसिक रब दा, सिर भी डेवै लाहि ।
अल्लह कारणि आप कौं, साड़े अंदरि भाहि ॥ ५९ ॥

॥ कसौटी ॥

भोरे भोरे तन करै, वंडै करि कुरबाण ।
मिठा कौड़ा ना लगै, दादू तौहू साण ॥ ६० ॥

॥ विरह लष्यन ॥

जब लग सीस न सौंपिये, तब लग इसक न होइ ।
आसिक मरणै नां डरै, पिया पियाला सोइ ॥ ६१ ॥

---

(५६) है सत, सो प्राप्त होता नहीं; नहीं है असत, प्रपंच, सो भरपूर प्रतीत होता है । और मन मानता नहीं, जिस से हम मुरझकर मरते हैं ॥

(५९) रब (परमेश्वर) का प्रेमी अपने संपूर्ण अपनपे को परमेश्वर को अर्पण करै । और परमेश्वर के वास्ते आपे (अहंकार) को अग्नि (विरह) में साड़ै (जलावै) ।

(६०) तन को रत्ती २ काट कर कुर्बाण चढ़ावै और बांट दे । इतना करने पर मीठा परमेश्वर कड़वा न लगै, तब परमेश्वर प्राप्त हो ॥

॥ बिरह पतिव्रत ॥

तें डीनों ई सभु, जे डीये दीदार के ।
उंजे लहदी अभु, पसाई दो पाण के ॥ ६२ ॥
विचों सभो दूरि करि, अंदरि बिया न पाइ ।
दादू रता हिकदा, मन मोहब्बत लाइ ॥ ६३ ॥

॥ बिरह उपदेश ॥

इसक महबति मस्त मन, तालिब दर दीदार ।
दोस्त दिल हरदम हजूर, यादिगार हुसियार ॥ ६४ ॥

॥ बिरह लक्षन ॥

दादू आसिक एक अलाह के, फारिक दुनियां दीन ।
तारिक इस औजूद थैं, दादू पाक अकीन ॥ ६५ ॥

---

(६२) दर्शन देने से आप सब कुछ दे चुकोगे । उसकी प्राप्ति से सब वांछा पूरी होंगी, जो आप दिखाई दोगे ॥

(६३) बीच से सब पर्दा दूर कीजिये, अंदर द्वैतभाव न रहे । दादू एक ही में प्रेम पूर्वक मन लगाय कर रत है ॥

(६४) यह साखी अकबरशाह के प्रश्न के उत्तर में कही थी । तात्पर्य इस का यह है कि ईश्वर के प्रेम में मन मस्त रहे और उस के दर्शन की इच्छा बनाये रक्खे । अपना दोस्त जो परमात्मा उस के सन्मुख दिल हरदम रक्खे और उस की याद में होशियार रहे ॥

(६५) दादू जी कहते हैं कि एक परमात्मा के भक्त, लोक और मतों से मुक्त होते हैं, अपने शरीर के अभिमान को भी वो तरक (छोड़) देते हैं, केवल एक पवित्र परमात्मा ही का निश्चय रखते हैं ॥

आसिकां रह कबज कर्दां, दिल व़ जां रफतंद । (४–१४६)
अलह आले नूर दीदम, दिलहि दादू बंद ॥ ६६ ॥

॥ शब्द ॥

दादू इसक अवाज सौं, ऐसें कहै न कोइ ।
दर्द मोहब्बति पाइये, साहिब हासिल होइ ॥ ६७ ॥

॥ बिरही बिलाप लष्यन ॥

कहं आसिक अल्लाः के, मारे अपने हाथ ।
कहं आलम औजूद सौं, कहै जबां की बात ? ॥ ६८ ॥
दादू इसक अल्लाःका, जे कबहूं प्रगटै आइ ।
तौ तन मन दिल अरवाह का, सब पड़दा जलि जाइ ॥ ६९ ॥

---

(६६) इस का अर्थ यह है:– प्रेमीजनों को परमेश्वर अपनी तरफ खैंच लेता है और उन के दिल और जान परमेश्वर ही की तरफ जाते हैं । परमेश्वर का शोभायमान प्रकाश मैं देखता हूं और तरफों से मेरा दिल बंद है ॥

(६७) प्रेम शब्द कोई इस प्रकार से नहीं कहता है, (जो कहे) तो प्रेम और बिरह दर्द दोनों प्राप्त हों और परमात्मा का दर्शन भी हो ॥

(६८) साखी प्रश्न की, कहां इस आलम वजूद (इस लोक) में ऐसे पर्मेश्वर के प्रेमी हैं जो अपने हाथ से आपको मारैं अर्थात् ऐसे कठिन बिरह का करैं ?

(६९) उत्तर:– दयालजी कहते हैं कि जो कभी परमात्मा का प्रेम प्राप्त हो जावै, तो जीव के तन मन दिल के सब पड़दे (अज्ञान, भय, दुःख दुर्लतादि) नष्ट हो जांय ॥

॥ विरह जिज्ञास उपदेश ॥

अरवाहे सिजदा कुनंद, औजूद रा चिकार। (४–१४५)
दादू नूर दादनी, आसिकां दीदार ॥ ७० ॥

॥ विरह ज्ञान अग्नि ॥

दादू विरह अग्नि तन जालिये, ज्ञान अग्नि दों लाइ।
दादू नषसिष परजले, तब राम बुझावे आइ ॥ ७१ ॥
विरह अगनि में जालिबा, दरसन के तांई।
दादू आतुर रोइबा, दूजा कुछ नांहीं ॥ ७२ ॥

॥ विरह पतिव्रत ॥

साहिब सों कुछ बल नहीं, जिनि हठ साधे कोइ।
दादू पीड़ पुकारिये, रोतां होइ सो होइ ॥ ७३ ॥
ज्ञान ध्यान सब छाडि दे, जप तप साधन जोग।
दादू विरहा ले रहे, छाडि सकल रस भोग ॥ ७४ ॥
जहं विरहा तहं और क्या, सुधि बुधि नांठे ज्ञान।
लोक वेद मारग तजे, दादू एकै ध्यान ॥ ७५ ॥

॥ विरही विरह लच्छन ॥

विरही जन जीवे नहीं, जे कोटि कहैं समझाइ।
दादू गहिला ह्वै रहे, के तलफि तलफि मरि जाइ ॥ ७६ ॥

---

(७०) जीव परमात्मा को दंडवत करता है, न शरीर (औजूद, वजूद)। भक्तों को नूर (प्रकाश) रूपी दीदार (दर्शन) दीदनी (देखना) प्रिय है ॥

(७१) परजले = प्रज्वले, प्रदीप्त हो, धूधकले।

(७६) देखो साखी ३ ८५ ॥

दादू तलफै पीड़ सौं, बिरही जन तेरा ।
 ससकै सांई कारणै, मिलि साहिब मेरा ॥ ७७ ॥
पड्या पुकारै पीड़ सौं, दादू बिरही जन ।
 राम सनेही चिति बसै, और न भावै मन ॥ ७८ ॥
जिस घटि बिरहा रामका, उस नींद न आवै ।
 दादू तलफै बिरहनीं, उस पीड़ जगावै ॥ ७९ ॥
सारा सूरा नींद भरि, सब कोइ सोवै ।
 दादू घाइल दरद बंद, जागै अरु रोवै ॥ ८० ॥
पीड़ पुरांणीं नां पड़ै, जे अंतर बेध्या होइ ।
 दादू जीवण मरण लौं, पड्या पुकारै सोइ ॥ ८१ ॥
दादू बिरही पीड़ सौं, पड्या पुकारै मीत ।
 राम बिना जीवै नहीं, पीव मिलन की चीत ॥ ८२ ॥
जे कबहुं बिरहनि मरै, तौ सुरति बिरहनी होइ ।
 दादू पिव पिव जीवतां, मुवां भी टेरै सोइ ॥ ८३ ॥
दादू अपणी पीड़ पुकारिये, पीड़ पराई नांहि ।
 पीड़ पुकारै सो भला, जाके करक कलेजे मांहि ॥८४॥

बिरह बिलाप ॥

ज्यूं जीवत मृत्तक कारणै, गत करि नापै आप ।
 यौं दादू कारणि रामके, बिरही करै बिलाप ॥ ८५ ॥

---

(८२) चीत=चिंता ।

(८५) जीवत मृतक वह है जो जीते जी इस शरीर को मृतवत मानै—देखौ जीवत मृतक २३ वां अंग ।

दादू तलफि तलफि विरहनि मरे, करि करि बहुत विलाप।
विरह अगनि में जल गई, पीव़ न पूछे बात ॥ ८६ ॥
दादू कहां जांव कौण पे पुकारों, पीव़ न पूछे बात ।
पिव़ बिन चैन न आवई, क्यों भरों दिन रात ॥ ८७ ॥
दादू विरह विव़ोग न सहि सकों, मो पें सहा न जाइ ।
कोई कहौ मेरे पीव़ कों, दरस दिखावे आइ ॥ ८८ ॥
दादू विरह विव़ोग न सहि सकों, निसदिन सालें मोंहि ।
कोई कहौ मेरे पीव़ कों, कब मुष देषों तोहि ॥ ८९ ॥
दादू विरह विव़ोग न सहि सकों, तन मन धरे न धीर ।
कोई कहौ मेरे पीव़ कों, मेटे मेरी पीर ॥ ९० ॥
दादू कहे साध दुखी संसार में, तुम बिन रह्या न जाइ ।
औरों के आनंद है, सुखसों रैनि बिहाइ ॥ ९१ ॥
दादू लाइक हम नहीं, हरि के दरसन जोग ।
विन देषे मरि जांहिगे, पिव़के विरह विव़ोग ॥ ९२ ॥

॥ विरह पतिव्रत ॥

दादू सुष सांईसों, और सबै ही दुष ।
देषों दरसन पीव़ का, तिसही लागे सुष ॥ ९३ ॥
चंदन सीतल चंद्रमा, जल सीतल सब कोइ ।
दादू विरही राम का, इनसों कदे न होइ ॥ ९४ ॥

(८७) "भरों" पूर्ण (व्यतीत) करौं ॥

॥ बिरही बिरह लष्यन ॥

दादू घाइल दरदवंद, अंतरि करै पुकार।
सांई सुणै सब लोक मैं, दादू यहु अधिकार ॥ ६५ ॥

दादू जागै जगतगुर, जग सगला सोवै।
बिरही जागै पीड़सौं, जे घाइल होवै ॥ ६६ ॥

॥ बिरह ग्यान अगनि ॥

विरह अगनि का दाग दे, जीवत मृतक गोर। (२३-५६)
दादू पहिली घर किया, आदि हमारी ठौर ॥ ६७ ॥

॥ बिरह पतिव्रत ।

दादू देषे का अचिरज नहीं, अण देषे का होइ।
देषे ऊपरि दिल नहीं, अण देषे कौं रोइ ॥ ६८ ॥

॥ बिरह उपजनि ॥

पहिली आगम बिरह का, पीछैं प्रीति प्रकास।
प्रेम मगन लै लीन मन, तहां मिलन की आस ॥ ६६ ॥

विरह विवोगी मन भला, सांई का बैराग।
सहज संतोषी पाइये, दादू मोटे भाग ॥ १०० ॥

दादू तृपा विना तनि प्रीति न उपजै, सीतल निकटि जल धरिया।
जनम लगैं जिव पुणग न पीवै, निरमल दह दिस भरिया ॥ १०१ ॥

दादू षुध्या विना तनि प्रीति न उपजै, बहु विधि भोजन नेरा।
जनम लगैं जिव रती न चाषै, पाक पूरि बहुतेरा ॥ १०२ ॥

---

(१०२) नेरा=नेरे=नजदीक।

दादू तपलि बिना तनि प्रीति न उपजे, संग ही सीतल छाया ।
जनम लगें जिव जाणे नांहीं, तरवर त्रिभुवन राया ॥१०३॥
दादू चोट बिना तनि प्रीति न उपजे, औषद अंग रहंत ।
जनम लगें जिव पलक न परसै, बूंटी अमर अनंत ॥१०४॥
दादू चोट न लागी बिरह की, पीड़ न उपजी आइ ।
जागि न रोवै धाह दे, सोवत गई बिहाइ ॥ १०५ ॥
दादू पीड़ न ऊपजी, ना हम करी पुकार ।
ताथैं साहिब ना मिल्या, दादू वीती वार ॥ १०६ ॥
अंदरि पीड़ न ऊभरै, बाहरि करै पुकार ।
दादू सो क्यों करि लहै, साहिब का दीदार ॥ १०७ ॥
मन हीं मांहे झूरणां, रोवै मन हीं मांहि ।
मन हीं मांहे धाह दे, दादू बाहरि नांहि ॥ १०८ ॥
बिन ही नैन हु रोवणां, बिन मुप पीड़ पुकार ।
बिन ही हाथों पीटणां, दादू बारंबार ॥ १०९ ॥
प्रीति न उपजे बिरह बिन, प्रेम भगति क्यों होइ ।
सब झूठे दादू भाव बिन, कोटि करै जे कोइ ॥ ११० ॥
दादू बातों बिरह न ऊपजे, बातों प्रीति न होइ । (ख)
बातों प्रेम न पाइये, जिनि रू पतीजे कोइ ॥ १११ ॥

॥ बिरह उपदेश ॥

दादू तो पिव पाइये, कुसमल है सो जाइ ।
निर्मल मन करि आरसी, मूरति मांहि लषाइ ॥ ११२ ॥
दादू तो पिव पाइये, करि मंझे बिलाप ।
सुनिहै कबहूं चित्त धरि, परगट होवै आप ॥ ११३ ॥

दादू तौ पिव पाइये, करि सांई की सेव ।
काया मांहि लखाइसी, घटही भीतरि देव ॥ ११४ ॥
दादू तौ पिव पाइये, भावै प्रीति लगाइ ।
हेजैं हरी बुलाइये, मोहन मंदिर आइ ॥ ११५ ॥

॥ बिरह उपजनि ॥

दादू जाकै जैसी पीड़ है, सो तैसी करै पुकार ।
को सूषिम, को सहज में, को मृतक तिहिं वार ॥ ११६ ॥

॥ बिरह लष्यन ॥

दरद हि बूझै दरदवंद, जाके दिल होवै ।
क्या जाणै दादू दरदकी, नींद भरि सोवै ॥ ११७ ॥

॥ करनी बिना कथनी ॥

दादू अष्यर प्रेम का, कोई पढैगा एक ।
दादू पुस्तक प्रेम बिन, केते पढैं अनेक ॥ ११८ ॥
दादू पाती प्रेम की, बिरला बांचे कोइ ।
वेद पुरान पुस्तक पढैं, प्रेम बिना क्या होइ ॥ ११९ ॥

॥ बिरह बाण ॥

दादू कर बिन सर बिन कमान बिन, मारै पैंचि कसीस ।
लागी चोट सरीर में, नष सिष साले सीस ॥ १२० ॥
दादू भलका मारै भेदसौं, सालै मंझि पराण ।
मारण हारा जाणि है, कै जिहि लागे बाण ॥ १२१ ॥
दादू सो सर हमकों मारिले, जिहि सरि मिलिये जाइ ।
निसदिन मारग देषिये, कबहूं लागै आइ ॥ १२२ ॥

जिहि लागी सो जागि है, बेध्या करै पुकार ।
दादू पिंजर पीड़ है, सालै बारंबार ॥ १२३ ॥
विरही सिसकै पीड़सौं, ज्यौं घाइल रण मांहि ।
प्रीतम मारै बाण भरि, दादू जीवै नांहि ॥ ॥ १२४ ॥
दादू विरह जगावै दरद कौं, दरद जगावै जीव ।
जीव जगावै सुरति कौं, पंच पुकारैं पीव ॥ १२५ ॥
दादू मारे प्रेम सौं, बेधे साध सुजाण ।
मारण हारे कौं मिले, दादू विरही बांण ॥ १२६ ॥
सहजै मनसा मन सधै, सहजैं पवनां सोइ ।
सहजै पंचौं थिर भये, जे चोट विरह की होइ ॥ १२७ ॥
मारणहारा रहि गया, जिहि लागी सो नांहि ।
कबहूं सो दिन होइगा, यहु मेरे मन मांहि ॥ १२८ ॥
प्रीतम मारे प्रेम सौं, तिनकौं क्या मारै ।
दादू जारे विरह के, तिन कौं क्या जारै ॥ १२९ ॥

॥ प्रिय विछोह ॥

दादू पड़दा पलक का, एता अंतर होइ ।
दादू विरही राम बिन, क्यौं करि जीवै सोइ ॥ १३० ॥

॥ विरह लक्षण ॥

काया मांहै क्यौं रह्या, बिन देपे दीदार ।
दादू विरही बावरा, मरै नहीं तिहि वार ॥ १३१ ॥
बिन देपें जीवै नहीं, विरह का सहिनाण ।
दादू जीवै जब लगैं, तब लग विरह न जांण ॥ १३२ ॥

॥ विरह वीनती ॥

रोम रोम रस प्यास है, दादू करहि पुकार ।
राम घटा दल उमंगि करि, बरसहु सिरजनहार ॥ १३३ ॥

॥ विरही विरह लप्यन ॥

प्रीति जु मेरे पीव की, पैठी पिंजर मांहि ।
रोम रोम पिव पिव करे, दादू दूसर नांहि ॥ १३४ ॥
सब घट श्रवनां सुरति सौं, सब घट रसनां बैन ।
सब घट नैंना ह्वै रहे, दादू बिरहा अैन ॥ १३५ ॥

॥ विरह विलाप ॥

राति दिवस का रोवणां, पहर पलक का नांहि ।
रोवत रोवत मिलि गया, दादू साहिब मांहि ॥ १३६ ॥
दादू नैंन हमारे बावरे, रोवैं नहिं दिनराति ।
सांई संग न जागहीं, पिव क्यों पूछै बात ॥ १३७ ॥
नैंनहु नीर न आइया, क्या जाणैं ये रोइ ।
तैसें ही करि रोइये, साहिब नैंनहु जोइ ॥ १३८ ॥
दादू नैन हमारे ढीठ हैं, नाले नीर न जांहिं ।
सूके सरां सहेत वे, करंक भये गलि मांहि ॥ १३९ ॥

॥ विरही विरह लप्यन ॥

दादू बिरह प्रेम की लहरि में, यहु मन पंगुल होइ ।
राम नाम में गलि गया, बूझै बिरला कोइ ॥ १४० ॥

---

(१३९) नेत्र हमारे निर्लज्ज हैं, कि उन से आंसुओं के नाले नहीं बहने, जैसे मीन मेंडकादि तालाब के सूख जाने पर उसी के भीतर गलकर सूख मरने हैं वैसे हम नहीं हुये। सारांश इस का यह है कि हम भक्तिहीन हैं ॥

॥ विरह ग्यान अग्नि ॥

दादू बिरह अगनि में जलि गये, मनके मैल विकार ।
दादू बिरही पीव का, देखेगा दीदार ॥ १४१ ॥
विरह अगनि में जलि गये, मन के विषै विकार ।
ताथैं पंगुल ह्वै रह्या, दादू दरि दीदार ॥ १४२ ॥
जब विरहा आया दरद सौं, तब मीठा लागा राम ।
काया लागी काल ह्वै, कड़वे लागे काम ॥ १४३ ॥

॥ विरह बाण ॥

जब राम अकेला रहि गया, तन मन गया बिलाइ ।
दादू बिरही तब सुखी, जब दरस परस मिलि जाइ ॥१४४॥

विरही विरहा लष्यन ॥

जे हम छाड़ैं राम कौं, तौ राम न छाड़ै ।
दादू अमली अमल थैं, मन क्यूं करि काढ़ै ॥ १४५ ॥
विरहा पारस जब मिलै, तब विरहनि विरहा होइ ।
दादू परसै बिरहनी, पिव पिव टेरै सोइ ॥ १४६ ॥
आसिक मासूक ह्वै गया, इसक कहावै सोइ ।
दादू उस मासूक का, अल्लहि आसिक होइ ॥ १४७ ॥
राम विरहनी ह्वै रह्या, विरहनि ह्वै गई राम ।
दादू विरहा बापुरा, ऐसे करि गया काम ॥ १४८ ॥
विरह बिचारा लेगया, दादू हम कौं आइ ।
जहं अगम अगोचर राम था, तहं विरह बिना को जाइ॥१४९॥

(१४७) देखो परचा के अंग की १८० वीं और २७३ वीं साखी ॥

बिरह बपुरा आइ करि, सोवत जगावै जीव ।

दादू अंगि लगाइ करि, ले पहुंचावै पीव ॥ १५० ॥

बिरहा मेरा मीत है, बिरहा बैरी नांहि ।

बिरहा को बैरी कहै, सो दादू किस मांहि ॥ १५१ ॥

दादू इसक अलह की जाति है, इसक अलह का अंग ।

इसक अलह औजूद है, इसक अलह का रंग ॥ १५२ ॥

॥ साध महिमा माहात्म ॥

दादू प्रीतम के पग परसिये, मुझ देखण का चाव ।

तहां ले सीस नवाइये, जहां धरे थे पाव ॥ १५३ ॥

॥ बिरह पतिव्रत ॥

बाट बिरह की सोधि करि, पंथ प्रेम का लेहु ।

लै के मारग जाइये, दूसर पाव न देहु ॥ १५४ ॥

बिरहा बेगा भगति सहज में, आगै पीछै जाइ ।

थोड़े मांहै बहुत है, दादू रहु ल्यौ लाइ ॥ १५५ ॥

॥ बिरह बाण ॥

बिरहा बेगा ले मिलै, तालाबेली पीर ।

दादू मन घाइल भया, सालै सकल सरीर ॥ १५६ ॥

---

(१५२) दृष्टांतः—दोहा—गुरु दादू सों बादशाह, बूझी चारि जो बात ।
जाति अंग औजूद रंग, साहेब के विख्यात ॥
अर्थात् १५२ वीं साखी दादूजी ने अकबरशाह के प्रश्न पर कही थी ॥

॥ विरह विनती ॥

आज्ञा अपरंपार की, वसिअंबर भरतार ।
हरे पटंवर पहिरि करि, धरती करै सिंगार ॥ १५७ ॥

वसुधा सव फूलै फलै, पिरथी अनंत अपार ।
गगन गरजि जल थल भरै, दादू जै जै कार ॥ १५८ ॥

काला मुंह करि कालका, सांई सदा सुकाल ।
मेघ तुम्हारे घरि घणां, बरसहु दीन दयाल ॥ १५९ ॥

इति श्री विरह कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥

---

(१५७) दृष्टांतः—सोरठा—आंधी गांव हिं मांहि, रहे जो दादू दासजी ।
वर्षा वर्षी नांहि, करि विनती वर्षाइयो ॥

अर्थात् आंधी गांव में जब दादूजी ने चौमासा किया था और वहां वर्षा नहीं हुई थी, तब उन्होंने यह प्रार्थना कर के वर्षा वर्षाई थी ॥

अथ परचा कौ अंग ॥ ४ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

दादू निरन्तर पिव पाइया, तंह पंपी उनमन जाइ ।
सातों मंडल भेदिया, अष्टें रह्या समाइ ॥ २ ॥

दादू निरन्तर पिव पाइया, जहं निगम न पहुंचे वेद ।
तेज सरूपी पिव बसै, कोइ बिरला जानै भेद ॥ ३ ॥

(२) पीव जो परमात्मा है सो अंतर रहित हृदय के भीतर प्राप्त होने योग्य है, तिस परमात्मा को हंस रूपी जीव मन की उनमनी (निर्विकल्पावस्था) में प्राप्त होता है। वही परमात्मा जो इतने समीप है सो सातों मंडल (सप्तलोक) में व्यापक है और आप आठवां मंडल कर सब को समा रक्खा है ॥

दूसरा अर्थ—दयाल जी कहते हैं कि निरंतर कहिये हृत्यंतर के व्यवधान से रहित पीव जो प्रियतम परमात्मा है तिस की प्राप्ति होती है। किस प्रकार से प्राप्ति होती है सो कहते हैं—तहां पंपी उनमन जाइ अर्थात् मनरूप जो पक्षी है सो तहां परमातमा के स्वरूप में उनमन जाय कहिये उनमनी अवस्था को प्राप्त होवै है, अर्थात् जिस काल में मन निर्विकल्प अवस्था को पहुंचता है तब परमात्मस्वरूप की निरंतर प्राप्ति होती है ॥

(३) जहं निगम न पहुंचे वेद, यहां यह आशय है, गुण क्रिया जाति संबंध वाली वस्तु को ही वर्णात्मक वेद विषय करता है। परब्रह्म में गुणादि हैं नहीं। असंगोह्ययमात्मा इति श्रुतेः ॥

दादू निरन्तर पिव पाइया, तीनि लोक भरपूरि ।
सब सेजों सांई बसै, लोक बतावैं दूरि ॥ ४ ॥

दादू निरन्तर पिव पाइया, जहं आनंद बारह मास ।
हंस सौं प्रमहंस पेलै, तहं सेवग स्वामी पास ॥ ५ ॥

दादू रंग भरि पेलौं पीव सौं, तहं बाजै बेन रसाल ।
अकल पाट परि बैठा स्वामी, प्रेम पिलावै लाल ॥ ६ ॥

दादू रंग भरि पेलौं पीव सौं, सेती दीन दयाल ।
निस बासुरि नहि तहं बसै, मांनसरोवर पाल ॥ ७ ॥

दादू रंग भरि पेलौं पीव सौं, तहं कबहूं न होइ विजोग ।
आदि पुरस अंतरि मिल्या, कुछ पूरबले संजोग ॥ ८ ॥

दादू रंग भरि पेलौं पीव सौं, तहं बारह मास बसंत ।
सेवग सदा अनंद है, जुगि जुगि देषौं कंत ॥ ९ ॥

दादू काया अंतरि पाइया, त्रिकुटी केरे तीर ।
सहजैं आप लषाइया, व्याप्या सकल सरीर ॥ १० ॥

दादू काया अंतरि पाइया, निरन्तर निरधार ।
सहजैं आप लषाइया, ऐसा समृथ सार ॥ ११ ॥

दादू काया अंतरि पाइया, अनहद बेन बजाइ ।
सहजैं आप लषाइया, सुन्य मंडलमें जाइ ॥ १२ ॥

दादू काया अंतरि पाइया, सब देवन का देव ।
सहजैं आप लषाइया, ऐसा अलष अभेव ॥ १३ ॥

(१२) सुन्य मंडल, दसवें द्वार से परे ॥

दादू भवर कवल रस वेधिया, सुष सरवर रस पीव ।
तहं हंसा मोती चुगैं, पिव देषे सुष जीव ॥ १४ ॥
दादू भवर कवल रस वेधिया, गहे चरण कर हेत ।
पिवजी परसत ही भया, रोम रोम सब सेत ॥ १५ ॥
दादू भवर कवल रस वेधिया, अनत न भरमै जाइ ।
तहां वास विलंबिया, मगन भया रस पाइ ॥ १६ ॥
दादू भवर कवल रस वेधिया, गही जो पीव की ओट ।
तहां दिल भवरा रहै, कौण करै सर चोट ॥ १७ ॥

॥ प्रचै जितास उपदे ॥

दादू षोजि तहां पिव पाइये, सबद ऊपनै पास ।
तहां एक एकांत है, तहां जोति परकास ॥ १८ ॥
दादू षोजि तहां पिव पाइये, जहं चंद न ऊगै सूर ।
निरन्तर निर्धार है, तेज रह्या भरपूर ॥ १९ ॥
दादू षोजि तहां पिव पाइये, जहं बिन जिभ्या गुण गाइ ।
तहं आदि पुरस अलेप है, सहजें रह्या समाइ ॥ २० ॥

---

(१४) कबीर अंतर कमल प्रकाशिया, ब्रम्ह वास तँहि होइ ।
मन भौंरा जँहि लुब्धिया, जाणैं गा जन कोइ ॥

भवर=मन, कवल=हृदय, रस=आत्मा ॥

जैसे कमल को भेदन करके उसके रस को पान करता हुआ भंवरा आनंद को प्राप्त होता है, तैसे ही, दयाल जी कहते हैं, हमारा मन हृदय कमल को भेदन करके आत्म स्वरुप रस को पान करके आनंद पाता है । दूसरा दृष्टांत—जैसे मानसरोवर का जल पान करके, मोती चुग करके और सरोवर के दर्शन से हंस आनंदित होता है, तैसे ही हम पीव के दर्शन करके, राम भजन रूपी मोती चुग के, स्वरुपानन्द का अनुभव करके आनंदित होते हैं ॥

दादू षोजि तहां पिव पाइये, जहं अजरा अमर उमंग ।
जुरा मरण भौ भाजसी, राखै अपणै संग ॥ २१ ॥

दादू गाफिल छो वर्ते, मंझे रब निहारि ।
मंझेई पिव पाण जो, मंझेई विचार ॥ २२ ॥

दादू गाफिल छो वर्ते, आहे मंझि अलाह ।
पिरी पांण जो पाणसें, लहे सभोई साव ॥ २३ ॥

दादू गाफिल छो वर्ते, आहे मंझि मुकाम ।
दरगह में दीवाण तत, पसे न वैठो पांण ॥ २४ ॥

दादू गाफिल छो वर्ते, अंदरि पिरी पसु ।
तषत रवाणीं विच में, पेरे तिन्हीं वसु ॥ २५ ॥

॥ परचै ॥

हरि चिंतामणि च्यंततां, चिंता चित की जाइ ।
च्यंतामणि चित में मिल्या, तहं दादू रह्या लुभाइ ॥२६॥

---

(२१) पुस्तक नं० १ और ४ में "अमर" की जगह "अम्र" है ।

(२२) बे होश तू क्या फिरता है; अपने अंदर ही परमात्मा को देख। भीतर ही जो परमात्मा आप है, उसको भीतर शोध ॥

(२३) गाफिल तू क्या फिरता है, अपने अंदर ही अल्लः है। परमात्मा अपने आप से सब स्वाद लेता है ॥

(२४) दरगह=हृदय। दीवान तत=स्वयं प्रकाश । पसे=देखे । न=नहीं। वैठो=बैठा, पांण=आप ॥

(२५) तषत रवाणीं=परमेश्वर का सिंहासन। पेरे=फकीर । तिन्हीं=तिनके। वसु=रहे ॥

अपने नैनहुं आप कौं, जब आत्म देषै ।
तहं दादू परआतमा, ताही कूं पेषै ॥ २७ ॥
दादू विन रसना जहं वोलिये, तहं अंतरजामी आप ।
विन श्रवणहु सांइ सुनै, जे कुछ कीजै जाप ॥ २८ ॥

॥ परचै जज्ञास उपदेस ॥

ज्ञान लहर जहां थें उठै, वाणी का परकास ।
अनभै जहां थें ऊपजै, सवदें किया निवास ॥ २९ ॥
सो घर सदा विचार का, तहां निरंजन वास ।
तहं तूं दादू षोजि ले, ब्रह्म जीव के पास ॥ ३० ॥
जहं तन मन का मूल है, उपजै ओंकार ।
अनहद सेभा, सवद का, आतम करै विचार ॥ ३१ ॥
भाव भगति लै ऊपजै, सो ठाहर निज सार ।
तहं दादू निधि पाइये, निरंतर निर्धार ॥ ३२ ॥
एक ठौर सूझै सदा, निकटि निरंतर ठांउ ।
तहां निरंजन पूरि ले, अजरावर तिहिं नांउ ॥ ३३ ॥
साधू जन क्रिला करैं, सदा सुषी तिहि गांव ।
चलु दादू उस ठौर की, मैं वलिहारी जांव ॥ ३४ ॥
दादू पसु पिरंनि के, वेही मंझि कलूव ।
वेठो आहे विच में, पाण जो महवूव ॥ ३५ ॥

---

(२७) नैनहुं = अंतः करण की अंतर वृत्ति से ॥
(३५) पसु = देख । पिरंनि = परमेश्वर । पेही = पीव। कलूव = हृदय॥
मंझि = बीच. पाण = आप. महवूव = प्रियतम, परमेश्वर ॥

नैनहु बाला निरषि करि, दादू घालै हाथ ।
तब हीं पावै रामधन, निकटि निरंजन नाथ ॥ ३६ ॥
नैनहु बिन सूझै नहीं, भूला कतहूं जाइ ।
दादू धन पावै नहीं, आया मूल गंवाइ ॥ ३७ ॥

॥ परचै लै सम्पन सहज ॥

जहां आत्म तहं राम है, सकल रह्या भरपूर ।
अंतरि गति ल्यौ लाइ रहु, दादू सेवग सूर ॥ ३८ ॥

॥ परचै जज्ञास उपदेश ॥

पहली लोचन दीजिये, पीछैं ब्रह्म दिषाइ ।
दादू सूझै सार सब, सुष में रहै समाइ ॥ ३९ ॥
आंधी कै आनंद हुवा, नैनहुं सूझन लाग ।
दरसन देषै पीव का, दादू मोटे भाग ॥ ४० ॥

॥ उभै असमाव ॥

दादू मिहीं महल बारीक है, गांउं न ठांउं न नांउं ।
तासौं मन लागा रहै, मैं बलिहारी जांउं ॥ ४१ ॥
दादू पेलण चाहै प्रेमरस, आलम अंगि लगाइ ।
दूजे को ठाहर नहीं, पुहपु न गंध समाइ ॥ ४२ ॥

---

(४२) जो संसार में लिप्त हो कर तूं आत्म रस चखना चाहै, तो यह संभव नहीं, क्योंकि तेरे अंतःकरण में दो के लिये गुंजायश नहीं है, उस में दो नहीं समा सके, जैसे पुष्प में दूसरी बास नहीं समाती ॥

नाहीं ह्वै करि नांउं ले, कुछ न कहाई रे ।
साहिबजी की सेज पर, दादू जाई रे ॥ ४३ ॥
जहां राम तहं मैं नहीं, मैं तहं नाहीं राम (२३–५५)
दादू महल बारीक है, द्वै को नाहीं ठाम ॥ ४४ ॥
मैं नांहीं तहं मैं गया, एकै दूसर नांहि (२३–५४)
नांही कौं ठाहर घणी, दादू निज घर मांहि ॥ ४५ ॥
मैं नांहीं तहं मैं गया, आगे एक अलाव् ।
दादू ऐसी बंदिगी, दूजा नांही आव् ॥ ४६ ॥
दादू आपा जब लगै, तब लग दूजा होइ ।
जब यहु आपा मिटि गया, तब दूजा नाहीं कोइ ॥४७॥

---

(४३) अहंकार मनादि का अस्तित्व त्यागि कर योगाभ्यास करो और अपने मानापमान पर कुछ न कहो, केवल परमात्मा ही में मग्न रहो ॥

(४४) मैं शब्द अहंकार का वाचक है । साखी का तात्पर्य यह है कि जिसने परमात्मा में दृष्टि लगाई है उस में ममता अहंकार नहीं रहता, जिस में अहंभाव् बना है सो परमात्मा को नहीं पहुंचा ॥ यह महल (अंतःकरण) बारीक है, इस में दो के लिये स्थान नहीं है ॥

(४५) "मैं नांहीं" अर्थात् ममता भाव् जिस में नहीं है तिस को मैं प्राप्त हुआ, सो एक अद्वितीय है दूसरा नहीं, प्रपंच जिस में वास्तव् से नहीं है किंतु रज्जु सर्प की तरह कल्पित रूप है। निज स्वरूप (ब्रम्ह) में "नांहीं" (अहंता ममता भाव् से रहित) को ठाहर (जगह) बहुत है, जिस के विपरीत "दूजे को ठाहर नहीं" अर्थात् द्वैतभाव को ठाहर नहीं है जैसा ४२ वीं साखी में कहा है ॥

(४६) अलाव्=अल्लाः परमात्मा ॥ आव्=आना ।

दादू मैं नांहीं तब एक है, मैं आई तब दोइ ।
मैं तैं पड़दा मिटि गया, तब ज्यूं था त्यूंही होइ ॥४८॥
दादू है कों भै घणां, नांहीं कों कुछ नांहि (२३–५३)
दादू नांहीं होइ रहु, अपणे साहिब मांहि ॥ ४९ ॥

॥ परचै ॥

दादू तीनि सुंनि आकार की, चौथी निर्गुण नांव ।
सहज सुंनि में रमि रह्या, जहां तहां सब ठांव ॥५०॥

---

(४९) "है" शब्द का अहंता ममता से तात्पर्य है और "नांहीं" का अहंता ममता के अभाव से, देखो सजीवन के अंग की ५ वीं साखी ॥

(५०) इस साखी को ५३ वीं और ५६ वीं साखियों के साथ पढ़ना चाहिये, जुदी २ पुस्तकों वा स्थानों में "सुंनि" शब्द के जुदे २ रूप दादूजी की वाणी के नकल करने वालों (लेखकों) ने दिये हैं, कहीं सुनि, कहीं सुंनि, कहीं सुन्य, कहीं स्नुंनि मिलता है। यह सब रूप संस्कृत के शून्य शब्द के अपभ्रंस हैं। सुंनि शब्द का अर्थ शांत निर्वाण पद है, जैसा कि महात्मा सुंदरदासजी के निम्न लिखित वाक्यों से स्पष्ट है:—

" गुर के प्रसाद सब जोग की जुगति जानैं ।
गुर के प्रसाद सुनि में समाधि लाइये " (ज्ञान समुद्र १२)

अथवा सुंनि शब्द का अर्थ लयलीन अवस्था वा समाधी भी बनता है ॥ दयालजी इन साखियों में तीन अवस्थाओं और तीन शरीरों को बताकर उनसे परे परमतत्व परमात्मा को दिखाते हैं। इसी भाव को लेकर दयालजी कहते हैं कि तीन सुंनि (समाधी) आकार की हैं और चौथी निर्गुण शुद्ध ब्रम्ह रूप है ॥

(१) प्रथम "काया सुंनि"—स्थूल शरीर का लय होना। स्थूल शरीर जाग्रत अवस्था में प्रतीत होता है और स्वप्नावस्था में उसका लय होता है ॥

(२) आतम सुंनि—यहां आत्म शब्द से सूक्ष्म शरीर का ग्रहण है।

पांच तत्त के पांच हैं, आठ तत्त के आठ।
आठ तत्त का एक है, तहां निरंजन हाट ॥ ५१ ॥
जहं मन माया ब्रह्म था, गुण इंद्री आकार।
तहं मन विरचै सबनि थें, रचि रहु सिरजनहार ॥ ५२॥
काया सुंनि पंचका वासा, आतम सुंनि प्राण प्रकासा।
परम सुंनि ब्रह्मसौं मेला, आगैं दादू आप अकेला ॥५३॥
दादू जहांथें सब ऊपजे, चंद सूर आकास।
पानी पवन पावक किये, धरती का परकास ॥ ५४ ॥
काल करम जिव ऊपजे, माया मन घट सास।
तहं रहिता रमिता राम है, सहज सुंनि सब पास॥५५॥
सहज सुंनि सब ठौर है, सब घट सबही मांहि।
तहां निरंजन रमि रह्या, कोइ गुण व्यापै नांहि ॥ ५६ ॥

ाम शरीर स्वप्नावस्था में भतीत होता है और सुषुप्ति में अथवा समाधि का- में उस का लय होता है।

(३) परम सुंनि–तुरिया अवस्था—समाधि की परिपक्वावस्था. जि- में जीव ब्रम्ह का अनुभव करता है।

(४) सहज सुंनि, ब्रम्ह सुंनि–तुरियातीत, जिस में जोगी ब्रम्ह में लीन होकर ब्रम्हाकार ही हो जाता है। वहां द्वितीय भाव नहीं रहता, प ही आप निर्वाणरूप रहता है ॥ देखो साखी १३० वीं इसी अंगकी ॥
(५४) "जहां" शब्द अकेले परमात्मा की तरफ है, अर्थात् उसी परमात्मा सब सृष्टि उत्पन्न होती है ॥

(५५) काल और कर्म कर के जीव उपजे हैं, तैसे ही माया मन प्राण ीरादि। इन सर्व में परमात्मा सहजभाव से व्यापक रमता है ॥

दादू तिस सरवर के तीर, सो हंसा मोती चुणें ।
पीवें नीझर नीर, सो है हंसा सो सुणें ॥ ५७ ॥
दादू तिस सरवर के तीर, जप तप संजम कीजिये ।
तहं मनमुष सिरजनहार, प्रेमपिलावै पीजिये ॥ ५८ ॥
दादू तिस सरवर के तीर, संगी सबै सुहावणें ।
तहां बिन कर बाजै बेन, जिभ्याहीणे गावणें ॥ ५९ ॥
दादू तिस सरवर के तीर, चरण कवल चित लाइया ।
तहं आदि निरंजन पीव, भाग हमारे आइया ॥ ६० ॥
दादू सहज सरोवर आतमा, हंसा करें कलोल ।
सुष सागर सू भर भरया, मुक्ताहल मन मोल ॥ ६१ ॥
दादू हरि सरवर पूरण सबै, जित तित पाणी पीव ।
जहां तहां जल अंचतां, गई तृषा सुष जीव ॥ ६२ ॥
सुष सागर सूभर भरया, उज्जल निर्मल नीर ।
प्यास बिना पीवे नहीं, दादू सागर तीर ॥ ६३ ॥
सुन्य सरोवर हंस मन, मोती आप अनंत ।
दादू चुगि चुगि चंच भरि, यों जन जीवें संत ॥ ६४ ॥

---

(५७) उस सहज सुन्यरूपी सरोवर के किनारे, हंसरूपी महात्मा मोती चुनते हैं, अर्थात् आत्मानंद का अनुभव करते हैं, और अनहद से झै का अमृत रूपी दृष्टी जल पान करते हैं और अनहद शब्द "सो है हंसा" में मग्न हो जाते हैं ।

(५९) "संगी" यहां मन इंद्रिय बुद्धयादि हैं सो सब इस अवस्था को प्राप्त हो के सुहावने होजाते हैं, अर्थात् विषय वासना छोड़ करके परम तत्त्व के ध्यान में ही सहकारी होते हैं ॥

सुन्य सरोव़र मीन मन, नीर निरंजन देव़ ।
दादू यहु रस विलसिये, ऐसा अलप अभेव़ ॥ ६५ ॥
सुन्य सरोव़र मन भवर, तहां कवल करतार ।
दादू परिमल पीजिये, सनमुप सिरजनहार ॥ ६६ ॥
सुन्य सरोव़र सहज का, तहं मर जीवा मन ।
दादू चणि चुणि लेइगा, भीतरि राम रतन ॥ ६७ ॥
दादू मंझि सरोव़र विमल जल, हंसा केलि करांहि ।
मुकताहल मुकता चुगें, तिहिं हंसा डर नांहि ॥ ६८ ॥
अपंड सरोवर अथग जल, हंसा सरव़र न्हांहि ।
निर्भय पाया आप घर, इब उड़ि अनत न जांहि ॥ ६९ ॥
दादू दरिया प्रेम का, तामें झूलें दोइ ।
इक आतम परआतमा, एकमेक रस होइ ॥ ७० ॥
दादू हिए दरियाव़, माणिक मंझेई ।
टुबी डेई पाण में, डिठो हंझेई ॥ ७१ ॥
परआतम सौं आतमा, ज्यूं हंस सरोवर मांहि ।
हिलिमिलि पेलें पीव़ सौं, दादू दूसर नांहि ॥ ७२ ॥
दादू सरव़र सहज का, तामें प्रेम तरंग ।
तहं मन झूलें आतमा, अपणे सांई संग ॥ ७३ ॥
दादू देपौं निज पीव़ कौं, दूसर देपौं नांहि ।
सबै दिसा सौं सोधिकरि, पाया घट ही मांहि ॥ ७४ ॥

(६८) मुकताहल = मोती । मुकता = जीवन मुक्त ॥

(७१) इस अंतर्मुख वृत्ति रूपी दरिया ही में मानिक (पर्मेश्वर) है। अपने अंदर ही गोता मारो, तो परमात्मा का दर्शन पावोगे ॥

दादू देषों निज पीव़कों, और न देषों कोइ ।
पूरा देषों पीव़कों, वाहरि भीतरि सोइ ॥ ७५ ॥
दादू देषों निज पीव़ कों, देषत ही दुष जाइ ।
हूं तो देषों पीव़ कों, सब में रह्या समाइ ॥ ७६ ॥
दादू देषों निज पीव़ कों, सोई देषण जोग ।
परगट देषों पीव़ कों, कहां बतावें लोग ॥ ७७ ॥

॥ परचै जग्यास उपदेश ॥

दादू देषु दयाल कों, सकल रह्या भरपूरि ।
रोम रोम में रमि रह्या, तूं जिनि जाणें दूरि ॥७८॥
दादू देषु दयाल कों, वाहरि भीतरि सोइ ।
सब दिसि देषों पीव़ कों, दूसर नांहीं कोइ ॥ ७९ ॥
दादू देषु दयाल कों, सनमुष सांई सार ।
जीधरि देषों नैन भरि, तीधरि सिरजनहार ॥ ८० ॥
दादू देषु दयाल कों, रोकि रह्या सब ठौर ।
घटि घटि मेरा सांईया, तूं जिनि जाणें और ॥ ८१ ॥

॥ उभै असमाव़ ॥

तन मन नांहीं में नहीं, नहिं माया नहिं जीव ।
दादू एकै देषिये, दह दिसि मेरा पीव़ ॥ ८२ ॥

॥ पति पहचान ॥

दादू पाणी मांहै पैसि करि, देषै दिष्टि उघारि ।
जलाव्यंब सब भरि रह्या, ऐसा ब्रह्म विचारि ॥ ८३ ॥

॥ परचै पतिव्रत ॥

सदा लीन आनंद में, सहज रूप सब ठौर ।
दादू देषै एक कौं, दूजा नांही और ॥ ८४ ॥
दादू जहं तहं साथी संग हैं, मेरे सदा अनंद ।
नैन बैन हिरदै रहैं, पूरण परिमानंद ॥ ८५ ॥
जागत जगपति देषिये, पूरण परिमानंद ।
सोवत भी सांई मिलै, दादू अति आनंद ॥ ८६ ॥
दह दिसि दीपक तेज के, बिन बाती बिन तेल ।
चहुं दिसि सूरज देषिये, दादू अदभुत षेल ॥ ८७ ॥
सूरज कोटि प्रकास हैं, रोम रोम की लार ।
दादू जोति जगदीस की, अंत न आवै पार ॥ ८८ ॥
ज्यौं रवि एक अकास है, ऐसे सकल भरपूर ।
दादू तेज अनंत है, अल्लः आली नूर ॥ ८९ ॥
सूरज नहि तहं सूरिज देषे, चंद नहीं तहं चंदा ।
तारे नहि तहं झिलिमिलि देष्या, दादू अति आनंदा ॥९०॥
बादल नहि तहं बरिषत देष्या, सबद नहीं गरजंदा ।
बीज नहीं तहं चमकत देष्या, दादू परिमानंदा ॥ ९१॥

॥ आत्मबल्ली तरु ॥

दादू जोति चमकै झिलिमिलै, तेज पुंज परकास ।
अमृत झरै रस पीजिये. अमर बेलि आकास ॥ ९२ ॥

॥ परचै ॥

दादू अविनासी अंग तेज का. ऐसा तत्त अनूप ।
सो हम देष्या नैन भरि. सुंदर सहज सरूप ॥ ९३ ॥

९१ । बीज = बिजली ।

परम तेज परगट भया, तहं मन रह्या समाइ ।
दादू पेलै पीव सौं, नाहिं आवै नाहिं जाइ ॥ ६४ ॥
निराधार निज देषिये, नैनहुं लागा वंद ।
तहं मन पेलै पीवसौं, दादू सदा अनंद ॥ ६५ ॥

॥ आत्मवर्णातरू ॥

अैसा एक अनूप फल, बीज वाकुला नांहि ।
मीठा निर्मल एक रस, दादू नैनहुं मांहि ॥ ६६ ॥

॥ परचै ॥

हीरे हीरे तेज के, सो निरषे त्रिय लोइ ।
कोइ इक देषै संतजन, और न देषै कोइ ॥ ६७ ॥
नैन हमारे नूर मां, तहां रहे ल्यौ लाइ ।
दादू उस दीदार कौं, निसदिन निरषत जाइ ॥६८॥
नैनहुं आगें देषिये, आत्म अंतरि सोइ ।
तेज पुंज सब भरि रह्या, झिलिमिलि झिलिमिलि होइ ॥६९॥
अनहद वाजे वाजिये. अमरा पुरी निवास ।
जोति सरूपी जगमगै, कोइ निरषै निज दास ॥ १०० ॥
परम तेज तहं मन रहै, परम नूर निज देषै ।
परम जोति तहं आतम पेलै, दादू जीवन लेषै ॥ १०१ ॥
दादू जरै सु जोति सरूप है, जरै सु तेज अनंत ।
जरै सु झिलमिल नूर है, जरै सु पुंज रहंत ॥ १०२ ॥

---

(६७) त्रिय लोय=तीसरे ज्ञानरूपी लोचन से ॥
(१०२) जरै=प्रकाशमान ।

॥ परचै पति पहचान ॥

दादू अलप अलाह का, कहु कैसा है नूर ? ।
दादू वेहद, हद नहीं, सकल रह्या भरपूर ॥ १०३ ॥
वारपार नहिं नूरका, दादू तेज अनंत । (२०—२७)
कीमति नहिं करतार की, ऐसा है भगवंत ॥ १०४ ॥
निरसंध नूर अपार है, तेज पुंज सब मांहि । (२०—२६)
दादू जोति अनंत है, आगौ पीछौ नांहि ॥ १०५ ॥
षंड षंड निज नां भया, इकलस एकै नूर । (२०—२५)
ज्यूंथा त्यूंहीं तेज है, जोति रही भरपूर ॥ १०६ ॥
परम तेज प्रकास है, परम नूर निवास । (२०—२८)
परम जोति आनंद में, हंसा दादू दास ॥ १०७ ॥
नूर सरीषा नूर है, तेज सरीषा तेज ।
जोति सरीषी जोति है, दादू षेलै सेज ॥ १०८ ॥
तेज पुंज की सुंदरी, तेज पुंज का कंत ।
तेज पुंज की सेज परि, दादू बन्या बसंत ॥ १०९ ॥
पुहप प्रेम बरिषै सदा, हरिजन षेलैं फाग ।
असा कौतिग देषिये, दादू मोटे भाग ॥ ११० ॥

॥ परचै रस ॥

अमृत धारा देषिये, पार ब्रह्म बरिषंत ।
तेज पुंज झिलमिल झरै, को साधू जन पीवंत ॥ १११ ॥
रसही में रस बरषिहै, धारा कोटि अनंत ।
तहं मन निहचल राषिये, दादू सदा बसंत ॥ ११२ ॥

घन वादल विन वरषि है, नीझर निर्मल धार ।
दादू भीजै आतमा, को साधू पीवनहार ॥ ११३ ॥
अैसा अचिरज देषिया, विन वादल वरिषै मेह ।
तहं चित चातृग ह्वै रह्या, दादू अधिक सनेह ॥११४॥
महारस मीठा पीजिये, अविगत अलप अनंत ।
दादू निर्मल देषिये, सहजैं सदा झरंत ॥ ११५ ॥

॥ करता कामधेन ॥

कामधेन दुहि पीजिये, अकल अनूपम एक ।
दादू पीवै प्रेम सौं, निर्मल धार अनेक ॥ ११६ ॥
कामधेन दुहि पीजिये, ताकूं लपै न कोइ ।
दादू पीवै प्यास सौं, महारस मीठा सोइ ॥ ११७ ॥
कामधेन दुहि पीजिये, अलप रूप आनंद ।
दादू पीवै हेत सौं, सुप मन लागा वंद ॥ ११८ ॥
कामधेन दुहि पीजिये, अगम अगोचर जाइ ।
दादू पीवै प्रीति सूं, तेज पुंज की गाइ ॥ ११९ ॥
कामधेन करतार है, अमृत सरवै सोइ ।
दादू वछरा दूध कौं, पीवै तौ सुप होइ ॥ १२० ॥
अैसी एकै गाइ है, दूझै वारह मास ।
सो सदा हमारे संग है, दादू आतम पास ॥ १२१ ॥

॥ परचै आतम बृक्षी तरू ॥

तरवर साषा मूल बिन, धरती पर नांहीं ।
अबिचल अमर अनंत फल, सो दादू पांहीं ॥ १२२ ॥
तरवर साषा मूल बिन, धर अंबर न्यारा ।
अविनासी आनंद फल, दादू का प्यारा ॥ १२३ ॥
तरवर साषा मूल बिन, रज बीरज रहिता ।
अजर अमर अतीत फल, सो दादू गहिता ॥ १२४ ॥
तरवर साषा मूल बिन, उतपति परलै नांहि ।
रहिता रमिता रामफल, दादू नैनहुं मांहि ॥ १२५ ॥
प्राण तरवर सुरति जड़, ब्रह्म भोमि ता मांहि ।
रस पीवै फूलै फलै, दादू सूकै नांहि ॥ १२६ ॥

॥ जज्ञास उपदेस प्रस्नोत्तरी ॥

ब्रह्म सुंनि तहं क्या रहै, आतम के अस्थान ? ।
काया अस्थलि क्या बसै ?, सतगुर कहै सुजान ॥ १२७ ॥
काया के अस्थालि रहैं, मन राजा पंच प्रधान ।
पचीस प्रकीरति तीनि गुण, आपा गर्ब गुमान ॥ १२८ ॥

---

(१२२) आत्मरूपी वृक्ष शाखा और जड़ रहित है, (साधारण वृक्षों की तरह वह) धरती पर नहीं है। उसका फल अविचल अमर अनन्त है, सो दयाल जी कहते हैं खाइये, अर्थात् हम को खाना चाहिये ॥

(१२६) प्राण एक वृक्ष है, सुरति उस की जड़ है, सो जड़ ब्रम्हरूपी भूमि में प्रवेश कर के तदाकार वृत्ति वाली हो, तहां ऐसे एकाग्र सुरति काल में जो अनहद रस मिलता है उस के पीने से जीव फूलता फलता है और सूखता नहीं ॥

आतम के अस्थान हैं, ज्ञान ध्यान विसवास।
सहज सील संतोष सत, भाव भगति निधि पास॥ १२९॥

ब्रह्म सुंनि तहं ब्रह्म है, निरंजन निराकार।
नूर तेज तहं जोति है, दादू देषण हार ॥ १३० ॥

॥ प्रश्न ॥

मौजूद पवर माबूद पवर, अरवाह पवर औजूद।
मुकाम चे चीज़ अस्त, दादनी सजूद ॥ १३१ ॥

॥ उत्तर ॥

औजूद मुकाम अस्त, नफ्स गालिब, किब्र काविज़, गुस्सा मनीयत।
दुई दरोग़ हिर्स हुज्जत, नाम नेकी नेस्त ॥ १३२ ॥

अरवाह मुकाम अस्त, इश्क इबादत बंदगी यगाना इपलास।
मेहर मोहब्बत पैर पूवी, नाम नेकी पास ॥ १३३ ॥

---

(१३०) देखो टिप्पण साखी ५० वीं पर इसी अंग में ॥

(१३१) मुसलमानों में चार मुकामें (मंजिलें) मानते हैं, अर्थात् शरीअत तरीक़त हक़ीक़त और मारफ़त। इस प्रश्न में यही पूछा गया है कि इन चार मंज़िलों वालों का मुकाम क्या है जिस को सिजदा किया जाय ॥

(१३२) शरीअत में वे लोग हैं जो अपने स्थूल देह को ही अंत मुकाम मानते हैं, मन जिनका ग़ालिब (अजित) किब्र (अहंकार) से दबा, क्रोध, आपा, द्वैतभाव, झूठ, ईर्षा, हठ में रत रहता है और ईश्वर का नाम जिन के मन में नहीं आता ॥

(१३३) तरीक़त में वे लोग हैं जो आत्मा को मुख्य मुकाम मानते हैं,

मौजूद पवर माबूद पवर, अरवाह पवर वजूद ।
मक़ाम चिः चीज़ हस्त, दादनी सजूद ॥ १३१ ॥
मौजूद मक़ाम हस्त ॥
नफ़्स ग़ालिब, किब्र काबिज़, गुस्सः मनी एस्त ॥
दुई दरोग़ हिर्स हुज्जत, नाम नेकी नेस्त ॥ १३२ ॥
अरवाह मक़ाम अस्त ॥
इश्क इबादत बंदगी यगानगी इख़लास ।
मेहर मुहब्बत पैर पूवी, नाम नेकी पास ॥ १३३ ॥
माबूद मक़ामे हस्त ॥
यके नूर पूवे पूवां दीदनी हैरां ।
अजब चीज़ पुरदनी. पियालए मस्तां ॥ १३४ ॥
हैवान आलम गुमराह ग़ाफ़िल अव्वल शरीयत पंद ।
हलाल हराम नेकी वदी दर्स दानिशमंद ॥ १३५ ॥

(१३१–३३) यह तीन साखियां पिछले पृष्ठ पर छप चुकी हैं, किंतु फ़ारसी शब्दों में कुछ चूक रहगई थी; इसलिये उन को दूसरी बार यहां शुद्ध कर के छापा है ॥

(१३३) "तरीक़त" में वे लोग हैं जो आत्मा को मुख्य मक़ाम मानते हैं, जो प्रेम, पूजा, सेवा, एकही परमात्मा में निश्चय, दया निर्वैरता भलाई और नेकी से विचरते हैं ॥

(१३४) "हक़ीक़त" में वे हैं जो परमात्मा को ही मुख्य मक़ाम मानते हैं, जो एक तेजरूपी सूर्यों में सूर्य है, जिस को देखकर आंखें हैरान होती हैं, वह मस्तों के पियाले का अजब अमृत है ॥

(१३५) संसार पशुवत भटक रहा है और अचेत है, पहले शरीयत के उपदेश। हलाल हराम नेकी वदी उपदेश बुद्धिमान के ॥

कुल फारिग़ तर्के दुनियां हररोज़ हरदम याद ।
अल्लःआली इश्क आशिक दरूने फरियाद ॥ १३६ ॥
आव आतश अर्श कुर्सी, सूरते सुवहां ।
शरर सिफ़त कर्दःबूदन्द, मारफ़त मक़ां ॥ १३७ ॥
हक़ हासिल नूर दीदम, क़रारे मक़सूद ।
दीदारे यार अरवाहे आदम मौजूदे मौजूद ॥ १३८ ॥
चहार मंज़िल वयां गुफ़तम, दस्त करदः बूद ।
पीरां मुरीदां पवर करदः जां राहे मावूद ॥ १३९ ॥
पहली प्राण पसू नर कीजै, साच झूठ संसार ।
नीति अनीति भला बुरा सुभ असुभ निर्धार ॥ १४० ॥

---

(१३६) मारफ़त में वो हैं जो सब से निराले, दुनिया को छोड़ बैठे हैं, प्रतिदिन प्रतिक्षण परमात्मा की याद में रहते हैं, वहां तीन हैं, अर्थात् (१) अल्लाः आली (परमात्मा), (२) प्रेम (३) प्रेमी, जो अपने अंदर (हृदय में) ही फरियाद (उपासना याचना) करता है बाहर किसी से कुछ नहींकरता॥

(१३७) पानी, अग्नि, आकाश, पृथ्वी यह चार परमेश्वर की मूरतें हैं। चिनगारी की तरह वे मारफ़त मक़ाम में स्थित हैं॥

(१३८) हक़ हासिल=अंत में प्रकाश उसका देखा, जो हमारा वांछित तत्व था। वह प्यारे का दर्शन, जीवात्मा अस्तित्व का अस्तित्व ॥

(१३९) चार मंजिलें मैं ने कह सुनाई, ॥ पीरों ने शागिर्दों को मावूद (परमात्मा) की राह बताई ॥

(१४०-४४) यह पांच साखियां ऊपर आई हुई फारसी की साखी १३२-३६ का सारार्थ बतलाती है ॥

सब तजि देषि, विचारि करि, मेरा नाहीं कोइ ।
अनदिन राता राम सौं, भाव भगति रत होइ ॥ १४१ ॥
अंबर धरती सूर ससि, सांई सबले लावै अंग ।
जसु कीरति करुणा करै, तन मन लागा रंग ॥ १४२ ॥
परम तेज तहं मैं गया, नैनहुं देष्या आइ ।
सुष संतोष पाया घणां, जोतिहिं जोति समाइ ॥१४३॥
अरथ चारि असथान का, गुर सिष कह्या समझाइ ।
मारग सिरजनहार का, भाग बड़े सो जाइ, ॥१४४ ॥
अरवाह सिज्दः कुनद, वजूद रा चिः कार । (३–७०)
दादू नूर दादनी, आशिकां दीदार ॥ १४५ ॥
आशिकां रा क़ुब्ज़ः कर्दः, दिलो जां रफ्तंद (३–६६)
अल्लाः आली नूर दीदम, दिले दादू बंद ॥ १४६ ॥
आशिकां मस्ताने आलम, पुरदनी दीदार ।
चंद रह चिः कार दादू, यारे मा दिलदार॥ १४७ ॥

॥ अथ साक्षात्कार धारणा ॥

दादू दया दयाल की, सो क्यों छानी होइ ।
प्रेम पुलक मुलकत रहै, सदा सुहागनि सोइ ॥१४८॥

---

(१४५) जीवात्मा शरीर को क्यों नमता है ? क्योंकि प्रेमियों की दृष्टि तेज दायिनी है ॥

(१४७) इसका अर्थ यह है:– प्रेमी जन जगत में मस्त रहते हैं, उन की खुराक परमेश्वर के दर्शन ही हैं, दुनियां के तुच्छ पदार्थों (धन दौलत) से कुछ काम नहीं, हमारा मित्र (परमेश्वर) दिलदार है ।

(१४८) प्रेम पुलक मुलकत रहै = प्रेम करके हर्षित मुसकराती रहे ।

दादू विगसि विगसि दर्सन करे, पुलकि पुलकि रसपान ।
मगन गलित माता रहै, अरस परस मिलि प्रान ॥१४६॥
दादू देषि देषि सुमिरण करै, देषि देषि लै लीन ।
देषि देषि तन मन विलै, देषि देषि चित दीन ॥१५०॥
दादू निरषि निरषि निज नांव ले, निरषि निरषि रस पीव ।
निरषि निरषि पिव कों मिलै, निरषि निरषि सुष जीव ॥१५१॥

॥ आत्म सुमिरण ॥

तन सौं सुमिरण सब करैं, आतम सुमिरण एक ।
आतम आगैं एक रस, दादू बड़ा बमेक ॥ १५२ ॥
दादू माटी के मुकाम का, सब को जाणैं जाप ।
एक आध अरवाह का, बिरला आपैं आप ॥ १५३ ॥
दादू जबलग असथल देह का, तब लग सब व्यापै ।
निर्भै असथल आतमा, आगैं रस आपै ॥ १५४ ॥
जब नांहीं सुरति सरीर की, विसरै सब संसार ।
आतम न जाणै आप कौं, तब एक रह्या निर्धार ॥१५५॥

---

(१५२) "तन सौं सुमिरण"=मुख से राम, कर से माला और विषयों में भटकता मन । "आत्म सुमिरण" = मन बुद्धि को एकाग्र करके आत्मा में लगाना ।

(१५३) "माटी के मुकाम" = स्थूल शरीर, तिस के निमित्त जाप । "आपै आप" = अपने आप को ब्रह्मरूप जानना । अर्थात् "सोऽहमहंसः" जाप ॥

(१५४) इस साखी का तात्पर्य, १५५ वीं साखी से खुलता है ।

तनसों सुमिरण कीजिये, जब लग तन नीका ।
आतम सुमिरण उपजै, तब लागै फीका ।
आगैं आपैं आप है, तहां क्या जीवका ॥ १५६ ॥
॥ पर्चे ॥
चर्म दृष्टी देषै बहुत, आतम दृष्टी एक ।
ब्रह्मदृष्टि परचै भया, तब दादू बैठा देष ॥ १५७ ॥
येई नैंनां देहके, येई आतम होइ ।
येई नैंनां ब्रह्म के, दादू पलटे दोइ ॥ १५८ ॥

---

(१५६) "जबलग तन नीका" = जबतक तन में आत्म अभ्यास है अथवा शरीर के पालन पोषण में प्रेम है या सौंदर्य बुद्धि है ।

"तब लागै फीका" = तब शरीर फीका प्रतीत होगा ।

"तहां क्या जीव का" = तहां जीव ब्रम्ह से भिन्न नहीं ।

(१५७–१५८) इन साखियों में तीन प्रकार की दृष्टि कही हैं, अर्थात्–

(१) चर्मदृष्टि जिमसे संसार को नानात्व भाव से देखते हैं।

(२) आत्मदृष्टि, जिससे जगत् का अधिष्ठान रूप एक ही आत्मा प्रतीत होता है ।

(३) ब्रम्हदृष्टि, जिससे वही आत्मा ब्रम्ह रूपता से भान होता है ।

दादूजी कहते हैं कि तीसरे निश्चय में स्थित रहना योग्य है, यथा—

चर्मदृष्टि सब जगत् है, आत्मदृष्टि दास ।
ब्रम्हदृष्टि जीवन मुकत, भई वासना नास ॥

अन्य—

लुब्धाः धनमयं विश्वं, कामुकाः कामनीमयं ।
नारायणमयं धीराः, पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषा ॥

घट परचै सब घट लखै, प्राण परचै प्राण।
ब्रह्म परचै पाइये, दादू है हैरान ॥ १५९ ॥

॥ सुषिम सँज अरचा बंदगी ॥

दादू जल पाषाण ज्यूं, सेवै सब संसार।
दादू पाणी लूण ज्यूं, कोइ विरला पूजणहार ॥ १६० ॥

अलप नांव अंतरि कहै, सब घटि हरि हरि होइ।
दादू पाणी लूण ज्यूं, नांव कहीजे सोइ ॥ १६१ ॥

छाडै सुरति सरीर कूं, तेज पुंज में आइ। (७ – ३५)
दादू ऐसें मिलि रहै, ज्यूं जल जलहि समाइ ॥ १६२ ॥

सुरति रूप सरीर का, पीव के परसें होइ।
दादू तन मन एक रस, सुमिरण कहिये सोइ ॥ १६३ ॥

राम कहत रामहि रह्या, आप विसर्जन होइ।
मन पवना पंचों विलै, दादू सुमिरण सोइ ॥ १६४ ॥

जहं आतमराम संभालिये, तहं दूजा नांहीं और।
देही आगें अगम है, दादू सूषिम ठौर ॥ १६५ ॥

---

(१५९) अपने घट (शरीर) के परिचय (निश्चय) से अन्य शरीरों को भी वैसा ही जानै, तैसे ही सब लिंग शरीरों को समान जानै, ब्रह्म से अभेद रूप साक्षात्कार करके सर्व को ब्रह्म ही रूप जानै, ऐसे अद्भुत ज्ञान को पाय कर पूर्वावस्था के स्मर्ण से दयालजी आश्चर्य करते हैं ॥

(१६३) "सुरति रूप सरीर का," इस वाक्य का तात्पर्य यह है कि जब परमात्मा का स्पर्श रूप साक्षात्कार होजाता है तब शरीर का परिणाम केवल सुरति ही रूप रह जाता है अर्थात् उस समय केवल ब्रह्माकार सुरति ही होती है, शरीरादि कुछ नहीं प्रतीत होते।

परआतम सों आतमा, ज्यों पाणी में लूंण।
दादू तन मन एक रस, तब दूजा कहिये कूंण ॥ १६६ ॥
तन मन विलै यों कीजिये, ज्यों पाणी में लूंण।
जीव ब्रह्म एकै भया, तब दूजा कहिये कूंण ॥ १६७ ॥
तन मन विलै यों कीजिये, ज्यों घृत लागे घाम।
आत्म कवल तहं बंदगी, जहं दादू परगट राम॥१६८॥

नषसिष सुमिरण ॥

कोमल कवल तहं पैसि करि, जहां न देषै कोइ।
मन थिर सुमिरण कीजिये, तब दादू दर्सन होइ॥१६९॥
नषसिष सब सुमिरण करै, औसा कहिये जाप।
अंतरि विगसै आतमा, तब दादू प्रगटै आप ॥ १७० ॥
अंतरि गति हरि हरि करै, तब मुष की हाजति नांहि।
सहजें धुनि लागी रहै, दादू मनहीं मांहि ॥ १७१ ॥
दादू सहजें सुमिरण होत है, रोम रोम रमि राम।
चित्त चहूंट्या चित्त सौं, यों लीजे हरि नाम ॥ १७२ ॥
दादू सुमिरण सहज का, दीन्हा आप अनंत।
अरस परस उस एक सौं, षेलैं सदा वसंत ॥ १७३ ॥
दादू सबद अनाहद हम सुन्या, नषसिष सकल सरीर।
सब घटि हरि हरि होत है, सहजें ही मन थीर ॥१७४॥
हुण दिल लगा हिकसां, मे कूं ये हा ताति।
दादू कंमि पुदाय दे, वैठाडी हैं राति ॥ १७५ ॥

(१६९) कोमल कवल=हृदय स्थान।

दादू माला सब आकार की. कोइ साधू सुमिरे राम ।
करणीगर तें क्या किया. असा तेरा नाम ॥ १७६ ॥
सब घट मुप रसना करे. रटे राम का नांव ।
दादू पीवें राम रस. अगम अगोचर ठांव ॥ १७७ ॥
दादू मन चित अस्थिर कीजिये. तो नपसिप सुमिरण होइ ।
श्रवण नेत्र मुप नासिका, पंचों पूरे सोइ ॥ १७८ ॥

॥ साध महिमा ॥

श (आसण राम का. तहां वसे भगवान ।
दादू दून्यूं परसपर. हरि आतम का थान ॥ १७९ ॥
राम जपे रुचि साध को, साध जपे रुचि राम ।
दादू दून्यूं एक टग, यहु आरंभ यहु काम ॥ १८० ॥
जहां राम तहं संत जन. जहं साधू तहं राम ।
दादू दून्यूं एकठे. अरस परस विश्राम ॥ १८१॥

(१७६) सब ब्रम्हांड को एक माला मानों. घट पटादि आकारों को गुरिया (मणके) रूप्मी और परमेश्वर रूपी धागा मानों । हे करतार ! यह अद्भुत माया प्रपंच तूने क्या रचा है । इस प्रकार चिंतवन रूप स्मरण है सो कोई साधुजन करता है ॥

माया घट मणियें मध्य, सुमिरे सांई साध ।
रजब तुच्छ तसबी गही, माला मिली अगाध ॥
पंच पचीसों त्रिगुन मन, ये मणियां जिव हेरि ।
रजब हित के हाथ सों, आठों पहर सुफेर ॥

(१७७) शरीर के प्रत्येक छिद्र को मुख और जिभ्या रूप करें, अर्थात् छिद्र छिद्र से राम नाम का उच्चारण करें ॥

(१८०) विरह के अंग की १४७ वीं साखी देखो ॥

दादू हरि साधू यों पाइये, अविगत के आराध ।
साधू संगति हरि मिलें, हरि संगति थें साध ॥ १८२ ॥
दादू राम नाम सौं मिलि रहै, मन के छाडि विकार।
तौ दिलही मांहे देषिये, दून्यूं का दीदार ॥ १८३ ॥
साध समाना राम में, राम रह्या भरपूरि ।
दादू दून्यूं एक रस, क्यों करि कीजे दूरि ॥ १८४ ॥
दादू सेवग सांई का भया, तब सेवग का सब कोइ ।
सेवग सांई कौं मिल्या, तब सांई सरीपा होइ ॥१८५॥

॥ सत्संग महिमा ॥

मिश्री मांहे मेलि करि, मोल बिकाना बंस ।
यों दादू महिंगा भया, पारब्रह्म मिलि हंस ॥ १८६ ॥
मीठे मांहि राषिये, सो काहे न मीठा होइ ।
दादू मीठा हाथि ले, रस पीवै सब कोइ ॥ १८७ ॥

॥ संगति कुसंगति ॥

मींठे सौं मीठा भया, पारे सौं पारा ।
दादू ऐसा जीव है, यहु रंग हमारा ॥ १८८ ॥

॥ साध महिमा माहात्म ॥

मींठे मींठे करि लिये, मीठा मांहे बाहि ।
दादू मीठा ह्वै रह्या मींठे मांहि समाइ ॥ १८९ ॥
राम विना किस काम का, नहिं कौड़ी का जीव ।
सांई सरीपा ह्वै गया, दादू परसें पीव ॥ १९०

॥ पारिष अपारिष ॥

हीरा कौडी ना लहे, मूरिष हाथि गंवार ।
पाया पारिष जोंहरी, दादू मोल अपार ॥ १६१ ॥

अंधे हीरा परपिया, कीया कौड़ी मोल ।
दादू साधू जोंहरी, हीरे मोल न तोल ॥ १६२ ॥

॥ साध महिमा माहात्म ॥

मीरां किया मेहर सौं, परदे थैं लापर्द ।
रापि लिया दीदार में, दादू भूला दर्द ॥ १६३ ॥

दादू नैन विन देपिवा, अंग विन पेपिवा,
रसन विन बोलिवा, ब्रह्म सेती ।
श्रवण विन सुणिवा, चरण विन चालिवा,
चित्त विन चित्यवा, सहज एती ॥ १६४ ॥

॥ पतिव्रत ॥

दादू देष्या एक मन, सो मन सवही मांहि ।
तिहि मनसौं मन मानिया, दूजा भावै नांहि ॥ १६५ ॥

॥ पुरप प्रकासी ॥

दादू जिहिं घटि दीपक रामका, तिहिं घटि तिमर न होइ।१५-८५
उस उजियारे जोति के, सब जग देषै सोइ ॥ १६६ ॥

॥ पतिव्रत ॥

दादू दिल अरवाह का, सो अपणा ईमान ।
सोई स्याबति रापिये, जहं देषै रहिमान ॥ १६७ ॥

(१६५) इस साखी में प्रथम तीन बार जो "मन" शब्द आया है तिस का अर्थ ब्रह्म है, चौथे "मन" शब्द का साधारण मन ही अर्थ है ॥ अथवा मन (चेतनता) सब में समान है ॥

(१६७) अरवाह (जीव) का दिल (मन) है सोई जीव का ईमान

अल्लः आप इमान है, दादू के दिल मांहि ।
सोई स्यावति राषिये, दूजा कोई नांहि ॥ १६८ ॥

॥ अध्यात्म ॥

प्राण पवन ज्यों पतला, काया करै कमाइ । (२५–६०)
दादू सब संसार में, क्यों ही गह्या न जाइ ॥ १६६ ॥

नूर तेज ज्यों जोति है, प्राण प्यंड यों होइ । (२५–६१)
दृष्टि मुष्टि आवै नहीं, साहिब के बसि सोइ ॥ २०० ॥

काया सूषिम करि मिलै, ऐसा कोई एक ।
दादू आतम ले मिलैं, ऐसे बहुत अनेक ॥ २०१ ॥

(कल्याण करनेवाला) है, उस (मन) को ऐसा सावित (सावधान) रखना चाहिये, जिस में वह रहमान (परमात्मा) ही को देखें ॥

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ भ० गीता अ० ५ श्लो० ६

(१६६–२००) चंपागम ने अपने दृष्टांतसंग्रह में इन साखियों के "प्राण पवन ज्यों पतला" तुक पर यह दृष्टांत दिया है:—

गुर दादू पे सिद्ध द्वै, आये लघु करि देह ।
उपदेसत भये तिन्ह को, कहा सिषाई एह ॥

अर्थात् दादूजी के पास दो सिद्ध जन लघु शरीर घर के आये तिन को यह दो साखियां दयालजी ने कहीं । इनका तात्पर्य यह है कि काया को ऐसा कमाय कि पवन के सदृश सूक्ष्म और दीपक की ज्योतिवत् प्रकाशमान हो, जो किसीप्रकार गह्या (पकड़ा) न जाय न देखने में आवै, तब सिद्धाई प्राप्त हो॥ दादूजी ने अपने शरीर की यह दशा अपने अंत समय से कुछ पूर्व अपने शिष्यों को दिखाई थी—यह संपूर्ण हाल स्वामी दादू दयाल के जीवन चरित्र में लिखा है ॥

(२०१) पूर्वोक्त प्रकार से काया को सूक्ष्म करके मिलनेवाला

॥ सुंदरि सुहाग ॥

आडा आतम तन धरे. आप रहे ता मांहि ।
आपण पेले आप सौं. जीवन सेती नांहि ॥ २०२ ॥

॥ अध्यात्म ॥

दादू अनभै थें आनंद भया, पाया निर्भय नांव ।
निहचल निर्मल निर्वाणपद. अगम अगोचर ठांव ॥२०३॥
दादू अनभै वाणी अगम कौं, ले गइ संगि लगाई ।
अगह गहै अकह कहै, अभेद भेद लहाइ ॥ २०४ ॥
जे कुछ वेद कुरांन थें. अगम अगोचर वात ।
सो अनभै साचा कहै, यहु दादू अकह कहात ॥२०५॥
दादू जब घटि अनभै ऊपजै, तब किया करम का नास ।
भै भ्रम भागे सबै, पूरण ब्रह्म प्रकास ॥ २०६ ॥
दादू अनभै काटे रोग कौं, अनहद उपजै आइ ।
सेभे का जल निर्मला, पीवै रुचि ल्यौ लाइ ॥ २०७ ॥
दादू वाणी ब्रह्मकी, अनभै घटि परकास । (२२–२६)
राम अकेला रहि गया, सबद निरंजन पास ॥ २०८ ॥

कोई विरला एक है, पर (काया के पतन पीछे) आत्मा (लिंग शरीर) को लेकर मिलनेवाले बहुत हैं ॥

(२०२) तन के सामने (आड़े) आत्मा को करै, अर्थात् तन को भूल-कर आत्मा ही में मन लगावै, और "आप रहै ता मांहि" उसी में सुरति लगाये रक्खै ॥ अपने अंतर आत्मा मे ही आप खेलै (रमण करै) अन्य जीवादिकों से मोह न करै ॥

जे कबहूं समझै आतमा, तौ दिढ़ गहि राषै मूल ।
दादू सेझा राम रस, अमृत काया कूल ॥ २०९ ॥

॥ परचै जग्रास उपदेस ॥

दादू मुझही मांहे में रहूं, में मेरा घरवार ।
मुझही मांहे में बसूं, आप कहै करतार ॥ २१० ॥

दादू मेंही मेरा अरस में, में ही मेरा थान । ।
में ही मेरी ठौर में, आप कहै रहिमान ॥ २११॥

दादू में ही मेरे आसिरे, में मेरे आधार ।
मेरे तकिये में रहूं, कहै सिरजन हार ॥२१२

दादू में ही मेरी जाति में, में ही मेरा अंग ।
में ही मेरा जीव में, आप कहै परसंग ॥ २१३ ॥

दादू सबै दिसा सो सारिषा, सबै दिसा सुप बैन ।
सबै दिसा श्रवणहु सुणै, सबै दिसा कर नैन ॥ २१४॥

सबै दिसा पग सीस हैं, सबै दिसा मन चैन ।
सबै दिसा सन्मुख रहै, सबै दिसा अंग ऐन ॥ २१५ ॥

विन श्रवणहु सब कुछ सुणै, विन नैनहु सब देषै ।
विन रसना मुप सब कुछ बोलै, यहु दादू अचिरज पेषै ॥२१६॥

सब अंग सब ही ठौर सब, सर्वंगी सब सार ।
कहै गहै देषै सुनै, दादू सब दीदार ॥ २१७ ॥

कहै सब ठौर, गहै सब ठौर, रहै सब ठौर, जोति प्रवानै ।
नैन सब ठौर, बैन सब ठौर, श्रैन सब ठौर, सोई भल जानै॥

सीस सब ठौर, श्रवण सब ठौर, चरण सब ठौर, कोई यहु मानै ।
अंग सब ठौर, संग सब ठौर, सबै सब ठौर, दादू ध्यानै ॥२१८॥
तेज ही कहणा, तेज ही गहणा, तेजही रहणा सारे ।
तेज ही बैना, तेजही नैना, तेजही अैन हमारे ॥
तेजही मेला तेजही पेला, तेज अकेला, तेज ही तेज संवारे ।
तेजही लेवै, तेजही देवै, तेजही पेवै, तेजही दादू तारे॥२१६॥
नूरहि का धर, नूरहि का घर, नूरहि का वरु मेरा ।
नूरहि मेला, नूरहि पेला, नूर अकेला, नूरहि मंझि बसेरा॥
नूरहि का अंग, नूरहि का संग, नूरहि का रंग मेरा ।
नूरहि राता, नूरहि माता, नूरहि पाता दादू तेरा ॥२२०॥

॥ सुषिम मौंज अरचा बंदगी ॥

दादू नूरी दिल अरवाह का, तहां बसै माबूदं ।
तहं बंदे की बंदगी, जहां रहै मौजूदं ॥ २२१ ॥
दादू नूरी दिल अरवाह का, तहं पालिक भरपूरं ।
आली नूर अल्लाः का, पिदमतगार हजूरं ॥ २२२ ॥
दादू नूरी दिल अरवाह का, तहं देष्या करतारं ।
तहं सेवग सेवा करै, अनंत कला रवि सारं ॥ २२३ ॥
दादू नूरी दिल अरवाह का, तहां निरंजन वासं ।
तहं जन तेरा एक पग, तेज पुंज परकासं ॥ २२४ ॥
दादू तेज कंवल दिल नूर का, तहां राम रहिमानं ।
तहं कर सेवा बंदगी, जे तूं चतुर सयानं ॥ २२५ ॥

तहां हजूरी बंदगी, नूरी दिल में होइ ।
तहं दादू सिजदा करे, जहां न देषै कोइ ॥ २२६ ॥
दादू देही मांहै दोइ दिल, इक पाकी इक नूर ।
पाकी दिल सूझै नहीं, नूरी मंझि हजूर ॥ २२७ ॥

॥ निमाज़ सिजदा ॥

दादू हौद हजूरी दिलही भीतरि, गुसल हमारा सारं ।
उजू साजि अलह के आगे, तहा निमाज गुजारं ॥२२८॥
दादू काया मसीति करि, पंच जमाती मनही मुलां इमामं ।
आप अलेप इलाही आगै, तहं सिजदा करै सलामं॥२२९॥
दादू सब तन तसबी कहै करीमं, ऐसा कर ले जापं ।
रोजा एक दूरि करि दूजा, कलमां आपै आपं ॥ २३० ॥
दादू अठे पहर अलह के आगै, इकटग रहिबा ध्यानं ।
आपैं आप अरस के ऊपर, जहां रहै रहिमानं ॥ २३१ ॥
अठे पहर इबादती, जीवन मरण नेबाहि ।
साहिब दर सेवै पड़ा दादू छाडि न जाइ ॥ २३२ ॥

॥ साध महिमा माहात्म ॥

अठे पहर अरस में, ऊभो ई आहे ।
दादू पसे तिन के अला गाल्हाये ॥ २३३ ॥

---

(२२७) पाकी= मलीन बुद्धि । नूर =शुद्ध बुद्धि ।
(२३२) आठों पहर भजन में जन्म से मरण तक निर्वाह, परमेश्वर के द्वारे खड़ा सेवा करै, कभी छांडिकर न जाय ॥
(२३३) अरस=आसमान (पवित्र हृदय) ऊभो=खड़ा ही रहे अंतर्मुख वृत्ति द्वारा । गाल्हाय=बात करे ।

अठे पहर अरस में, बैठा पिरी पसंनि ।
दादू पसे तिन के, जे दीदार लहंनि ॥ २३४ ॥
अठे पहर अरस में, जिन्हीं रूह रहंनि ।
दादू पसे तिनके, गुझयूं गाल्हीं कंनि ॥ २३५ ॥
अठे पहर अरस में, लुडींदा आहीन ।
दादू पसे तिनके, असां पवरि डीन्ह ॥ २३६ ॥
अठे पहर अरस में, बुजी जे नाहीन ।
दादू पसे तिनके, किते ई आहीन ॥ २३७ ॥

॥ रस (प्रेम पियाला)॥

प्रेम पियाला नूर का, आसिक भरि दीया ।
दादू दर दीदार में, मतिवाला कीया ॥ २३८ ॥
इसक सलूनां आसिकों, दरगह थें दीया ।
दर्द मोहब्बति प्रेम रस, प्याला भरि पीया ॥ २३९ ॥
दादू दिल दीदार दे, मतिवाला कीया ।
जहां अरस इलाही आप था, अपना करि लीया॥२४०॥
दादू प्याला नूर दा, आसिक अरसि पिवंन्नि ।
अठे पहर अलाह दा, मुंह-दिठे जीवंनि ॥ २४१ ॥
आसिक अमली साध सब, अलप दरीबे जाइ ।
साहेब दर दीदार में, सब मिलि बैठे आइ ॥ २४२ ॥

(२४०) दादू दिल दीदार दे=दादू के मन में दर्शन देकर ॥

(२४२) दृष्टांत:—गुर दादू आंबेर में, ठहरे माधवदास ।
भेजी भेट हुजार की, अलख दरीबे पास ॥

राते माते प्रेमरस, भरि भरि देइ खुदाइ ।
मस्तान मालिक करि लिये, दादू रहे ल्यौ लाइ ॥२४३॥

॥ सांगी (भक्ति अगाध) ॥

दादू भगति निरंजन राम की, अविचल अविनासी ।
सदा सजीवनि आतमा, सहजैं परकासी ॥ २४४ ॥
दादू जैसा राम अपार है, तैसी भगति अगाध ।
इन दून्यूं की मित नहीं, सकल पुकारैं साध ॥२४५॥
दादू जैसा अविगत राम है, तैसी भगति अलेप ।
इन दून्यूं की मित नहीं, सहस मुखां कहै सेस ॥ २४६॥
दादू जैसा निर्गुण राम है, तैसी भगति निरंजन जाणि ।
इन दोन्यौं की मित नहीं, संत कहैं प्रवांणि ॥२४७ ॥
दादू जैसा पूरा राम है, तैसी पूरण भगति समान ।
इन दोन्यौं की मित नहीं, दादू नाहीं आन ॥ २४८ ॥

॥ सेवा अखंडित ॥

दादू जब लग राम है, तब लग सेवग होइ ।
अखंडित सेवा एक रस, दादू सेवग सोइ ॥ २४९ ॥
दादू जैसा राम है, तैसी सेवा जाणि ।
पावेगा तब करेगा, दादू सो परवांणि ॥ २५० ॥
सांई सरीखा सुमिरण कीजै, सांई सरीखा गावै ।
सांई सरीखी सेवा कीजै, तब सेवग सुख पावै ॥ २५१ ॥

॥ परचै करुणा बीनती ॥

दादू सेवग सेवा करि डरै, हम थैं कछू न होइ ।
तूं है तैसी बंदगी, करि नहिं जाणै कोइ ॥ २५२ ॥

दादू जे साहिब मानै नहीं, तऊ न छाडौं सेव ।
इहि अवलंबनि जीजिये, साहिब अलप अभेव ॥ २५३ ॥

॥ सूषिम सौंज अरचा बंदगी ॥

आदि अंति आगै रहे, एक अनूपं देव । (२०–३०)
निराकार निज निर्मला, कोई न जाणै भेव ॥ २५४ ॥
अविनासी अपरंपरा, वार पार नहिं छेव ॥ (२०–३१)
सो तूं दादू देषिले, उर अंतरि करि सेव ॥ २५५ ॥
दादू भीतरि पैसि करि, घट के जड़े कपाट ।
सांई की सेवा करै, दादू अविगत घाट ॥ २५६ ॥
घट परचै सेवा करै, प्रत्तषि देषै देव ।
अविनासी दरसन करै, दादू पूरी सेव ॥ २५७ ॥

॥ भरम बिधूसण ॥

पूजण हारे पासि है, देही मांहैं देव ।
दादू ताकौं छाडि करि, बाहरि मांडी सेव ॥ २५८ ॥

॥ परचय ॥

दादू रमिता राम सौं, पेलै अंतरि मांहि ।
उलटि समाना आपमें, सो सुष कतहूं नांहि ॥ २५६ ॥

(२५४–५५) एक समैं कहुं सुरति चलाई, अनंत कोटि ब्रम्हंड दिखाई ।
परा सबद पैसें तहं आया, वार पार काहू नहिं पाया ॥
जन गोपाल कृत जीवनचरित्र ७ वां वि॰ ४२ चौ॰

(२५८) देव पूजन हारे के पास (उस की ही देह में) है ॥

दादू जे जन वेधे प्रीति सौं, सो जन सदा सजीव़।(क,ग,घ)
उलटि समाने आप में, अंतर नांही पीव़ ॥ २६० ॥
परगट पेलै पीव़ सौं, अगम अगोचर ठांव़।
एक पलक का देषणां, जीवन मरण क नांव़ ॥ २६१ ॥

॥ सुषिम सौंज अरचा बंदगी ॥

आतम मांहै राम है, पूजा ताकी होइ।
सेव़ा बंदन आरती, साध करैं सब कोइ ॥ २६२॥
परचै सेव़ा आरती, परचै भोग लगाइ।
दादू उस परसाद की, महिमा कही न जाइ ॥ २६३ ॥
मांहि निरंजन देव़ है, मांहैं सेव़ा होइ।
मांहि उतारैं आरती, दादू सेव़ग सोइ ॥ २६४ ॥
दादू मांहै कीजे आरती, मांहैं पूजा होइ।
मांहै सतगुर सेव़िये, बूझै बिरला कोइ ॥ २६५ ॥
संत उतारैं आरती, तन मन मंगल चार।
दादू बलि वलि वारणै, तुम परि सिरजन हार ॥२६६॥
दादू अविचल आरती, जुगि जुगि देव अनंत।
सदा अषंडित एकरस, सकल उतारैं संत ॥ २६७ ॥

॥ सौंज ॥

सत्यराम, आत्मा वैश्नौं, सुबुधि भोमि, संतोष थान, मूल मंत्र, म्न माला, गुर तिलक, सति संजम, सील सुच्या, ध्यान धोवती, काया कलस, प्रेम जल, मनसा मंदिर, निरंजन देव. आतमा पाती, पुहप प्रीति, चेतना

चंदन, नवधा नांव, भाव पूजा, मति पात्र, सहज समर्पण, सबद घंटा, आनंद आरती, दया प्रसाद, अनिन एक दसा, तीर्थ सतसंग, दान उपदेस, व्रत सुमिरण, पट गुण ज्ञान, अजपा जाप, अनभै आचार, मरजादा राम, फल दरसन, अभिअन्तरि सदा निरन्तर, सति सौंज दादू वर्तते, आतमा उपदेस, अंतर गति पूजा॥२६८॥

पिवसौं पेलौं प्रेमरस, तो जियरे जक होइ ।
दादू पावै सेज सुप, पड़दा नांही कोइ ॥ २६९ ॥

॥ सूषिम सौंज ॥

सेवग बिसरै आप कौं, सेवा बिसरि न जाइ ।
दादू पूछै राम कौं, सो तत कहि समझाइ ॥ २७० ॥

ज्यौं रसिया रस पीवतां, आपा भूलै और ।
यौं दादू रहि गया एक रस, पीवत पीवत ठौर ॥२७१॥

जहं सेवग तहं साहिब बैठा, सेवग सेवा मांहि ।
दादू सांई सब करै, कोई जाणै नांहि ॥ २७२ ॥

दादू सेवग सांई बस किया, सौंप्या सब परिवार ।
तब साहिब सेवा करै, सेवग के दरबार ॥ २७३ ॥

---

(२६८) सौंज=आचार । सत्यराम=तारक ब्रम्ह संज्ञक मंत्र है । आत्मा वैष्णौं=अपने आप को वैष्णौं मानें । मूलमंत्र=राम नाम । गुरतिलक=तिलकस्थानी मस्तक पर गुरु को मानें । अनिन एकदसा=अनन्य शरण ईश्वर की । पट गुण ज्ञान=मन इंद्रियों को पवित्र रखना । अनभै आचार=किसी तरह का भय न रक्खें । मरजादा राम=राम में निश्चय ॥

(२७३) देखो बिरह के अंग की १४७ वीं साखी ॥

तेज पुंज कौं विलसणा, मिलि पेलैं इक ठांव ।
भरि भरि पीवे रामरस, सेवा इसका नांव ॥ २७४ ॥
अरस परस मिलि पेलिये, तब सुष आनंद होइ ।
तन मन मंगल चहुं दिसि भये, दादू देषे सोइ ॥२७५॥

॥ सुंदर सुहाग ॥

मस्तकि मेरे पांव धरि, मंदिर मांहे आव ।
सांइयां सोवे सेज परि, दादू चंपे पांव ॥ २७६ ॥
ये चारयूं पद पलिंग के, सांई की सुष सेज ।
दादू इन पर बैसि करि, सांई सेती हेज ॥ २७७ ॥
प्रेम लहरि की पालकी, आतम बैसे आइ ।
दादू पेलै पीव सौं, यहु सुष कह्या न जाइ ॥ २७८ ॥

॥ पूजा—भक्ति लुषिम सांज ॥

दादू देव निरंजन पूजिये, पाती पंच चढाइ ।
तन मन चंदन चरांचिये, सेवा सुरति लगाइ ॥ २७९ ॥
भगति भगति सब को कहै, भगति न जाणै कोइ ।
दादू भक्ति भगवंत की, देह निरंतर होइ ॥ २८० ॥

---

(२७६) ध्यान में जो त्रिकुटी के तीर सुरति होती है, उस सुरति को मस्तक से ऊपर उलांघि करि ब्रह्माकार वृत्ति रूपी मंदिर में प्रवेश कर, वहां पर अरस परस मेल जो आत्मा और परमात्मा का है सो सेव्य सेवक भाव से (पति और स्त्री के दृष्टांतवत) यहां कहा है ॥

(२७७) पिछली (२७६ वीं) सापी के चारों पद ही सांई की सेज के पाये हैं ॥

(२७९) पंच पाती = पंच इंद्रिय और शब्द स्पर्श रूप रस गंध विषय ॥

देही मांहै देव है, सब गुण थैं न्यारा ।
सकल निरंतर भरि रह्या, दादू का प्यारा ॥ २८१ ॥
जीव पियारे राम कौं, पाती पंच चढ़ाइ ।
तन मन मनसा सौंपि सब, दादू विलम न लाइ ॥२८२॥

॥ ध्यान—अध्यात्म ॥

सबद सुरति ले सानि चित, तन मन मनसा मांहि ।
मति बुधि पंचों आतमा, दादू अनत न जांहि ॥ २८३ ॥
दादू तन मन पवना पंच गहि, ले राखे निज ठौर ।
जहां अकेला आप है, दूजा नांहीं और ॥ २८४ ॥
दादू यहु मन सुरति समेटि करि, पंच अपूठे आणि ।
निकटि निरंजन लागि रहु, संगि सनेही जाणि ॥२८५॥
मन चित मनसा आतमा, सहज सुरति ता मांहि ।
दादू पंचों पूरिले, जहं धरती अंबर नांहि ॥ २८६ ॥
दादू भीगे प्रेम रस, मन पंचों का साथ ।
मगन भये रस में रहे, तब सनमुष त्रिभुवननाथ ॥२८७॥
दादू सबदें सबद समाइ ले, परआतम सों प्राण ।
यहु मन मन सों बंधि ले, चित्तें चित्त सुजाण ॥२८८॥

---

(२८२) विलम = विलम्ब ॥

(२८५) पंच ज्ञान इंद्रिय, तिन को बाह्य विषयों से फेरि कर अंतर मुख करै, अर्थात् नेत्रों को बाह्य रंगीले रूपों से रोक कर अंतर आत्म प्रकाश पर दृढ़ करै। श्रोत्रों को बाह्य शब्दों से फेरि कर अंदर अनाहद शब्द में लगावै, रसना इंद्रिय को खट्टे मीठे पदार्थों की इच्छा से मोड़ कर अंदर

दादू सहजें सहज समाइ ले, ग्यानें बंध्या ग्यान ।
सुत्रें सुत्रं समाइ ले, ध्यानें बंध्या ध्यान ॥ २८९ ॥
दादू दृष्टें दृष्टि समाइ ले, सुरतें सुरति समाइ ।
समझें समझ समाइ ले, लै सौं लै ले लाइ ॥ २९० ॥
दादू भावें भाव समाइ ले, भगतें भगति समान ।
प्रेमें प्रेम समाइ ले, प्रीतें प्रीति रसपान ॥ २९१ ॥
दादू सुरतें सुरति समाइ रहु, अरु बैनहुं सौं बैन ।
मनहीं सौं मन लाइ रहु, अरु नैनहुं सौं नैन ॥ २९२ ॥
जहां राम तहं मन गया, मन तहं नैनां जांइ ।
जहं नैनां तहं आत्मा, दादू सहजि समांइ ॥ २९३ ॥

जीवनमुक्ति (विषयवासना निवृत्ति)

प्राण न पेलै प्राण सौं, मन ना पेलै मन ।
सबद न पेलै सबद सौं, दादू राम रतन ॥ २९४ ॥

आत्मरस (अमृत) की घाट सिंखावै, तैसे घ्राण और त्वचा इंद्रियों को बाह्य विषयों से फेरि कर अंतर्मुख आत्मा की ओर रक्खै सनेही = परमात्मा ॥

(२९४) यह और इस से अगली साखियां समाधी की परिपक्व अवस्था को निरूपण करती हैं। ध्यानावस्था में ध्यानी कभी प्राणों की गति में चित्त लगा कर खेलता (सुरति को जमाता) है, कभी मन के पीछे सुरति रहती है, फिर अनाहद शब्द में स्थिर होकर मग्न हो जाती है। इन प्रकारों के खेल जब तक सुरति में रहते हैं तब तक परिपक्व अवस्था नहीं होती। जब परिपक्व अवस्था प्राप्त होती है तब "दादू रामरतन" केवल शुद्ध अद्वैत निर्वाण पद ही होता है, जहां संपूर्ण इंद्रिय प्राण मन चित्तादि का और संपूर्ण विषयों का लय होजाता है। फिर जहां केवल शुद्ध स्वयं प्रकाश ब्रह्म

चित्त न पेले चित्त सौं, बैन न पेलैं बैन ।
  नैन न पेलै नैन सौं, दादू परगट ऐन ॥ २९५ ॥
पाक न पेलै पाक सौं, सार न पेलै सार ।
  पूब न पेलै पूब सौं, दादू अंग अपार ॥ २९६ ॥
नूर न पेलै नूर सौं, तेज न पेलै तेज ।
  जोति न पेलै जोति सौं, दादू एकै सेज ॥ २९७ ॥
पंच पदारथ मन रतन, पवना माणिक होइ ।
  आत्म हीरा सुरति सौं, मनसा मोती पोइ ॥ २९८ ॥
अजब अनूपं हार है, सांइ सरीषा सोइ ।
  दादू आत्म राम गलि, जहां न देषै कोइ ॥ २९९ ॥
दादू पंचौं संगी संगि ले, आये आकासा ।
  आसण अमर अलेप का, निर्गुण नित वासा ॥ ३०० ॥
प्राण पवन मन मगन है, संगि सदा निवासा ।
  परचा परम दयाल सौं, सहजैं सुष दासा ३०१ ॥
दादू प्राण पवन मन मणि वसै, त्रिकुटी केरे संधि ।
  पांचौं इंद्री पीव सौं, ले चरणौं मैं बंधि ॥ ३०२ ॥
प्राण हमारा पीव सौं, यौं लागा सहिये ।
  पुहप वास, घृत दूध मैं, अब कासौं कहिये ॥ ३०३ ॥

रहा, "तब पाक न पेलै पाक सौं" अर्थात् वहां जीवात्मा और परमात्मा का साक्षात् अभेद होकर किसी प्रकार का द्वैतभाव नहीं रहता ॥

(२९९) गलि = गले में ।

(३०३) सहिये = चहिये, सही हो, ठीक हो ।

पाहण लोह विचि वासदेव, असैं मिलि रहिये ।
दादू दीन दयाल सौं, संगहि सुप लहिये ॥ ३०४ ॥
दादू असा बड़ा अगाध है, सूषिम जैसा अंग ।
पुहप वास थैं पतला, सो सदा हमारे संग ॥ ३०५ ॥
दादू जब दिल मिली दयाल सौं, तब अंतर कुछ नांहि ।
ज्यौं पाला पांणी कौं मिल्या, त्यौं हरि जन हरि मांहि ॥३०६॥
दादू जब दिल मिली दयाल सौं, तब सब पड़दा दूरि ।
असैं मिलि एकै भया, बहु दीपक पावक पूरि ॥ ३०७ ॥
दादू जब दिल मिली दयाल सौं, तब अंतर नांही रेष ।
नाना विधि बहु भूषणां, कनक कसौटी एक ॥ ३०८ ॥
दादू जब दिल मिली दयाल सौं, तब पलक न पड़दा कोइ ।
डाल मूल फल बीज मैं, सब मिलि एकै होइ ॥ ३०९ ॥
फल पाका बेली तजी, छिटकाया मुप मांहि ।
सांई अपणा करि लिया, सो फिरि ऊगै नांहि ॥ ३१०॥
दादू काया कटोरा, दूध मन, प्रेम प्रीति सौं पाइ ।
हरि साहिब इहि विधि अंचवै, वेगा वार न लाइ ॥३११॥

३१०) जब फल पकता है तब बेली को त्याग देता है, तब मुख में डाल कर उस को लोग खा जाते हैं, वह खाया हुआ बीज फिर उगता नहीं। तैसे हरि के भजन में जीव रूपी फल, पापों की निवृत्ति रूपी परिपक्वावस्था को प्राप्त होके, शरीर रूपी बेली में अहंभाव रूपी अध्यास को त्यागकर, मुख रूपी परमेश्वर को प्राप्त होकर, असंभावना विपरीत भावना से रहित अपने स्वरूप को निश्चय कर लेता है, तब फिर वह जीव जन्म मरण रूपी संसार को नहीं प्राप्त होता ॥

टगाटगी जीवण मरण, ब्रह्म बराबरि होइ ।
पर्गट पेलै पीव सौं, दादू विरला कोइ ॥ ३१२ ॥
दादू निवारा ना रहै, ब्रह्म सरीषा होइ ।
लै समाधि रस पीजिये, दादू जब लग दोइ ॥ ३१३ ॥
बे पुदपवर होशियार बाशद, पुदपवर पामाल ।
बे क़ीमती मस्तानः ग़लतां, नूरे प्यालये प्याल ॥ ३१४ ॥
दादू माता प्रेम का, रस में रह्या समाइ ।
अंत न आवै जब लगैं, तब लग पीवत जाइ ॥ ३१५ ॥
पीया तेता सुष भया, बाकी बहु बैराग ।
ऐसैं जन थाकै नहीं, दादू उनमन लाग ॥ ३१६ ॥
निकट निरंजन लागि रहु, जब लग अलप अभेव । (८-८७)
दादू पीवै राम रस, निह कामी निज सेव ॥ ३१७ ॥
राम रटणि छाडै नहीं, हरि लै लागा जाइ ।
बीचैं हीं अटकै नहीं, कला कोटि दिपलाइ ॥ ३१८ ॥
दादू हरि रस पीवतां, कबहूं अरुचि न होइ ।
पीवत प्यासा नित नवा, पीवण हारा सोइ ॥ ३१९ ॥

---

(३१२) जीवन काल मरण पर्यंत ब्रह्म में टगाटगी (लय) लगाये रहे ॥

(३१४) फार्सी साखी का अर्थ—अहंकार हीन होशियार होता है, आपा नीचे गिराता है। अपने खियाल के पियाले का प्रकाश अमूल्य मस्तानः आनंद देता है ॥

दृष्टांत—या साखी सुनि औलिया, चलि आयो आमेरि ।
कथा करत गुरुदेव के, मुह चालत लियो फेरि ॥

(३१५) दई सु देता ना थकै, लेता थकै न दास ।
जन रज्जब दोऊ अथक, जुग २ एही पियास ॥

(३१९) "पीवत प्यासा नित नवा"=पीते हुए जिसे नित्य नई प्यास रहे, तात्पर्य—ब्रह्म के चिंतन (ध्यान) में नित्य उन्नति करनेवाला॥

दादू जैसे श्रवणां दोइ हैं, अैसे हूंहि अपार ।
राम कथा रस पीजियें, दादू बारंबार ॥ ३२० ॥
जैसे नैनां दोइ हैं, अैसे हूंहि अनंत ।
दादू चंद चकोर ज्यों, रस पीवैं भगवंत ॥ ३२१ ॥
ज्यों रसना मुष एक है, अैसे हूंहि अनेक ।
तौ रस पीवै सेस ज्यों, यौं मुष मीठा एक ॥ ३२२ ॥
ज्यों घटि आतम एक है, ऐसे हूंहि असंष ।
भरि भरि राषै राम रस, दादू एकै अंक ॥ ३२३ ॥
ज्यों ज्यों पीवै राम रस, त्यों त्यों बढ़ै पियास ।
अैसा कोई एक है, बिरला दादू दास ॥ ३२४ ॥
राता माता राम का, मतिवाला मैमंत ।
दादू पीवत क्यों रहे, जे जुग जांहिं अनंत ॥ ३२५ ॥
दादू निर्मल जोति जल, बरिषा बारह मास ।
तिहिं रसि राता प्राणिया, माता प्रेम पियास ॥ ३२६ ॥
रोम रोम रस पीजिये, एती रसनां होइ ।
दादू प्यासा प्रेम का, यौं बिन तृप्ति न होइ ॥ ३२७ ॥
तन ग्रह छाड़ै लाज पति, जब रसि माता होइ ।
जब लग दादू सावधान, कदे न छाड़ै कोइ ॥ ३२८ ॥

---

(३२२) शेष जी के दो सहस्र जीभें हैं और एक सहस्र मुख, तिन से परमेश्वर का वो भजन करते हैं ॥

(३२५) "पीवत क्यों रहे" = पीने से क्यों रुके ॥

(३२८) लाज पति = बड़ाई, इज्जत ।

आंगणि एक कलाल के, मतिवाला रस मांहि ।
दादू देष्या नैंन भरि, ताके दुविधा नांहि ॥ ३२६ ॥
पीवत चेतन जब लगें, तब लग लेवै आइ ।
जब माता दादू प्रेम रस, तब क़ाहे कौं जाइ ॥ ३३० ॥
दादू अंतरि आतमा, पीवै हरिजल नीर ।
सौंज सकल ले उद्धरै, निर्मल होइ सरीर ॥ ३३१ ॥
दादू मीठा राम रस, एक घूंट करि जांउं ।
पुणग न पीछे कौं रहे, सब हिरदै मांहि समांउं ॥३३२॥
चिड़ी चंच भरि ले गई, नीर निघटि नहि जाइ ।
औसा वासण नां किया, सब दरिया मांहि समाइ ॥३३३॥
दादू अमली राम का, रस बिन रह्या न जाइ ।
पलक एक पावै नहीं, तौ तबहिं तलफि मरि जाइ ॥३३४॥

(३२६) आंगणि एक कलाल के = ब्रह्म के समीप ।

(३३०) रस पीते हुये जब तक चेतन (सचेत) रहे, तब तक रस लेता रहे । जब रस में लीन हो जाय, तब उसे आगे जाने की हाजत नहीं रही ॥

(३३३) दृष्टांत-गुर दादू को दरस करि, अकबर कियो संवाद ।
सा पी सुनाय कबीर की, ब्रह्म सो अगम अगाध ॥

अकबरशाह ने कबीर साहब की यह साखी—
तन मटकी मन मही, माखन विलोवन हार ।
तत्त कबीरा ले गया, छाछ पिये संसार ॥

कह कर दयालजी से प्रश्न किया था, उस के उत्तर में दयालजी ने कहा कि कबीर साहब के [illegible] तत्व प्राप्त करने से वह तत्त्व घटा नहीं, जैसे समुद्र से चोंच भर जल चिड़िया के ले जाने से समुद्र घट नहीं जाता, तैसे ब्रह्म अपार है, और ऐसा कोई बासन है नहीं जिस में दरिया रूपी ब्रह्म समा जाय ॥

दादू राता रामका, पीवे प्रेम अघाइ ।
मतिवाला दीदार का, मांगे मुक्ति बलाइ ॥ ३३५ ॥
उजल भँवरा हरि कवल, रस रुचि बारह मास ।
पीवे निर्मल बासना, सो दादू निज दास ॥ ३३६ ॥
नैनहुं सों रस पीजिये, दादू सुरति सहेत ।
तन मन मंगल होत हे, हरि सों लागा हेत ॥ ३३७ ॥
पींवे पिलावे राम रस, माता है हुसियार ।
दादू रस पीवे घणां, औरूं कूं उपगार ॥ ३३८ ॥
नाना विधि पिया राम रस, केती भांति अनेक ।
दादू बहुत बमेक सों, आतम अविगत एक ॥ ३३९ ॥
परचे का पै प्रेम रस, जे कोई पीवे ।
मतिवाला माता रहे, यों दादू जीवे ॥ ३४० ॥
परचे का पै प्रेम रस, पीवे हित चित लाइ ।
मनसा वाचा क्रमना, दादू काल न पाइ ॥ ३४१ ॥
परचे पीवे राम रस, जुगि जुगि अस्थिर होइ ।
दादू अविचल आतमा, काल न लागे कोइ ॥ ३४२ ॥
परचे पीवे रामरस, सो अविनासी अंग ।
काल मीच लागे नहीं, दादू सांई संग ॥ ३४३ ॥
परचे पीवे रामरस, सुष में रहे समाइ ।

(३३५) "मांगे मुक्ति बलाइ", इस का तात्पर्य यह है कि उस मतवाले को बलाय मुक्ति मांगे, अर्थात् उस को अन्य मुक्ति की कुछ अपेक्षा नहीं रही॥
(३४०) पै=पय=अमृत॥

मनसा वाचा क्रमना, दादू काल न खाइ ॥ ३४४ ॥

परचै पीड़े राम रस, राता सिरजन हार ।
दादू कुछ व्यापे नहीं, ते छूटे संसार ॥ ३४५ ॥

अमृत भोजन राम रस, काहे न विलसे पाइ ।
काल विचारा क्या करै, रमि रमि राम समाइ ॥३४६॥

॥ सजीवन ॥

दादू जीव अजया विष काल है, छेली जाया सोइ ।
जब कुछ बस नाँहि कालका, तब मीनी का मुख होइ ॥ ३४७ ॥

मन लौरू के पंथ है, उनमन चढ़े अकास ।
पगरहि पूरे साच के, रोपि रह्या हरि पास ॥ ३४८ ॥

(३४७–३५२) यह साखियाँ नामदेव के निम्न लिखित पद का गूढ़ार्थ बताती हैं: —

नामदेव का पद ॥

लटके न बोलौं बाप, मतमान गाढ़ौ ।
कोल्हा बेगड़ा मोतीड़ा, मैं मंफे डोलै देपीजा । टेक ॥
छेली बैली (ऽशाली ?) बाघ जैला मांफारिया (मांजरि) भय टूटै ।
उहत पंप मैं लगूरू पेष्या, नाली जर्हैं टाँटै ॥ १ ॥
पाढ़ुलिया चै पोटै, मांपथियां चै पोटै ।
सेंपै सुनहा मारीला, वहां मींडक अभिजा लोटै ॥ २ ॥
मन्हे सु गेला म्रात देस, तहां गांफो दूध केला ।
भव म्राटै गांफोला, ग्रहां चौदह रंजन भरिला ॥ ३ ॥
उदवयौ गहयो गढ़िया जोलै, गढ़िया येवूढ़ रोलै ।
उकत पंपि मैं धूंगी पेषी, घाटी जे है डोलै ॥ ४ ॥
विष्णुदास नामदेव इम भणवै, ये छै जीव चीं ञ्कती ।
लटके भाढै सांगीला, ताहुँ मोक्ष न मुकती ॥ ५ ॥

तन मन विरष बबूल का, कांटे लागे सूल।
दादू मापण है गया, काहू का अस्थूल ॥ ३४९ ॥
दादू संसा सबद है, सुनहां संसा मारि।
मन मींडक सूं मारिये, संक्या श्रप निवारि ॥ ३५० ॥
दादू गांभी ज्ञान है, भंजन है सब लोक।
राम दूध सब भरि रह्या, ऐसा अमृत पोष ॥ ३५१ ॥
दादू झूठा जीव है, गढिया गोविंद वैन।
मनसा मूंगी पंच सौं, सुरज सरीषे नैन ॥ ३५२ ॥
सांई दीया दत घणां, तिस का वार न पार।
दादू पाया राम धन, भाव भगति दीदार ॥ ३५३ ॥
इति परचे को अंग संपूर्ण समाप्त ॥ ४ ॥

अर्थ—झूठ न बोलौं, मेरा यह गाढ़ा व्रत है। कासीफल (कद्दू की बराबर एक मोती (शुद्धमन) मैं मंझे (मेरे भीतर) मैंने डोलै (आंखों से) देखा॥ छेली (बकरी) रूपी जीवात्मा ब्याली (ब्याई) तिससे बाघ रूपी काल जैला (उत्पन्न हुआ), जब जीव परमपद को प्राप्त होता है तब उसे काल का भय नहीं रहता, ऐसी अवस्था में वह बाघ रूपी काल बिल्ली की सदृश भयभीत हो जाता है। यह नामदेवजी के पहले पद के मध्यमार्द्ध का अर्थ, दादूजी की ३४७ वीं साखी से स्पष्ट हुआ ॥

खवरू पक्षी के पैलवत मन है सो आकाशवत व्यापक परमेश्वर को उनमनी अवस्था में प्राप्त होता है। (३४८)

नामदेव के पद २ का तात्पर्य दादूजी की ३४६–३५०वीं साखियां बताती हैं
" " ३–४ का " " ३५१–५२ " "

अथ जरणा कौ अङ्ग ॥ ५ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
को साधू राषे रामधन, गुर बाइक वचन विचार ।
गहिला दादू क्यों रहे, मरकत हाथ गंवार ॥ २ ॥
दादू मनहीं माँहें समझि करि, मनहीं माहिं समाइ ।
मनहीं माँहें राषिये, बाहरि कहि न जणाइ ॥ ३ ॥
दादू समझि समाइ रहु, बाहरि कहि न जणाइ ।
दादू अद्भुत देषिया, तहं नां को आवे जाइ ॥ ४ ॥
कहि कहि क्या दिषलाइये, सांई सब जाणे ।
दादू प्रगट का कहे, कुछ समझि सयाणे ॥ ५ ॥
दादू मनही मां हें उपजे, मनही मांहि समाइ ।
मनही मां हें राषिये, बाहरि कहि न जणाइ ॥५॥ (क, ग)

---

(२) हजारों में कोइ एक साधू गुरु वाक्य विचार कर राम नाम रूपी धन सञ्चय करता है, यह धन गहिलों के हाथ नहीं रहता, जैसे गंवार के हाथ में मरकत मणी नहीं रहती ॥

जरणा, गुजराती भाषा के जरवुं शब्द से बना है। इस का अर्थ पचानां, हजम करना, धारण करना, गुप्त रखना शांति, क्षमा इत्यादि यहां बनता है ॥

लै विचार लागा रहै, दादू जरता जाइ ।
कबहूं पेट न आफरै, भावै तेता पाइ ॥ ६ ॥
जिनि षोवै दादू रामधन, रिदै राषि, जिनि जाइ ।
रतन जतन करि राषिये, चिंतामणि चित लाइ ॥ ७ ॥
सोई सेवग सब जरै, जेती उपजै आइ ।
कहि न जणावै और कौं, दादू मांहि समाइ ॥ ८ ॥
सोई सेवग सब जरै, जेता रस पीया ।
दादू गूझ गंभीर का, परकास न कीया ॥ ९ ॥
सोई सेवग सब जरै, जे अलष लषावा ।
दादू राषै रामधन, जेता कुछ पावा ॥ १० ॥
सोइ सेवग सब जरै, प्रेम रस पेला ।
दादू सो सुष कस कहै, जहं आप अकेला ॥ ११ ॥
सोई सेवग सब जरै, जेता घटि परकास ।।
दादू सेवग सब लषै, कहि न जणावै दास ॥ १२ ॥

---

(६) विचार पूर्वक भजन में लगा रहे (यहां विचार यह है कि प्रगट करने से हानि होती है और गुप्त रखने से भजन का फल पूर्ण होता है) तो दयालजी कहते हैं कि सब (भजन) हजम (सफल) होता है, जैसे पथ्य भोजन रुचि पूर्वक किया हुआ सब हज़म होजाता है ॥

(८) सोई सेवग सब जरै=सेवक वही है जो देखी सुनी को पचा लेवे अर्थात् गुप्त बात किसी और को न सुनावै, यथाः—

कही सो दूर्योधन कही, करन ने कही नांहि ।
धुंई धुंआं न संचरै, रहि पिंजर के मांहि ॥

अजर जरै रस ना झरै, घटि मांहि समावै ।
दादू सेवग सो भला, जे कहि न जणावै ॥ १३ ॥
अजर जरै रस ना झरै, घट अपना भरि लेइ ।
दादू सेवग सो भला, जारै जाण न देइ ॥ १४ ॥
अजर जरै रस ना झरै, जेता सब पीवै ।
दादू सेवग सो भला, राषै रस, जीवै ॥ १५ ॥
अजर जरै रस ना झरै, पीवत थाकै नाहिं ।
दादू सेवग सो भला, भरि राषै घट मांहिं ॥ १६ ॥

॥ साध महिमा ॥

जरणा जोगी जुगि जुगि जीवै, झरणा मरि मरि जाइ ।
दादू जोगी गुर मुषी, सहजैं रहै समाइ ॥ १७ ॥
जरणा जोगी जगि रहै, झरणा परलै होइ ।
दादू जोगी गुर मुषी, सहजि समाना सोइ ॥ १८ ॥
जरणा जोगी थिर रहै, झरणा घट फूटै ।
दादू जोगी गुर मुषी, काल थैं छूटै ॥ १९ ॥
जरणा जोगी जगपती, अविनासी अवधूत ।
दादू जोगी गुर मुषी, निर अंजन का पूत ॥ २० ॥

---

(१३) अजर जरै रस ना झरै = जो साधारण जरणा के योग्य नहीं उस को जरै, अर्थात् पचावै, धारण करै और गुप्त रक्खै, और धारण भी ऐसे करै कि किसी प्रकार से रस निकल न जाय ॥

(१७) जरणा जोगी = जरणा करनेवाला योगी ।
झरणा = बहा देने वाला कुयोगी ।

(१८) जगि रहै = जग में रहै ।

जरै सु नाथ निरंजन बाबा, जरै सु अलष अभेव ।
जरै सु जोगी सबकी जीवनि, जरै सु जगमें देव ॥२१॥
जरै सु आप उपावन हारा, जरै सु जगपति सांई ।
जरै सु अलष अनूप है, जरै सु मरण नांहीं ॥ २२ ॥
जरै सु अविचल राम है, जरै सु अमर अलेप ।
जरै सु अविगत आप है, जरै सु जग में एक ॥ २३ ॥
जरै सु अविगत आप है, जरै सु अपरपार ।
जरै सु अगम अगाध है, जरै सु सिरजन हार ॥ २४ ॥
जरै सु निज निरकार है, जरै सु निज निर्धार ।
जरै सु निज निर्गुण मई, जरै सु निज तत सार ॥२५॥
जरै सु पूरण ब्रह्म है, जरै सु पूरण हार ।
जरै सु पूरण परम गुर, जरै सु प्राण हमार ॥ २६ ॥
दादू जरै सु जोति सरूप है, जरै सु तेज अनंत ।
जरै सु झिलिमिलि नूर है, जरै सु पुंज रहंत ॥ २७ ॥
दादू जरै सु परम प्रकास है, जरै सु परम उजास ।
जरै सु परम उदीत है, जरै सु परम विलास ॥ २८ ॥
दादू जरै सु परम पगार है, जरै सु परम विगास ।
जरै सु परम प्रभास है, जरै सु परम निवास ॥ २९ ॥

॥ परमेश्वर की दयालुता ॥

दादू एक बोल भूले हरी, सु कोई न जाणै प्राण ।
औगुण मनि आणै नहीं, और सब जाणै हरि जाण ॥३०॥

(३०) इस साखी का तात्पर्य यह है कि हरी (परमेश्वर) बड़ा दयालु

दादू तुम्ह जीवों के औगुण तजे, सु कारण कौंण अगाध ?।
मेरी जरणा देषि करि, मति को सींपै साध ॥ ३१ ॥

धारणा ॥

पवना पानी सब पिया, धरती अरु आकास।
चंद सूर पावक मिले, पंचों एक गरास ॥ ३२ ॥
चौदह तीन्यूं लोक सब, ठूंगे सासे सास।
दादू साधू सब जरै, सतगुर के वेसास ॥ ३३ ॥
॥ इति जरणा कौ अंग संपूर्ण समास ॥ ५ ॥

है। जीवों के अवगुणों को भुलाये सा रहता है यद्यपि वह उन अवगुणों को सर्व प्रकार से जानता है, प्राणीजन चाहे उन अवगुणों को न भी जानते हों॥

(३१) इस साखी का प्रथमार्द्ध प्रश्न रूप है और द्वितीयार्द्ध में उस का उत्तर है॥ दयालजी प्रश्न करते हैं कि हे अगाध ! परमेश्वर!! तुम जो जीवों के अवगुणों को छोड़ देते हो, सो इसमें क्या कारण है ? इस के उत्तर में परमेश्वर कहते हैं कि मेरी जरणा (शांति, क्षमा) देखि कर, इस क्षमावान् मति (बुद्धि) को साधुजन धारण करैं॥

दृष्टांतः—वांमा विप्र मुव्याधि तें, क्षमा करी खल जानि।
जरणा अति मेंहगी करी औतारूं उर आनि॥

(३२) पवन का गुण विषयों में अनासक्ति, जल का गुण शीतलता, सो हमने पान कर लिया है। धरती का गुण क्षमा, आकाश का गुण असंगता, चंद्र का गुण सौम्यता, सूर्य का गुण भगवत भक्ति में सूरवीरता, अग्नि का गुण तेजस्वी पनादि, इन गुणों को हमने ग्रासवत् धारण किया है।

(३३) चौदह भुवन और तीनों लोकों के संपूर्ण गुण हमने "ठूंगे सासे सास" पूर्ण रूप से धारण किये हैं।

इसप्रकार दयालजी कहते हैं कि साधु जन गुण, औगुण, शीतोष्ण, सुख दुःख सब जरै (सहारैं) और पांचां इन्द्रियों के गुणांका एकग्रास करैं, यथा—

अथ हैरान कौ अङ्ग ॥ ६ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरदेवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
रतन एक बहु पारिषू, सब मिलि करैं बिचार ।
गुंगे गहिले बावरे, दादू वार न पार ॥ २ ॥
केते पारिष जौहरी, पंडित ज्ञाता ध्यान ।
जाण्या जाइ न जाणिये, का कहि कथिये ज्ञान ॥ ३ ॥
केते पारिष पचि मुये, कीमति कही न जाइ ।
दादू सब हैरान हैं, गुंगे का गुड़ पाइ ॥ ४ ॥
सबही ज्ञानी पंडिता, सुरनर रहे उरझाइ ।
दादू गति गोबिंद की, क्योंही लपी न जाइ ॥ ५ ॥
जैसा है तैसा नांउ तुम्हारा, ज्यौं है त्यौं कहि सांई ।
तूं आपे जाणै आपकौं, तहं मेरी गमि नांहीं ॥ ६ ॥

धरती जड़ मति आप अनंग, तामस तेज बाइ बक अंग ।
रजब हिम गगन अभिमान, ये गुण जीतैं ब्रम्ह समान ॥
छेः प्रकार जरनां कही श्री दयालजी भाषि ।
धन आनंद, प्रकाश, रस, गुन, प्रचा, इंद्रि दिढ़राषि ॥

(२) रत्नरूपी परमात्मा है, उस के पारिषरूपी अनेक मतवादी हैं, सो उन अंधों की तरह हैं जो हाथी को पहचानने गये थे और हाथी के एक २ अंग को ही हाथी मान कर नानारूप का हाथी बखानते थे ॥

(४) गुंगे का गुड़ पाय = गुंगा गुड़ खाकर स्वाद नहीं बतला सकता, केवल मिठास की उत्तमता के इशारे करता है, देखो साखी १४ वीं ॥

केते पारिष अंत न पावैं, अगम अगोचर मांहीं ।
दादू कीमति कोइ न जाणै, षीर नीर की नांईं ॥ ७ ॥
जीव ब्रह्म सेवा करै, ब्रह्म बराबरि होइ ।
दादू जाणै ब्रह्म कौं, ब्रह्म सरीषा सोइ ॥ ८ ॥
वार पार को ना लहै, कीमति लेषा नांहि ।
दादू एकै नूर है, तेज पुंज सब मांहि ॥ ६ ॥

॥ पीव पिछान ॥

हस्त पांव नहिं सीस मुष, श्रवण नेत्र कहुं कैसा ।
दादू सब देषै सुणै, कहै गहै है ऐसा ॥ १० ॥
पाया पाया सब कहैं, केतक देहुं दिषाइ ।
कीमति किनहूं ना कही, दादू रहु ल्यौ लाइ ॥ ११ ॥
अपना भंजन भरि लिया, उहां उताही जाणि ।
अपणी अपणी सब कहैं, दादू विड़द बषाणि ॥ १२ ॥
पार न देवै आपणा, गोप गूझ मन मांहिं ।
दादू कोई ना लहै, केते आवैं जाहिं ॥ १३ ॥
गुंगे का गुड़ का कहूं, मन जानत है षाइ ।
त्यौं राम रसाइण पीवतां, सो सुष कह्या न जाइ ॥ १४॥

(८) "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति", इस श्रुति के अनुकूल यह साखी है ।
(११) केतक, देहुं दिषाइ=कितने कहते हैं कि मैं दिखा सकता हूं । कीमति=ब्रम्ह का यथार्थ स्वरूप वा आदिअंत ॥
(१२) अपार समुद्र में जाकर कोई घड़ाभर जल लावै, तो केवल घड़ा ही भर जल ला सकता है, न संपूर्ण समुद्र का जल । तैसे ही मनुष्य अपनी शक्ति ही भर अपार परमेश्वर को जान सकता है, न उस के संपूर्ण महान् स्वरूप को ॥

दादू एक जीभ केता कहूं, पूरण ब्रह्म अगाध।
बेद कते वां मित नहीं, थकित भये सब साध ॥१५॥
दादू मेरा एक मुख, कीरति अनंत-अपार।
गुण केते परिमित नहीं, रहे विचारि विचारि ॥ १६ ॥
सकल सिरोमणि नांउ है, तूं है तैसा नांहि।
दादू कोई ना लहै, केते आवैं जांहि ॥ १७ ॥
दादू केते कहि गये, अंत न आवै ओर।
हमहूं कहते जात हैं, केते कहसी होर ॥ १८ ॥
दादू मैं का जानू का कहूं, उस बलिये की बात।
क्या जानूं क्योंहीं रहै, मो पै लख्या न जात ॥ १९ ॥
दादू किते चलि गये, थाके बहुत सुजान।
वातौं नांव न नीकलै, दादू सब हैरान ॥ २० ॥
ना कहिं दिट्ठा ना सुण्या, ना कोइ आपण हार।
ना कोइ उत्तौं थीं फिरथा, नां उर वार न पार ॥ २१ ॥
नहीं मृतक नहिं जीवता, नहिं आवै नहिं जाइ।
नहिं सूता नहिं जागता, नहिं भूखा नहिं पाइ ॥ २२ ॥

(१८) "हमहु" की जगह "हमभी" पुस्तक नं० १ में है ॥

(२०) वातौं नांव न नीकलै = वार्तों में परमेश्वर की महिमा कोई नहीं कह सकता, अर्थात् परमेश्वर अकथ है ॥

(२१) ना कहीं परमेश्वर को देखा है ना उसका आदि अंत सुना है और ना कोई उसका कहनेवाला है। ना कोई मरकर ऊपर से लौट आया है जो वहां का अथवा मरे पीछे जो होता है उसका वृत्तान्त कहे। ना परमेश्वर का उरला किनारा है ना परला किनारा है ॥

न तहां चुप ना बोलणां, मैं तैं नाहीं कोइ ।
　दादू आपा पर नहीं, न तहां एक न दोइ ॥ २३ ॥
एक कहूं तो दोइ हैं, दोइ कहूं तो एक ।
　यों दादू हैरान है, ज्यों है त्योंहीं देष ॥ २४ ॥
देषि दिवाने ह्वै गये, दादू षरे सयान ।
　वार पार कोइ ना लहै, दादू है हैरान ॥ २५ ॥

॥ पतिव्रत निहकाम ॥

दादू करणहार जे कुछ किया, सोई हूं करि जाणि ॥१६-५१॥
　जे तूं चतुर सयानां जानराइ, तौ याही परवाणि ॥२६॥
दादू जिन मोहनि बाजी रची, सो तुम्ह पूछो जाइ ।
　अनेक एकथैं क्यों किये, साहिब कहि समझाइ ॥ २७ ॥

॥ इति हैरान को अंग संपूर्ण समाप्त ॥ ६ ॥

---

(२६) किसी वादी ने दादूजी से प्रश्न किया था कि तुम कौन हो, तब उसको यह उत्तर दिया कि जो कुछ करणहार परमेश्वर ने बनाया है सोई मैं हूं । यह निश्चय कर तू जान ।

(२७) दृष्टांतः—

इक वादी संसार की उत्पति पूछी आय ।
जातैं उत्तर वाको दियो, या साखी समझाय ॥

इस साखी के पीछे किसी २ पुस्तक में परचा के अंग की १५७, १५८ और १५६ वीं साखियां दी हैं ॥ इन साखियों से जगत् का नानात्व चर्म (व्यावहारिक) दृष्टि से बतलाया है, पारमार्थिक दृष्टि से अद्वैत ही सिद्ध है ॥ वादी का प्रश्न यह था कि एक से अनेक रूप जगत् क्यों हुआ, इसका विशेष उत्तर दादूजी के जीवनचरित्र में इस अंग की समालोचना पर दिया जायगा ॥

अथ लै कौ अङ्ग ॥ ७ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
दादू लै लागी तब जाणिये, जे कबहूं छूटि न जाइ ।
जीवत यों लागी रहै, मूवां मंझि समाइ ॥ २ ॥
दादू जे नर प्राणी लैगता, सोई गत ह्वै जाइ ।
जे नर प्राणी लैरता, सो सहजैं रहै समाइ ॥ ३ ॥
सब तजि गुण आकार के, निहचल मन ल्यौ लाइ ।
आत्म चेतन प्रेम रस, दादू रहै समाइ ॥ ४ ॥
तब मन पवना पंच गहि, निरंजन ल्यौ लाइ ।
जहं आत्म तहं परआत्मा, दादू सहजि समाइ ॥ ५ ॥
अर्थ अनूपं आप है, और अनरथ भाई ।
दादू ऐसी जानि कर, तासौं ल्यौ लाई ॥ ६ ॥
ज्ञान भगति मन मूल गहि, सहज प्रेम ल्यौ लाइ ।
दादू सब आरंभ तजि, जिनि काहू संगि जाइ ॥ ७ ॥

---

(३) लैगता = लयहीन । गत ह्वै जाय = निष्फल हो जाय । लैरता = लयलीन ॥

(४) आकार (प्रपंच) के गुणों (व्यवहारों) को तजि करके, निराकार चेतन आत्मा में निश्चल मन की लय लगावै ।

(७) ज्ञान और भक्ति से सर्व इंद्रियों के मूल मन को स्थिर करै फिर सहज (आतुरता रहित) प्रेम से लय लगावै, दुनिया के सब आरंभों (वासनाओं) को त्याग दे, किसी वासना के संग मन को न जानें दे ॥

॥ अगम संसार ॥

पहली था सो अब भया, अब सो आगैं होइ । (क, ख)
दादू तीनों ठौर की, बूझै विरला कोइ ॥ ७-१ ॥

॥ अध्यात्म ॥

जोग समाधि सुप सुरति सौं, सहजैं सहजैं आव ।
मुक्ता द्वारा महल का, इहै भगति का भाव ॥ ८ ॥
सहज सुंनि मन राषिये, इन दून्यूं के मांहिं । (१६-६)
लै समाधि रस पीजिये, तहां काल भै नांहि ॥ ९ ॥
दादू विन पायन का पंथ है, क्यों करि पहुंचे प्राण। (१-१३५)
विकट घाट औघट परे, मांहि सिपर असमान ॥१०॥ (घ, ङ)
मन ताजी चेतन चढै, ल्यौ की करै लगाम । (१-१३६)
सवद गुरू का ताजणां, कोइ पहुंचै साध सुजान ॥११॥ (घ, ङ)

॥ सूषिम मार्ग ॥

किहिं मारग ह्वै आइया, किहिं मारग ह्वै जाइ ।
दादू कोई नां लहै, केते करैं उपाइ ॥ १२ ॥
सून्यहि मारग आइया, सून्यहि मारग जाइ ।
चेतन पैंडा सुरति का, दादू रहु ल्यौं लाइ ॥ १३ ॥

---

(८) महल (शरीर) का मुक्ति द्वारा रूप सुख जैसे जोग, समाधी वा सुरति से सहजैं सहज (शनैं २) मात होता है तैसे ही वह सुख भक्ति से भी होता है, अर्थात् जोग समाधी सुरति वा भक्ति का फल एक ही है ॥

(६) "सहज सुंनि", देखो परचा के अंग की ५६ वीं साखी ॥ यहां जो "इन दून्यूं के मांहि" वाक्य आया है तिस में "दून्यूं" शब्द जोग समाधी और भक्ति जोग को दर्शाता है ॥

दादू पारब्रह्म पैंडा दिया, सहज सुरति लै सार ।
मन का मारग मांहि घर, संगी सिरजन हार ॥ १४ ॥

॥ लै ॥

राम कहै जिस ज्ञान सौं, अमृत रस पीवै ।
दादू दूजा छाडि सब, लै लागी जीवै ॥ १५ ॥
राम रसाइन पीवतां, जीव ब्रह्म ह्वै जाइ ।
दादू आतमराम सौं, सदा रहै ल्यौ लाइ ॥ १६ ॥
सुरति समाइ सनमुष रहै, जुगि जुगि जन पूरा ।
दादू प्यासा प्रेम का, रस पीवै सूरा ॥ १७ ॥

॥ अध्यात्म ॥

दादू जहां जगत गुर रहत है, तहां जे सुरति समाइ ।
तौ इनहीं नैनहुं उलटि करि, कौतिग देषै आइ ॥१८॥
अष्यूं पसण के पिरी, भिरे उल थौं मंझ ।
जिते वेठो मां पिरी, नीहारी दौ हंझ ॥ १९ ॥
दादू उलटि अपूठा आप मैं, अंतरि सोधि सुजाण ।
सो ढिग तेरी बावरे, तजि बाहर की बाणि ॥ २० ॥
सुरति अपूठी फेरि करि, आतम मांहै आण ।
लागि रहै गुरदेव सौं, दादू सोइ सयांण ॥ २१ ॥
जहां आतम तहं राम है, सकल रह्या भरपूर । (ग घ)
अंतरि गति ल्यौ लाइ रहु, दादू सेवग सूर ॥ २२ ॥

---

(१९) परमात्मा के दर्शन के निमित्त आंखौं को फेरि कर उलटी भीतर लगावै. जहां परमात्मा बैठा है, तिस को संतजन देखते हैं ॥

॥ सूक्ष्म सौंज अरचा बंदगी ॥

दादू अंतरि गति ल्यौ लाइ रहु, सदा सुरति सौं गाइ ।
यहु मन नाचै मगन ह्वै भावै ताल बजाइ ॥ २३ ॥

दादू गावै सुरति सौं, बाणी बाजे ताल ।
यहु मन नाचै प्रेम सौं, आगैं दीन दयाल ॥ २४ ॥

॥ विरक्तता ॥

दादू सब बातनि की एक है, दुनिया तैं दिल दूरि ।
सांई सेती संग करि, सहज सुरति ले पूरि ॥ २५ ॥

॥ अध्यात्म ॥

दादू एक सुरति सौं सब रहैं, पंचौं उनमन लाग ।
यहु अनभै उपदेस यहु, यहु परम जोग बैराग ॥ २६ ॥

दादू सहजैं सुरति समाइ ले, पारब्रह्म के अंग ।
अरस परस मिलि एक ह्वै, सनमुष रहिबा संग ॥२७॥

॥ लय ॥

सुरति सदा सन्मुष रहै, जहां तहां लै लीन ।
सहज रूप सुमिरण करै, निहकर्मी दादू दीन ॥ २८ ॥

सुरति सदा स्याबति रहै, तिन के मोटे भाग ।
दादू पीवै राम रस, रहै निरंजन लाग ॥ २९ ॥

॥ सूषिम सौंज ॥

दादू सेवा सुरति सौं, प्रेम प्रीति सौं लाइ ।
जहं अविनासी देव है, तहं सुरति बिना को जाइ॥३०॥

॥ वीनती ॥

दादू ज्यौं वै बरत गगन थैं टूटै, कहा धरणि कहं ठाम ।

लागी सुरति अंगथें छूटै, सो कत जीवै राम ॥ ३१ ॥

॥ अध्यातम ॥

सहज जोग सुष में रहै, दादू निर्गुण जाणि ।
गंगा उलटी फेरि करि, जमुना मांहैं आणि ॥ ३२ ॥

॥ लय ॥

परआतम सो आतमा, ज्यों जल उदिक समान ।
तन मन पाणी लोंण ज्यों, पावै पद निर्बाण ॥ ३३ ॥

मनही सों मन सेविये, ज्यों जल जलहि समाइ ।
आतम चेतन प्रेम रस, दादू रहु ल्यो लाइ ॥ ३४ ॥

छाडै सुरति सरीर कों, तेज पुंज में आइ (४–१६१)
दादू ऐसैं मिलि रहै, ज्यों जल जलहि समाइ ॥ ३५ ॥

यों मन तजै सरीर कों, ज्यों जागत सो जाइ ।
दादू बिसरै देषतां, सहजि सदा ल्यौ लाइ ॥ ३६ ॥

जिहि आसणि पहिली प्राणथा, तिहि आसणि ल्यौ लाइ ।

---

(३१) नट लय लगाकर रस्सी पर आकाश में नाचता है, यदि उस की लय टूट जाय तो वह धरणि (पृथ्वी) पर आपड़े, वैसे परमात्मा में लगी लय जो छूट जाय तो उस का जीवन कहां हो सकता है ?

(३२) गंग = उठती स्वास । जमुना = बैठती स्वास ॥

(३३) आत्मा है सोई परमात्मा, जैसे जल और उदक दोनों शब्द एक ही अर्थ के वाचक है। तन मन बन्ह में ऐसे मिल जाता है जैसे जल में लवण। इसी प्रकार से जीव निर्वाण पद को प्राप्त होता है ॥

(३६) सहजि सदा ल्यौं लाइ–सदा लय इस प्रकार से लगाओ कि मन तजै (भूल जाय) शरीर को, जैसे निद्रा में शरीर की सुध नहीं रहती ।

जे कुछ था सोई भया, कछू न व्यापै आइ ॥ ३७ ॥
तन मन अपणा हाथि करि, ताही सौं ल्यौ लाइ ।
दादू निर्गुण राम सौं, ज्यौं जल जलहि समाइ ॥ ३८ ॥

॥ उपजणि ॥

एक मना लागा रहै, अंति मिलैगा सोइ ।
दादू जाके मनि वसै, ताकौं दर्सन होइ ॥ ३९ ॥
दादू निवहै त्यूं चलै, धीरैं धीरज मांहि ।
परसैगा पिव एक दिन, दादू थाके नांहिं ॥ ४० ॥

॥ लय ॥

जब मन मृतक ह्वै रहै, इंद्री बल भागा ।
काया के सब गुण तजै, निरंजन लागा ॥ ४१ ॥
आदि अंति मधि एक रस, टूटै नहिं धागा ।
दादू एकै रहि गया, तब जाणी जागा ॥ ४२ ॥
जब लग सेवग तन धरै, तब लग दूसर आइ ।
एकमेक ह्वै मिलि रहै, तौ रस पीवन थैं जाइ ॥ ४३ ॥
ये दून्यूं ऐसी कहैं, कीजै कौण उपाय ।
नां मैं एक न दूसरा, दादू रहु ल्यौ लाइ ॥ ४४ ॥
इति लै कौ अंग सम्पूर्ण समाप्त ॥ ७ ॥

(३७) भाग=जोर, आदि में इस का स्थान ब्रम्ह था, उसी में लय लगावै, जैसा ब्रम्ह रूप था वैसा ही हो जायगा, माया किसी तरह से उसपर असर न करेगी ।

(४३) यह पूरन रूपी साखी है, अर्थात् जब तक जीव तन धरे है तब तक वह ब्रह्म से भिन्न दूसरा है, यदि वह ब्रह्म में एक रूप ही होकर मिल जावे तो वह योगानन्द कैसे पाए कर सकता है ? इसका उत्तर अगली (४४ वीं) साखी में दादूजी ने दिया है कि ना मैं एक हूं ना दो, अर्थात् कह नहीं सकते कि एक है वा दो, क्योंकि निर्विशेष ब्रह्म में संख्यारूप विशेषण लग नहीं सकते । हमारा कर्तव्य यह है कि उस में लय लगाये रहैं ॥

अथ निहकर्मी पतिव्रता कौ अङ्ग ॥ ८ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

एक तुम्हारे आसिरै, दादू इहि वेसास ।
राम भरोसा तोर है, नहिं करणी की आस ॥ २ ॥

रहणी राजस ऊपजै, करणी आपा होइ ।
सब थैं दादू निर्मला, सुमिरण लागा सोइ ॥ ३ ॥

दादू मन अपणा लै लीन करि, करणी सब जंजाल ।
दादू सहजैं निर्मला, आपा मेटि संभाल ॥ ४ ॥

दादू सिधि हमारे सांइयां, करामाति करतार ।
रिधि हमारे राम है, आगम अलप अपार ॥ ५ ॥

गोव्यंद गोसांई तुम्हे अम्हंचा गुरू, तुम्हे अम्हंचा ज्ञान ।
तुम्हे अम्हंचा देव, तुम्हे अम्हंचा ध्यान ॥ ६ ॥

तुम्हे अम्हंची पूजा, तुम्हे अम्हंची पाती ।
तुम्हे अम्हंचा तीर्थ, तुम्हे अम्हंचा जाती ॥ ७ ॥

तुम्हे अम्हंचा नाद, तुम्हे अम्हंचा भेद ।
तुम्हे अम्हंचा पुराण, तुम्हे अम्हंचा वेद ॥ ८ ॥

तुम्हे अम्हंची जुगत, तुम्हे अम्हंचा जोग ।
तुम्हे अम्हंचा वैराग, तुम्हे अम्हंचा भोग ॥ ९ ॥

तुम्हे अम्हंची जीवनि, तुम्हे अम्हंचा जप ।
तुम्हे अम्हंचा साधन, तुम्हे अम्हंचा तप ॥ १० ॥

---

(२) तोर = तेरा ॥

(३) रहणी, करणी = कर्म करतूत ॥

तुम्हे अम्हंचा सील, तुम्हे अम्हंचा संतोष ।
तुम्हे अम्हंची मुकति, तुम्हे अम्हंचा मोष ॥ ११ ॥
तुम्हे अम्हंचा सिव, तुम्हे अम्हंची सकति ।
तुम्हे अम्हंचा आगम, तुम्हे अम्हंची उकति ॥ १२ ॥
तूं साति तूं अविगति, तूं अपरंपार, तूं निराकार, तुम्हंचा नाम ।
दादू चा विश्राम, देहु देहु अवलंबन राम ॥ १३ ॥
दादू राम कहूं ते जोड़िवा, राम कहूं ते साषि ।
राम कहूं ते गाइवा, राम कहूं ते राषि ॥ १४ ॥
दादू कुल हमारे के सवा, सगा त सिरजनहार ।
जाति हमारी जगतगुर, परमेसुर परिवार ॥ १५ ॥
दादू एक सगा संसार में, जिन हम सिरजे सोइ ।
मनसा वाचा कर्मनां, और न दूजा कोइ ॥ १६ ॥

॥ सुमिरण नाम निरसंसै ॥

सांई सन्मुष जीवतां, मरतां सन्मुष होइ ।
दादू जीवण मरण का, सोच करै जिनि कोइ ॥ १७ ॥

॥ पतिव्रत ॥

साहिब मिल्या त सब मिले, भेंटैं भेटा होइ ।
साहिब रह्या तौ सब रहे, नहीं त नाहीं कोइ ॥ १८ ॥
सब सुष मेरे सांईयां, मंगल अति आनंद ।
दादू सजन सब मिले, जब भेंटे परमानंद ॥ १९ ॥

(१४) राम नाम का लेना ही मेरा पद जोड़ना है, वही मेरी साखी है, वही मेरा गाना है, वही मेरी धारणा है ॥

दादू रीझै राम परि, अनत न रीझै मन ।
मीठा भावै एक रस, दादू सोई जन ॥ २० ॥

दादू मेरे हिरदै हरि बसै, दूजा नांही और ।
कहो कहां धौं राषिये, नहीं आन कौं ठौर ॥ २१ ॥

दादू नाराइण नैनां बसै, मनहीं मोहन राइ ।
हिरदा मांहैं, हरि बसै, आतम एक समाइ ॥ २२ ॥

दादू तन मन मेरा पीव सौं, एक सेज सुष सोइ ।
गहिला लोग न जाणहीं, पचि पचि आपा पोइ ॥२३॥

दादू एक हमारे उरि बसै, दूजा मेल्या दूरि ।
दूजा देषत जाइगा, एक रह्या भरपूरि ॥ २४ ॥

निहचल का निहचल रहै, चंचल का चलि जाइ ।
दादू चंचल छाडि सब, निहचल सौं ल्यौ लाइ ॥ २५ ॥

साहिब रहतां सब रह्या, साहिब जातां जाइ ।
दादू साहिब राषिये, दूजा सहज सुभाइ ॥ २६ ॥

मन चित मनसा पलक मैं, सांई दूरि न होइ ।
निहकामी निरषै सदा, दादू जीवनि सोइ ॥ २७ ॥

॥ कथनी बिना करणी ॥

जहां नांव तहं नीति चाहिये, सदा राम का राज ।

---

(२०) जन वही है जिस का मन एक रस परमेश्वर ही को मीठा समझै।
दृष्टान्त—दोहा—गुर दादू आंबेर मैं, तहां गया वार्नोद ।
फूल सरारे देखि कर, ए सब मायांनंद ॥
(२१) दृष्टान्त—सोरठा—पोसो एक चमार, पंढरपुर बिठल हरि ।
दोनौं जीमत लार, मूढ़ न मानत तास गति ॥

निर्विकार तन मन भया, दादू सीझे काज ॥ २८ ॥

सुंदरि विलाप ॥

जिस की पूषी पूष सब, सोई पूष संभारि ।
दादू सुंदरि पूष सों, नषसिष साज संवारि ॥ २९ ॥
दादू पंच अभूषण पीव करि, सोलह सबही ठांव ।
सुंदरि यहु सिंगार करि, लै लै पीव का नांव ॥ ३० ॥
यहु मत सुंदरि ले रहै, तौ सदा सुहागनि होइ ।
दादू भावै पीव कौं, तासमि और न कोइ ॥ ३१ ॥

॥ मन हरि भावरि ॥

साहिब जीका भावता, कोई करै कलि मांहि ।
मनसा वाचा क्रमना, दादू घटि घटि नांहि ॥ ३२ ॥

॥ पतिवृता निःकाम ॥

आज्ञा माहैं वैसे ऊठे, आज्ञा आवै जाइ ।
आज्ञा माहैं लेवै देवै, आज्ञा पहरै षाइ ॥ ३३ ॥
आज्ञा माहैं वाहरि भीतरि, आज्ञा रहै समाइ ।
आज्ञा माहैं तन मन राषै, दादू रह ल्यौ लाइ ॥ ३४ ॥
पतिव्रता गृह आपणैं, करै पसम की सेव ।
ज्यौं राषै त्यौंहीं रहै, आज्ञाकारी टेव ॥ ३५ ॥

---

(२९) "सोई पूष संभारि" की जगह पुस्तक नं० १ में "सोई राम संभारि" है ॥

(३०) पंच आभूषणों और १६ सिंगारों की जगह परमात्मा ही को धारण करै, यह आशय है ॥

॥ सुंदरि विलाप ॥

दादू नीच ऊंच कुल सुंदरी, सेवा सारी होइ ।
सोई सुहागनि कीजिये, रूप न पीजे धोइ ॥ ३६ ॥

दादू जब तन मन सौंप्या राम कौं, तासनि का विभ्चार ।
सहज सील संतोष सत, प्रेम भगति लै सार ॥ ३७ ॥

पर पुरिषा सब परहरे, सुंदरि देखै जागि ।(२०—३८।२०—११.)
अपणा पीव पिछाण करि, दादू रहिये लागि ॥ ३८ ॥

आन पुरिष हूं बहनड़ी, परम पुरिष भर्त्तार । (२०—३६)
हूं अबला समझौं नहीं, तूं जाणै कर्त्तार ॥ ३६ ॥

॥ पतिवृत ॥

जिस का तिस कौं दीजिये, सांई सन्मुख आइ ।
दादू नखसिख सौंपि सब, जिनि यहु बंट्या जाइ ॥४० ॥

सारा दिल सांई सौं राखै, दादू सोई सयान ।
जे दिल बंटै आपणा, सो सब मूढ़ अयान ॥ ४१ ॥

---

(३६) दृष्टांत—सदना अरु रैदास को, कुल कारण नहिं कोइ ।
मद्य आवे सब धोइ कै. जिम वैष्णव रोइ ॥

(३८) दृष्टांतः—सरजाती नृप की सुता, दई च्यवन को ब्याहि ।
वे तीनों जल में पड़े, पीछे पति गह पाहि ॥

तीनों=दो अश्विनी कुमार और च्यवन ॥

(३६) आन पुरिष हूं बहनड़ी = अन्य पुरुषों की मैं बहन हूं ॥

(४०) संपूर्ण शरीर (नखसिख) जिस (परमात्मा) का दिया हु-आ है उसी को सौंपना चाहिये, ऐसा न हो कि वह प्रपंच में बंट जाए, यथा—
आपा सौंपै राम कौं, हरि अपनावै ताहि ।
जगंनाथ जगदीस बिन. आपो दीजै काहि ॥

॥ विरक्तता ॥

दादू सारों सौं दिल तोरि करि, सांई सौं जोरे ।
सांई सेती जोड़ि करि, काहे कौं तोरे ॥ ४२ ॥

॥ मनलगनि बिभचार ॥

साहिब देवे राषणा, सेवग दिल चोरे ।
दादू सब धन साह का, भूला मन थोरे ॥ ४३ ॥

॥ पतिव्रत ॥

दादू मनसा वाचा क्रमनां, अंतरि आवे एक ।
ताकौं प्रत्तषि रामजी, बातें और अनेक ॥ ४४ ॥
दादू मनसा वाचा क्रमनां, हिरदै हरि का भाव ।
अलष पुरिष आगै षड़ा, ताकै त्रिभुवन राव ॥ ४५ ॥
दादू मनसा वाचा क्रमनां, हरिजी सौं हित होइ ।
साहिब सन्मुष संगि है, आदि निरंजन सोइ ॥ ४६ ॥
दादू मनसा वाचा क्रमनां, आतुर कारणि राम ।
सम्रथ सांई सब करै, परगट पूरे काम ॥ ४७ ॥
नारी पुरिषा देषि कर, पुरिषा नारी होइ ।
दादू सेवग रामका, सीलवंत है सोइ ॥ ४८ ॥

---

(४२)दृष्टांत—सोरठा— गोदलियो सुन सेट, सर्वस सौंप्यौ तास कौं ।
करी मूढ मति नेत्र, थैली ले न्यारी धरी ॥

परमात्मा ने मन धन धन जीव को धरोहर (अमानत) सौंपा है परजीव धार (परमात्मा) को भूल कर व्यर्थ कार्यों (प्रपंच) में धरोहर । को लगाता है॥
(४८)पति व्रता अपने पति को देख कर पति में चित वाली होवे तैसे

॥ आनलगनि बिभचार ॥

पर पुरिषा रत बांझणी, जाणै जे फल होइ ।
जन्म बिगोवै आपणा, दादू नृफल सोइ ॥ ४९ ॥

दादू तजि भर्तारकौं, पर पुरिषा रत होइ ।
ऐसी सेवा सब करैं, राम न जाणैं सोइ ॥ ५० ॥

॥ पतिवृत ॥

नारी सेवग तब लगैं, जब लग सांई पास ।
दादू परसै आन कौं, ताकी कैसी आस ॥ ५१ ॥

॥ आनलगनि बिभचार ॥

दादू नारी पुरिष कौं, जाणैं जे बसि होइ ।
पीव की सेवा ना करै, कामाणिगारी सोइ ॥ ५२ ॥

॥ करुणा ॥

कीया मन का भावता, मेटी आग्याकार ।
क्या ले मुप दिप लाइये, दादू उस भरतार ॥ ५३ ॥

पति अपनी स्त्री के चित्त वाला होवै। जैसे यह दोनों शीलवंत कहाते हैं तैसे ही जो सेवक परमेश्वर रूपी पति में अपना चित्त लगावै तो उस पर परमेश्वर भी अनुग्रह करता है। सोई भक्त शीलवंत है ॥

(५२) दृष्टान्त–हुरम जु गई फकीर पै, मोकौं जंतर देहु,
होइ पातसा मोर बस, साषी लिषि दई लेहु ॥

साषी–यमण दूमण है सपी, भूलि करौ मति कोइ ।
पी. कहै त्यों कीजिये, आपैंही बसि होइ ॥

(५३) आग्याकार = आज्ञाकारी = फर्मांबर्दारी ॥

॥ मानलगनि बिभचार ॥

करामाति कलंक है, जाके हिरदै एक ।
अति आनंद बिभचारणी, जाके पसम अनेक ॥ ५४ ॥

दादू पतिब्रता के एक है, बिभचारणि के दोइ ।
पतिब्रता बिभचारणी, मेला क्यों करि होइ ॥ ५५ ॥

पतिब्रता के एक है, दूजा नांहीं आंन ।
बिभचारणि के दोइ हैं, पर घर एक समान ॥ ५६ ॥

॥ सुंदरि सुहाग ॥

दादू पुरिष हमारा एक है, हम नारी बहु अंग ।
जे जे जैसी ताहि सौं, पेलें तिसही रंग ॥ ५७ ॥

॥ पतिवृत ॥

दादू रहता राषिये, बहता देइ बहाइ ।
बहते संगि न जाइये, रहते सौं ल्यो लाइ ॥ ५८ ॥

जिनि बाझै काहू कर्म सौं, दूजे आरंभ जाइ ।
दादू एकै मूल गहि, दूजा देइ बहाइ ॥ ५६ ॥

बावैं देषि न दाहिणै, तन मन सन्मुष राषि ।
दादू निर्मल तत गहि, सत्य सबद यहु साषि ॥ ६० ॥

---

(५४) करामात (संसारी वैभव, चमत्कार) को वह मन कलंक (दूषण) समझता है जिस के हृदय में एक (परमेश्वर) ही का इष्ट है। पर व्यभिचारी (विषयी) मन, जिन के अनेक (धनादि विषय भोग वा देवी देवतादि) इष्ट हैं, उस करामात से अति आनन्द मानते हैं ॥

(५७ "ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्" भ० गी० ४—११॥

(५६) तात्पर्य—एक मूल परमेश्वर में चित लगाकर, किसी दूसरे काम में न उलझै ॥

दादू दूजा नैन न देषिये, श्रवण हुं सुनें न जाइ ।
जिभ्या आन न बोलिये, अंगि न और सुहाइ ॥ ६१ ॥
चरणहु अनत न जाइये, सब उलटा मांहि समाइ ।
उलटि अपूठा आप में, दादू रहु ल्यौ लाइ ॥ ६२ ॥
दादू दूजे अंतर होत है, जिनि आखे मन मांहि ।
तहं ले मन कौं राषिये, जहं कुछ दूजा नांहि ॥ ६३ ॥

॥ भर्म विधूसण ॥

भरम तिमर भाजे नहीं, रे जिय आन उपाइ ।
दादू दीपक साजि ले, सहजें हीं मिटि जाइ ॥ ६४ ॥
दादू सो वेदन नहिं, बावरे, आन किये जे जाइ ।
सब दुष भंजन सांईया, ताही सौं ल्यौ लाइ ॥ ६५ ॥
दादू औषदि मूली कुछ नहीं, ये सब झूठी बात ।
जे औषदि ही जीविये, तौ काहे कौं मरि जात ॥ ६६ ॥

॥ पतिव्रत ॥

मूल गहै सो निहचल बैठा, सुष में रहै समाइ ।
डाल पान भरमत फिरैं, बेदौं दिया बहाइ ॥ ६७ ॥
सौ धका सुनहां कौं देवे, घर बाहरि काढे ।
दादू सेवग राम का, दरबार न छाड़े ॥ ६८ ॥

---

(६५) भर्म तिमिर रूपी वेदन (दुःख) ऐसा नहीं है, रे बावरे, जो आन (अन्य उपायों) से जाय ॥

(६६) दृष्टान्त—बादशाह मरती समय, सब ठाढ़े किये लाय ।
बैद सूर धन लौंग कुल, सब हि देखते जाय ॥

(६८) सुनहां नाम कुत्ते का है, कुत्ते को चाहे जितना मारो, बाहर नि-

साहिब का दर छाडि करि, सेवग कहीं न जाइ ।
दादू बैठा मूल गहि, डालों फिरै बलाइ ॥ ६९ ॥
दादू जब लग मूल न सींचिये, तब लग हरया न होइ ।
सेवा निरफल सब गई, फिरि पछिताना सोइ ॥ ७० ॥
दादू सींचे मूल के, सब सींच्या बिस्तार ।
दादू सींचे मूल बिन, बादि गई बेगार ॥ ७१ ॥
सब आया उस एक में, डाल पांन फल फूल ।
दादू पीछैं क्या रह्या, जब निज पकड्या मूल ॥ ७२ ॥
षेत न निपजे बीज बिन, जल सींचे क्या होइ ।
सब निरफल दादू राम बिन, जांनत हैं सब कोइ ॥७३॥
दादू जब मुष माहें मेलिये, तब सबही तृपता होई ।
मुष बिन, मेले आन दिस, तृपति न मानै कोइ ॥७४॥
जब देव निरंजन पूजिये, तब सब आया उस मांहि ।
डाल पांन फल फूल सब, दादू न्यारे नांहि ॥ ७५ ॥
दादू टीका राम कौं, दूसर दीजे नांहि ।
ग्यान ध्यान तप भेष पष सब आये उस मांहि ॥ ७६ ॥

कालो तौ भी वह मालिक का घर नहीं छोड़ता है । तैसे दयाल जी कहते हैं परमेश्वर के भजन में चाहे जितनी बिपा पड़ै तौ भी साधक को भक्ति नहीं छोड़नी चाहिये ॥

(७४) मुष बिन, मेले आन दिस, अर्थात् मुख के सिवाय अन्य जगह देने से तृप्ति नहीं होती ॥

(७६) टीका अर्थात् तिलक और ज्ञान ध्यानादि सब राम नाम के भ-
ष के अन्तर्गत हैं ।

साधू राषै राम कौं, संसारी माया ।
संसारी पालव गहे, मूल साधूं पाया ॥ ७७ ॥

॥ आनलगनि विभचार ॥

दादू जे कुछ कीजिये, अविगत बिन आराध ।
कहिबा सुणिबा देषिबा, करिबा सब अपराध ॥ ७८ ॥
सब चतुराई देषिये, जे कुछ कीजे आन ।
दादू आपा सौंपि सब, पीव कौं लेहु पिछान ॥ ७९ ॥

॥ पतिव्रत ॥

दादू दूजा कुछ नहीं, एक सत्ति करि जाणि ।
दादू दूजा क्या करै, जिन एक लिया पहिचाणि ॥८०॥
दादू कोई वांछे मुकति फल, कोइ अमरापुरि बास ।
कोई वांछै परम गति, दादू राम मिलन की प्यास ॥८१॥
तुम हरि हिरदै हेत सौं, प्रगटहु परमानंद ।
दादू देषै नैंन भरि, तब केता होइ अनंद ॥ ८२ ॥
प्रेम पियाला राम रस, हमकौं भावै येह ।
रिधि सिधि मांगैं मुकति फल, चाहैं तिनकौं देह ॥८३॥
कोटि बरस क्या जीवणां, अमर भये क्या होइ ।
प्रेम भगति रस राम बिन, का दादू जीवनि सोइ ॥८४॥
कछू न कीजे कामनां, सगुण निर्गुण होइ ।
पलटि जीवतैं ब्रह्म गति, सब मिलि मांनैं मोहि ॥८५॥

(७९) जो कदापि ब्रह्म आराधन से बाहिर कोई क्रिया होवे, तो सम्पूर्ण विषयों में परमात्मा की अद्भुत चतुराई ही को निरखै और सर्व प्रकार से अहंता और ममता को त्याग कर सर्व में परमात्मा ही को अवलोकन करै ॥

(८०) दूजे शब्द से संसार की ओर इशारा है । सो संसार उसी समय तक भ्रमाता है जब तक पुरुष ब्रह्म में लीन न हो जाय ॥

(८५) कामना के निवृत्त हुये पीछे सगुण (जीव) निर्गुण ब्रह्मरूप होजाता है॥

घट अजराव्र ह्वै रहै, बंधन नांहीं कोइ ।
मुकता चोरासी मिटै, दादू संसै सोइ ॥ ८६ ॥

॥ सांचि रस ॥

निकटि निरंजन लागि रहु, जब लग अलप अभेव् । ४–३१७ ।
दादू पीवै राम रस, निहकामी निज सेव् ॥ ८७ ॥

॥ सर्च पतिवृन ॥

सालोक संगति रहै, सामीप सन्मुप सोइ ।
सारूप सारीपा भया, साजोज एकै होइ ॥ ८८ ॥

राम रसिक वांछै नहीं, परम पदारथ चार ।
अठ सिधि नव निधि का करै, राता सिरजनहार ॥ ८९ ॥

॥ श्रानलगनि विभचार ॥

स्वारथ सेवा कीजिये, तार्थें भला न होइ । १३–१३८ ।
दादू ऊसर वाहि करि, कोठा भरै न कोइ ॥ ९० ॥

---

(८६) घट (जीव्) अजर अमर होकर रहता है उस को बन्धन कोई नहीं रहता, मुक्त होजाता है और चौरासी योनियों का जो संशय है सो मिट जाता है। ८५ और ८६ साखियों को मिला कर पढ़ना चाहिये। यह जो फल कहा है सो कामना के मिटने पर है ॥

(८७) जब तक अलख अभेव् (परमात्मा) प्राप्त न हो।

(८८) और ८९ को मिलाकर पांचं। चार प्रकार की (सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और-सायुज्य । जो मुक्तियां द्वैतवादियों ने मानीं हैं सो "रामरसिक" चाहता नहीं, तैसे ही उस को अष्ट सिद्धियों और नव निद्धियों की भी इच्छा नहीं होनी।

८८ में चारों प्रकार की मुक्तियों के नाम दिये हैं, (१) सालोक्य मुक्ति वह है जिस में संग वास हो, (२) सामीप्य, जिस में ईश्वर के सन्मुख रहे, (३) सारूप्य, जिस में ईश्वर के सदृश होय (४) सायुज्य, ईश्वर में लय हो जावै ॥

सुत वित मांगैं बावरे, साहिब सी निधि मेलि।
दादू वे निर्फल गये, जैसें नागर वेलि ॥ ६१ ॥
फल कारनि सेवा करै, जाचै त्रिभवन राव। (१३-११६)
दादू सो सेवग नहीं, खेलै अपना डाव ॥ ६२ ॥
सहकामी सेवा करैं, मांगैं मुगध गंवार। (१३-१२०)
दादू ऐसे बहुत हैं, फलके भूंचनहार ॥ ६३ ॥

॥ सुमिरण नाम माहात्म ॥

तन मन ले लागा रहै, राता सिरजन हार। (१३-१२१)
दादू कुछ मांगै नहीं, ते विरला संसार ॥ ६४ ॥
दादू कहै सांई कौं संभालतां, कोटि विघन टलि जांहि।
राई मांन बसंदरा, केते काठ जलांहि ॥ ६५ ॥

करतूति करम ॥

कर्मैं कर्म काटै नहीं कर्मैं कर्म न जाइ।
कर्मैं कर्म छूटै नहीं, कर्मैं कर्म बंधाइ ॥ ६६ ॥

॥ इति निहकर्मी पतिव्रता को अंग संपूर्ण समाप्त ॥ ८ ॥

---

(६१) साहिब (परमात्मा) जैसी निधि त्यागि कर, मूर्ख जन पुत्रादिकों की याचना करते हैं उस से कल्याण नहीं होता ॥

(६४) इस साखी के पीछे सुमिरण के अंग की १२, १३, १४ और १५ वीं साखियां पुस्तक नं० १, २, और ३ में दोहराई गई हैं उन को पुस्तक नं० ४ थी और ५ वी के अनुसार यहां नहीं रक्खी ॥

अथ चितावणी कौ अंग ॥ ९ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
दादू जे साहिब कौं भावे नहीं, सो हम थें जिनि होइ ।
सतगुर लाजे आपणा, साध न मानें कोइ ॥ २ ॥
दादू जे साहिब कौं भावे नहीं, सो सब परहरि प्रांण ।
मनसा वाचा कर्मना, जे तूं चतुर सुजाण ॥ ३ ॥
दादू जे साहिब कौं भावे नहीं, सो जीव न कीजीरे ।
परहरि विषै विकार सब, अमृत रस पीजीरे ॥ ४ ॥
दादू जे साहिब कौं भावे नहीं, सो वाट न बूझीरे ।
सांई सौं सनमुष रही, इस मन सौं झूझीरे ॥ ५ ॥
दादू अचेत न होइये, चेतन सौं चित लाइ ।
मनवां सूता नींद भरि, सांई संग जगाइ ॥ ६ ॥
दादू अचेत न होइये, चेतन सौं करि चित्त ।
ये अनहद जहां थें ऊपजै, षोजौ तहं ही नित्त ॥ ७ ॥
दादू, जन ! कुछ चेत करि, सौदा लीजी सार ।
निपर कमाई न छूटणा, अपणे जीव विचार ॥ ८ ॥

---

(५) "वाट" के बदले "वात" पुस्तक नं० २ में है ॥ इस साखी के पीछे चार साखी (नं० ४७–५० सुमिरण के अंग की) पुस्तक नं० ३ में अधिक लिखी हैं। अन्य पुस्तकों में वो यहां नहीं हैं ॥

(८) जन = हे जन। छूटणा = छोड़ना ॥

दादू कर सांई की चाकरी, ये हरि नाव न छोड़ ।
जाणा है उस देसकों, प्रीति पिया सौं जोड़ ॥ ९ ॥
आपा पर सब दूरि कर, राम नाम रस लाग ।
दादू औसर जात है, जागि सकै तौ जाग ॥ १० ॥
बारबार यहु तन नहीं, नर नाराइण देह ।
दादू बहुरि न पाइये, जनम अमोलिक येह ॥ ११ ॥
एकाएकी राम सौं, कै साधू का संग ।
दादू अनत न जाइये, और काल का अंग ॥ १२ ॥
दादू तन मन के गुण छाड़ि सब, जब होइ निनारा ।
तब अपने नैनहुं देषिये, परगट पीव प्यारा ॥ १३ ॥
दादू झांती पाये पसु पिरी, अंदरि सो आहे, ।
होणी पाणे विच में; भिहर न लाहे ॥ १४ ॥
दादू झांती पाये पसु पिरी, हांणें लाइम वेर ।
साथ सभो ईह लियो, पोइ पसंदो केर ॥ १५ ॥

इति चितावणी को अंग सम्पूर्ण समाप्त ॥ ९ ॥

---

(१४) झांती (झरोखा रूपी देह) पाई है, उस में पिरी (परमेश्वर) को पसु (परप = देख) होणी = अब । पाणे = आप। मिहर = कृपा । लाहे = उतारिये, छांडिये ॥

(१५) नर देह पाई है तिस में परमेश्वर को देख, ढील मत कर। साथी सब चले गये, तू पड़ा हुआ क्या देखता है ॥

अथ मन कौ अङ्ग ॥ १० ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
  वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
दादू यहु मन वरजी बावरे, घट में राषी घेरि ।
  मन हस्ती माता वहै, अंकुस दे दे फेरि ॥ २ ॥
हस्ती छूटा मन फिरै, क्यूं ही बंध्या न जाइ ।
  बहुत महावत पचि गये, दादू कछु न वसाइ ॥ ३ ॥
जहां थैं मन उठि चलै, फेरि तहां ही राषि ।
  तहं दादू लै लीन करि, साध कहैं गुर साषि ॥४॥ (प, ह)
थोरैं थोरैं हटकिये, रहैगा ल्यौ लाइ ।
  जब लागा उनमन सौं, तब मन कहीं न जाइ ॥ ५ ॥
आडा दे दे राम कौं, दादू राषै मन ।
  साषी दे अस्थिर करै, सोइ साधू जन ॥ ६ ॥
सोई सूर जे मन गहै, निमष न चलने देइ ।
  जबहीं दादू पग भरै, तबहीं पाकड़ि लेइ ॥ ७ ॥
जेती लहरि समंद की, तेते मनह मनोरथ मारि ।
  बैसै सब संतोष करि, गहि आत्म एक विचारि ॥ ८ ॥
दादू जे मुष माँहिं बोलता, श्रवणहु सुणता आइ ।
  नैनहुं माँहिं देषता, सो अंतरि उरझाइ ॥ ९ ॥

---

(२) बरजी = बरजिये, रोकिये ॥ राखी = राखिये ॥

(९) जब मन बोलने को, सुनने को, देखने को या अन्य इंद्रियों के विषयों की ओर प्रवृत्त हो, तो मन को अपने अंदर आत्मा ही में उरझाओ ॥

दादू चम्वक देषि करि, लोहा लागै आइ ।
यों मन गुण इंद्री एक सौं, दादू लीजै लाइ ॥ १० ॥
मन का आसण जे जिव जाणै, तौ ठौर ठौर सब सूझै ।
पंचौं आणि एक घरि राषै, तब अगम निगम सब बूझै ॥११॥
बैठे सदा एक रस पीवै, निरवैरी कत झूझै ।
आतमराम मिलै जब दादू, तब अंगि न लागै दूजै ॥१२॥
जब लग यहु मन थिर नहीं, तब लग परस न होइ ।
दादू मनवां थिर भया, सहजि मिलैगा सोइ ॥ १३ ॥
दादू विन अवलंबन क्यूं रहै, मन चंचल चलि जाइ ।
अस्थिर मनवां तौ रहै, सुमिरण सेती लाइ ॥ १४ ॥
मन अस्थिर करि लीजै नाम, दादू कहै तहां ही राम ॥१५॥
हरि सुमिरण सौं हेत करि, तब मन निहचल होइ ।
दादू वेध्या प्रेमरस, बीप न चालै सोइ ॥ १६ ॥
जब अंतरि उरझ्या एक सौं, तब थाके सकल उपाइ ।
दादू निहचल थिर भया, तब चलि कहीं न जाइ ॥१७॥
दादू कउवा बोहिथ बैसि करि, मंझि समंदां जाइ ।
उडि उडि थाका देषि तब, निहचल बैठा आइ ॥१८॥

---

(१४) दृष्टांत— साध भूत दियो सेठ को, टहल करन के काज ।
बांस मंगाय गड़ाय करि, बड़ो काज यह आज ॥

(१८) कउवा रूपी मन देह अध्यास में बैठि कर संसार सागर में उड़ता है । जब कुछ सार नहीं पाता तब पीछे अपने आतम स्वरूप में स्थित होता है, यथा—

यहु मन कागद की गुडी, उडि चढ़ी आकास ।
दादू भींगे प्रेमजल, तब आइ रहै हम पास ॥ १९ ॥

दादू पीला गारि का, निहचल थिर न रहाइ ।
दादू पग नहीं साच के, भरमें दह दिसि जाइ ॥ २० ॥

तब सुष आनंद आतमा, जे मन थिर मेरा होइ ।
दादू निहचल राम सौं, जे करि जाणैं कोइ ॥ २१ ॥

मन निर्मल थिर होत है, राम नाम आनंद ।
दादू दरसन पाइये, पूरण परमानंद ॥ २२ ॥

॥ विषया विरक्त ॥

दादू यौं फूटे थैं सारा भया, संधे संधि मिलाइ ।
बाहुड़ि बिषै न भूंचिये, तौ कबहूं फूटि न जाइ ॥ २३ ॥

दादू यहु मन भूला सो गली, नरक जाण के घाट ।
अब मन अविगत नाथ सौं, गुरू दिषाई बाट ॥ २४ ॥

दादू मन सुध स्याबत आपणां, निहचल होवै हाथि ।
तौ इहां ही आनंद है, सदा निरंजन साथि ॥ २५ ॥

मन कउवा निश्चल भया, सतसंगति बोहिथ पार ।
जगन्नाथ जग सार नहिं, नांउ बिड़द परि आइ ॥

(२०) "पीला गारिका"=मट्टी का कीला स्थायी (दृढ़) नहीं होता । जो सचे परमात्मा के चरणों की शरण नहीं लेता सो भ्रमता ही रहता है ॥

(२१) करि जाणै = करना जानै ॥

(२४) परमेश्वर के मार्ग में लग कर यह मन नर्क घाट के जाने की गली भूल गया ॥

जब मन लागै राम सौं, तब अनत काहे को जाइ ।
दादू पाणी लूंण ज्यूं, ऐसें रहै समाइ ॥ २६ ॥
ज्यूं जल पैसे दूध मैं, ज्यूं पाणी मैं लूंण । २-७६ ॥
. ऐसें आतम राम सौं, मन हठ साधै कूंण ॥ २७ ॥ घ,ङ
मन का मस्तक मूडिये, काम क्रोध के केस । १-७७ ॥
दादू विषै विकार सब, सतगुर के उपदेस ॥२८॥ ख ग घ ङ

करुणा ॥

सो कुछ हमथैं ना भया, जापरि रीझै राम ।
दादू इस संसार में हम आये बेकाम ॥ २६ ॥
क्या मुंह ले हांसि बोलिये, दादू दीजे रोइ ।
जनम अमोलिक आपणा, चले अक्यारथ पोइ ॥ ३० ॥
जा कारणि जगि जीजिबे, सो पद हिरदै नाहिं ।
दादू हरि की भगति बिन, ध्रिग जीवन कलि मांहि ॥३१॥
कीया मन का भांवता, मेटी आग्याकार ।
क्या ले मुष दिषलाइये, दादू उस भरतार ॥ ३२ ॥
इंद्री स्वारथ सब किया, मन मांगे सो दीन्ह ।
जा कारणि जगि सिरजिया, सो दादू कछू न कीन्ह॥३३॥
कीया था इस काम कौं, सेवा कारणि साज ।
दादू भूला बंदगी, सर्या न एको काज ॥ ३४ ॥
दादू विषै विकार सौं, जब लग मन राता । २-६६
तब लग चीति न आवई, त्रिभवन पति दाता ॥३५॥ घङ

(३१) जीजिये = जीविये ॥

दादू का जाणूं कब होइगा, हरि सुमिरण इकतार । २-६७।
का जाणूं कब छाडि है, यहु मन विषै विकार ॥३६॥कघङ

॥ मन प्रबोध ॥

बादिहि जनम गंवाइया, कीया बहुत विकार ।
यहु मन अस्थिर ना भया, जहं दादू निजसार ॥ ३७ ॥

॥ विषिया अतृपति ॥

दादू जिनि विष पीवै बावरे, दिन दिन बाढै रोग ।
देषत ही मरि जाइगा, तज विषिया रस भोग ॥३८॥कघ

आपा पर सब दूरि करि, राम नाम रस लाग । ६—१० ॥
दादू औसर जात है, जागि सकै तो जाग ॥३९॥कगघङ

॥ मनहरि भावरि ॥

दादू सब कुछ विलसतां, पातां पीतां होइ ।
दादू मन का भावता, कहि समझावै कोइ ॥ ४० ॥

दादू मन का भावता, मेरी कहै बलाइ ।
साच राम का भावता, दादू कहै सुणि आइ ॥ ४१ ॥

ये सब मन का भावता, जे कुछ कीजै आन ।
मन गहि राषै एक सौं, दादू साध सुजान ॥ ४२ ॥

जे कुछ भावै राम कौं, सो तत कहि समझाइ ।
दादू मन का भावता, सब की कहै बनाइ ॥ ४३ ॥

॥ चानक उपदेश ॥

पैंडे पग चालै नहीं, होइ रह्या गलियार ।
राम रथि निबहै नहीं, पैबे कौं हुसियार ॥ ४४ ॥

॥ पर परमोध ॥

दादू का परमोधे आन कौं, आपण वहिया जात ।
औरों कौं अमृत कहे, आपण ही विप पात ॥ ४५ ॥

दादू पंचों ये परमोधि ले, इनहीं कौं उपदेस । १–१४६ ॥
यहु मन अपणा हाथि करि, तौ चेला सब देस ॥४६॥घङ

दादू पंचों का मुप मूल है, मुप का मनवां होइ ।
यहु मन राषे जतन करि, साध कहावे सोइ ॥ ४७ ॥

दादू जब लग मन के दोइ गुण, तब लग निपनां नांहि ।
द्वै गुण मन के मिटि गये, तब निपनां मिलि मांहि ॥४८॥

काचा पाका जब लगें, तब लग अंतर होइ ।
काचा पाका दूरि करि, दादू एकै सोइ ॥ ॥ ४६ ॥

॥ मधि निपर्ष ॥

सहज रूप मन का भया, तब द्वै द्वै मिटी तरंग ।·१६—३॥
ताता सीला समि भया, तब दादू एकै अंग ॥ ५० ॥

॥ मन ॥

दादू बहु रूपी मन तब लगें, जब लग माया रंग ।
जब मन लागा राम सौं, तब दादू एकै अंग ॥ ५१ ॥

हीरा मन परि राषिये, तब दूजा चढै न रंग ।
दादू यौं मन थिर भया, अविनासी के संग ॥ ५२ ॥

---

(४८) मन के दोइ गुण=शीतोष्णादि द्वंद, देखो आगे साखी ५० वीं॥

(५१) हीरा रूपी निर्मल परमात्मा का ध्यान मन में रक्खें, तो दूजा रंग (संसार का माया मोह) मन पर न चढ़े। इस प्रकार अविनाशी के संग लगा हुआ मन आप स्थिर हो जाता है ॥

सुप दुप सब झांई पड़े, तब लग काचा मन ।
दादू कुछ व्यापे नहीं, तब मन भया रतन ॥ ५३ ॥
पाका मन डोले नहीं, निहचल रहे समाइ ।
काचा मन दह दिसि फिरे, चंचल चहुं दिसि जाइ ॥५४॥

॥ विरक्तता ॥

सीप सुधा रस ले रहे, पिवे न पारा नीर ।
मांहे मोती नीपजे, दादू बंद सरीर ॥ ५५ ॥

॥ मन ॥

दादू मन पंगुल भया, सब गुण गये विलाइ ।
है काया नौ जौवनी, मन बूढ़ा ह्वै जाइ ॥ ५६ ॥
दादू कछिव अपणे करि लिये, मन इंद्री निज ठौर। १-८६ ॥
नांइ निरंजन लागि रहु, प्राणी परहरि और ॥५७॥ क ग घ ङ

॥ जाचक ॥

मन इंद्री आंधा किया; घट में लहरि उठाइ ।
सांई सतगुर छाड़ि करि, देपि दिवानां जाइ ॥ ५८ ॥
दादू कहे—राम बिना मन रंक है, जाचे तीन्यूं लोक ।
जब मन लागा राम सौं, तब भागे दालिद्र दोप ॥५९॥
इंद्री का आधीन मन, जीव जंत सब जाचे ।
तिणें तिणें के आगें दादू, तिहूं लोक फिरि नांचे ॥६०॥

---

(५८) मन और इंद्रियों ने-घट (हृदय) में लहरि (इच्छा) उठा कर अंधा किया है, जिस से परमेश्वर को भूल कर, देखो, दीवानां (मूर्ख) फिरता है ॥

(६०) जाचै=सब से याचना करै । तिणें तिणें=क्षुद्र पदार्थ वा नीच जन ॥

इंद्री अपणे वसि करे, सो काहे जाचण जाइ ।
दादू अस्थिर आतमा, आसणि वैसे आइ ॥ ६१ ॥

मन मनसा दोन्यों मिले, तव जीव् कीया भांड़ ।
पंचों का फेर्या फिरै, माया नचावै रांड़ ॥ ६२ ॥

नकटी आगें नकटा नाचै, नकटी ताल वजावै ।
नकटी आगें नकटा गावै, नकटी नकटा भावै ॥ ६३ ॥

॥ आनलगानि विभचार ॥

पांचों इंद्री भूत हैं, मनवां षेतरपाल ।
मनसा देवी पूजिये, दादू तीन्यों काल ॥ ६४ ॥

जीवत लूटैं जगत सव, मृत्तक लूटैं देव ।
दादू कहां पुकारिये, करि करि मूये सेव ॥ ६५ ॥

---

(६२) मन संकल्प विकल्परूप भाव, तिसकी ऊट पटांग मनसा (इच्छा) ज्यूं २ प्राप्त होती जाती हैं त्यूं २ जीव् अनर्थ इच्छाओं को बढ़ाता हुआ भांड रूप (हीन दशा) को पहुंचता है। इस तरह से जीव् को माया रांड पांचों इंद्रियों द्वारा भ्रमाती है ॥

(६३) नकटी=मनसा, नकटा=मन ॥

(६४) तीनों काल (प्रभात मध्यान सायं) जगत जन इंद्रियों को भूत प्रेतादि की तरह, मन को भैरवादि क्षेत्रपालों की तरह, और मनसा को देवी की तरह पूजते हैं ॥

(६५) यह तीनों (इंद्रिय मन और मनसा) जीते जी (इस लोक में) सब जगत को और मरे पीछे (परलोक में) देवतों को लूटते (ठगते) हैं। दादूजी कहते हैं कि किस को पुकार कर कहें, सब ही जन उन तीनों की सेवा कर कर के मरते जाते हैं ॥

॥ मन ॥

अगनि धोम ज्यों नीकले, देषत सबै बिलाइ ।
त्यों मन बिछुट्या रामसौं, दह दिसि बीपरि जाइ ॥६६॥
घर छाडे जब का गया, मन बहुरि न आया ।
दादू अगनि के धोम ज्यों, पुर षोज न पाया ॥ ६७ ॥
सब काहू के होत हैं, तन मन पसरै जाइ ।
ऐसा कोई एक है, उलटा मांहि समाइ ॥ ६८ ॥
क्यों करि उलटा आणिये, पसरि गया मन फेरि ।
दादू डोरी सहज की, यों आणे घरि घेरि ॥ ६९ ॥
दादू साध सबद सौं मिलि रहै, मन राषै बिलमाइ ।
साध सबद बिन क्यों रहै, तबहीं बीपरि जाइ ॥ ७० ॥
चंचल चहुं दिसि जात है, गुरुबाइक सौं बन्ध । १-८४
दादू संगति साधकी, पार ब्रह्म सौं संध ॥ ७१ ॥ ग घ ङ
एक निरंजन नांव सौं, कै साधू संगति मांहि ।
दादू मन बिलमाइये, दूजा कोई नांहि ॥ ७२ ॥
तन में मन आवै नहीं, निस दिन बाहरि जाइ ।
दादू मेरा जिव दुषी, रहै नहीं ल्यौ लाइ ॥ ७३ ॥
तन में मन आवै नहीं, चंचल चहुं दिसि जाइ ।

---

(७२) कै=अथवा, केतो ॥
(६७) जब से मन घर छांड़ के गया तब से बहुरि न आया ॥
(६८) पसरै जाइ=पसरता जाय ॥
(६९) डोरी सहज की=पूर्वोक्त सहज उपाय (आत्म अभ्यास) रूपी डोरी ॥

दादू मेरा जिव दुषी, रहै न राम समाइ ॥ ७४ ॥

कोटि जतन करि करि मुये, यहु मन दह दिसि जाइ ।
राम नाम रोक्या रहै, नांही आन उपाइ ॥ ७५ ॥

यहु मन बहु बकवाद सौं, बाइ भूत ह्वै जाइ ।
दादू बहुत न बोलिये, सहजैं रहै समाइ ॥ ७६ ॥

सुमिरण नाम चितावनी ॥

भूला भोंदू फेरि मन, मूरिष मुग्ध गंवार ।
सुमिरि सनेही आपणा, आत्म का आधार ॥ ७७ ॥

मन माणिक मूरिष राषिरे, जण जण हाथि न देहु ।
दादू पारिष जौहरी, राम साध दोइ लेहु ॥ ७८ ॥

दादू मारया विन मानैं नहीं, यहु मन हरि की आन । १-८६ ।
ज्ञान षड्ग गुरदेव का, तासंगि सदा सुजान ॥ ७९ ॥ ग घ ङ

मन ॥

मन मृगा मारै सदा, ताका मीठा मांस ।
दादू षाइबे कौं हिल्या, तातैं आन उदास ॥ ८० ॥

॥ मन प्रमोध ॥

कह्या हमारा मानि मन, पापी परहरि काम ।
विषिया का संग छाडि दे, दादू कहि रे राम ॥ ८१ ॥

---

(७८) हे मूर्ख ! माणक रूपी मन को वसकर, जन २ (विषयों) के हाथ में मन दे । दो पारख=एक माणक का जौहरी, (२) राम का पारख साधु जन ॥

(८०) मन रूपी मृगे को सदा मारैं (जीतैं, रोकैं), तिस के रोकने में आनन्द होता है । जब इस मिठाई के खाने में पुरुष हिलजाय, तब अन्य भोगों से वह उदास हो जाता है ॥

केता कहि समुझाइये, मानै नहीं निलज ।
मूरिष मन समझै नहीं, कीये काज अकज ॥ ८२ ॥

॥ साच ॥

मनहीं मंजन कीजिये, दादू दरपण देह ।
मांहे मूरति देषिये, इहिं औसरि करि लेह ॥ ८३ ॥

॥ आनलगनि बिभचार ॥

तवहीं कारा होत हैं, हरि विन चितवत आन ।
क्या कहिये समझै नहीं, दादू सिपवत ज्ञान ॥ ८४ ॥

॥ साच ॥

दादू पाणी धोवैं बावरे, मन का मैल न जाइ ।
मन निर्मल तव होइगा, जव हरि के गुण गाइ ॥८५॥

दादू ध्यान धरें का होत हैं, जे मन नहिं निर्मल होइ ।
तौ वग सवहीं ऊधरें, जे इहि विधि सीझै कोइ ॥८६॥

दादू ध्यान धरें का होत है, जे मन का मैल न जाइ ।
वग मीनी का ध्यान धरि, पसू विचारे पाइ ॥ ८७ ॥

दादू काले थें धौला भया, दिल दरिया में धोइ ।
मालिक सेती मिलि रह्या, सहजें निर्मल होइ ॥ ८८ ॥

दादू जिस का दर्पण ऊजला, सो दर्सण देषे मांहि ।
जिस की मैली आरसी, सो मुष देषै नांहि ॥ ८९ ॥

---

(८४) कारा = मलीन ॥
(८८) धौला = शुद्ध । दरिया = ध्यानादि साधन ॥
(८९) दर्पण = मन, अंतःकरण ॥

दादू निर्मल सुध मन, हरि रंगि राता होइ ।
दादू कंचन करि लिया, काच कहे नहिं कोइ ॥ ९० ॥
यहु मन अपना थिर नहीं, करि नहिं जाणें कोइ ।
दादू निर्मल देव की, सेवा क्यों करि होइ ॥ ९१ ॥
दादू यहु मन तीन्यूं लोक में, अरस परस सब होइ ।
देही की रष्या करें, हम जिनि भीटे कोइ ॥ ९२ ॥
दादू देह जतन करि राषिये, मन राष्या नहिं जाइ ।
उत्तिम मधिम वासना, भला बुरा सब पाइ ॥ ९३ ॥
दादू हाडों मुष भर्‌या, चाम रह्या लपटाइ ।
माँहे जिभ्या मांस की, ताही सेती पाइ ॥ ९४ ॥
नऊ दुवारे नरक के, निसदिन वहै बलाइ ।
सुचि कहां लौं कीजिये, राम सुमिरि गुण गाइ ॥ ९५ ॥
प्राणी तन मन मिलि रह्या, इंद्री सकल विकार ।
दादू ब्रह्मा सुद्र घरि, कहां रहै आचार ॥ ९६ ॥

(८०–९०) इन साखियों का सार यह है (१) सर्व कामनाओं और विषयों के संग का त्याग, (२) ईश्वर का चिंतन और ध्यान, अन्य पदार्थों के चिंतन वा संसर्ग से अन्तःकरण मे कालख (मलीनता) उत्पन्न होती है, (३) वैराग्य और ईश्वरोपासना के परिपक्व होने से अन्तःकरण शुद्ध होता है तब परमात्मा की प्राप्ति संभव है । इस प्रकार से शुद्ध किया हुआ मन कंचनरूप होता है ॥

(९२) लोग देह का एक दूसरे से स्पर्श करने से संकोच करते हैं पर मन जगत में सर्वत्र स्पर्श करता है, उस का विचार कोई नहीं करता ॥

(९१–९६) इन साखियों में मन के शुद्ध करने पर जोर दिया है ॥

दादू जीवै पलक में, मरतां कल्प विहाइ ।
दादू यहु मन मसकरा, जिनि कोई पतियाइ ॥ ९७ ॥
दादू मूवा मन हम जीवत देष्या, जैसे मड़हट भूत ।
मूवां पीछैं उठि उठि लागै, ऐसा मेरा पूत ॥ ९८ ॥
निहचल करतां जुग गये, चंचल तवहीं होइ ।
दादू पसरै पलक में यहु मन मारै मोंहि ॥ ९९ ॥
दादू यहु मन मींडका, जल सौं जीवै सोइ ।
दादू यहु मन रिंद है, जिनि रु पतीजै कोइ ॥ १०० ॥
मांहै सूपिम ह्वै रहै, वाहरि पसारै अंग ।
पवन लागि पौढ़ा भया, काला नाग भुवंग ॥ १०१ ॥
श्वासं विश्राम ॥
सुपिनां तव लग देपिये, जव लग चंचल होइ ।
जब निहचल लागा नांवसों, तव सुपिना नांहीं कोइ ॥१०२॥

वहुधा जन शरीर की शुद्धि अशुद्धि का विशेष विचार करते हैं पर मन धन के सर्वत्र भ्रमण करते रहते हैं और विषयों के संग से मलीन होते हैं। दादू जी का कथन है कि जिज्ञासु को मन की शुद्धि के निमित्त विशेष उपाय करना चाहिये ॥

(९७–१०१) मन का शांत होकर पुनः चलायमान होना यहां वतलाया है। मेंढक सूखी ऋतुओं में अत्यंत शांत होते हैं पर वर्षाऋतु के आगमन से तुरंत बोलने लगते हैं। इसी प्रकार से मन शांत होकर वारंवार चलायमान होता है। इस हेतु से दादूजी कहते हैं कि मन को जीत कर साधन न छोड़ बैठे, किंतु साधन करता रहे, क्योंकि मन का कुछ भरोसा नहीं, क्या जानें फिर कव चेत उठे ॥ जैसे मेंढक नवीन जल पाकर जी उठते हैं तैसे ही मन विषयों के संयोग से पुनः चेत उठता है, अतः विषयों से मन को सदैव उपराम रखना उचित है ॥

जागत जहं जहं मन रहै, सोवत तहं तंह जाइ ।
दादू जे जे मनि वसै, सोइ सोइ देषै आइ ॥ १०३ ॥
दादू जे जे चिति वसै, सोइ सोइ आवे चीति ।
वाहरि भीतरि देषिये, जाही सेती प्रीति ॥ १०४ ॥
सावणि हरिया देषिये, मन चित ध्यान लगाइ ।
दादू केते जुग गये, तौभी हरचा न जाइ ॥ १०५ ॥
जिस की सुरति जहां रहै, तिस का तहं विश्राम ।
भावै माया मोह मैं, भावै आतम राम ॥ १०६ ॥
जहं मन राषै जीवतां, मरतां तिस घरि जाइ ।
दादू वासा प्राण का, जहं पहली रहया समाइ ॥१०७॥
जहां सुरति तहं जीव है, जहं नांही तहं नांहि ।
गुण निर्गुण जहं राषिये, दादू घर वन मांहि ॥१०८॥
जहां सुरति तहं जीव है, आदि अंत अस्थान ।
माया ब्रह्म जहं राषिये, दादू तहं विश्राम ॥ १०९ ॥
जहां सुरति तहं जीव है, जिवन मरण जिस ठौर ।
विष अमृत जहं राषिये, दादू नांही और ॥ ११० ॥
जहां सुरति तहं जीव है, जहं जाणैं तहं जाइ ।
गम अगम जहं राषिये, दादू तहां समाइ ॥१११॥
मन मनसा का भाव है, अन्ति फलैगा सोई ।
जब दादू बाणक बण्या, तब आसै आसण होइ ॥११२॥
जप तप करणी करि गये, सरग पहूंते जाइ ।
दादू मन की वासना, नरकि पड़े फिरि आइ ॥ ११३ ॥

पाका काचा ह्वै गया, जीत्या हारे डाव ।
अंति काल गाफिल भया, दादू फिसले पांव ॥ ११४ ॥
दादू यहु मन पंगुल पंचदिन, सब काहू का होइ ।
दादू उतरि अकास थें, धरती आया सोइ ॥ ११५ ॥
ऐसा कोई एक मन, मरे सो जीवे नांहि ।
दादू ऐसे बहुत हैं, फिरि आवें कलि मांहि ॥ ११६ ॥
देषा देषी सब चले, पारि न पहुंच्या जाइ ।(१३—७५)
दादू आसाणि पहल के, फिरि फिरि बैठे आइ ॥ ११७ ॥

॥ जग जन विपरीत ॥

वरताणि एकै भांति सब, दादू संत असंत ।
भिन्न भाव अन्तर घणा, मनसा तहं गच्छन्त ॥ ११८ ॥
यहु मन मारे मोमिनां, यहु मन मारे मीर ।
यहु मन मारे साधिकां, यहु मन मारे पीर ॥ ११९ ॥
दादू मन मारे मुनियर मुये, सुर नर किये संघार ।
ब्रह्मा विश्न महेस सब, राषै सिरजनहार ॥ १२० ॥
मन वाहे मुनियर बड़े, ब्रह्मा विश्न महेस ।
सिध साधिक जोगी जती, दादू देस विदेस ॥ १२१ ॥

---

(११८) वरताणि = बरताव ॥

(११९) मन बड़े २ जनों को मारता है ॥

(१२०) मन ने सब को हराया ॥

(१२१) "वाहे"=बहाये, डिगाये, अर्थात् उच्च दशा से नीच दशा में डाले ॥

॥ मनमुषी मान ॥

पूजा मान बड़ाइयां, आदर मांगै मन ।
राम गहै, सब परहरै; सोई साधू जन ॥ १२२ ॥
जहं जहं आदर पाइये, तहां तहां जिव जाइ ।
बिन आदर दीजै राम रस, छाडि हलाहल पाइ ॥१२३॥

॥ करणी बिना कथणी ॥

करणी किरका को नहीं, कथणी अनंत अपार ।
दादू यूं क्यूं पाइये, रे मन मूढ़ गंवार ॥ १२४ ॥

॥ जाया माया मोहनी ॥

दादू मन मृत्तक भया, इंद्री अपणै हाथ । १२ (—१९७)
तौ भी कदे न कीजिये, कनक कामनी साथ ॥ १२५ ॥

॥ मन ॥

अब मन निरभै, घरि नहीं, भै में बैठा आइ ।
निरभै संग थैं बीछुट्या, तब काइर ह्वै जाइ ॥ १२६ ॥
जब मन मृत्तक व्है रहै, इंद्री बल भागा । (८–४१)
काया के सब गुण तजै, निरंजन लागा ॥१२७॥ क घ ङ
आदि अंत मधि एक रस, टूटै नहिं धागा । (८–४२)
दादू एकै रह गया, तब जाणी जागा ॥ १२८ ॥ क घ ङ
दादू मन के सीस मुष, हस्त पांव है जीव ।
श्रवण नेत्र रसना रटै, दादू पाया पीव ॥ १२९ ॥

(१२४) किरका को नहीं = लेश भी नहा ।

(१२६) अब (मृतक अवस्था में) मन निर्भय है, जब इस घर (अवस्था) में न रहे, तब भय को प्राप्त होता है । निर्भय परमात्मा के संग से बिछुड़ा हो तब कायर हो जाता है ॥

जहं के नवाये सब नवें, सोई सिर करि जाणि ।

जहं के बुलाये बोलिये, सोई मुष परवाणि ॥ १३० ॥

जहं के सुणाये सब सुणें, सोई श्रवण सयाण ।

जहं के दिषाये देषिये, सोई नैन सुजाण ॥ १३१ ॥

दादू मन ही सौं मल ऊपजे, मन ही सौं मल धोइ ।(१–८८)

सीष चले गुर साध की, तौ तूं निर्मल होइ ॥१३२॥ गघङ

दादू मन ही माया ऊपजे, मन ही माया जाइ ।

मन ही राता राम सौं, मन ही रहया समाइ ॥ १३३ ॥

दादू मन ही मरणा ऊपजे, मन ही मरणा पाइ ।

मन अविनासी ह्वै रह्या, साहिब सौं ल्यौ लाइ ॥१३४॥

मन हीं सन्मुष नूर है, मन हीं सन्मुष तेज ।

मन ही सन्मुष जोति है, मन हीं सन्मुष सेज ॥१३५॥घ

मन हीं सौं मन थिर भया, मन हीं सौं मन लाइ ।

मन ही सौं मन मिलि रह्या, दादू अनत न जाइ ॥१३६॥

इति मन कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ १० ॥

---

(१३४) जन्म मरणादि सब मन की कल्पना है। यह तात्पर्य है ॥

(१०२–१३६) मन का आसै विश्राम। जैसी २ मन की मनसा होती है तैसा ही तैसा मन का विश्राम भी होता है। जो २ वस्तु मन चाहता है सोई सोई उस के चिंतन में रहती है। जिस २ की सुरत चिंतन ' वह करता है तहां ही तहां जीव जाता है। जो विषयों में लगता है वह संसार में डूबा रहता है। जो परमात्मा से नेह लगाता है सो परमात्मा को प्राप्त होता है। और मन के संस्कार बहुत काल तक रहते हैं, कालांतर में भी जाकर वासनायें फलीभूत होती हैं। वासनाओं के वश से पुरुष स्वर्ग से पुनः इस लोक

अथ सुषिम जन्म को अङ्ग ॥ ११ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
दादू चौरासी लष जीव की परकीरति घट मांहिं ।
अनेक जन्म दिन के करै, कोई जाणै नांहि ॥ २ ॥

को माना है। पर जिस ने दृढ़ साधन कर के विषय वासनाओं को दग्ध कर दिया है और सर्व प्रकार से परमात्मा में आश्रय लिया है वही इस संसार सागर से पार हो सकता है, जिज्ञासू को अपने कल्याण के निमित्त सर्वप्रकार की विषय वासनाओं को त्यागने में लगे रहना चाहिये, शनैः २ अभ्यास द्वारा ही सफलता संभव है ॥

मन बड़ा बलवान है, इस ने बड़े २ मुनियों को भी डिगा दिया है। दादूजी का उपदेश है कि मन और इंद्रियों को जीत भी लिया हो तौ भी "कनक कामिनी" का साथ न करै ॥ जब मन और इंद्रियां पूर्ण रूप से वश में आजांय और सर्व ओर से दृष्टि ब्रम्ह में एक रस लग जाय तभी जीव आत्म ज्ञान को प्राप्त होता है ॥

मन ही से जीव हीन दशा को प्राप्त होता है, मन ही से निर्मलता पाता है. मन ही अविनाशी ब्रम्ह दशा को पहुंचाता है, सो मन को निर्मल करना ही मुख्य साधन है ॥

(२) कबीर माए पिंड कौं ताजि चलै, मुआ कहै सब कोइ ।
जीव छतां जा मैं मरै, सूक्षम लषै न कोइ ॥

दादू जेते गुण व्यापैं जीव कौं, ते ते ही अवतार ।
आवागवन यहु दूरि करि, समरथ सिरजनहार ॥ ३ ॥
सब गुण सब ही जीव के, दादू व्यापैं आइ ।
घट माँहैं जामैं मरै, कोई न जाणैं ताहि ॥ ४ ॥
जीव जन्म जाणैं नहीं, पलक पलक में होइ ।
चौरासी लप भोगवै, दादू लपै न कोइ ॥ ५ ॥
अनेक रूप दिन के करै, यहु मन आवै जाइ ।
आवागवन मन का मिटै, तब दादू रहै समाइ ॥ ६ ॥
निसवासुरि यहु मन चलै, सूषिम जीव संधार ।
दादू मन थिर कीजिये, आतम लेहु उबारि ॥ ७ ॥
कबहूं पावक, कबहूं पाणी, धर अंबर गुण बाइ ।
कबहूं कुंजर कबहूं कीड़ी, नर पसुवा ह्वै जाइ ॥ ८ ॥

॥ करणी बिना कथणी ॥

सूकर स्वान सियाल सिंघ, सर्प रहैं घट मांहि । (१३–६३)
कुंजर कीड़ी जीव सब, पांडे जाणैं नांहि ॥ ९ ॥
इति सूषिम जन्म को अङ्ग संपूर्ण समाप्त.॥ ११ ॥

---

(३) एक अर्थ यह है कि हे सिरजनहार ! यह आवागमन तूं दूरि कर ॥ दूसरा अर्थ—हे जिज्ञासू ! यह आवागमन तूं दूरि करै तौ तू ही सिरजनहार होवे ॥

(५) भोगवै = भोगै ॥

(७) रात दिन जो मनोथों द्वारा जीव चलता है सोई उसका संहार होकर चौरासी कराता है ॥

दृष्टांत—यह साखी चरचा समय, ढूंढ्या कै पूति भाखि ।
गुर दादू के वचन सुनि, मस्तक चरणों राखि ॥

अथ माया को अङ्ग ॥ १२ ॥
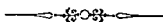
दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
साहिब है पर हम नहीं, सब जग आवै जाइ ।
दादू सुपिना देषिये, जागत गया बिलाइ ॥ २ ॥
दादू माया का सुष पंचदिन, गर्ब्यौ कहा गंवार ।
सुपिनै पायौ राजधन, जात न लागै वार ॥ ३ ॥
दादू सुपिनैं सूता प्राणिया, कीये भोग बिलास ।
जागत झूठा ह्वै गया, ताकी कैसी आस ॥ ४ ॥
यौं माया का सुष मन करै, सेज्या सुंदरि पास ।
अंति काल आया गया, दादू होहु उदास ॥ ५ ॥
जे नांही सो देषिये, सूता सुपिनैं मांहि ।
दादू झूठा ह्वै गया, जागे तो कुछ नांहि ॥ ६ ॥
यहु सब माया मृग जल, झूठा झिलिमिलि होइ ।
दादू चिलका देषि करि, सति करि जाना सोइ ॥ ७ ॥

(२) साहिब सतस्वरूप है पर हम नहीं, अर्थात् हम शरीर रूप अथवा हमारा आपा (खुदी) सत नहीं, सब जगत जन्मता मरता है जैसे स्वमा स्वमकाल में प्रतीत होता है पर जागने ही विलाय जाता है तैसे जगत भी बोध काल में विलाय जाता है ॥

(७) मृग जल=मरु जल। बालू दूर से जलवत् प्रतीत होती है उस को

झूठा झिलिमिलि मृग जल, पाणी करि लीया ।
दादू जग प्यासा मरे, पसु प्राणी पीया ॥ ८ ॥

॥ पति पहचान ॥

छलावा छलि जाइगा, सुपिना वाजी सोइ ।
दादू देपि न भूलिये, यहु निज रूप न होइ ॥ ९ ॥

॥ माया ॥

सुपिनें सब कुछ देपिये, जागे तौ कुछ नांहिं ।
ऐसा यहु संसार है, समझि देपि मन मांहिं ॥ १० ॥
दादू ज्यों कुछ सुपिनें देपिये, तैसा यहु संसार ।
ऐसा आपा जाणिये, फूल्यो कहा गंवार ॥ ११ ॥
दादू जतन जतन करि रापिये, दिढ गहि आतम मूल ।
दूजा दृष्टि न देपिये, सब ही सैंवल फूल ॥ १२ ॥
दादू नैनहुं भरि नहिं देपिये, सब माया का रूप ।
तहं ले नैना रापिये, जहं है तत्त अनूप ॥ १३ ॥
हस्ती, हय, वर, धन देपि करि, फूल्यो अंग न माइ ।

देख कर प्यासे मृग उस की ओर दौड़ते हैं, जब प्रथम देखे स्थान पर पहुंचते हैं तब वहां वालू ही पाते, पर कुछ दूर आगे का वालू फिर जलवत प्रतीत होता है। इसी तरह से बार २ मृग मरुजल के पीछे धावता है पर प्यास नहीं बुझा पाता ॥ इस प्रकार का मरुजलवत संसार है ॥

(८) पशुरूपी प्राणी मरुजलरूपी विषय भोग पीते हैं, तौ भी प्यासे ही रहते हैं ॥

(१२) सैंवल के फल में केवल कपास होती है कोई खाने के योग्य वस्तु नहीं होती ॥

भेरि दमामा एक दिन, सबही छाडे जाइ ॥ १४ ॥

दादू माया बिहड़े देषतां, काया संगि न जाइ ।

कृतम बिहड़े बावरे, अजरावर ल्यौ लाइ ॥ १५ ॥

दादू माया का बल देषि करि, आया अति अहंकार ।

अंध भया सूझै नहीं, का करि है सिरजनहार ॥ १६ ॥

॥ विरक्तता ॥

मन मनसा माया रती, पंच तत्त परकास ।

चौदह तीन्यूं लोक सब, दादू होइ उदास ॥ १७ ॥

माया देषे मन षुसी, हिरदै होइ बिगास ।

दादू यह गति जीव की, अंति न पूगै आस ॥ १८ ॥

मन की मूठि न मांडिये, माया के नीसाण ।

पीछैं ही पछिताहु गे, दादू षोटे बाण ॥ १९ ॥

॥ सिसन स्वाद ॥

कुछ षातां कुछ षेलतां, कुछ सोवत दिन जाइ ।

कुछ विषिया रस बिलसतां, दादू गये बिलाइ ॥ २० ॥

॥ संगति कुसंगति ॥

मांषण मन पाहण भया, माया रस पीया ।

पाहण मन मांषण भया, राम रस लीया ॥ २१ ॥

---

(१४) फूल्यौ अंग न माइ=फूल कर अंग में नहीं समाता। भेरिदमामा=शहनाई बाजा ॥

(१७) चौदह भुवन-और तीनौं लोक सब पांच भूतों के कार्य हैं, माया में रती मन की मनसा को इन से उदास करो ॥

(१९) माया के निशान पर मनरूपी बाण को कमान पर (मूठि न मांडिये) संधान न करिये, अर्थात् मन को माया में न लगाइये ॥

दादू माया सौं मन बीगड़्या, ज्यों कांजी करि दूध ।
हे कोई संसार में, मन करि देवै सूध ॥ २२ ॥
गंदी सौं गंदा भया, यौं गंदा सब कोइ ।
दादू लागे पूब सौं, तो पूब सरीपा होइ ॥ २३ ॥
दादू माया सौं मन रत भया, विषै रसि माता ।
दादू साचा छाडि करि, झूठे रंगि राता ॥ २४ ॥
माया के संगि जे गये, ते बहुरि न आये ।
दादू माया डाकणी, इन केते पाये ॥ २५ ॥
दादू माया मोट विकार की, कोइ न सकई डारि ।
बहि बहि मूये बापुरे, गये बहुत पचिहारि ॥ २६ ॥
दादू रूप राग गुण अणसरे, जहं माया तहं जाइ ।
विद्या अषिर पंडिता, तहां रहे घर छाइ ॥ २७ ॥
साध न कोई पग भरे, कबहूं राज दुवारि ।
दादू उलटा आप में, बैठा ब्रह्म विचारि ॥ २८ ॥
॥ आर्त्त विश्राम ॥
दादू अपणे अपणे घरि गये, आपा अंग-विचारि ।
सहकामी माया मिले, निहकामी ब्रह्म संभारि ॥ २९ ॥
माया ॥
दादू माया मगन जु ह्वे रहे, हम से जीव अपार ।
माया मांहैं ले रही, डूबे काली धार ॥ ३० ॥

(२६) सकई = सकै ॥
(२७) विद्वान् पंडित जन भी माया के रूपादि के अनुसार (पीछे) जाते हैं ॥
(३०) कालीधार = भयानक स्थल ॥

॥ सिसन स्वाद ॥

दादू विषै के कारणैं रूपराते रहैं, नैंन नापाक यौं कीन्ह भाई।
बदीकी बात सुणत सारा दिन, श्रवण नापाक यौं कीन्ह जाई ॥३१॥
स्वाद के कारणैं लुब्धि लागी रहै, जिभ्या नापाक यौं कीन्ह पाई।
भोग के कारणैं भूप लागी रहै, अंग नापाक यौं कीन्ह लाई ॥ ३२ ॥

॥ माया ॥

दादू नगरी चैन तब, जब इक राजी होइ।
दोइ राजी दुष दुंद मैं, सुषी न बैसे कोइ ॥ ३३ ॥
इक राजी आनंद है, नगरी निहचल वास।
राजा परजा सुषि बसैं, दादू जोति प्रकास ॥ ३४ ॥

॥ सिसन स्वाद ॥

जैसैं कुंजर काम बस, आप बंधाणा आइ।
ऐसैं दादू हम भये, क्यों करि निकस्या जाइ ॥ ३५ ॥
जैसैं मर्कट जीभ रस, आप बंधाणा अंध।
ऐसैं दादू हम भये, क्यों करि छूटै फंध ॥ ३६ ॥
ज्यौं सूवा सुष कारणैं, बंध्या मूरिष मांहिं।

---

(३३) इक राजी = एक का राज। दोइ राजी = दो का राज ॥

(३६) बंदर के पकड़ने की कहावत यह है। एक छोटे मुंह के बर्तन में चने डालकर बर्तन को इस प्रकार से जमीन में गाड़ देते हैं कि उस का मुंह खुला रहता है, बंदर उस बर्तन में चनों की खातिर सीधा हाथ डालता है और चनों की मुट्ठी बांध कर निकालना चाहता है, तब मुट्ठी बर्तन के मुख में अड़जाती है। बंदर न मुट्ठी खोल कर चनों को छोड़ता है, न उसका हाथ बाहर निकलता है, इतने में बंदर पकड़ लिया जाता है ॥

ऐसैं दादू हम भये, ज्यौंही निकसैं नाहिं ॥ ३७ ॥

जैसैं अंध अज्ञान गृह, बंध्या मूरिष स्वादि ।

ऐसैं दादू हम भये, जन्म गंवाया बादि ॥ ३८ ॥

दादू बूड़ि रह्या रे बापुरे, माया गृह के कूप ।

मोह्या कनक अरु कामिनी, नाना बिधि के रूप ॥३९॥

॥ सिसन स्वाद ॥

दादू स्वादि लागि संसार सब, देषत परलै जाइ ।

इंद्री स्वारथ, साच तजि, सबै बंधाणे आइ ॥ ४० ॥

विष सुष मांहे रमि रहे, माया हित चित लाइ ।

सोई संत जन ऊबरे, स्वाद छाडि गुण गाइ ॥ ४१ ॥

॥ आसक्तता मोह ॥

दादू झूठी काया झूठ घर, झूठा यहु परिवार ।

झूठी माया देषि करि, फूल्यौ कहा गंवार ॥ ४२ ॥

(३७—३८) पोंगी या फिरनी सूवा के बैठतेही नीचे फिर जाती है, सूवा ऊपर आने की कोशिश करता है तब पोंगी पुनः नीचे फिर जाती है। इस प्रकार जितनी बार सूवा ऊपर आता है उतनी ही बार पोंगी चक्कर खाती रहती है, चक्कर खाने से सूवा दुखी होता है और चिल्लाता है पर पोंगी छोड़ता नहीं, यदि छोड़ कर उड़जाय तो वह चक्कर स्वतः बंद होजाय। अपनी पकड़ और ऊपर आने की कोशिश से ही सूवा दुखी होता है । इसी रीति से मनुष्य संसार में आप बंध रहा है और दुःख मानता है, संसार से चित अलग करले तो इस के दुख का कारण दूर हो जाय ॥

(४०) जिस संसार का देखते ही प्रलय हो रहा है उस के स्वाद में इंद्रियों के भोगार्थ लग कर और परमात्मा को भूलकर मनुष्य माया में बंधते हैं ॥

॥ विरक्तता ॥

दादू झूठा संसार, झूठा परिवार, झूठा घरवार
झूठा नरनारि, तहां मन मानैं,
झूठा कुल जात, झूठा पितमात, झूठा बंधभ्रात,
झूठा तन गात, सति करि जानैं ।
झूठा सब धंध, झूठा सब फंध, झूठा सब अंध,
झूठा जाचंद, कहा मधु छानैं;
दादू भागि, झूठ सब त्यागि, जागिरे जागि,
देषि दिवानैं ॥ ४३ ॥

॥ आसक्तता ॥

दादू झूठे तन कै कारनैं, कीये बहुत विकार ।
यह दारा धन संपदा, पूत कुटुंब परिवार ॥ ४० ॥
ता कारणि हाति आतमा, झूठ कपट अहंकार ।
सो माटी मिल जाइगा, विसरया सिरजनहार ॥ ४५ ॥

॥ विरक्तता ॥

दादू जन्म गया सब देषतां, झूठी के संगि लागि ।
साचे प्रीतम कौं मिलै, भागि सकै तो भागि ॥ ५/२ ॥

---

(४३) जाचंद के स्थान में जाचंध पुस्तक नं० ३—४ में है ॥ मधुछानै = मधू छानै अर्थात् इन सब झूठे पदार्थों से तू क्या मिठास निकालेगा, अथवा हरि का मार्ग त्याग कर माया का मार्ग क्यों छानता है ?

(४६) गतम = गया । कर्तारजनं = खोटा सुख देनेवाला ॥ " परा " के स्थान में परह मूल पुस्तकों में पाया जाता है ॥

दादू गतं गृहं, गतं धनं, गतं दारा सुत जोवनं ।
गतं माता, गतं पिता, गतं बंधु सज्जनं ॥
गतं आपा, गतं परा, गतं संसार कत रंजनं ।
भजसि भजसि रे मन, परब्रह्म निरंजनं ॥ ४६ ॥

॥ आसक्तता मोह ॥

जीवों मांहे जिव रहे, ऐसा माया मोह ।
सांई सूधा सब गया, दादू नहिं अंदोह ॥ ४७ ॥

॥ विरक्तता ॥

माया मगहर षेत पर, सदगति कदे न होइ ।
जे बंचें ते देवता, राम सरीपे सोइ ॥ ४८ ॥
कालरि षेत न नीपजै, जे वाहे सौ वार । १३–१३८ ॥
दादू हाना बीज का, क्या पाचे मरे गंवार ॥ ४६ ॥
दादू इस संसार सौं, निमष न कीजे नेह ।
जामण मरण आवटणा, छिन छिन दाझै देह ॥५०॥

---

(४७) जीवों (स्त्री पुत्रादिकों) में मनुष्य का जीव (मन) रहता है, ऐसा जो माया मोह तिस कर के सांई सूधा (परमेश्वर सहित) सब जीवन मुक्त की प्राप्ति का अवसर चला गया, दयालजी कहते हैं इस में कोई संदेह नहीं॥

(४८) मगहर खेत काशी के समीप गंगापार है। कहावत है कि जो कोई जन मगहर में शरीर त्यागता है सो गधे का जन्म पाता है ॥ दयालजी कहते हैं कि मगहर खेत में मरा हुआ गधे (खर) की योनि को प्राप्त हो, किंतु माया प्रपंच में आसक्त पुरुष की सद्गति नहीं होती, इस प्रपंच से जो विरक्त हैं सो देवता हैं और राम (परमेश्वर) की सदृश हैं ॥

(५०) जामण मरण आवटणां = जीने मरने की दाह (अवटावन)॥

॥ आसक्तता मोह ॥

दादू मोह संसार कौं, विहरै तन मन प्राण।
दादू छूटै ज्ञान करि, को साधू सन्त सुजाण ॥ ५१ ॥

मन हस्ती माया हस्तिनी, सघन वन संसार।
तामैं निर्भै ह्वै रह्या, दादू मुग्ध गंवार ॥ ५२ ॥

॥ काम ॥

दादू काम कठिन घटि चोर है, घर फोड़ै दिन रात।
सोवत साह न जागई, तत्त वस्त ले जात ॥ ५३ ॥

काम कठिन घटि चोर है, मूसै भरे भंडार।
सोवतही ले जाइगा, चेतनि पहरे चार ॥ ५४ ॥

ज्यौं घुन लागे काठ कौं, लोहै लागे काट।
काम किया घट जाजरा, दादू बारह बाट ॥ ५५ ॥

॥ कर्तूति कर्म ॥

राह गिलै ज्यौं चन्द कौं, गहण गिलै ज्यौं सूर।
कर्म गिलै यौं जीव कौं, नषसिष लागे पूर ॥ ५६ ॥

दादू चन्द गिलै जब राह कौं, गहण गिलै जब सूर।
जीव गिलै जब कर्म कौं, राम रह्या भरपूर ॥ ५७ ॥

---

(५१) पुस्तक नं० ३ में "संसार कौं" के बदले "संसार के" है। अर्थ यह है कि संसार का मोह तन मन प्राण को हर लेता है। तिस मोह से कोई संत सुजान आत्म तत्त्व के ज्ञान से छूटता है॥

(५४) मूसै भरे भंडार=भरे हुए भंडार को चुराता है। चेतनि पहरे चार=चारौं पहर होशियार रहो॥

(५७) जीव गिलै जब कर्म कौं=तत्त्वज्ञान करके जीव कर्मों का ग्रास कर

कर्म कुहाड़ा, अंग बन, काटत बारंबार ।
अपने हांथों आप कों, काटत है संसार ॥ ५८ ॥

॥ स्वकीय मित्रसत्रता ॥

आपे मारे आप कों, यहु जीव विचारा ।
साहिब राषणहार है, सो हितू हमारा ॥ ५९ ॥
आपे मारे आप कों, आप आप कों षाइ ।
आपे अपणा काल है, दादू कहि समझाइ ॥ ६० ॥

॥ कर्तूति कर्म ॥

मरिबे की सब ऊपजे, जीवे की कुछ नांहिं ।
जीवे की जाणें नहीं, मरिबे की मन मांहिं ॥ ६१ ॥
बंध्या बहुत विकार सौं, सर्व पाप का मूल ।
ढाहे सब आकार कों, दादू यहु अस्थूल ॥ ६२ ॥

॥ काम ॥

दादू यहु तो दोजग देषिये, काम क्रोध अहंकार ।
राति दिवस जरिबो करे, आपा अगनि विकार ॥ ६३ ॥
विषे हलाहल षाइ करि, सब जग मरि मरि जाइ ।
दादू मुहरा नांव ले, रिदै राषि ल्यौ लाइ ॥ ६४ ॥

जाता है॥ जब तत्त्वज्ञान जीव को होता है तब राम ही राम भर पूर उस को दिखाई देता है ॥

(५९—६०) निषिद्ध कर्म करके जीव आप अपने को मारता है ॥

(६३) दोजग = दोज़ख = नर्क ॥

(६४) मुहरा = ज़हरमुहरारूपी राम नाम ॥

जेती विषिया विलसिये, तेती हत्या होइ ।
प्रतपि मांणस मारिये, सकल सिरोमणि सोइ ॥ ६५ ॥
विषिया का रस मद भया, नर नारी का मास ।
माया माते मद पिया, किया जन्म का नास ॥ ६६ ॥
दादू भावै साकत भगत है, विषै हलाहल पाइ । (१३–१३३)
तहं जन तेरा रामजी, सुपिनै कदे न जाइ ॥ ६७ ॥
पाडा बूजी भगति है, लोहरवाड़ा मांहि ।
परगट पेड़ाइत वसैं, तहं संत काहे कौं जांहि ॥ ६८ ॥

॥ माया ॥

सांपणि एक सब जीव कौं, आगे पीछे पाइ ।
दादू कहि उपगार करि, कोइ जन ऊबरि जाइ ॥ ६९ ॥
दादू पाये सांपणी, क्यों करि जीवैं लोग ।
राम मंत्र जन गारड़ी, जीवैं इहि संजोग ॥ ७० ॥
दादू माया कारणि जग मरे, पीव के कारणि कोइ ।
देषौ ज्यौं जग परजलै, निमष न न्यारा होइ ॥ ७१ ॥

---

(६५) विषय भोग (वीर्य का पतन करना) एक नर की हत्या की बराबर कहा है ॥ मनुष्य जीवों में शिरोमणि है ॥

(६७) भावै साकत (शाक्त) हो, भावै भगत (वैष्णव) हो, पर जो हलाहल (निषिद्ध) विषय भोग में फंसा है तिस के समीप जानां दयालजी वर्जित करते हैं ॥

(६८) लोहरवाड़ा एक ग्राम है, उस में ठग बसते थे । उन्होंने चाहा था कि संतों को निमंत्रण के बहाने बुलाय कर संतों के लटे पटे छीन लें। यह मनसूबा ठगों का दयालजी ने जान कर यह साखी कही थी ॥

(७१) देषौ ज्यौं जग परजलै = देखो जिस प्रकार से यह जगत जल

॥ जाया माया मोहनी ॥

काल कनक अरु कामिनी, परहरि इन का संग ।
दादू सब जग जलि मुवा, ज्यों दीपक जोति पतंग ॥७२॥
दादू जहां कनक अरु कामिनी, तहं जीव पतंगे जांहि ।
आगि अनंत, सूझै नहीं, जलि जलि मूये मांहि ॥ ७३ ॥

॥ चितकपटी ॥

घट मांहैं माया घणी, बाहरि त्यागी होइ ।
फाटी कंथा पहरि करि, चिहन करै सब कोइ ॥ ७४ ॥
काया राखै बंद दे, मन दह दिसि पेलै ।
दादू कनक अरु कामिनी, माया नाहि मेलै ॥ ७५ ॥
दादू मन सौं मीठी मुष सौं षारी, माया त्यागी कहैं बजारी ॥७५½॥

॥ माया ॥

माया मंदिर मीच का, तामैं पैठा धाइ ।
अंध भया सूझै नहीं, साध कहैं समझाइ ॥ ७६ ॥

॥ विरक्तता ॥

दादू केते जलि मुये, इस जोगी की आगि ।
दादू दूरै बंचिये, जोगी के संगि लागि ॥ ७७ ॥

रहा है, तौ भी कोई एक क्षणमात्र भी, इस माया से न्यारा नहीं होता ॥

(७४) घट मांहैं = मन के अंदर । फाटीकंथा = फकीरी बाना, चोला । चिहन = चैन ।

(७५ ½) बजारी (झूठे त्यागीजन) माया को मन में तो मीठी रखते हैं पर ऊपर से खारी बताया करते हैं ॥

(७७) जोगी की आगि = परमेश्वर की माया । माया से बच कर परमेश्वर (जोगी) के संग लगो ॥

॥ माया ॥

ज्यों जल मैंणी मछली, तैसा यहु संसार ।
माया माते जीव सब, दादू मरत न वार ॥ ७८ ॥

दादू माया फोड़े नैन दोइ, राम न सूझै काल ।
साध पुकारे मेर चढ़ि, देषि अग्नि की झाल ॥ ७९ ॥

॥ जाया माया मोहनी ॥

विना भुवंगम हम डसे, विन जल डूबे जाइ ।
विनहीं पावक ज्यों जले, दादू कुछ न बसाइ ॥ ८० ॥

॥ विषिया अतृप्ति ॥

दादू अमृतरूपी आप है, और सबै विष झाल ।
राषणहारा राम है, दादू दूजा काल ॥ ८१ ॥

॥ जग भुलावनि ॥

बाजी चिहर रचाइ करि, रह्या अपरछन होइ ।
माया पट पड़दा दिया, तातैं लषै न कोइ ॥ ८२ ॥

दादू बाहे देषतां-ढिगही ढोरी लाइ ।
पिव पिव करते सब गये, आपा दे न दिषाइ ॥ ८३ ॥

मैं चाहूं सो ना मिलै, साहिब का दीदार ।
दादू बाजी बहुत है, नाना रंग अपार ॥ ८४ ॥

हम चाहैं सो ना मिलै, औ बहुतेरा आहि ।
दादू मन मानै नहीं, केता आवै जाहि ॥ ८५ ॥

---

(७८) मैंणी = मांहिली = जल में रहने वाली मछली जैसे जल में ही मग्न है तैसे संसार इत्यादि ॥

(८३) ईश्वर ने जीवों के ढिग (साथ) ढोरी (चाह) लगाकर, उन को जगत में बाहे (भ्रमाय) रक्खा है ॥ देखो शब्द १४० और १५४ ॥

बाजी मोहे जीव सब, हम कों भुरकी बाहि ।
दादू कैसी करि गया, आपण रह्या छिपाइ ॥ ८६ ॥
दादू सांई सति है, दूजा भर्म विकार ।
नांव निरंजन निर्मला, दूजा घोर अंधार ॥ ८७ ॥
दादू सो धन लीजिये, जे तुम्ह सेती होइ ।
माया बांधे केई मुये, पूरा पड़्या न कोइ ॥ ८८ ॥
दादू कहै—जे हम छाडैं हाथ थैं, सो तुम लिया पसारि ।
जे हम लेवैं प्रीति सौं, सो तुम दीया डारि ॥ ८९ ॥
दादू हीरा पग सौं ठेलि करि, कंकर कौं कर लीन्ह ।
पारब्रह्म कौं छाडि करि, जीवन सौं हित कीन्ह ॥९०॥
दादू सब को वणिजै पारपलि, हीरा कोई न ले ।
हीरा लेगा जौहरी, जो मांगै सो दे ॥ ९१ ॥

॥ माया ॥

दड़ी दोट ज्यों मारिये, तिहूं लोक में फेरि ।
धुरि पहुंचे संतोष है, दादू चढ़िबा मेरि ॥ ९२ ॥

---

(८९) माया को संत जन त्यागते हैं, तिस को साधारण जन हाथ पसारि कर लेते हैं, परमतत्व को संत जन प्रीति से लेते हैं, उसको साधारण जन डाल देते हैं ॥

(९१) "पारपलि" = क्षार खली, तुच्छ चीजैं ॥

(९२) जैसे पुरुष दड़ी (गेंद) को दोट (चोट) लगाकर इधर उधर भ्रमाता है तैसे माया इस प्रपंच (जीवादि) को त्रिलोकी में भ्रमाती है। धुरि (अपने स्वरूप) में ही जीव स्थित हो करके संतोष पाता है, सो इसका मेरु पर चढ़ना (गुणातीत होना) है ॥

अनल पंषि आकास कौं, माया मेर उलंघि ।
दादू उलटे पंथ चढि, जाइ बिलंबे अंगि ॥ ९३ ॥
दादू माया आगैं जीव सब, ठाढे रहै कर जोड़ि ।
जिन सिरजे जल बूंद सौं, तासौं बैठे तोड़ि ॥ ९४ ॥
सुर नर मुनियर बसि किये, ब्रह्मा विश्न महेस ।
सकल लोक के सिर पड़ी, साधू के पग हेठ ॥ ९५ ॥
दादू माया चेरी संत की, दासी उस दरबारि ।
ठकुराणी सब जगत की, तीन्यूं लोक मंझारि ॥ ९६ ॥
दादू माया दासी संत की, साकत की सिरताज ।
साकत सेती भांडणी, संतौं सेती लाज ॥ ९७ ॥
चारि पदारथ मुकति बापुरी, अठ सिधि नो निधि चेरी ।
माया दासी ताके आगैं, जहं भक्ति निरंजन तेरी ॥९८॥
दादू कहै, ज्यौं आवै त्यौं जाइ बिचारी ।
बिलसी बितड़ी न माथैं मारी ॥ ९८ ३/१ ॥

(९३) जैसे अनल पक्षि आकाश से उतर कर, इधर उधर फिरता है, पीछे उलट कर आकाश में अपने स्थान ही में स्थित हो कर सुख पाता है, तैसे दादू जी कहते हैं कि माया मेर (प्रपंच) को उलंघि कर, उलटे पंथ (अन्तर मुख वृत्ति द्वारा) अपने स्वरूप में स्थित होवे ॥ यथा—

अनल पंषि के बीकलैं (बच्चे ने) पडतां किया बिचार ।
सुरति फेरि उलटा चल्या, जाइ मिल्या परिवार ॥
अनल अतीत चलै अति आतुर, तासमि गवन न होई ।
जन रजब यौं जगत उलंघै, बूझै बिरला कोई ॥

(९८) धर्म अर्थ काम मोक्ष, अष्ट सिद्धि नव निद्धि और माया, यह संपूर्ण उस की दासी हैं जिस में निरंजन देव की भक्ति है ॥

दादू माया सब गहले किये, चौरासी लष जीव ।
ताका चेरी क्या करे, जे रंगि राते पीव ॥ ९९ ॥

विरक्तता ॥

दादू माया वैरिणि जीव की, जिनि को लावै प्रीति ।
माया देषै नरक करि, यहु संतन की रीति ॥ १०० ॥

माया ॥

माया मति चकचाल करि, चंचल कीये जीव ।
माया माते मद पिया, दादू विसर्‌या पीव ॥ १०१ ॥

आन लगनि विभचार ॥

जणे जणे की, राम की, घर घर की, नारी ।
पतिव्रता नहिं पीव की, सो माथै मारी ॥ १०२ ॥
जण जण के उठि पीछैं लागे, घरि घरि भरमत डोलै ।
तार्थे दादू पाइ तमाचे, मांदल दुहु मुषि बोलै ॥ १०३ ॥

॥ विषय विरक्तता ॥

जे नर कामिनि परहरैं, ते छूटैं ग्रभवास ।
दादू ऊंधे मुष नहीं, रहैं निरंजन पास ॥ १०४ ॥
रोक न राषै, झूठ न भाषै, दादू परचै पाइ ।
नदी पूर प्रवाह ज्यौं, माया आवै जाइ ॥ १०५ ॥
सदिका सिरजनहार का, केता आवै जाइ ।

(१००) नरक करि = नरकवत् ॥
(१०२) माया घर २ की नारी है, इस हेतु से त्यागने योग्य है ॥
(१०४) ऊंधे मुष नहीं = उलटे मुख हो नहीं, अर्थात् जन्मैं नहीं ॥

दादू धन संचै नहीं, वैठ पुलावै पाइ ॥ १०६ ॥

॥ माया ॥

जोगणि ह्वै जोगी गहे, सोफणि ह्वै करि सेप ।
भगतणि ह्वै भगता गहे, करि करि नाना भेष ॥ १०७॥

बुधि वमेक बल हरणी, त्रय तन ताप उपावनी ।
अंगि अगनि प्रजालिनी, जीव् घरवारि नचावनी ॥१०८॥

नाना विधि के रूप धरि, सब बांधे भामिनी ।
जग विटंब परलै किया, हरिनाम भुलावनी ॥ १०६ ॥

बाजीगर की पूतली, ज्यों मर्कट मोह्या ।
दादू माया राम की, सब जगत विगोया ॥ ११० ॥

॥ सिसन स्वाद ॥

मोरा मोरी देषि करि, नाचे पंप पसारि ।
यों दादू घर आंगणै, हम नाचे केवारि ॥ १११ ॥

॥ पुरुष प्रकासी ॥

दादू जिस घटि दीपक राम का, तिहिं घटि तिमर न होइ । (४-११६ / ५-८५)
उस उजियारे जोति के, सब जग देषै लोइ ॥ ११२ ॥ घ

॥ माया ॥

दादू जेहि घट ब्रह्म न प्रगटै, तहं माया मंगल गाइ ।
दादू जागै जोति जब, तब माया भरम विलाइ ॥११३॥

॥ पति पहचान ॥

दादू जोति चमकै, तिरवरै, दीपक देषै लोइ ।

---

(१११) दीपक राम का = ब्रह्म दृष्टि का कारण शुद्ध सत्व गुण, देखो पृष्ठ =५ ॥

चंद सूर का चांदिणा, पगार झलाभ होइ ॥ ११४ ॥

॥ माया ॥

दादू दीपक देह का, माया परगट होइ ।
चौरासी लप पंपियां, तहां परैं सब कोइ ॥ ११५ ॥

॥ पुरुष प्रकाशी ॥

यहु घट दीपक साध का, ब्रह्म जोति परकास । (१५–७६)
दादू पंपी संतजन, तहां परैं निज दास ॥ ११६ ॥ घ

॥ जाया माया मोहनी ॥

दादू मन मृत्तक भया, इंद्री अपणे हाथि । (१०–१२५)
तौ भी कदे न कीजिये, कनक कामिनी साथि ॥११७॥ घ

॥ विषिया विरक्तता (पुरुष नारि संबंध) ॥

जाणें बूझै जीव सब, त्रिया पुरिष का अंग ।
आपा पर भूला नहीं, दादू कैसा संग ॥ ११८ ॥

माया के घट साजि द्वै, त्रिया पुरिष धरि नांव ।
दोन्यूं सुन्दर पेलैं दादू, रापि लेहु बलि जांव ॥ ११९ ॥

बहण वीर सब देपिये, नारी अरु भर्तार ।
परमेसुर के पेट के, दादू सब परिवार ॥ १२० ॥

---

(११४) इस साखी में अंतर्मुख ध्यान से जो आत्म प्रकाश दीखता है सो बतलाया है, अर्थात् ब्रम्ह ज्योति कभी झिलमिल तिरवरे की भांति, कभी दीपक की शिखावत, कभी सूर्य चंद्र के प्रकाशवत, कभी झलावे के चमकारे की तरह प्रतीत होती है ॥

(११५) दीपक देह का = रजस्तमोगुण, चर्म दृष्टि ।
 ११६) दीपक साध का=सत्व–रजोगुण, आत्म दृष्टि । } देखो पृष्ठ ८४

पर घर परहरि आपणी, सब एकै उणहार ।
पसु प्राणी समझैं नहीं, दादू मुग्ध गंवार ॥ १२१ ॥
पुरिष पलटि बेटा भया, नारी माता होइ ।
दादू को समझै नहीं, बड़ा अचंभा मोहि ॥ १२२ ॥
माता नारी पुरिष की, पुरिष नारि का पूत ।
दादू ज्ञान विचारि करि, छाडि गये अवधूत ॥ १२३ ॥

॥ विषिया अवृत्ति ॥

ब्रह्मा विश्न महेस लौं, सुर नर उरझाया ।
विष का अमृत नांव धरि, सब किनहूं पाया ॥ १२४ ॥

॥ अध्यात्म ॥

दादू माया का जल पीवतां, व्याधी होइ विकार ।
सेझे का जल पीवतां, प्राण सुषी सुधसार ॥ १२५ ॥

॥ विषिया अवृत्ति ॥

जीव गहिला, जीव बावला, जीव दिवाना होइ ।
दादू अमृत छाडि करि, विष पीवै सब कोइ ॥ १२६ ॥

(११८-१२३) इन साखियों का तात्पर्य यह है कि सब स्त्री पुरुष परस्पर अपने को भाई बहन समझ कर केवल परमेश्वर का भजन करें। नारी और भर्तार का संबंध न करें। क्योंकि जो एक जन्म में नारी होती है वही स्त्री दूसरे जन्म में उसी पुरुष की माता होजाती है, अथवा जो एक जन्म में माता है वही दूसरे जन्म में नारी होजाती है, । ऐसा संबंध देख कर अवधूतों ने स्त्रियों का संग त्याग किया है ॥ दृष्टान्त–

साध जिमावण कारणैं, वणिक ले मन्यों भवन ।
तीनि ठौर हंसि कै कही, भैंसो अज त्रिय मौन ॥

(१२४) यह साखी पुस्तक नं० १ के सिवाय और पुस्तकों में साखी १३३ वीं के पीछे आती है ॥

॥ माया ॥

माया मैली गुण मई, धरि धरि उज्जल नांव ।
दादू मोहे सबन कौं, सुर नर सबही ठांव ॥ १२७ ॥

॥ विषिया श्रतृप्ति ॥

विष का अमृत नांव धरि, सब कोई पावै ।
दादू पारा ना कहै, यहु अचिरज आवै ॥ १२८ ॥
दादू जे विष जारे पाइ करि, जिनि मुष में मेले ।
आदि अंत परलै गये, जे विष सौं पेले ॥ १२९ ॥
जिन विष पाया ते मुये, क्या मेरा क्या तेरा ।
आगि पराई आपणी, सब करै नबेरा ॥ १३० ॥
दादू कहै—जिनि विष पीवै बावरे, दिन दिन बाढ़ै रोग ।
देषत ही मरि जाइगा, तजि विषिया रस भोग ॥ १३१ ॥
अपणा पराया पाइ विष, देषत ही मरि जाइ (१३–१३२)
दादू को जीवै नहीं, इंहि भोरैं जिनि पाइ ॥ १३२ ॥

॥ माया ॥

ब्रह्म सरीपा होइ करि, माया सौं पेलै ।
दादू दिन दिन देषतां, अपणे गुण मेलै ॥ १३३ ॥
माया मारे लात सौं, हरि कौं घालै हाथ ।
संग तजे सब झूठ का, गहे साच का साथ ॥ १३४ ॥
घर के मारे, वन के मारे, मारे सर्ग पयाल ।
सूषिम मोटा गूंथि करि, मांड्या माया जाल ॥ १३५ ॥

---

(१२९) जिस विष के खाने से जलन होती है, उस को मुख में न डालो ॥
(१३५) घर के = मनुष्य, वन के = पशु पक्षी, सर्ग पयाल ॥

विषिया अतृप्ति ॥

ऊभा सारं, बैठ विचारं, संभारं जागत सूता ।
तीन लोक तत जाल विडारण, तहां जाइगा पूता ॥१३६॥

मुये सरीपे व्है रहे, जीवण की क्या आस ।
दादू राम विसारि करि, वांछै भोग बिलास ॥ १३७ ॥

कृत्रम कर्ता ॥

माया रूपी राम कौं, सब कोइ ध्यावै ॥
अलप आदि अनादि है, सो दादू गावै ॥ १३८ ॥

ब्रह्मा का वेद विश्न की मूरति, पूजै सब संसारा ।
महादेव की सेवा लागे, कहां है सिरजनहारा ॥१३६॥

माया का ठाकुर किया, माया की माहिमाइ ।
ऐसे देव अनंत करि, सब जग पूजन जाइ ॥ १४० ॥

के देववादि । इन सबों को सूक्ष्म, मोटे नाना प्रकार के जालों में फंसा कर, माया ने मारा है ॥

(१३६) दृष्टांत—गोरख सों माया वदी, ठग्यो मछंदर नाथ ।
बालक व्है माया ठगी, रांडी मींडत हाथ ॥

माया बोली—ऊभा मारूं बैठा मारूं, मारूं जागत सूता ।
तीन भवन भग जाल पसारूं कहां जायगा पूता ॥

गोरखनाथ—ऊभा खंडूं बैठा खडूं, खंडूं जागत सूता ।
तीन भवन ते भिन व्है खेलूं, तौ गोरख अवधूता ॥

इस साखी के " लोक" शब्द के बदले किसी २ पुस्तक में " भवन " आया है, " पूता " शब्द का अर्थ पवित्र है ॥

माया बैठी राम ह्वै, कहै मैंही मोहनराइ।
ब्रह्मा बिश्न महेस लौं, जोनी आवै जाइ ॥ १४१ ॥

माया बैठी राम ह्वै, ताकौं लपै न कोइ।
सब जग मानै सत्ति करि, बड़ा अचंभा मोहि ॥ १४२ ॥

अंजन किया निरंजना, गुण निर्गुण जानै।
धरथा दिपावै अधर करि, कैसैं मन मानै ॥ १४३ ॥

निरंजन की बात कहि, आवै अंजन मांहि।
दादू मन मानै नहीं, सर्ग रसातलि जांहि ॥ १४४ ॥

कामधेन कै पटंतरै, करै काठ की गाइ।
दादू दूध दूझै नहीं, मूरिष देहु वहाइ ॥ १४६ ॥

चिंतामणि कंकर किया, मांगै कछू न देइ।
दादू कंकर डारि दे, चिंतामणि कर लेइ ॥ १४७ ॥

पारस किया पषान का, कंचन कदे न होइ।
दादू आतमराम बिन, भूलि पड़्या सब कोइ ॥ १४८ ॥

सूरिज फटिक पषाण का, तासौं तिमर न जाइ।
सांचा सूरिज परगटै, दादू तिमर नसाइ ॥ १४९ ॥

मूरति घड़ी पषाण की, कीया सिरजनहार।

---

(१४३) दृष्टांत—महमूद दाहे देहुरा, जैन रच्यौ परपंच।
चंबक चहुं दिसि गाड़ि कै, मुरति अधर धरि संच ॥

(१४५) देखो २३—१०८। क ग घ ङ ॥

(१४८) भाव कहै भगवंत का, पूजै आन अंदोह।
जगन्नाथ पारस बिना, पथर न पलटै लोह ॥

दादू साच सूझै नहीं, यूं डूबा संसार ॥ १५० ॥

पुरिष विदेसि, कामणि किया, उसही के उणहारि।
कारिज को सीझै नहीं, दादू माथैं मारि ॥१५१॥

कागद का माणस किया, छत्रपती सिरमौर।
राजपाट साधै नहीं, दादू परहरि और ॥ १५२ ॥

सकल भवन भानै घड़ै, चतर चलावणहार।
दादू सो सूझै नहीं, जिस का वार न पार ॥ १५३ ॥

॥ कर्ता साषी भूत ॥

दादू पहली आप उपाइ करि, न्यारा पद निर्वाण।
ब्रह्मा विश्न महेस मिलि, बांध्या सकल बंधाण ॥१५४॥

॥ कृतम कर्त्ता ॥

नांव नीति अनीति सब, पहली बांधे बंध।
पसू न जाणै पारधी, दादू, रोपे फंध ॥ १५५ ॥

दादू बांधे वेद विधि, भरम करम उरझाइ।
मरजादा मांहे रहै, सुमिरण किया न जाइ ॥ १५६ ॥

॥ माया (नारी दोष निरूपण) ॥

दादू माया मीठी बोलणी, नइ नइ लागै पाइ।

---

(१५०) "डूबा" की जगह पुस्तक नं० १ में "बूड़ा" है ॥

(१५१) विदेश में पुरुष, तिस की सूरत का पुतला उस की स्त्री बना कर देश में रक्खै, तो उस पुतले से कोई कार्य सिद्ध नहीं होता ॥

(१५५) पसू = जीव । पारधी=माया रूप शिकारी ॥

दादू पैसे पेट में, काढि कलेजा पाइ ॥ १५७ ॥
नारी नागणि जे डसे, ते नर मुये निदान ।
दादू को जीवै नहीं, पूछो सबै सयान ॥ १५८ ॥
नारी नागणि एकसी, बाघणि बड़ी बलाइ ।
दादू जे नर रत भये, तिन का सर्वस पाइ ॥ १५९ ॥
नारी नैन न देषिये, मुष सों नांव न लेइ ।
कानों कामणि जिनि सुणै, यहु मन जाण न देइ ॥१६०॥
सुंदर पाये सांपणी, केते इहि कलि मांहि ।
आदि अंति इन सब डसे, दादू चेते नांहिं ॥ १६१ ॥
दादू पैसे पेट में , नारी नागणि होइ ।
दादू प्राणी सब डसे, काढ़ि सकै ना कोइ ॥ १६२ ॥
माया सांपणि सब डसै, कनक कामणी होइ ।
ब्रह्मा विश्न महेस लौं, दादू बचै न कोइ ॥ १६३ ॥
माया मारै जीव सब, षंड षंड करि पाइ ।
दादू घट का नास करि, रोवै जग पतियाइ ॥ १६४ ॥
बाबा बाबा कहि गिलै, भाई कहि कहि पाइ ।
पूत पूत कहि पी गई, पुरिषा जिनि पतियाइ ॥ १६५ ॥
ब्रह्मा विश्न महेस की, नारी माता होइ ।
दादू पाये जीव सब, जिनि रू पतीजै कोइ ॥ १६६ ॥

---

(१५७) मीठी बोलणी=मीठी बातें बोलने वाली । नइ नइ=नय नय, झुक २॥
दोहा—जयमल मुख थैं मीठी बोलनी, चालै मधुरी चाल ।
जे नर बैठे नेह करि, तिन के बुरे हवाल ॥
(१६४) रोवै जग पतियाइ=रोता हुआ पुनः जन माया में फंसता है ॥

माया बहुरूपी नटणी नाचै, सुर नर मुनि कौं मोहै ।
 ब्रह्मा विश्न महादेव बाहे, दादू बपुरा को है ॥ १६७ ॥
माया पासी हाथि ले, बैठी गोप छिपाइ ।
 जे कोइ धीजे प्राणियां, ताही के गलि बाहि ॥ १६८ ॥
पुरिषा पासी हाथि करि, कामणि के गलि बाहि ।
 कामणि कटारी कर गहै, मारि पुरिष कौं पाइ ॥ १६९ ॥
नारी वैरणि पुरिष की, पुरिषा वैरी नारि ।
 अंति कालि दून्यूं मुये, दादू देषि विचारि ॥ १७० ॥
नारि पुरिष कौं ले मुई, पुरिषा नारी साथ ।
 दादू दून्यूं पचि मुये, कछू न आया हाथ ॥ १७१ ॥
भवरा लुब्धी बास का, कवलि वधाना आइ ।
 दिन दस मांहे देषतां, दोन्यौं गये विलाइ ॥ १७२ ॥
नारी पीवै पुरिष कौं, पुरिष नारि कौं षाइ ।
 दादू गुर के ज्ञान विन, दून्यूं गये विलाइ ॥ १७३ ॥

इति माया कौ अंग सम्पूर्ण समाप्त ॥ १२ ॥

---

(१७१) "पचि मुये" के बदले "पचि गये" पुस्तक नं॰ २, ३, ४, और ५ में है ॥

अथ साच को अङ्ग ॥ १३ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

॥ अदया, हिंसा ॥

दादू दया जिन्हों के दिल नहीं, वहुरि कहावें साध ।
जे मुप उनका देषिये, तौ लागें वहु अपराध ॥ २ ॥
दादू मिहर मोहब्वत मनि नहीं, दिल के वज्र कठोर ।
काले काफिर ते कहिय, मोमिन मालिक ओर ॥ ३ ॥
दादू कोई काहू जीव की, करें आत्मा घात ।
साच कहूं संसा नहीं, सो प्राणी दोजगि जात ॥ ४ ॥
दादू नाहर सिंह सियाल सब, केते मूसलमान ।
मांस षाइ मोमिन भये, वड़े मियां का ज्ञान ॥ ५ ॥
दादू मांस अहारी जे नरा, ते नर सिंह सियाल ।
वग मांजर सुनहां सही, येता परतषि काल ॥ ६ ॥
दादू मुई मार माणस घणे, ते परतषि जमकाल
मिहर दया नहिं सिंह दिल, कूकर काग सियाल ॥७॥
मांस अहारी, मदु पिवें, विषै विकारी सोइ ।
दादू आतमराम बिन, दया कहां थीं होइ ॥ ८ ॥

(८) मंद पावें मूरति (जीव) हने, रसन स्वाद कारि पांहि ।
जगन्नाथ ते अवासि करि, दोजग ही कौं जांहि ॥

लंगर लोग लोभ सौं लागें, बोलें सदा उन्हों की भीर ।
जोर जुलम बीचि बटपारे, आदि अंति उनहीं सौं सीर ॥६॥
तन मन मारि रहे सांई सौं, तिन कौं देषि करें ताज़ीर ।
ये बाड़ि बृक्ष कहां थें पाई, ऐसी कजा अवलिया पीर ॥१०॥
बे मेहर गुम राह गाफिल, गोश्त पुरदनी ।
बे दिल बदकार आलम, हयात मुरदनी ॥ ११ ॥

॥ साच ॥

छलि करि, बलि करि, धाइ करि, मारे जिंहि तिंहि फेरि ।
दादू ताहि न धीजिये, परणै सगी पतेरि ॥ १२ ॥

॥ अदया-हिंसा ॥

दादू दुनियां सौं दिल बांधि करि, बैठे दीन गंवाइ ।
नेकी नांव बिसारि करि, करद कमाया पाइ ॥ १३ ॥
दादू गल काटैं कलमां भरें, अया बिचारा दीन ।
पांचौं बषत निमाज गुजारें, स्याबति नहीं अकीन ॥१४॥
दुनियां के पीछैं पड़्या दौड़्या दौड़्या जाइ ।
दादू जिन पैदा किया, ता साहिब कौं छिटकाइ ॥१५॥
कुफर जे के मन में, मीयां मुसलमांन ।
दादू पेया भंग में, बिसारे रहिमान ॥ १६ ॥

---

(११) बेमेहर = निर्दयी । गुमराह = परमेश्वर के मार्ग से विमुख । गाफिल = अचेत । गोश्त खुरदनी = मांस खाना । बेदिल = खोटे दिल वाला । बदकार = खोटे काम करने वाला । आलम = दुनियां में फंसा हुआ । हयात मुरदनी = जीते ही मरा हुआ ॥

(१६) "पेया भंग में" = संसार रूपी झगड़े में पड़ कर ॥

आपस कों मारे नहीं, पर कों मारन जाइ ।
दादू आपा मारे विना, कैसें मिलै षुदाइ ॥ १७ ॥
भीतरि दुंदर भरि रहे, तिन कों मारैं नांहिं ।
साहिब की अरवाह कों, ताकों मारन जांहिं ॥ १८ ॥
दादू मूये कों क्या मारिये, मींयां मूई मार ।
आपस कों मारे नहीं, औरों कों हुसियार ॥ १९ ॥

॥ साच ॥

जिस का था तिस का हुवा, तौ काहे का दोस ।
दादू बंदा बंदगी, मींयां ना कर रोस ॥ २० ॥
सेवग सिरजनहार का, साहिब का बंदा ।
दादू सेवा बंदगी, दूजा क्या धंधा ॥ २१ ॥
सो काफिर जे बोलै काफ, दिल अपणीं नहिं राषै साफ ।
सांई कों पहिचानें नांहीं, कूड़ कपट सब उनहीं मांहीं ॥२२॥
सांई का फुरमान न मानें, कहां पीव ऐसैं करि जानें ।
मन आपणें में समझत नांहीं, निरपत चलै आपनी छांहीं ॥२३॥
जोर करै, मसकीन सतावै, दिल उस की में दर्द न आवै ।
सांई सेती नांहीं नेह, गर्व करै अति अपनी देह ॥२४॥
इन बातन क्यों पावै पीव, परधन ऊपरि राषै जीव ।
जोर जुलम करि कुटंब सूं पाइ, सो काफिर दोजग मैं जाइ २५

(१७) आपस = आपनपौं, अहंकार, खुदी ॥
(१९) मींयां मूई मार = हे मियां ! आपे (खुदी) को मार ! यह संबोधन है ॥

॥ अदया-हिंसा ॥

दादू जा कौं मारण जाइये, सोई फिरि मारै ।
जा कौं तारन जाइये, सोई फिरि तारै ॥ २६ ॥
दादू नफस नांवसौं मारिये, गोसमाल दे पंद ।
दूई है सो दूरि करि, तब घर में आनंद ॥ २७ ॥

॥ साच (मुसलमान के लक्षण) ॥

मुसलमांन जु राषै मान, सांई का मानै फुरमान ।
सारौं कौं सुषदाई होइ, मुसलमान करि जानूं सोई ॥२८॥
दादू मुसलमान मिहर गहि रहै, सब कौं सुष, किसहीं नहि दहै ।
मुवा न पाइ, जिवत नहिं मारै, करै बंदगी राह संवारै ॥ २९ ॥
सो मोमिन मनमें करि जाणि, साति सबूरी बैसे आणि ।
चलै साच सवारै वाट, तिन कूं षुले भिस्त के पाट ॥ ३० ॥
सो मोमिन मोम दिल होइ, सांई कौं पहिचानै सोइ ।
जोर न करै, हराम न षाइ, सो मोमिन भिसत में जाइ ॥ ३१ ॥

॥ जैसा करना वैसा भरना ॥

जो हम नहीं गुजारते, तुम्ह कौं क्या भाई ।
सीर नहीं, कुछ बंदगी, कहु क्यूं फुरमाई ॥ ३१ ॥
अपने अमलौं छूटिये, काहू के नांहीं,

---

(२७) "घर" की जगह "घट" पुस्तक नं० ४-५ में है ॥
(२८) तुरसी टेरे कहत हैं, सुनियो संत सुजान ।
मोमिदान गजदान तैं, बड़ो दान सनमान ।
(३०) दया जिनंकै दिल बसैं, दरदबंद दरवेस ।
तुरसी तिनि कौं होइ गो, भिस्त मांहिं परवेस ॥

सोई पीड़ पुकारसी, जा दूपै मांहीं ॥ ३३ ॥
कोई पाइ अघाइ करि, भूषे क्यों भरिये ।
पूटी पूगी आन की, आपण क्यों मरिये ॥ ३४ ॥
फूटी नाव समंद में, सब डूबण लागे ।
अपणां अपणां जीव ले, सब कोई भागे ॥ ३५ ॥
दादू सिरि सिरि लागी आपणे, कहु कौण बुझावै ।
अपणां अपणां साच दे, सांई कौं भावै ॥ ३६ ॥

॥ सुमिरण चितावणी ॥

साचा नांव अल्लाह का, सोई सति करि जाणि ।
निहचल करिले बंदगी, दादू सो परवाणि ॥ ३७ ॥
आवटकूटा होत है, औसर बीता जाइ ।
दादू कर ले बंदगी, रापणहार पुदाइ ॥ ३८ ॥
इस कलि केते व्है गये, हिंदू मूसलमान ।
दादू साची बंदगी, झूठा सब अभिमान ॥ ३९ ॥

॥ कथणी बिना करणी ॥

पोथी अपणा प्यंड करि, हरि जस मांहैं लेप ।

---

(३१) जन गोपाल ने दादूजी के जीवन चरित्र में लिखा है कि हिंदू और मुसलमानों ने वाद विवाद करते हुए दादूजी से कहा कि "तुम न देवी देवताओं की पूजा करते हो, न तीर्थ व्रत-न रोज़ा निमाज़ गुज़ारते हो", तब उन के उत्तर में दादू जी ने ३२–३६ वीं साखियां कही थीं ॥

(३४) इस का भावार्थ यह है कि एक के पेटभर खाने से दूसरे (भूखे) का पेट नहीं भरता ; किसी दूसरे के दिन पूरे होने पर, हम नहीं मर सकते ॥

(३८) आवटकूटा होत है = तीन तापे करके सब जीव दुखी होते हैं ।

पंडित अपणौं प्राण करि, दादू कथहु अलेप ॥ ४० ॥

काया कतेब बोलिये, लिपि राषूं रहिमान ।
मनवां मुल्लां बोलिये, सुरता है सुबहान ॥ ४१ ॥

दादू काया महल में निमाज गुजारूं, तहं और न आवन पावै ।
मन मणके करि तसबी फेरूं, तब साहिब के मन भावै ॥ ४२ ॥

दिल दरिया में गुसल हमारा, ऊजू करि चित लाऊं ।
साहिब आगै करूं बंदगी, बेर बेर बलि जाऊं ॥ ४३ ॥

दादू पंचों संगि संभालूं सांई, तन मन तब सुप पाऊं ।
प्रेम पियाला पिवजी देवै, कलमा ये लै लाऊं ॥ ४४ ॥

सोभा कारण सब करै, रोजा बांग निमाज ।
मुवा न एकौ आह सौं, जे तुझ साहिब सेती काज ॥ ४५ ॥

हर रोज हजूरी होइ रहु, काहे करै कलाप ।
मुल्लां तहां पुकारिये, जहं अरस इलाही आप ॥ ४६ ॥

(४०) अर्थ—अपने शरीर की पोथी करो, तिस में हरि का यश लिखो, उसका पढ़ने वाला अपना प्राण बनाओ, इस प्रकार की उपासना करके अलेख परमात्मा का कथन वा ध्यान करो ॥

(४१) सुरता = श्रोता ॥

(४३) बलि जाऊं = अपने आप को अर्पण करूं ॥

(४४) पंच इंद्रियों के संग में साईं का ध्यान करता हूं। इस प्रकार का कलमा है जिस पर मैं लय लगाता हूं ॥

(४६) अर्थ—हे मुल्लां! नित्य परमात्मा की सेवा में लगा रह, दुःख क्यों उठावै। बांग वहां दीजिये जहां परमात्मा का प्रत्यक्ष दर्शन हो, बांग से तात्पर्य अनाहद शब्द से है सो ध्यान में उस समय सुनाई देता है जब वृत्ति परमात्मा में पूर्णरूप से लगजाती है ॥

हरदम हाजिर होंणा बाबा, जब लग जीवे बंदा ।
दाइम दिल सांई सौं साबित, पंच वखत क्या धंधा ॥४७॥

॥ हिंदु मुसलमानों का भ्रम ॥

दादू हिंदु मारग कहैं हमारा, तुरक कहैं रह मेरी ।
कहां पंथ है कहो अलह का, तुम तौ ऐसी हेरी ॥ ४८॥

दादू दुई दरोग लोग कौं भावै, सांई साच पियारा ।
कौण पंथि हम चलैं कहो धू, साधो करो विचारा ॥४९॥

पंड पंड करि ब्रह्म कौं, पषि पषि लीया बांटि ।
दादू पूरण ब्रह्म तजि, बंधे भरम की गांठि ॥ ५० ॥

॥ मन विकार औषधि ॥

जीवत दीसै रोगिया, कहैं मूवां पीछैं जाइ ।
दादू दुंह के पाढ में ऐसी दारू लाइ ॥ ५१ ॥

---

(५०) "आंधरे नै हाथी देषि झगरो मचायो है" की कहावत के अनुकूल दयालजी ने यह साखी कही है, यथाः—

ब्रम्ह एक बहु भांति करि, जुवो २ अपनाइ ।
बिन बिचार जगंनाथ जन, भ्रम लागा भरमाइ ॥
द्वै पषि थापै दोइ दिस, करै अंठ दिस निंद ।
रजब स.ई सकल मैं, देषि दसौं दिस बंद ॥

(५१) जीते जी विषय वासनाओं से दग्ध रहैं अथवा क्लेश दायक साधनौं से दुखी रहैं और कहैं कि मरे पीछे मुक्त हो जांयगे, दयालजी का आशय है कि ऐसे साधन ठीक नहीं; उपाय वह करो जिन से संसार रूपी पाढ (पहाड़) की दुंह (दाह) शांत हो, जैसा कि अगली(५२ वीं)साखी में कहा है ॥

सो दारू किस काम की, जाथैं दरद न जाइ।
दादू काटै रोग कौं, सो दारु ले लाइ ॥ ५२ ॥

दादू अनभै काटै रोग कौं, अनहद उपजै आइ। (४–२०७)
सेझे का जल निर्मला, पीवै रुचि ल्यौ लाइ ॥ ५३ ॥ ग घ ङ

सोई अनभै सोई उपजी, सोई सबद ततसार। (२८–१७)
सुणतां ही साहेब मिलै, मन के जांहिं विकार ॥ ५४ ॥ ग घ ङ

॥ चानक उपदेश ॥

औषद षाइ न पछि रहै, विषम व्याधि क्यौं जाइ। (१–१५१)
दादू रोगी बावरा, दोस वैद कौं लाइ ॥ ५५ ॥ ग घ ङ

एक सेर का ठांवड़ा, क्यौंही भरया न जाइ।
भूष न भागी जीव की, दादू केता षाइ ॥ ५६ ॥

पसुवां की नाईं भरि भरि षाइ, व्याधि घणेरी बधती जाइ।
पसुवां की नाईं करै अहार, दादू बाढ़ै रोग अपार।
राम रसाइण भरि भरि पीवै, दादू जोगी जुगि जुगि जीवै ॥ ५७ ॥

दादू चारै चित दिया, चिंतामणि कौं भूलि।
जन्म अमोलिक जात है, बैठे मांझी फूलि ॥ ५८ ॥

भरी अधौड़ी भावठी, बैठा पेट फुलाइ।

---

(५२) जे तूं काढ्यौ चाहै विषम व्याधि। तौ राम नाम निज औषध साधि॥
अन्य— राम नाम निज औषद सारा ॥

(५३) रोग परमात्मा के साक्षात्कार रूपी अनुभव से कटते हैं। सो अनुभव अनहद शब्द के पीछे होता है। उस शब्द के साथ अमृत टपकता है सो साधक रुचि भर पीवै॥ यह तात्पर्य अगली (५४वीं) साखी से स्पष्ट है॥

(५८) चारै=पशुओं के खाने पीने के पदार्थों में। मांझी=बीच॥

दादू सूकर स्वान ज्यों, ज्यों आवै त्यों पाइ ॥ ५६ ॥

॥ सिसन स्वाद ॥

दादू पाटा मीठा पाइ करि, स्वादि चित दीया ।
इन में जीव विलंबिया, हरि नांव न लीया ॥ ६० ॥
भगति न जाणै राम की, इंद्री के आधीन ।
दादू वंध्या स्वाद सौं, तार्थें नांव न लीन ॥ ६१ ॥

॥ साच ॥

दादू अपणा नीका रापिये, मैं मेरा दिया वहाइ ।
तुझ अपणे सेती काज है, मैं मेरा भावै तीधरि जाइ ॥६२॥
जे हम जाण्या एक करि, तौ काहे लोक रिसाइ ।
मेरा था सो मैं लिया, लोगों का क्या जाइ ॥ ६३ ॥

॥ करणी विना कथनी ॥

दादू द्वै द्वै पद किये, सापी भी द्वै चारि ।

---

(५६) चमार की भट्ठी पर भरी अघोड़ी (कची खाल) जैसे फूली हुई लटका करती है, वैसे स्वान शूकर की तरह अनियमित भोजन खाकर जो पेट फुलाते हैं सो अनुभवरूपी औषध नहीं पा सकते ॥

(६२) तात्पर्य—जिज्ञासु केवल रामजी का भजन ही करे, "मैं" और "मेरा" रूपी जो अहंकार है सो त्याग दे। अथवा हे वादी ! तू अपना धर्म नीका रख, मेरा सोच न कर ॥

(६३) दयालजी कहते हैं कि जो हम ने ब्रह्म और आत्मा को एक कर जाना है तो लोग (कर्मकांडी) हम से कलह क्यों करते हैं ? मैंने अपना स्वकीय तत्व निश्चय किया है, इस में लोगों का क्या जाता है। सोई पंचदशीकारों ने तृप्तिदीप के २७१ वें श्लोक में कहा है, यथा—

एवंच कलहः कुत्र संभवेत्कर्मिणो मम ।
विभिन्न विषयत्वेन पूर्वापर समुद्रवत ॥

हम कों अनभै ऊपजी, हम ज्ञानी संसारि ॥ ६४ ॥
सुनि सुनि पर्चे ज्ञान के, साषी सबदी होइ ।
तबहीं आपा ऊपजै, हम सा और न कोइ ॥ ६५ ॥
सो उपज किस काम की, जे जण जण करै कलेस ।
साषी सुनि समझै साध की, ज्यों रसना रस सेस ॥६६॥
दादू पद जोड़ै साषी कहै, विषै न छाड़ै जीव ।
पानी घालि बिलोइये, तौ क्यों करि निकसै घीव ॥६७॥
दादू पद जोड़े का पाइये, साषी कहे का होइ ।
सति सिरोमणि सांईयां, तत्त न चीन्हां सोइ ॥ ६८ ॥
कहिबे सुनिबे मन पुसी, करिवा औरै पेल ।
बातों तिमर न भाजई, दीवा बाती तेल ॥ ६९ ॥
दादू करिबे वाले हम नहीं, कहिबे को हम सूर ।
कहिवा हम थैं निकटि है, करिवा हम थैं दूर ॥ ७० ॥

(६४-६५) यहां पर उन जनों का वृत्तांत है जो अज्ञान में पड़े हुये अपने आप को बड़े ज्ञानी समझते हैं, कहते हैं कि हम ने इतने पद वा साखी बनाई हैं, हम को अनुभव होगया, हम ज्ञानी हैं, अथवा ज्ञान के पर्चे (लेख) सुन २ कर शब्द रटने वाले होजाते हैं और अहंकार करते हैं कि हम सा और कोई नहीं है ॥

(६६) ऐसी अज्ञान की उत्पत्ति किस काम की ? केवल कलेश ही देनेवाली है । किंतु मनुष्य को उचित है कि साधुजनों की साखी सुन कर समझे और उस का रस ले जैसे शेषनाग सहस्र जिह्वा से स्वाद लेता है ॥

(६७) जो जन ज्ञान के पद साखी जोड़ते या कहते हैं किंतु विषयों (संसारी पदार्थों) को छोड़ते नहीं, उन का कर्त्तव्य भी व्यर्थ है, जैसे कि पानी को बिलोने से कोई घी नहीं पा सकता ॥

कहे कहे का होत है, कहे न सीझै काम ।
कहे कहे का पाइये, जब लग रिदै न आवै राम ॥ ७१॥

॥ चौंप (चाह) विन चौंप चर्चा ॥

दादू सुरता घरि नहीं, वकता वकै सु वादि ।
वकता सुरता एक रस, कथा कहावै आदि ॥ ७३ ॥
वकता सुरता घरि नहीं, कहै सुनै को राम ।
दादू यहु मन थिर नहीं, वादि वकै वेकाम ॥ ७४ ॥

॥ विचार-दृढ़ज्ञान ॥

अंतरि सुरझै समझि करि, फिर न अरूझै जाइ ।
वाहरि सुरझै देषतां, वहुरि अरूझै आइ ॥ ७६ ॥

॥ झूठे गुरू ॥

आतम लावै आप सौं, साहिव सेती नांहिं ।
दादू को निपजै नहीं, दून्यूं निर्फल जांहिं ॥ ७७ ॥
तूं मुझ कौं मोटा कहै, हौं तुझै वड़ाई मान ।
सांई कौं समझै नहीं, दादू झूठा ज्ञान ॥ ७८ ॥

॥ कस्तूरिया मृग ॥

सदा समीप रहै संगि सन्मुप, दादू लषै न गूझ ।
सुपिनै ही समझै नहीं, क्यों करि लहै अवूझ ॥ ७९ ॥

॥ वे परच विसनी ॥

दादू सेवग नांव वोलाइये, सेवा सुपिनै नांहिं ।

---

(७२) देखौ ८-१४, ग घ ङ ॥
(७३) घरि नहीं=मन एकाग्र वा ठिकाने नहीं ॥
(७५) देखौ १०-११७, ग घ ङ ॥
(८०) देखौ १-१६, ग घ ङ ॥

नांव धराये का भया, जे एक नहीं मन मांहिं ॥ ८१ ॥
नांवं धरावैं दास का, दासातन थैं दूरि ।
दादू कारिज क्यों सरै, हरि सौं नहीं हजूरि ॥ ८२ ॥
भगत न होवै भगति बिन, दासातन बिन दास ।
बिन सेवा सेवग नहीं, दादू झूठी आस ॥ ८३ ॥
राम भगति भावै नहीं, अपनी भगति का भाव ।
राम भगति मुष सौं कहै, पेलै अपना डाव ॥ ८४ ॥
भगति निराली रहि गई, हम भूलि पड़े बन मांहिं ।
भगति निरंजन राम की, दादू पावै नांहि ॥ ८५ ॥
सो दसा कतहूं रही, जिंहिं दिसि पहुंचे साध ।
मैं तैं मूरिष गहि रहे, लोभ बड़ाई वाद ॥ ८६ ॥
दादू राम बिसारि करि, कीये बहु अपराध ।
लाजों मारे संत सब, नांव हमारा साध ॥ ८७ ॥

॥ करणी बिना कथनी ॥

मनसा के पकवान सौं, क्यों पेट भरावै ।
ज्यौं कहिये त्यौं कीजिये, तबहीं बनि आवै ॥ ८८ ॥
दादू मिश्री मिश्री कीजिये, मुष मीठा नांहीं ।
मीठा तबहीं होइगा, छिटकावै मांहीं ॥ ८९ ॥
दादू बातों हीं पहुंचे नहीं, घर दूरि पयाना ।
मारग पंथी उठि चलै, दादू सोई सयाना ॥ ९० ॥
बातों सब कुछ कीजिये, अंति कछू नहिं देषै ।

(८९) छिटकावै मांही = मुंह में डालै ।

मनसा वाचा कर्मना, तब लागै लेपै ॥ ६१ ॥

॥ समझ सुजानता—सब जीवों में ज्ञान ॥

दादू कासौं कहि समझाइये, सब को चतर सुजान ।
कीड़ी कुंजर आदि दे, नांहिन कोई अजान ॥ ६२ ॥

॥ करणी बिना कथनी ॥

सूकर स्वान सियाल सिंह, सर्प रहैं घट मांहि । (११–६)
कुंजर कीड़ी जीव सब, पांडे जाणैं नांहि ॥ ६३ ॥ घङ

दादू सूना घट सोधी नहीं, पंडित ब्रह्मा पूत ।
आगम निगम सब कथैं, घर में नाचैं भूत ॥ ६४ ॥

पढ़े न पावै परमगति, पढ़े न लंघै पार ।
पढ़े न पहुँचै प्राणिया, दादू पीड़ पुकार ॥ ६५ ॥

दादू निवरे नांव बिन, झूठा कथैं गियान ।
बैठे सिर पाली करैं, पंडित वेद पुरान ॥ ६६ ॥

दादू केते पुस्तक पढ़ि मुये, पंडित वेद पुरान ।

---

(६२) सब को=सब कोई ॥

(६३) शूकर की प्रकृति लीनालीन का ग्रहण, स्वान का स्वजातीय पर भूंकना, सियाल की कायर वृत्ति, सिंह की क्रोध वृत्ति, सर्प की संशय वृत्ति, कुंजर की काम वृत्ति, कीड़ी का दूसरे के छिद्र देखना, दयालजी कहते हैं कि इन सब पशुओं के स्वभाव मनुष्यों के मन में बर्ता करते हैं, पर पांडे इस पर ध्यान नहीं देते ॥

(६४) पंडित लोग जो अपने आप को ब्रह्मा के पुत्र वसिष्ठ की सदृश मानते हैं और अगम निगम (वेदशास्त्रों) का कथन करते हैं, तिनके घट (अन्तःकरण) सूने (विवेक रहित) हैं, और घर में नाचें भूत=तिन में काम क्रोधादि बर्ता करते हैं ॥

केते ब्रह्मा कथि गये, नांहि न राम समान ॥ ९७ ॥
सब हम देष्या सोधि करि, वेद कुरानौं मांहि ।
जहां निरंजन पाइये, सो देस दूरि, इत नांहि ॥ ९८ ॥
पढ़ि पढ़ि थाके पंडिता, किनहूं न पाया पार। (२–८७)
कथि कथि थाके मुनि जना, दादू नांइ अधार ॥९९॥ ग घ ङ
काजी कजा न जानहीं, कागद हाथि कतेब ।
पढ़तां पढ़तां दिन गये, भीतरि नांहीं भेद ॥ १०० ॥
मसि कागद के आसिरे, क्यौं छूटै संसार ।
राम विना छूटै नहीं, दादू भर्म विकार ॥ १०१ ॥
कागद काले करि मुये, केते वेद पुरान ।
एकै अपिर पीव का, दादू पढ़ै सुजान ॥ १०२ ॥
दादू अपिर प्रेम का, कोई पढ़ेगा एक । (३–११८)
दादू पुस्तक प्रेम बिन, केते पढ़ैं अनेक ॥ १०३ ॥ग घ ङ
दादू पाती प्रेम की, विरला बांचै कोइ । (३–११९)
वेद पुरान पुस्तक पढ़े, प्रेम बिना क्या होइ॥१०४॥ग घ ङ
दादू कहतां कहतां दिन गये, सुणतां सुणतां जाइ ।
दादू ऐसा को नहीं, कहि सुणि राम समाइ ॥ १०५ ॥

॥ मध्य निरपष ॥

मौन गहैं ते बावरे, बोलैं षरे अयान ।
सहजैं राते राम सौं, दादू सोई सयान ॥ १०६ ॥

॥ करुणा ॥

कहतां सुणतां दिन गये, कै कछू न आवा ।

दादू हरि की भगति बिन, प्राणी पछितावा ॥ १०७ ॥

॥ सज्जन दुर्जन ॥

दादू कथणी और कुछ, करणी करैं कुछ और । (१२–१४५)
तिन थैं मेरा जिव डरै, जिन के ठीक न ठौर ॥ १०८ ॥

अंतरगति औरै कछू, मुष रसना कुछ और ।
दादू करणी और कुछ, तिनकौं नांहीं ठौर ॥ १०९ ॥

॥ मन परमोध ॥

राम मिलन की कहत हैं, करते कुछ औरे ।
ऐसैं पीव क्यों पाइये, समझि मन बौरे ॥ ११० ॥

॥ बे परच बिसनी ॥

दादू बगनी भंगा षाइ करि, मतवाले मांझी ।
पैका नांहीं गांठड़ी पातिसाही षांजी ॥ १११ ॥

दादू टोटा दालिदी, लाषौं का व्यौपार ।
पैका नांहीं गांठड़ी, सिरै साहूकार ॥ ११२ ॥

॥ मध्य निरपक्ष—सब मतों का निशाना एक ॥

दादू ये सब किस के पंथ में, धरती अरु असमान ।
पानी पवन दिन राति का, चंद सूर, रहिमान ॥ ११३ ॥

(१११–११२) ज्ञान ध्यान रंचक नहीं, नहीं सील संतोष ।
भगत कहावै राम कौ, मोहन व्यर्थ भरोस ॥
घातनि विघ्म न पोपिये, वस्तु नहीं बिन दाम ।
कर्तव्यता कीये सरै, जगंनाथ जन काम ॥
मोलि हींग दमरी जिती, मांगत लार कपूर ।
मन बिसनी तनि बे परच, जगंनाथ जन कूर ॥

(११३-११६) यह चार साखियां प्रश्नोत्तरी हैं । इनँ प्रत्येक में प्रथम

ब्रह्मा विश्न महेस का, कौन पन्थ गुर देव ?।
सांई सिरजनहार तूं, कहिये अलप अभेव ॥ ११४ ॥
महम्मद किस के दीन में, जबराईल किस राह ?।
इन के मुर्सद पीर की, कहिये एक अलाह ॥ ११५ ॥
दादू ये सब किस के ह्वै रहे, यहु मेरे मन मांहि ?।
अलष इलाही जगत गुर, दूजा कोई नांहि ॥ ११६ ॥

॥ पतिव्रत व्यभिचार ॥

दादू औरें ही औला तकै, थीयां सदै बियंनि ।
सो तूं मीयां नां घुरें, जो मीयां मीयंनि ॥ ११७ ॥

॥ सत असत गुर पारष लष्यन ॥

आई रोजी ज्यौं गई, साहिब का दीदार ।
गहला लोगों कारणै, देषै नहीं गंवार ॥ ११८ ॥

प्रश्न हैं और पीछे उन के उत्तर ॥ ११३ वीं साखी में प्रश्न यह है कि पृथ्वी आकाश चंद्र सूर्यादि किस के पंथ में हैं ? उत्तर रहमान के पंथ में ॥

(११७) घुरें = भजै । मीयां मीयंनि = मियों का मियां । इस साखी का तात्पर्य यह है कि तू अन्य देवतों को क्यूं भजता है, मियों के मियां परमात्मा को क्यों नहीं भजता ॥

(११८) यह नरतन जो परमेश्वर ने दिया था सो वृथा ही गया । इस गहिले (पागल) गंवार मनुष्य ने स्त्री पुत्रादि लोगों के कारण परमेश्वर को नहीं देखा ॥

दृष्टांत—धर्म तज्यौ धन कारणे, नर निर्धन अज्ञान ।
ज्यूं बालक मग छाड़ि दे, देषै नेक मिठान ॥

(११९—१२१) देखो ८-९२, ९३, ९४ ॥ ग घ ङ ॥

॥ पतिव्रत निहकाम ॥

दादू सोई सेवग राम का, जिसैं न दूजी चिंत ।
दूजा को भावै नहीं, एक पियारा मिंत ॥ १२२ ॥

॥ (जाति पांति) भ्रम विधूंसण ॥

अपनी अपनी जाति सौं, सब को बैसैं पांति ।
दादू सेवग राम का, ताकै नहीं भरांति ॥ १२३ ॥
चोर अन्याई मसकरा, सब मिलि बैसैं पांति ।
दादू सेवग राम का, तिन सौं करैं भरांति ॥ १२४ ॥
दादू सूप बजायां क्यों टलै, घरमैं बड़ी बलाइ ।
काल झाल इस जीव का, बातन ही क्यों जाइ ॥१२५॥
सांप गया, सहनाण कौं, सब मिलि मारैं लोक ।
दादू ऐसा देखिये, कुल का डगरा फोक ॥ १२६ ॥
दादू दून्यूं भरम हैं, हिंदू तुरक गंवार ।
जे दुहुवां थैं रहित हैं, सो गहि तत्त विचार ॥ १२७ ॥
अपना अपना करि लिया, भंजन माँहैं बाहि ।
दादू एकै कूप जल, मन का भरम उठाइ ॥ १२८ ॥
दादू पानी के बहु नांव धरि, नाना विधि की जाति ।
बोलणहारा कौन है, कहौ धौं कहां समाति ॥ १२९ ॥
जब पूरण ब्रह्म विचारिये, तब सकल आतमा एक ।

(१२५) सूप बजाये=अयुक्त तुच्छ साधनों से घर की बड़ी बलायें (अंतःकरण की खोटी वासनायें) दूर नहीं होतीं । जैसे कोरी बातों से दुःख निवृत्त नहीं होता ॥

काया के गुण देखिये, तौ नाना बरण अनेक ॥ १३० ॥

॥ अमिष्ट पाप प्रचंड ॥

भाव भगति उपजे नहीं, साहिब का परसंग ।
विषै विकार छूटै नहीं, सो कैसा सतसंग ॥ १३४ ॥
वासन विषै विकार के, तिनकौं आदरमान ।
संगी सिरजनहार के, तिनसौं गर्व गुमान ॥ १३५ ॥

॥ भ्रष्ट स्वभाव अपलट्ट ॥

अंधे कौं दीपक दिया, तौभी तिमर न जाइ ।
सोधी नहीं सरीर की, तासनि का समझाइ ॥ १३६ ॥

॥ सगुना निगुना कृतघ्नी ॥

दादू कहिये कुछ उपगार कौं, मानैं अवगुण दोष ।
अंधे कूप बताइया, सति न मानैं लोक ॥ १३७ ॥
कालरि खेत न नीपजे, जे बाहे सौ बार । (१२–४६)
दादू हाना बीज का, क्या पचि मरे गंवार ॥१३८॥ ग घ ङ

॥ कृतम कर्ता—(मूर्ति पूजन की निंदा) ॥

दादू जिन कंकर पत्थर सेविया, सो अपना मूल गंवाइ ।
अलख देव अंतरि बसै, क्या दूजी जागह जाइ ॥१३६॥
पत्थर पीवैं धोइ करि, पत्थर पूजैं प्राण ।
अन्ति काल पत्थर भये, बहु बूड़े इहि ज्ञान ॥ १४० ॥

---

(१३१) देखौ १५–७७, ग घ ङ ॥

(१३२—१३३) देखौ १२–१३२ और ६७, क ग घ ङ ॥

(१३५) वासन = मनुष्य ॥

(१३७) सत पुरुष उपकार की बात कहते हैं, उस में भी कृतघ्नी जन दोष ही देखते हैं, जैसे अंधे को कुये से बचने की राह बतावैं, उसे भी लोग

कंकर बंध्या गांठड़ी, हीरे के वेसास ।
अंतिकाल हरि जौहरी, दादू सूत कपास ॥ १४१ ॥

॥ संस्कार आगम ॥

दादू पहली पूजे ढूंढ़सी, अब भी ढूंढस बाणि ।
आगैं ढूंढस् होइगा, दादू साति करि जाणि ॥ १४२ ॥

॥ अमिट पाप प्रचंड ॥

दादू पैंडे पाप के, कदे न दीजे पांव ।
जिहिं पैंडें मेरा पिव् मिलै, तिहिं पैंडे का चाव् ॥१४३॥

दादू सुकृत मारग चालतां, बुरा न कबहूं होइ ।
अमृत पातां प्राणिया, मुवा न सुनिये कोइ ॥ १४४ ॥

॥ भ्रम विधौंसण ॥

कुछ नाहीं का नांव् क्या, जे धरिये सो झूठ ।
सुर नर मुनि जन बंधिया, लोका आव्टकूट ॥ १४५ ॥

कुछ नाहीं का नांव् धरि, भरम्यां सब संसार ।
साच झूठ समझै नहीं, ना कुछ किया विचार ॥१४६॥

॥ कस्तूरिया मृग ॥

दादू केई दौड़े द्वारिका, केई कासी जांहि ।

सच नहीं मानते; भाव यह है कि ज्ञान के उपदेश को कृतघ्नी सच नहीं मानते॥

(१४१) दृष्टांत, सोरट—पति त्रिय सौंपि कपास, आप गयो परदेश कौं।
कात्यो नांहि उदास, पति आवत परपंच रचि॥

(१४५) जिस परमेश्वर में नाम रूप गुण क्रिया कुछ नहीं है उस का नाम क्या धरा जावे, जो कुछ धरें तो झूठ ही होगा। लोका आवटकूट कहिये लोक में घटी यंत्र (रहट) की तरह बारंबार जन्म मरण प्रवाह रूपी मिथ्या (कूट) प्रपंच, जिस में अपने स्वरूप के अज्ञान से सुर नर मुनि जन बंध रहे हैं॥

केई मथुरा कों चले, साहिब घटही मांहि ॥१४७॥(घङ)
पूजनहारे पासि हैं, देही मांहैं देव़ । (४–२५८)
दादू ताकौं छाडि करि, बाहरि मांडी सेव़ ॥१४८॥ गघङ

॥ भ्रम विधौंसण ॥

ऊपरि आलम सब करै, साधू जन घट मांहिं ।
दादू एता अंतरा, तातैं बनती नांहिं ॥ १४९ ॥
दादू सब थे एक के, सो एक न जाना ।
जणे जणे का ह्वै गया, यहु जगत दिवाना ॥ १५० ॥

॥ साच ॥

झूठा साचा करि लिया, विष अमृत जाना ।
दुष कौं सुष सब को कहै, ऐसा जगत दिवाना ॥१५१॥
सूधा मारग साच का, साचा होइ सो जाइ ।
झूठा कोई ना चलै, दादू दिया दिपाइ ॥ १५२ ॥
साहिब सौं साचा नहीं, यहु मन झूठा होइ ।
दादू झूठे बहुत हैं, साचा विरला कोइ ॥ १५३ ॥
दादू साचा अंग न ठेलिये, साहिब मानै नांहिं ।
साचा सिर परि राषिये, मिलि रहिये तामांहिं ॥ १५४ ॥
जे कोइ ठेलै साच कौं, तौ साचा रहै समाइ ।
कौड़ी वर क्यौं दीजिये, रत्न अमोलिक जाइ ॥ १५५ ॥

---

(१४९) ऊपरि=बाह्य पूजा ॥
(१५०) दृष्टांत–संख पंचानन ना बज्यो, पंडुन के यज्ञ मांहि ॥
सब मिलि पूछी कृष्ण सौं, मम जन जीम्यो नांहि ॥
(१५५) जो कोई अनधिकारी (साच) सतोपदेश को न ग्रहण करै,

साचे साहिब कौं मिलै, साचे मारगि जाइ ।
साचे सौं साचा भया, तब साचे लिये बुलाइ ॥ १५६ ॥
दादू साचा साहिब सेविये, साची सेवा होइ ।
साचा दर्सन पाइये, साचा सेवग सोइ ॥ १५७ ॥
साचे का साहिब धणी, समर्थ सिरजनहार ।
पाषंड की यहु पृथमी, परपंच का संसार ॥ १५८ ॥
झूठा परगट, साचा छानै, तिन की दादू राम न मानै ॥१५९॥
दादू पाषंडि पीव न पाइये, जे अंतरि साच न होइ ।
ऊपरि थैं क्यूंही रहौ, भीतरि के मल धोइ ॥ १६१ ॥
साच अमर जुगि जुगि रहै, दादू विरला कोइ ।
झूठ बहुत संसार में, उतपति परलै होइ ॥ १६२ ॥
दादू झूठा बदलिये, साच न बदल्या जाइ ।
साचा सिर पर राषिये, साध कहै समझाइ ॥ १६३ ॥
साच न सूझै जब लगैं, तब लग लोचन अंध ।
दादू मुकता छाडि करि, गल में घाल्या फंध ॥ १६४ ॥
साच न सूझै जब लगैं, तब लग लोचन नांहि ।
दादू निरबंध छाडि करि, बंध्या द्वै पष मांहि ॥ १६५ ॥

तो (साचा) सतोपदेष्टा चुप कर बैठे । क्योंकि कौड़ियों के चाहने वालों को अमोलक रत्न देना वृथा है ॥

(१५८) जगत पाखंडी प्रपंची जनों को मानता है, सच्चे साध का मालिक परमेश्वर ही है ॥

(१६०) देखौ २-६८ । ग घ ङ ॥

एक साच सौं गह गही, जीवन मरण निबाहि ।
दादू दुखिया राम बिन, भावै तीरथि जाहि ॥ १७१ ॥
दादू भावै तहां छिपाइये, साच न छाना होइ । (२-११०)
सेस रसातल गगन धू, परगट कहिये सोइ ॥ १७२ ॥ (क ग)

॥ कामी नर ॥

दादू छानै छानै कीजिये, चौड़ें परगट होइ ।
दादू पैसि पयाल में, बुरा करै जिनि कोइ ॥ १७३ ॥

॥ अदया हिंसा ॥

अनकीया लागै नहीं, कीया लागै आइ ।
साहिब के दरि न्याव है, जे कुछ राम रजाइ ॥ १७४ ॥

॥ आत्मार्थी भेष ॥

सोइ जन साधू, सिध सो, सोइ सतवादी सूर ।
सोइ मुनियर दादू बड़े, सन्मुष रहणि हजूर ॥ १७५ ॥
सोइ जन साचे, सो सती, सोइ साधक सूजान ।
सोइ ग्यानी, सोइ पंडिता, जे राते भगवान ॥ १७६ ॥
दादू सोइ जोगी, सोइ जंगमां, सोइ सोफी, सोइ सेष ।
सोइ सन्यासी सेवड़े, दादू एक अलेष ॥ १७७ ॥
सोई काजी, सोई मुल्लां, सोइ मोमिन मूसलमान ।
सोई सयाने सब भले, जे राते राहिमान ॥ १७८ ॥
राम नाम कौं बणिजन बैठे, तार्थं मांडया हाट ।

(१६६–१७०) देखो अंग २१ की ४३-४४ और अंग २० की २१, २२, २३ साखियां । क ग घ ङ ॥

साँई सौं सौदा करें, दादू षोलि कपाट ॥ १७६ ॥

॥ सज्जन दुर्जन ॥

बिच के सिर पाली करें, पूरे सुष संतोष ।
दादू सुध बुध आतमा, ताहि न दीजे दोष ॥ १८० ॥
सुध बुध सूं सुष पाइये, कै साध बमेकी होइ ।
दादू ये बिच के बुरे, द्राधे रींगे सोइ ॥ १८१ ॥
जिनि कोई हरिनांव में, हम कों हाना बाहि ।
तायें तुम यें डरत हूं, क्योंही टलै बलाइ ॥ १८२ ॥

॥ परमार्थी ॥

जे हम छाडें राम कों, तौ कौन गहेगा ।
दादू हम नहिं उचरें, तौ कौन कहेगा ॥ १८३ ॥

॥ कामी नर ॥

एक राम छाड़े नहीं, छाडे सकल विकार ।
दूजा सहजें होइ सब, दादू का मत सार ॥ १८४ ॥
जे तूं चाहे राम कूं, तौ एक मना आराध ।
दादू दूजा दूरि करि, मन इंद्री कर साध ॥ १८५ ॥

---

(१८०) मध्यमावस्था के सिर खपाते हैं, पूरण ज्ञान वाले सुख संतोष संपन्न होते हैं। आत्मा शुद्ध बुद्ध है उसको कोई दोष नहीं लगता ॥

(१८१) द्राधे रींगे=दग्ध (तपायमान) रहि गये ॥

(१८३) दृष्टांत—गुर दादू आमेर तैं, चले सीकरी जांइ ।
मार्ग चलत काहू सिषन सौं, तब यह साखि सुनाइ ॥

(१८५) एक मना आराध=एकाग्र चित्त से आराधन कर ॥

॥ विरक्तता ॥

कबीर बिचारा कह गया, बहुत भांति समझाइ ।
दादू दुनिया बावरी, ताके संगि न जाइ ॥ १८६ ॥

॥ सूंषिम मारग ॥

पावहिंगे उस ठौर को, लंघेंगे यहु घाट ।
दादू क्या कहि बोलिये, अजहूं बिचही वाट ॥ १८७ ॥

॥ साच ॥

साचा राता साच सौं, झूठा राता झूठ ।
दादू न्याव नबेरिये, सब साधों कौं पूछ ॥ १८८ ॥

॥ सज्जन दुर्जन ॥

जे पहुंचे ते कहि गये, तिन की एकै बात ।
सबै सयाने एकमत, उनकी एकै जात ॥ १८६ ॥

जे पहुंचे ते पूछिये, तिन की एकै बात ।
सब साधों का एकमत, ये बिच के बारह बाट ॥ १६० ॥

सबै सयाने कहि गये, पहुंचे का घर एक ।
दादू मारग मांहिले, तिन की बात अनेक ॥ १६१ ॥

सूरिज साषी भूत है, साच करै परकास ।
चोर डरै चोरी करै, रैनि तिमर का नास ॥ १६२ ॥

---

(१६०) ते = तिन से ॥

(१६१) पहुंचे = पहुंचने । मारग मांहिले = बिचले मार्ग वाले । पुस्तक नं० ३, ४ और ५ में "मांहिले" की जगह "मांहिके" है ॥

(१६२) देखो १–१४८ । क ग घ ङ ॥

चोर न भावै चांदिणां, जिनि उजियारा होइ ।
सूते का सब धन हरों, मुझै न देषै कोइ ॥ १६४ ॥

॥ संस्कार आगम ॥

घटि घटि दादू कहि समझावै, जैसा करै सो तैसा पावै ।
को काहू का सीरी नांहीं, साहिब देषै सब घट मांहीं ॥ १६५ ॥

॥ इति साच को अंग सम्पूर्ण समाप्त ॥ १३ ॥

अथ भेष को अङ्ग ॥ १४ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

॥ पतिव्रत नि का ॥

दादू बूडे ज्ञान सब, चतराई जलि जाइ ।
अंजन मंजन फूकि दे, रहे राम ल्यौ लाइ ॥ २ ॥
राम विना सब फीके लागैं, करणी कथा गियान ।
सकल अविर्था कोटि करि, दादू जोग धियान ॥ ३ ॥

॥ इंद्रियार्थी भेष ॥

ज्ञानी पंडित बहुत हैं, दाता सूर अनेक ।
दादू भेष अनंत हैं, लागि रह्या सो एक ॥ ४ ॥

(१६५) इस साखी का द्वितीयार्द्ध पुस्तक नं० ३—४ में नहीं है ॥

कोरा कलस अवाह का, ऊपरि चित्र अनेक ।
क्या कीजे दादू वस्त विन, ऐसे नाना भेष ॥ ५ ॥
बाहरि दादू भेष बिन, भीतरि वस्त अगाध ।
सो ले हिरदै रापिये, दादू सन्मुष साधू ॥ ६ ॥
दादू भांडा भरि धरि वस्त सूं, ज्यों महिंगे मोलि विकाइ ।
पाली भांडा वस्त विन, कौड़ी बदलै जाइ ॥ ७ ॥
दादू कनक कलस विप सूं भरया, सो किस आवे काम ।
सो धनि कूटा चाम का, जामैं अमृत राम ॥ ८ ॥
दादू देषै वस्त कौं, बासन देषै नांहिं ।
दादू भीतरि भरि धरया, सो मेरे मन मांहिं ॥ ९ ॥
दादू जे तूं समझै तौ कहूं, साचा एक अलेष ।
डाल पान तजि, मूल गहि, क्या दिपलावै भेष ॥ १० ॥
दादू सब दिपलावैं आप कूं, नाना भेष बणाइ ।
जहं आपा मेटन हरि भजन, तिहिं दिसि कोई न जाइ ॥११॥
सो दसा कतहूं रही, जिहिं दिसि पहुंचे साध ।
मैं तैं मूरिष गहि रहे, लोभ बड़ाई वाद ॥ ११½ ॥ ग घ ङ

(५) कुम्हार की भट्टी का कोरा घड़ा, चाहे अनेक चित्रदार भी हो पर उस में कोई वस्तु न हो, तो वह खाली देखने ही का होता है । तैसे भक्ति-हीन भेषधारी केवल देखने ही के होते हैं ॥

(८) सोने का कलश यदि विप से भरा हो तो वह किस काम का । कूटे हुये चमड़े का कुप्पा, यदि अमृत से भरा हो, तो वह धन्य है ॥ अर्थात् जिस साधू ने रामरूपी अमृत अपने अंदर सञ्चय किया है, वह कृतकृत्य है पर जिस ने केवल ऊपर से भेष बना रक्खा है वह किसी अर्थ का नहीं है ॥

दादू भेष बहुत संसार मैं, हरिजन बिरला कोइ।
हरिजन राता राम सूं, दादू एकै होइ ॥ १२ ॥
हीरै रीझै जौहरी, थलि रीझै संसार।
स्वांगि साध बहु अंतरा, दादू साति बिचार ॥ १३ ॥
स्वांगि साध बहु अंतरा, जेता धरणि अकास।
साधू राता रामसौं, स्वांगी जगत की आस ॥ १४ ॥
दादू स्वांगी सब संसार है, साधू बिरला कोइ।
जैसैं चंदन बावना, बनि बनि कहीं न होइ ॥ १५ ॥
दादू स्वांगी सब संसार है, साधू कोई एक।
हीरा दूरि दिसंतरा, कंकर और अनेक ॥ १६ ॥
दादू स्वांगी सब संसार है, साधू सोधि सुजाण।
पारस परदेसौं भया, दादू बहुत पपाण ॥ १७ ॥
दादू स्वांगी सब संसार है, साध समंदां पार।
अनल पंषि कहं पाइये, पंषी कोटि हजार ॥ १८ ॥
दादू चंदन बन नहीं, सूरन के दल नांहिं।
सकल समंदि हीरा नहीं, त्यौं साधू जग मांहिं ॥ १९ ॥
जे सांई का ह्वै रहै, सांई तिस का होइ।
दादू दूजी बात सब, भेष न पावै कोइ ॥ २० ॥

(१९) जैसे बनों में चंदन का वृक्ष बिरला होता है, तैसे साधू जग में बिरला ही मिलता है ॥

(२०) जो संपूर्ण विषयों से मन को मोड़ कर केवल परमेश्वर में ही अनन्य भक्ति वाला होता है तिस को ही परमेश्वर मिलता है। अन्य उपायों (भेषादि) से परमेश्वर नहीं मिलता ॥

दादू स्वांग सगाई कुछ नहीं, राम सगाई साच ।
दादू नाता नांव का, दूजे अंगि न राच ॥ २१ ॥
दादू एकै आतमा, साहिब है सब मांहि ।
साहिब कै नाते मिलै, भेष पंथ के नाहि ॥ २२ ॥
दादू माला तिलक सूं कुछ नहीं, काहू सेती काम ।
अंतरि मेरे एक है, अहि निसि उस का नाम ॥ २३ ॥

॥ अमिट पाप प्रचंड ॥

भगत भेष धरि मिथ्या बोलै, निंद्या पर अपवाद ।
साचे कौं झूठा कहै, लागै बहु अपराध ॥ २४ ॥
दादू कबहूं कोई जिनि मिलै, भगत भेष सूं जाइ ।
जीव जन्म का नास है, कहै अमृत, विष पाइ ॥ २५ ॥

॥ चित कपटी ॥

दादू पहुंचे पूत बटाऊ होइ करि, नट ज्यूं काछ्या भेष ।
षबरि न पाई षोज की, हम कूं मिल्या अलेष ॥ २६ ॥
दादू माया कारणि मूंड मुंडाया, यहु तौ जोग न होई ।
पारब्रह्म सूं पर्चा नांहीं, कपटि न सीझै कोई ॥ २७ ॥

---

(२६) राम पूत साध कहाय कर, नट का सा भेष धारण कर, बटाऊ होकर चल पड़ते हैं, परमेश्वर का खोज तो जानते नहीं पर कहते हैं कि हम ने अलेख को जान लिया है ॥ यथा–

सारदूल को स्वांग करि, कूकर की करतूति ।
तुलसी तापै चाहई, कीरति विजै विभूति ॥

(२७) कपटि न सीझै कोई = कपट से कोई कार्य नहीं सिद्ध होता है ॥

॥ अनलगनि बिभिचार ॥

पीव न पावै बावरी, रचि रचि करै सिंगार ।
दादू फिरि फिरि जगत सूं, करैगी बिभचार ॥ २८ ॥
प्रेम प्रीति सनेह बिन, सब झूठे सिंगार ।
दादू आतम रत नहीं, क्यूं मानै भर्तार ॥ २६ ॥
दादू जग दिपलावै बावरी, षोड़स करै सिंगार ।
तहं न संवारै आप कूं, जहं भीतरि भर्तार ॥ ३० ॥

॥ इंद्रियार्थी भेष ॥

सुध बुध जीव धिजाइ करि, माला संकल बाहि ।
दादू माया ज्ञान सूं, स्वामी बैठा पाइ ॥ ३१ ॥
जोगी जंगम सेवड़े, बोध सन्यासी सेष । (१६–२७)
षट दर्सन दादू राम बिन, सबै कपट के भेष ॥ ३२ ॥
दादू सेष मसाइक औलिया, पैकंबर सब पीर ।
दर्सन सूं परसन नहीं, अजहूं बेली तीर ॥ ३३ ॥
दादू नाना भेष बनाइ करि, आपा देषि दिषाइ ।
दादू दूजा दूरि करि, साहिब सूं ल्यौ लाइ ॥ ३४ ॥
दादू देषा देषी लोक सब, केते आवैं जांहिं ।
राम सनेही ना मिलैं, जे निज देषैं मांहिं ॥ ३५ ॥
दादू सब देषैं अस्थूल कौं, यहु ऐसा आकार ।
सूषिम सहज न सूझई, निराकार निर्धार ॥ ३६ ॥

(३१) मीठे वचनों से मनुष्यों को चुपकार कर, माला रूपी जंजीर उन के गले में डालि कर, झूठा ज्ञान देते हुये, स्वामी बनकर भेषधारी खाते हैं ॥

॥ पारिष अपारिष ॥

दादू बाहिर का सब देषिये, भीतरि लष्या न जाइ ।
बाहरि दिषावा लोक का, भीतरि राम दिषाइ ॥ ३७ ॥

दादू यहु परिष सराफी ऊपली, भीतरि की यहु नांहि ।
अंतर की जानैं नहीं, तायैं षोटा पांहि ॥ ३८ ॥

दादू झूठा राता झूठ सूं, साचा राता साच ।
एता अंध न जानहीं, कहं कंचन कहं काच ॥ ३९ ॥

॥ इंद्रियार्थी भेष ॥

दादू सचु विन सांई ना मिलै, भावै भेष वनाइ ।
भावै करवत उरध मुषि, भावै तीरथ जाइ ॥ ४० ॥

दादू साचा हरि का नांव है, सो ले हिरदै राषि ।
पाषंड प्रपंच दूरि करि, सब साधौं की साषि ॥ ४१ ॥

॥ आपा निर्देष ॥

हिरदै की हरि लेइगा, अंतरजामी राइ ।
साच पियारा राम कूं, कोटिक करि दिषलाइ ॥ ४२ ॥

दादू मुष की ना गहै, हिरदै की हरि लेइ ।
अंतरि सूधा एक सूं, तौ वोल्यां दोस न देइ ॥ ४३ ॥

• (४०) करवत उरध मुषि = काशी करवत (आरे से कटकर प्राण त्याग)

(४३) जो कोई मुख से कहता है उस पर ईश्वर ध्यान नहीं देता, किंतु जो उस के हृदय में हो, उस पर ध्यान देता है । यथा दृष्टांत—

दोहा—संत दोय इक ठौर थे, इक कपटी इक शुद्ध ।
शुद्ध राम कौं गालि दे, कपटी स्तुति अबुद्ध ॥

॥ इंद्रियार्थी भेष ॥

सब चतराई देषिये, जे कुछ कीजे आन।
मन गहि राषे एक सूं, दादू साध सुजान ॥ ४४ ॥

॥ आत्मार्थी भेष ॥

सबद सुई, सूरति धागा, काया कंथा लाइ।
दादू जोगी जुगि जुगि पहिरे, कबहूं फाटि न जाइ ॥४५॥

ज्ञान गुरू का गूदड़ी, सबद गुरू का भेष।
अतीत हमारी आत्मा, दादू पंथ अलेष ॥ ४६ ॥

इसक अजब अबदाल है, दरदवंद दरवेस।
दादू सिका सबुर है, अकलि पीर उपदेस ॥ ४७ ॥

इति भेष को अंग संपूर्ण समाप्त ॥ १४ ॥

---

(४७) इसक=प्रेम। अजब=अद्भुत। अबदाल=सिद्धि व करामात। दरदवंद=बिरहीजन। दरवेस=साधु। सिका=चिन्ह, भेष। सबुर=संतोष, अकलि पीर उपदेस=बुद्धिमानों का यह उपदेश है कि परमेश्वर के प्रेम ही को सिद्धि समझै। परमेश्वर के विरह में दर्दवंद रहे सोई साधुत्व है, और संतोष ही भेष चिन्ह वा बाना है ॥ यथा—

सुंदर राता एक सौं, दिल सौं दूजा नेस।
इसक मुहब्बत बंदगी, सो कहिए दरवेस ॥

अथ साध कौ अङ्ग ॥ १५ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

॥ साध महिमा ॥

दादू निराकार मन सुरति सौं, प्रेम प्रीति सौं सेव ।
जे पूजे आकार कौं, तौ साधू प्रतषि देव ॥ २ ॥
दादू भोजन दीजे देह कौं, लीया मनि विश्राम ।
साधू के मुषि मेलिये, पाया आतमराम ॥ ३ ॥
ज्यौं यहु काया जीव की, त्यौं सांई के साध ।
दादू सब संतोषिये, मांहैं आप अगाध ॥ ४ ॥

॥ सतसंग माहात्म ॥

साधू जन संसार में, भवजल बोहिथ अंग ।
दादू केते ऊधरे, जेते बैठे संग ॥ ५ ॥
साधू जन संसार में, सीतल चंदन वास ।
दादू केते ऊधरे, जे आये उन पास ॥ ६ ॥
साधू जन संसार में, हीरे जैसा होइ ।
दादू केते ऊधरे, संगति आये सोइ ॥ ७ ॥
साधू जन संसार में, पारस परगट गाइ ।
दादू केते ऊधरे, जेते परसे आइ ॥ ८ ॥

रूप विरष बनराइ सब, चंदन पासैं होइ ।
दादू बास लगाइ करि, किये सुगंधे सोइ ॥ ९ ॥
जहां अरंड अरु आक थे, तहं चंदन ऊग्या मांहिं ।
दादू चन्दन करि लिया, आक कहै को नांहिं ॥ १० ॥
साध नदी, जल रामरस, तहां पषालै अंग ।
दादू निर्मल मल गया, साधू जन के संग ॥ ११ ॥

॥ परमार्थी ॥

साधू बरषैं रामरस, अमृत बाणी आइ ।
दादू दर्सन देषतां, त्रिविध ताप तन जाइ ॥ १२ ॥

॥ साध संग महिमा ॥

संसार विचारा जात है, बहिया लहरि तरंग ।
भेरै बैठा ऊबरे, सत साधू के संग ॥ १३ ॥
दादू नेड़ा परम पद, साधू संगति मांहिं ।
दादू सहजैं पाइये, कबहूं निर्फल नांहिं ॥ १४ ॥
दादू नेड़ा परम पद, करि साधू का संग ।
दादू सहजैं पाइये, तन मन लागै रंग ॥ १५ ॥
दादू नेड़ा परम पद, साधू संगति होइ ।
दादू सहजैं पाइये, स्यावत सन्मुष सोइ ॥ १६ ॥
दादू नेड़ा परम पद, साधू जन के साथ ।
दादू सहजैं पाइये, परम पदारथ हाथ ॥ १७ ॥
साध मिलै तब ऊपजै, हिरदै हरि का भाव ।
दादू संगति साध की, जब हरि करै पसाव ॥ १८ ॥

साध मिले तब ऊपजे, हिरदे हरि का हेत ।
दादू संगति साध की, कृपा करे तब देत ॥ १६ ॥
साध मिले तब ऊपजे, प्रेम भगति रुचि होइ ।
दादू संगति साध की, दया करि देवे सोइ ॥ २० ॥
साध मिले तब ऊपजे, हिरदे हरि की प्यास ।
दादू संगति साध की, अविगत पुरवे आस ॥ २१ ॥
साध मिले तब हरि मिले, सब सुप आनंद मूर ।
दादू संगति साध की, राम रह्या भरपूर ॥ २२ ॥

॥ चाँप चर्चा ॥

परम कथा उस एक की, दूजा नांहीं आन ।
दादू तन मन लाइ करि, सदा सुरति रसपान ॥ २३ ॥

॥ साध सपरस (स्पर्श) विनती ॥

प्रेम कथा हरि की कहै, करे भगति ल्यौ लाइ ।
पिवे पिलावे रामरस, सो जन मिलवौ आइ ॥ २४ ॥
दादू पिवे पिलावे रामरस, प्रेम भगति गुण गाइ ।
नित प्रति कथा हरि की करे, हेत सहित ल्यौ लाइ ॥२५॥
आन कथा संसार की, हमहिं सुणावे आइ ।
तिस का सुप दादू कहै, दई न दिपाई ताहि ॥ २६ ॥
दादू सुप दिपलाई साध का, जे तुमहीं मिलवे आइ ।
तुम मांही अंतर करे, दई न दिपाई ताहि ॥ २७ ॥
जब दरवो तब दीजियो, तुम पे मांगों येहु ।

(२७) दिपलाई = दिखलाइये । दिपाई = दिखाइये ॥

दिन प्रति दर्सन साध का, प्रेम भगति दिढ़ देहु ॥ २८ ॥

साध सपीड़ा मन करै, सतगुर सबद सुणाइ ।

मीरां मेरा मिहरि करि, अंतर विरह उपाइ ॥ २९ ॥

॥ सज्जन ॥

ज्यों ज्यों होवै त्यों कहै, घटि वधि कहै न जाइ ।

दादू सो सुध आतमा, साधू परसै आइ ॥ ३० ॥

॥ सतसंग महिमा ॥

साहिब सौं सन्मुख रहै, सतसंगति में आइ ।

दादू साधू सब कहैं, सो निरफल क्यूं जाइ ॥ ३१ ॥

ब्रह्म गाइ त्रिय लोक में, साधू अस्थन पान ।

मुष मारग अमृत झरै, कत ढूंढै दादू आन ॥ ३२ ॥

दादू पाया प्रेम रस, साधू संगति मांहि ।

फिरि फिरि देषै लोक सब, यहु रस कतहूं नांहिं ॥ ३३ ॥

दादू जिस रस कूं मुनियर मरैं, सुरनर करैं कलाप ।

सो रस सहजैं पाइये, साधू संगति आप ॥ ३४ ॥

संगति बिन सीझै नहीं, कोटि करै जे कोइ ।

दादू सतगुर साध बिन, कबहूं सुध न होइ ॥ ३५ ॥

---

(२९) साध "सतगुर सबद" (परमोपदेश) सुनाय कर, मन में मुमुक्षुता दृढ़ करैं, जिस से परमात्मा से मिलने की चाह उत्पन्न हो ॥

(३२) अस्थन = स्तन = थन = गाय के थन ॥

अमी पताल न पाइये, ना स[illegible] अकास ।

मत्याषि अमी जु पाइये, जैमल [illegible] प्रसाद ॥ ३८ ॥

दादू नेड़ा दूर थैं, अविगत का आराध ।
मनसा वाचा कर्मना, दादू संगति साध ॥ ३६ ॥
सर्गं न सीतल होइ मन, चंद न चंदन पास ।
सीतल संगति साध की, कीजै दादू दास ॥ ३७ ॥
दादू सीतल जल नहीं, हेम न सीतल होइ ।
दादू सीतल संत जन, राम सनेही सोइ ॥ ३८ ॥

॥ साध वे परवाही ॥

दादू चंदन कदि कह्या, अपना प्रेम प्रकास ।
दह दिसि परगट ह्वै रह्या, सीतल गंध सुवास ॥ ३६ ॥
दादू पारस कदि कह्या, मुझ थी कंचन होइ ।
पारस परगट ह्वै रह्या, साच कहै सब कोइ ॥ ४० ॥

॥ नर विड़रूप (हठीजन) ॥

तन नहिं भूला, मन नहिं भूला, पंच न भूला प्राण ।
साध सवद क्यूं भूलिये, रे मन मूढ़ अजाण ॥ ४१ ॥

॥ साध महिमा ॥

रत्न पदारथ माणिक मोती, हीरौं का दरिया ।
चिंतामणि चित राम धन, घट अमृत भरिया ॥ ४२ ॥
समर्थ सूरा साध सो, मन मस्तक धरिया ।
दादू दर्सन देषतां, सब कारिज सरिया ॥ ४३ ॥
धरती अंबर राति दिन, रवि ससि नांवैं सीस ।
दादू बलि बलि वारणै, जे सुमिरैं जगदीस ॥ ४४ ॥
[illegible] नांव अलह का लेइ ।

(२७) दिपलाई = [illegible]

दादू जिमीं असमान सब, उन पावों सिर देह ॥ ४५ ॥

जे जन राते राम सौं, तिन की मैं बलि जांव ।

दादू उन पर वारणे, जे लागि रहे हरि नांव ॥ ४६ ॥

॥ साध पारिष लष्यन ॥

जे जन हरि के रंगि रंगे, सो रंग कदे न जाइ ।

सदा सुरंगे संत जन, रंग में रहे समाइ ॥ ४७ ॥

दादू राता राम का, अविनासी रंग मांहिं ।

सब जग धोबी धोइ मरे, तोभी छूटे नांहिं ॥ ४८ ॥

साहिब किया सो क्यों मिटे, सुंदर सोभा रंग ।

दादू धोवै बावरे, दिन दिन होइ सुरंग ॥ ४९ ॥

॥ साध परमार्थी (परोपकारी) ॥

परमारथ कौं सब किया, आप सवारथ नांहिं ।

परमेसुर परमारथी, के साधू कलि मांहिं ॥ ५० ॥

पर उपगारी संत सब, आये इहि कलि मांहिं ।

पिवैं पिलावैं रामरस, आप सवारथ नांहिं ॥ ५१ ॥

पर उपगारी संत जन, साहिब जी तेरे ।

जाती देषी आतमा, राम कहि टेरे ॥ ५२ ॥

चंद सूर पावक पवन, पाणी का मत सार ।

धरती अंबर राति दिन, तरवर फलैं अपार ॥ ५३ ॥

छाजन भोजन परमारथी, आतम देव अधार ।

साधू सेवग राम के, दादू पर उपगार ॥ ५४ ॥

॥ साध सापीभूत ॥

जिस का तिस कौं दीजिये, सुकृत परउपगार।
दादू सेवग सो भला, सिरि नहिं लेवै भार ॥ ५५ ॥

परमारथ कूं राषिये, कीजै परउपगार।
दादू सेवग सो भला, निरंजन निरकार ॥ ५६ ॥

सेवा सुकृत सब गया, मैं मेरा मन मांहिं।
दादू आपा जब लगै, साहिब मानै नांहिं ॥ ५७ ॥

॥ साध पारप लष्यन ॥

साध सिरोमणि सोधिले, नदी पूरि परि आइ।
सजीवनि साम्हां चढ़े, दूजा वाहिया जाइ ॥ ५८ ॥

॥ सज्जन दुर्जन ॥

जिन के मस्तकि मणि बसै, सो सकल सिरोमणि अंग।
जिन के मस्तकि मणि नहीं, ते विष भरे भवंग ॥५६॥

---

(५६) दृष्टांत, दोहा—गोरष ग्यारह बेर बिक्यो, परमारथ के काज।
बिक्यो हुरतजा अली मरद, बार अठारह साज॥

(५८) संसाररूपी नदी है, तिस में विषयरूपी प्रवाह है, जैसे मछली प्रवाह को तोड़ती हुई सामने चढ़ती है तैसे जो विषयों में अनुराग त्याग कर संसार के प्रवाह के विरुद्ध चलते हैं सोई सजीवन हैं। अन्य संसार सागर में बहे जाते हैं॥

(५६) यहां सज्जन और दुर्जन में फर्क उनके ज्ञान पर रक्खा है, तिस में दृष्टांत सर्प का दिया है। अर्थात् जैसे मणिवाला सर्प शिरोमणि होता है तैसे ज्ञानवान अथवा भक्तिवान संत पूजनीय हैं॥

ठठाभपर सौं चली, माई दरसन काज।
यह साखी तासौं कही, गुर दादू सिरताज॥

॥ साध महिमा ॥

दादू इस संसार में, ये द्वै रतन अमोल ।
इक सांई अरु संतजन, इन का मोल न तोल ॥ ६० ॥
दादू इस संसार में, ये द्वै रहे लुकाइ ।
रामसनेही संतजन, औ बहुतेरा आइ ॥ ६१ ॥
सगे हमारे साध हैं, सिरपर सिरजनहार । (१–१४०)
दादू सतगुर सो सगा, दूजा धंध बिकार ॥ ६२ ॥ खगपक

॥ साध पारिष लष्यन ॥

जिन के हिरदै हरि बसै, सदा निरंतर नांउं ।
दादू साचे साध की, में बलिहारी जांउं ॥ ६३ ॥
साचा साध दयाल घट, साहिब का प्यारा ।
राता माता रामरस, सो प्राण हमारा ॥ ६४ ॥

॥ सज्जन बिपरीत (संसार से) ॥

दादू फिरता चाक कुंभार का, यूं दीसै संसार ।
साधू जन निहचल भये, जिन के राम अधार ॥ ६५ ॥

॥ सतसंग महिमा ॥

जलती बलती आतमा, साध सरोवर जाइ ।
दादू पीवै रामरस, सुष में रहै समाइ ॥ ६६ ॥

॥ करम कर्ता ॥

कांजी माँहैं भेलि करि, पीवै सब संसार ।
कर्ता केवल निर्मला, को साधू पीवणहार ॥ ६७ ॥

---

(६७) विषय भोग आत्मक कांजी में मिलाकर संसारी जन रामरस पीते हैं । पर कोई एक विरला साधू जन निर्मल रामरस पीता है ॥

॥ संगति कुसंगति फल ॥

दादू असाध मिले अंतर पड़े, भाव भगति रस जाइ ।
साध मिले सुष ऊपजै, आनन्द अंगि न माइ ॥ ६८ ॥
दादू साधू संगति पाइये, राम अमी फल होइ ।
संसारी संगति पाइये, विष फल देवै सोइ ॥ ६९ ॥
दादू सभा संत की, सुमति उपजै आइ ।
साकत की सभा वैसतां, ज्ञान काया थैं जाइ ॥ ७० ॥

॥ जगजन विपरीत ॥

दादू सब जग दीसै एकला, सेवग स्वामी दोइ ।
जगत दुहागी राम विन, साध सुहागी सोइ ॥ ७१ ॥
दादू साधू जन सुषिया भये, दुनिया कूं बहु दंद ।
दुनी दुषी हम देषतां, साधन सदा अनंद ॥ ७२ ॥
दादू देषत हम सुषी, सांई के संगि लागि ।
यों सो सुषिया होइगा, जाके पूरे भाग ॥ ७३ ॥

॥ रस ॥

दादू मीठा पीवै रामरस, सोभी मीठा होइ ।
सहजैं कड़वा मिटि गया, दादू निर्विष सोइ ॥ ७४ ॥

॥ साध पारष लष्यन ॥

दादू अंतरि एक अनंत सूं, सदा निरंतर प्रीति ।

(६८) अंतर = भेद, फरक, विपरीतभाव । न माइ = न अमावै ॥
(७१) सब जग राम के भजन विना अकेला दुहागी प्रतीत होता है, सेवक (भक्त) राम सहित सुहागी है ॥
(७२) हम देषतां = हमारे देखते हुये ।

जिहि प्राणी प्रीतम वसे, सो वैठा त्रिभवन जीति ॥७५॥

॥ साध महिमा माहात्म ॥

दादू मैं दासी तिंहिं दास की, जिंहिं सांगि पेले पीव ।
वहुत भांति करि वारणें, तापरि दीजे जीव ॥ ७६ ॥ स

॥ भरम विधूसण ॥

दादू लीला राजा राम की, पेलें सव ही संत । (१३-१३१)
आपा पर एकै भया, छूटी सवै भरंत ॥ ७७ ॥

॥ जगजन विपरीत ॥

दादू आनंद सदा अडोल सूं, राम सनेही साध ।
प्रेमी प्रीतम कूं मिले, यहु सुप अगम अगाध ॥ ७८ ॥

॥ पुरुष प्रकाशी ॥

यहु घट दीपक साध का, ब्रह्म जोति परकास । (१२-११६)
दादू पंपी संत जन, तहां परें निज दास ॥ ७९ ॥

---

(७५) अपने अंतर (भीतर) जो एक अनंत परमात्मा से सदा प्रीति रखता है, सो त्रिभुवन को जीति वैठा ॥

(७७) दृष्टांत—टौंक पधारे महोच्छव, आप लगाये भोग ।
तव सिष पूछी जव कही, या साषी यह जोग ॥

टौंक में एक महोत्सव था, वहां भोजन सामग्री भीड़ के लिये कम थी। दयालजी ने भोग लगाया तो सामग्री अटूट हो गई, इस का भेद टीलाजी (दयालजी के शिष्य) ने पूछा, उस के उत्तर में यह साखी दयालजी ने कही॥

(७९) ब्रम्ह जोति का प्रकाश साधुओं का दीपक है, जिस में पतंगों की तरह संत जन (निजदास) जा पड़ते हैं, अर्थात् लय लगाते हैं ॥

घर वन मांहैं राषिये, दीपक जोति जगाइ ।
दादू प्राण पतंग सब, जहं दीपक तहं जाइ ॥ ८० ॥
घर वन मांहैं राषिये, दीपक जलता होइ ।
दादू प्राण पतंग सब, जाइ मिलैं सब कोइ ॥ ८१ ॥
घर वन मांहैं राषिये, दीपक प्रगट प्रकास ।
दादू प्राण पतंग सब, आइ मिलैं उस पास ॥ ८२ ॥
घर वन मांहैं राषिये, दीपक जोति सहेत ।
दादू प्राण पतंग सब, आइ मिलैं उस हेत ॥ ८३ ॥
जिहिं घटि परगट राम है, सो घट तज्या न जाइ ।
नैंनहुं मांहैं राषिये, दादू आप नसाइ ॥ ८४ ॥
जिहिं घटि दीपक राम का, तिहिं घटि तिमर न होइ । (२-१११, १२-११२)
उस उजियारे जोति के, सब जग देषै सोइ ॥ ८५ ॥ जगपहू,

॥ साध अविहड़ ॥

कबहुं न बिहड़ै सो भला, साधू दिढ मति होइ ।
दादू हीरा एक रस, बांधि गांठड़ी सोइ ॥ ८६ ॥

(८०-८३) ऐसी प्रकाश रूपी वृत्ति को लगाते हुये, चाहे घर में रहो चाहे वन में, प्राण मनादि सब पतंगों की तरह उस जोति में आ पड़ेंगे ॥

(८४) जिस साधु की वृत्ति में ब्रम्ह जोति का साक्षात्कार है उस वृत्ति को छोड़ना न चाहिये, किंतु उस प्रकाश को नैनों (अंतर्मुख वृत्ति) के सन्मुख रखना चाहिये, आपा को नसाइ (त्याग) कर के ॥

(८६) ऊपर कही हुई वृत्ति से कभी अलग न हो, सो भला साधु इस साधन में दृढ़ रहै और हीरा रूपी ब्रम्ह प्रकाश में एक रस लय लगाकर अमूल्य तत्व का मालिक हो ॥

॥ साध पारष लष्यन ॥

गरथ न बांधै गांठड़ी, नहिं नारी सौं नेह ।
मन इंद्री अस्थिर करै, छाड़ि सकल गुण देह ॥ ८७ ॥
निराकार सौं मिलि रहै, अषंड भगति करि लेह ।
दादू क्योंकर पाइये, उन चरणौं की षेह ॥ ८८ ॥
साध सदा संजमि रहै, मैला कदे न होइ ।
दादू पंक परसै नहीं, कर्म न लागै कोइ ॥ ८९ ॥
साध सदा संजमि रहै, मैला कदे न होइ ।
सुंनि सरोवर हंसला, दादू बिरला कोइ ॥ ९० ॥
सहिब का उनहार सब, सेवग मांहैं होइ ।
दादू सेवग साध सो, दूजा नाहीं कोइ ॥ ९१ ॥
जब लग नैंन न देषिये, साध कहैं ते अंग ।
तब लग क्यों करि मानिये, साहिब का परसंग ॥ ९२ ॥
दादू सोइ जन साधू सिध सो, सोई सकल सिरमौर ।
जिहिं के हिरदै हरि बसै, दूजा नाहीं और ॥ ९३ ॥
दादू औगुण छाडै गुण गहै, सोई सिरोमणि साध ।
गुण औगुण थैं रहित है, सो निज ब्रह्म अगाध ॥ ९४ ॥

---

(८७) दृष्टांत, दोहा—गल में पहरै गूदड़ी, गांठ न बांधै दाम ।
शेष भावदी (वहाउद्दीन) यौं कहै, मैं तिसकौं करौं सलाम ॥

(९१) पीछे ८८ वीं साखी में जो कहा है कि साधु निराकार परमेश्वर में लयलीन रहै । उस अवस्था को प्राप्त हुये पीछे साधु जिस दशा को प्राप्त होता है सो इस साखी मे बताते हैं । साहिब में लयलीन साधु साहिब की उनहार (सदृश) हो जाता है, परमेश्वर से वह दूजा (न्यारा) नहीं रहता ॥

॥ जगजन विपरीत ॥

दादू सींधव फटक पषाण का, ऊपरि एकै रंग ।
पानी मांहैं देषिये, न्यारा न्यारा अंग ॥ ९५ ॥

दादू सींधव के आपा नहीं, नीर पीर परसंग ।
आपा फटक पषाण कै, मिलै न जल कै संग ॥ ९६ ॥

दादू सब जग फटक पषाण है, साधू सींधव होइ ।
सींधव एकै ह्वै रह्या, पानी पत्थर दोइ ॥ ९७ ॥

॥ साध परमार्थी ॥

को साधू जन उस देस का, आया इहि संसार ।
दादू उस कौं पूंछिये, प्रीतम के समचार ॥ ९८ ॥

समाचार सति पीव के, को साध कहैगा आइ ।
दादू सीतल आतमा, सुष मैं रहै समाइ ॥ ९९ ॥

साध सबद सुष वरषि हैं, सीतल होइ सरीर ।
दादू अंतरि आत्मा, पीवै हरि जल नीर ॥ १०० ॥

दादू दत दरवार का, को साधू वांटै आइ ।
तहां रामरस पाइये, जहं साधू तहं जाइ ॥ १०१ ॥

॥ चौंप चर्चा ॥

दादू सुरता सनेही राम का, सो मुझ मिलवहु आणि ।
तिस आगैं हरिगुण कथूं, सुनत न करई काणि ॥१०२॥

॥ साध परमार्थी ॥

दादू सबही मृतक समान हैं, जीया तबहीं जाणि ।

(१०२) न करई काणि=खोट व कसर न निकालै ॥

दादू छांटा अमी का, को साधू बाहे आणि ॥ १०३ ॥

सबही मृत्तक व्है रहे, जीवैं कौन उपाइ ।
दादू अमृत रामरस, को साधू सींचे आइ ॥ १०४ ॥

सबही मृत्तक मांहि हैं, क्यों करि जीवैं सोइ ।
दादू साधू प्रेमरस, आणि पिलावै कोइ ॥ १०५ ॥

सबही मृत्तक देषिये, किहिं विधि जीवै जीव ।
साध सुधारस आणि करि, दादू बरिषै पीव ॥ १०६ ॥

हरिजल बरिषै, बाहिरा, सूके काया पेत ।
दादू हरिया होइगा, सींचणहार सुचेत ॥ १०७ ॥

॥ कुसंगति ॥

गंगा जमुना सुरसती, मिलैं जब सागर मांहि ।
पारा पानी ह्वै गया, दादू मीठा नांहिं ॥ १०८ ॥

दादू राम न छाड़िये, गहिलो तजि संसार ।
साधू संगति सोधि ले, कुसंगति संग निवार ॥ १०९ ॥

दादू कुसंगति सब परहरी, मात पिता कुल कोइ ।
सजन सनेही बंधवा, भावै आपा होइ ॥ ११० ॥

---

(१०३) कोई साधू उपदेशरूपी अमृत का छिड़काव करै, तब मनुष्य जीवै ॥

(१०७) हरि जल (सुधारस= आत्मोपदेश) के बरसते ही बाहिरा (बायु=काम क्रोध तृष्णा ईर्षादि) करके सूखे हुये काया रूपी खेत, हरे हो जांयगे, यदि सींचने वाला (साधक) सचेत हो ॥

(११०) दृष्टांत-भरथ मात कौं तजि दियौ, पिता तज्यौ प्रहलाद ।
गोप्यां पति, जुग लंकपती, ब्रज आयो तजि साथ ॥

अर्थ—जैसे भरथ ने माता को त्यागा, प्रहलाद ने पिता को, गोपियों ने

अज्ञान मूर्ष हितकारी, सज्जनो समो रिपुः ।
ज्ञात्वा त्यजंति ते, निरामयी मनोजितः ॥ १११ ॥
कुसंगति केते गये, तिन का नांव न ठांव ।
दादू ते क्यों ऊधरें, साध नहीं जिस गांव ॥ ११२ ॥
भाव भगति का भंग करि, घटपारे मारहिं वाट ।
दादू द्वारा मुकति का, षोलें जड़ें कपाट ॥ ११३ ॥

॥ सतसंग महिमा मांहात्म ॥

साध संगति अंतर पड़े, तौ भागैगा किस ठौर ।
प्रेम भगति भावे नहीं, यहु मन का मत और ॥११४॥
दादू राम मिलन के कारणे, जे तूं परा उदास ।
साधू संगति सोधि ले, राम उन्हों के पास ॥ ११५ ॥

॥ पुरष पूकासी (संतमहिमा) ॥

ब्रह्मा संकर सेस मुनि, नारद ध्रू सुषदेव ।
सकल साध दादू सही, जे लागे हरि सेव ॥ ११६ ॥
साध कवल हरि बासनां, संत भवर संग आइ ।
दादू परिमल ले चले, मिले राम कौं जाइ ॥ ११७ ॥

॥ साध सजन ॥

दादू सहजें मेला होइगा, हम तुम हरि के दास ।

अपने पतियों को, रावण को विभीषण ने, तैसे आज संपूर्ण कुटुम्ब को त्याग कर साधू आया ॥

(१११) मूर्ख मित्र और सज्जन वैरी । इन दोनों को समान जानकर मोह से रहित मन को जीतने वाले त्याग देते हैं ॥

अंतरगति तौ मिलि रहे, फुनि परगट परकास ॥ ११८ ॥

॥ साध महिमा ॥

दादू मम सिर मोटे भाग, साधूं का दर्सन किया ।
कहा करै जम काल, राम रसाइण भरि पिया ॥ १२१ ॥

॥ साध समर्थता ॥

दादू एता अविगत आप थैं, साधूं का अधिकार ।
चौरासी लष जीव का, तन मन फेरि संवार ॥ १२२ ॥

विष का अमृत करि लिया, पावक का पाणी ।
वांका सूधा करि लिया, सो साध बिनाणी ॥ १२३ ॥

दादू ऊरा पूरा करि लिया, षारा मीठा होइ ।
फूटा सारा करि लिया, साध बमेकी सोइ ॥ १२४ ॥

वंध्या मुक्ता करि लिया, उरभ्या सुरभि समान ।

---

(११८) दृष्टांत—जगजीवनजी टहलड़ी, आंधी ये गुरदेव ।
ताहि समै साषी लिषी, जगजीवन मति भेव ॥

(११६-२०) देखो ४-२६२ और २६६ । ख ग घ ङ ॥

(१२१) दृष्टांत दोहा—आप निराणे गुहा में, संतन दियो दिदार ।
तब या साषी पद कह्यो, राम कली मथसार ॥

(१२३) विषयासक्त रूपी विष के त्याग से परमात्मरूपी अमृत प्राप्त हुआ । मन की समता से संसार की जलनरूपी पावक के शांत हुये, पानी रूपी शीतलता प्राप्त हुई । इन प्रकारों से जिस ने टेढ़े मार्ग को सीधा कर लिया सो साधु विज्ञानी है ॥

(१२४-१२६) इन तीनों साषियों का भी संसाररूपी बंधन से मुक्त होकर परमानन्द की प्राप्ति तात्पर्य है । सर्व प्रकार से मलीन अंतःकरण को निर्मल करके परमात्मा में सुरति को स्थायी करना ही परम पुरुषार्थ है ॥

वैरी मिंता करि लिया, दादू उत्तिम ज्ञान ॥ १२५ ॥
झूठा साचा करि लिया, काचा कंचनसार ।
मैला निर्मल करि लिया, दादू ज्ञान विचार ॥ १२६ ॥

॥ अमिट पाप ॥

काया कर्म लगाइ करि, तीरथ धोवै आइ ।
तीर्थ मांहै कीजिये, सो कैसें करि जाइ ? ॥ १२७ ॥
जहं तिरिये तहं डूबिये, मन में मैला होइ ।
जहं छूटै तहं वंधिये, कपटि न सींझै कोइ ॥ १२८ ॥

॥ सतसंग महिमा ॥

दादू जब लग जीविये, सुमिरण संगति साध ।
दादू साधू राम विन, दूजा सब अपराध ॥ १२९ ॥

इति साध कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ १५ ॥

अथ मधि कौ अङ्ग ॥ १६ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
दादू द्वै पष रहिता सहज सो, सुष दुष एक समान ।
मरै न जीवै सहज सो, पूरा पद निर्वाण ॥ २ ॥
सहज रूप मन का भया, जब द्वै द्वै मिटी तरंग । (१०—५०)
ताता सीला समि भया, तब दादू एकै अंग ॥३॥ (खगघङ)

सुष दुष मनि मानै नहीं, राम रंगि राता ।
दादू दून्यूं छांडि सब, प्रेम रसि माता ॥ ४ ॥
मति मोटी उस साध की, द्वै पष रहित समान ।
दादू आपा मेटि करि, सेवा करै सुजान ॥ ५ ॥
कछू न कहावै आप कौं, काहू संगि न जाइ ।
दादू निर्पष ह्वै रहै, साहिब सौं ल्यौ लाइ ॥ ६ ॥
सुष दुष मनि मानै नहीं, आपा पर सम भाइ ।
सो मन मन करि सेविये, सब पूरण ल्यौ लाइ ॥ ७ ॥
नां हम छाडैं नां गहैं, ऐसा ज्ञान विचार ।
मधि भाइ सेवैं सदा, दादू मुकति दुवार ॥ ८ ॥
सहज सूंनि मन राषिये, इन दून्यूं के मांहिं । (७-६)
लै समाधि रस पीजिये, तहां काल भै नांहिं ॥६॥ (स ग य ड)
आपा मेटै मृत्तिका, आपा धरै अकास ।
दादू जहं जहं द्वै नहीं, मधि निरंतरि वास ॥ १० ॥

---

(५) मति मोटी = मति श्रेष्ठ ॥

(७) "सो मन" = आपा पर में सम बुद्धि ॥

(१०) संतजन मृतिकारूपी शरीर में आपा (अध्यास, गौरांई, स्थूलाई इत्यादि) को त्यागते हैं, आकाश रूपी व्यापक ब्रह्मरूप आत्मा में आपा धरते हैं, अर्थात् "ब्रह्माहमस्मि" वृत्ति का अभ्यास करते हैं। सो दयालजी कहते हैं कि जहां दोनों-ग्रहण और त्यागरूप वृत्ति नहीं हैं, सोई मध्य निरंतर वास (स्व स्वरूप में स्थिति) है ॥

अथवा भूमि आपा रहित है और आकाश आपा सहित है । तहां संत जनों के हृदय में यह दोनों ही पक्ष नहीं हैं किंतु वे स्व स्वरूप ही में वर्तते हैं ॥

॥ ध्येय-परमस्थान निरूपण ॥

नहीं मृतक नहिं जीवता, नहिं आवै नहिं जाइ । (६—२२)
नहिं सूता नहिं जागता, नहिं भूखा नहिं धाइ ॥ ११ ॥ लयचक्र ॥

दादू इत आकार थैं, दूजा सूषिम लोक ।
तायैं आगैं और है, तहंवां हरिष न सोक ॥ १२ ॥

दादू हद छाड़ि बेहद मैं, निर्भै निर्पष होइ ।
लागि रहै उस एकसौं, जहां न दूजा कोइ ॥ १३ ॥

दादू दूजै अंतर होत है, जिनि आणै मन मांहि । (८—६३)
तहां लै मन कौं राषिये, जहं कुछ दूजा नांहि ॥ १४ ॥ लयचक्र ॥

निराधार घर कीजिये, जहं नाहीं धरणि अकास ।
दादू निहचल मन रहै, निर्गुण के बेसास ॥ १५ ॥

मन चित मनसा आत्मा, सहज सुरति ता मांहिं । (४—२८६)
दादू पंचूं पूरिले, जहं धरती अंबर नांहिं ॥ १६ ॥ लयचक्र ॥

अधर चाल कबीर की, आसंघी नहिं जाइ ।
दादू डाकै मृग ज्यूं, उलटि पड़ै भुइ आइ ॥ १७ ॥

---

(१२) स्थूल और सूक्ष्म सृष्टि से परे जो चेतन है वह हर्ष शोक से रहित है ॥

(१३) "हद" के बदले "हद्द" कुछ पुस्तकों से लिखा है । हद एक तो सिद्धु कुल-कान की वा अन्य मर्यादाओं को त्याग कर स्वतंत्र होना । दूसरी हद सिद्ध ब्रह्मंड को छोड़ कर शुद्ध ब्रह्म में लवलीन होना ॥

(१५) निराधार = परमात्मा जो धरती और आकाश दोनों से निराला है ॥

(१७) कबीर की चाल अधर (अनाधार) है, सो कोई साधारण तौर से चल नहीं सकता । दादूजी कहते हैं कि जो कोई कूदे भी तो मृग की तरह उछल कर नीचे ही पड़ता है ॥

दादू रहणि कबीर की, कठिन विषम यहु चाल ।
अधर एकसों मिलि रह्या, जहां न भंपै काल ॥ १८ ॥
निराधार निज भगति करि, निराधार निज सार ।
निराधार निज नांव ले, निराधार निरकार ॥ १९ ॥
निराधार निज रामरस, को साधू पीवणहार ।
निराधार निर्मल रहै, दादू ज्ञान विचार ॥ २० ॥
जब निराधार मन रहि गया, आत्म के आनंद ।
दादू पीवै राम रस, भेटै परमानंद ॥ २१ ॥

॥ माया ॥

दुह विचि राम अकेला आपै, आवण जाण न देई ।
जहं के तहं सब राषे दादू, पारि पहूंते सेई ॥ २२ ॥

॥ मधि निर्पप ॥

चलु दादू तहं जाइये, जहं मरै न जीवै कोइ ।
आवागवन भै को नहीं, सदा एक रस होइ ॥ २३ ॥
चलु दादू तहं जाइये, जहं चंद सूर नहिं जाइ ।
राति दिवस की गमि नहीं, सहजैं रह्या समाइ ॥२४॥

दृष्टांत—कोउ भेषधारी कहीं, चलैं कबीर जु चाल ।
तब साषी स्वामी कही, मूढ़ बसे क्यूं ताल ॥
(२१) जब निराधार परमात्मा में मन स्थिर हो जाय, तब आत्मा को आनंद हो, जीव रामरस पीवै और परमानंद को प्राप्त हो ॥
(२२) माया जन के बीच हरि, भिन्न २ गुन चीन ।
जगजीवन सोइ ऊबरे, जिन परि किर्पा कीन ॥
अर्थ—माया और संत के बीच रामजी आड़े होकर संत के मन को माया में जाने नहीं देते, तब संत पार पहुंचता है ॥

चलु दादू तहं जाइये, माया मोह थें दूरि ।
सुष दुष को व्यापै नहीं, अविनासी घर पूरि ॥ २५ ॥
चलु दादू तहं जाइये, जहं जम जौरा को नांहिं ।
काल मीच लागै नहीं, मिलि रहिये ता मांहिं ॥ २६ ॥
एक देस हम देषिया, तहं रुति नहिं पलटै कोइ ।
हम दादू उस देस के, जहं सदा एक रस होइ ॥ २७ ॥
एक देस हम देषिया, जहं वस्ती ऊजड़ नांहिं ।
हम दादू उस देस के, सहज रूप ता मांहिं ॥ २८ ॥
एक देस हम देषिया, नहिं नेड़े नहिं दूरि ।
हम दादू उस देस के, रहे निरंतरि पूरि ॥ २९ ॥
एक देस हम देषिया, जहं निस दिन नाहीं घाम ।
हम दादू उस देस के, जहं निकटि निरंजन राम॥३०॥
बारह मासी नीपजै, तहां किया परवेस ।
दादू सूका ना पड़ै, हम आये उस देस ॥ ३१ ॥
जहं बेद कुरान की गमि नहीं, तहां किया परवेस ।
तहं कछु अचिरज देषिया, यहु कुछ औरै देस ॥ ३२ ॥

॥ घर बन ॥

ना घरि रह्या न बन गया, ना कुछ किया कलेस। (१—७४)
दादू मनहीं मन मिल्या, सतगुर के उपदेस॥३३॥ सगघड॥
काहे दादू घरि रहै, काहे बन षंडि जाइ ।
घर बन रहिता राम है, ताही सौं ल्यौ लाइ ॥ ३४ ॥

(२६) जम जौरा को नांहि = काल जरावस्थादि कोई विकार नहीं है॥
(३१) बारह मासी नीपजै = बारहु महीने जहां फसल लगी रहे ॥

दादू जिनि प्राणी करि जाणिया, घर वन एक समान।
घर मांहैं बन ज्यों रहै, सोई साध सुजान ॥ ३५ ॥

सब जग मांहैं एकला, देह निरंतर बास।
दादू कारणि राम के, घर वन मांहि उदास ॥ ३६ ॥

घर वन मांहैं सुप नहीं, सुप है सांई पास।
दादू तासौं मन मिल्या, इन थैं भया उदास ॥ ३७ ॥

नां घरि भला न वन भला, जहां नहीं निज नांव (२–७८)
दादू उनमन मन रहै, भला त सोई ठांव ॥३८॥ [illegible]॥

वैरागी वन मैं वसै, घरवारी घर मांहिं।
राम निराला रहि गया, दादू इन मैं नांहिं ॥ ३९ ॥

॥ सुमिरण नाम निरसंसै ॥

दीन दुनी सदिके करूं, टुक देपण दे दीदार (३–४०)
तन मन भी छिन छिन करूं, भिस्त दोजग भी वार॥४०॥[illegible]

दादू जीवन मरण का, मुझ पछितावा नांहिं।
मुझ पछितावा पीव का, रह्या न नैनहुं मांहिं ॥ ४१ ॥

सुरग नरक संसै नहीं, जीवन मरण भै नांहिं।
राम विमुप जे दिन गये, सो सालैं मन मांहिं ॥ ४२ ॥

सुरग नरक सुप दुप तजे, जीवन मरण नसाइ।
दादू लोभी राम का, को आवै को जाइ ॥ ४३ ॥

॥ मधि निर्पष ॥

दादू हिंदू तुरक न होइवा, साहिब सेती काम।
षट दर्सन के संगि न जाइवा, निर्पष कहिबा राम ॥४४॥

(४४) साहिब = परमात्मा। षट दर्सन = जोगी जंगमादि ॥

षट दर्सन दून्यूं नहीं, निरालंब निज बाट ।
दादू एकै आसिरै, लंघै औघट घाट ॥ ४५ ॥
दादू ना हम हिंदू होंहिंगे, ना हम मूसलमान ।
षट दर्सन मैं हम नहीं, हम राते रहिमान ॥ ४६ ॥
जोगी जंगम सेवड़े, बुध संन्यासी सेष । (१४-३२)
षट दर्सन दादू राम बिन, सबै कपट के भेष ॥४७॥ खगघङ॥
दादू अलह राम का, द्वै पष थैं न्यारा ।
रहिता गुण आकार का, सो गुरू हमारा ॥ ४८ ॥

॥ उभै असमाव ॥

दादू मेरा तेरा बावरे, मैं तैं की तजि बाणि ।
जिन यहु सब कुछ सिरजिया, करि ताही का जाणि ॥४६॥
दादू करणी हिंदू तुरक की, अपणी अपणी ठौर ।
दुहुं बिचि मारग साध का, यहु संतौं की रह और ॥५०॥
दादू हिंदू तुरक का, द्वै पष पंथ निवारि ।
संगति साचे साध की, सांई कौं संभारि ॥ ५१ ॥
दादू हिंदू लागे देहुरै, मुसलमान मसीति ।
हम लागे एक अलेप सौं, सदा निरंतर प्रीति ॥ ५२ ॥
न तहां हिंदू देहुरा, न तहां तुरक मसीति ।
दादू आपै आप है, नहीं तहां रह रीति ॥ ५३ ॥

---

(४८) राम राम हिंदू कहैं, तुरक रहीम रहीम ।
जगंनाथ या नांव का, पावैं मरम फहीम ॥
(४६) अनवय-ताही का जाणि करि, मैं तैं की तज बाणि ॥

यहु मसीति यहु देहुरा, सतगुर दिया दिषाइ ।(१-७५)
भीतरि सेवा वंदिगी, वाहरि काहे जाइ ॥ ५४ ॥ गघट्ट॥
दून्यूं हाथी ह्वै रहे, मिलि रस पिया न जाइ ।
दादू आपा मेटि करि, दून्यूं रहैं समाइ ॥ ५५ ॥
भैभीत भयानक ह्वै रहे, देष्या निर्पष अंग ।
दादू एकै ले रह्या, दूजा चढ़ै न रंग ॥ ५६ ॥
जाणै वूझै साच है, सव को देषण धाइ ।
चाल नहीं संसार की, दादू गह्या न जाइ ॥ ५७ ॥
दादू पष काहू के ना मिलै, निर्पष निर्मल नांव ।
सांई सौं सनमुष सदा, मुकता सव हीं ठांव ॥ ५८ ॥
दादू जव थैं हम निर्पष भये, सवै रिसाने लोक ।
सतगुर के परसाद थैं, मेरे हरष न सोक ॥ ५९ ॥

(५४) मनुष्य शरीर ही मसजिद है और वही शरीर मंदिर । यह दादूजी का कथन है । पालथी मारकर दोनों वांहें ऊंची करने से शरीर मसजिद रूप प्रतीत होता है और हाथों को तले ऊपर पालथी पर रखने से मंदिर रूप हो जाता है । इस प्रकार से दादूजी ने हाथ ऊपर नीचे करके मसीत और मंदिर का रूप शरीर में वतलाया । तात्पर्य यह है आत्मा और परमात्मा दोनों का वास शरीर में है । और परमात्मा की उपासना शरीर के अंदर ही उत्तम रीति की वतलाई है ॥

(५६) दयालजी कहते हैं कि हमारे निर्पक्ष व्यौहार को देख कर हिंदू मुसलमान दोनों भयानक हो रहे हैं; इस अर्थ को आगे ५९ वीं साखी में स्पष्ट रूप से कहते हैं ॥

(५७) लोक रीति के विरुद्ध सच को जान वूझ कर भी कोई ग्रहण नहीं करता ॥

निर्पष ह्वै करि पष गहै, नर्क पड़ैगा सोइ ।
हम निर्पष लागे नांव सौं, कर्ता करै सो होइ ॥ ६० ॥
॥ हरि भरोस ॥
दादू पष काहू के नां मिलै, निहकामी निर्पष साध ।
एक भरोसे राम के, पेलै पेल अगाध ॥ ६१ ॥
॥ मधि ॥
दादू पषा पषी संसार सब, निर्पष विरला कोइ ।
सोई निर्पष होइगा, जाकै नांव निरंजन होइ ॥ ६२ ॥
अपने अपने पंथ की, सब को कहै बड़ाइ ।
तार्थे दादू एक सौं, अंतर गति ल्यौ लाइ ॥ ६३ ॥
दादू द्वै पष दूरि करि, निर्पष निर्मल नांव ।
आपा मेटै हरि भजै, ताकी मैं बलि जांव ॥ ६४ ॥
॥ सजीवन ॥
दादू तजि संसार सब, रहै निराला होइ ।
अविनासी के आसरै, काल न लागै कोइ ॥ ६५ ॥
॥ मछर ईर्षा ॥
कलिजुग कूकर कलि मुहां, उठि उठि लागै धाइ ।
दादू क्यूं करि छूटिये, कलिजुग बड़ी बलाइ ॥ ६६ ॥
॥ निंदा ॥
काला मुंह संसार का, नीले कीये पांव ।
दादू तीनि तलाक दे, भावै तीधर जाव ॥ ६७ ॥
दादू भाव हीण जे पृथमी, दया विहूणा देस ।
भगति नहीं भगवंत की, तहं कैसा परवेस ॥ ६८ ॥

---

(६८) भक्ति भक्त भगवंत को, जहां नहीं लवलेश ।
जगंनाथ ते त्यागिये, ॥

जे बोलों तो चुप कहें, चुप तौ कहें पुकार ।
दादू क्यूं करि छूटिये, ऐसा है संसार ॥ ६९ ॥

॥ मधि ॥

न जाणों, हांजी, चुप गहि, मेटि अग्नि की झाल ।
सदा सजीवनि सुमिरिये, दादू बंचे काल ॥ ७० ॥

॥ पंथा पंथी ॥

पंथि चलें ते प्राणिया, तेता कुल व्यौहार ।
निर्पष साधू सो सही, जिन के एक अधार ॥ ७१ ॥

दादू पंथों परि गये, बपुरे बारह बाट ।
इन के संगि न जाइये, उलटा अविगत घाट ॥ ७२ ॥

॥ आशय विश्राम ॥

दादू जागे कों आया कहें, सूते कों कहें जाइ ।
आवण जाणा झूठ है, जहं का तहां समाइ ॥ ७३ ॥

इति मधि को अंग संपूर्ण समाप्त ॥ १६ ॥

---

(७०) काल से बचने के लिये सदा परमात्मा के सुमिरण में लगा रहे। संसार के झगड़ों की आग मे बचने के निमित्त चुप रहे या कहे कि मैं नहीं जानता या हां में हां मिला दे। यथा—

चंचल बानी श्रवण सुनि, मुनिजन पकरी मौन ।
साधू छांह सुमेर की, रज्जब डिगै न पौन (से) ॥

(७२) "बपुरे" की जगह "बपड़े" पुस्तक नं० १ और २ में है ॥

(७३) पुरुष जब सोकर जागता है तब आत्मा नेत्र स्थान में स्थित

अथ सारग्राही कौ अङ्ग ॥ १७ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
दादू साधू गुण गहै, औगुण तजै विकार ।
मान सरोवर हंस ज्यूं, छाडि नीर गहि सार ॥ २ ॥
हंस गियानी सो भला, अंतरि राषै एक ।
विष मैं अमृत काढ़ि ले, दादू बड़ा वमेक ॥ ३ ॥
पहिली न्यारा मन करै, पीछै सहज सरीर ।
दादू हंस विचार सौं, न्यारा कीया नीर ॥ ४ ॥

होता है सो आत्मा का आगमन कहाता है, जब पुरुष सोता है तब स्वमावस्था में आत्मा कंठस्थान में होता है और छुपुप्ति में हृदयस्थान में, तिसको निर्गमन कहते हैं, अर्थात् जब सोये पुरुष के नेत्र खुलते हैं तब आत्मा का आना कहाता है जब पुरुष के नेत्र मुंद जाते हैं तब आत्मा गया कहाता है। यह गमनागमन चिदाभास निष्ठ है। "आवण जाणा झूठ है" यह दयालजी ने कूटस्थ दृष्टि को लेकर कहा है। सो कूटस्थ व्यापक है, यही तात्पर्य अंतिम पद (जहं का तहां समाइ) से निकलता है ॥

(२) साधू सब जीवों के गुण तो ग्रहण करै, पर अवगुण किसी के देखै नहीं। तैसे अपने हृदय में भले २ गुण धारण करै और आसुरी संपदा को त्यागता जाय ॥

(४) स्थूल देह में जो आत्मा का अध्यास है उस को पहले निकाल दे, अर्थात् देह में सर्व प्रकार से आपनपौ छोड़ कर अपने आप को नित्य अवि-

आपै आप प्रकासिया, निर्मल ज्ञान अनन्त ।
पीर नीर न्यारा किया, दादू भजि भगवंत ॥ ५ ॥
पीर नीर का संत जन, न्याव नवेरे आइ ।
दादू साधू हंस विन, भेल सभेलै जाइ ॥ ६ ॥
दादू मन हंसा मोती चुणै, कंकर दीया डारि ।
सतगुर कहि समझाइया, पाया भेद बिचारि ॥ ७ ॥
दादू हंस मोती चुणैं, मानसरोवर जाइ ।
वगुला छीलरी वापुड़ा, चुणि चुणि मछली पाइ ॥ ८ ॥
दादू हंस मोती चुगैं, मानसरोवर न्हाइ ।
फिरि फिरि वैसैं वापुड़ा, काग करंकां आइ ॥ ९ ॥
दादू हंस परषिये, उत्तिम करणी चाल ।
वगुला वैसैं ध्यान धरि, परतपि कहिये काल ॥ १० ॥
उजल करणी हंस है, मैली करणी काग ।
मधिम करणी छाडि सब, दादू उत्तिम भाग ॥ ११ ॥

नाशी सर्व व्यापक सर्वरूप मानै । देह के रहने या न रहने के भय और संशय सब त्याग दे । पीछे शरीर संबंधी सब व्योहार सहज हो जांयगे ॥

(५) पिछली साखी के अनुसार वर्तते हुये आप ही आप अनंतरूपी आत्मा का निर्मल ज्ञान प्रकाश होगा । देह अभ्यास का त्याग और आत्मतत्व में स्थित होना ही सच्चा भजन है ॥

(६) "भेल सभेलै" = सकाम भक्ति, जगतासक्त वृत्ति ।

(७) मोती = आत्मतत्व । कंकर = सांसारिक वैभव ॥

(८) मानसरोवर = सत्संग । वगुला = कपटी ध्यानी । छीलर = तलैयारूपी कुसंग । मछली = विषय भोग ॥

(९) काग = कामीजन । करंकां = तुच्छ भोग, निस्सार सूखी खाल ॥

(११) भाग = भाग्य ॥

दादू निर्मल करणी साध की, मैली सब संसार।
भैली मधिम ह्वै गये, निर्मल सिरजनहार ॥ १२ ॥
दादू करणी ऊपरि जाति हैं, दूजा सोच निवारि।
भैली मधिम ह्वै गये, उजल ऊंच बिचारि ॥ १३ ॥
उजल करणी राम है, दादू दूजा धंध।
का कहिये समझै नहीं, चारौं लोचन अंध ॥ १४ ॥
दादू गऊ बच्छ का ज्ञान गहि, दूध रहै ल्यौ लाइ।
सींग पूंछ पग परहरै, अस्थन लागै धाइ। १५ ॥
दादू काम गाइ के दूध सौं, हाड़ चाम सौं नाहिं।
इहि विधि अमृत पीजिये, साधू के मुष मांहि ॥ १६ ॥

॥ सुमिरण नाम ॥

दादू काम धणी के नांव सौं, लोगन सूं कुछ नाहिं।
लोगन सौं मन ऊपली, मन की मन हीं मांहि ॥ १७ ॥
जाके हिरदै जैसी होइगी, सो तैसी ले जाइ।
दादू तूं निर्दोष रहु, नांव निरन्तर गाइ ॥ १८ ॥

---

(१२) मैली मधिम ह्वै गये = मैली करणी वाले मध्यम हो गये। निर्मल करणी वाले सिरजनहार को प्राप्त हुये ॥

(१३) जाति = कुल, जाति ॥

(१४) चारौं लोचन अंध = अत्यंत मूर्ख। श्रुति स्मृति और दो चर्मचक्षु, यह चार लोचन कहाते हैं ॥

(१५) सार गहै जगंनाथ जन, ले असार संसार ॥
भाड़ भजन पै बच्छ ज्यूं, चींचर रुधिर बिकार ॥

(१८) जिसके हृदय में जीवत् काल जैसी वासना होती है वैसी ही

दादू साध सबै करि देषणां, असाध न दीसै कोइ ।
जिहिं के हिरदै हरि नहीं, तिहिं तनि टोटा होइ ॥१६॥
साधू संगति पाइये, तब द्वंदर दूरि नसाइ ।
दादू बोहिथ बैसि करि, डूंडै निकटि न जाइ ॥ २० ॥
जब परम पदारथ पाइये, तब कंकर दीया डारि ।
दादू साचा सो मिलै, तब कूड़ा काच निवारि ॥ २१ ॥
जब जीवनमूरी पाइये, तब मरिबा कौण बिसाहि ।
दादू अमृत छाडि करि, कौण हलाहल पाहि ॥ २२ ॥
जब मानसरोवर पाइये, तब छीलर कूं छिटकाइ ।
दादू हंसा हरि मिले, तब कागा गये बिलाइ ॥ २३ ॥

॥ उभै असमाव ॥

जहं दिनकर तहं निस नहीं, निस तहं दिनकर नांहिं ।
दादू एकै द्वै नहीं, साधन के मत मांहिं ॥ २४ ॥

वासना मरे पीछे उस के साथ जाती है । इस विचार से दयालजी कहते हैं सर्व वासनाओं से निर्दोष रहो, अर्थात् त्याग दो ॥

(१६) कबीर साकत को नहीं, सबै बैश्नों जाणि ।
जा तन राम न उचरै, ताही तन की हानि ॥

(२०) साधु की संगत मिलै तब द्वंदर (द्वंद = द्वैतभाव) नाश होय । दयालजी कहते हैं कि बोहिथ (जहाज़) में बैठ कर डोंगे (छोटी नाव) की कोई परवाह नहीं करता, अर्थात् सब आनंदों के मूल आत्मानंद को पाकर ज्ञानी संसारी पदार्थों की तरफ नहीं देखते ॥

(२१) कूड़ा काच = झूठा कांच = संसार ॥

(२३) कागा = संसार रूपी बंधन ॥

(२४) इस का आशय यह है । जहां ज्ञान है वहां अज्ञान नहीं, जहां

दादू एकै घोड़े चढि चलै, दूजा कोतिल होइ ।
दुहु घोड़ों चढि बैसतां, पारि न पहुंता कोइ ॥ २५ ॥

इति सारग्राही को अंग सम्पूर्ण समाप्त ॥ १७ ॥

अज्ञान है वहां ज्ञान नहीं । अर्थात् जिस के मन में परमात्मा की निष्ठा है उस के मन में संसार का मोह नहीं, और जिस को संसार प्यारा है उस को परमात्मा में प्रेम नहीं ॥ यथा—

तुलसी जहां राम तहं कामना, कैसे धूं ठहराइ ।
रवि अरु रजनी एक सम, हम कहुं देषे नांहि ॥

(२५) परमार्थ और व्यौहार की यहां दयालजी ने दो घोड़ों से उपमा दी है, जैसे मनुष्य दो घोड़ों पर सवार होकर पार नहीं जा सकता, वैसे परमार्थ और व्यवहार दोनों को बराबर नहीं साध सकता है। दयालजी की वाणी का सार यह है कि परमार्थ मनुष्य का मुख्य साधन है, यहां भी दयालजी कहते हैं परमार्थ रूपी घोड़े पर मनुष्य चढ़ै और दूसरे व्यौहार रूपी घोड़े को अपने साथ कोतल रक्खे । यही सिद्धांत संसार सागर से पार उतारनेवाला है । आत्म तत्त्व हमारा मूल है, उसका संपादन परमावश्यक है तैसे ही उसके संपादन में शरीर का पालन पोषण भी जरूर है, यदि हम केवल संसार ही में फस जावें जैसे कि जगत फंस रहा है, तो परमार्थ बिसरता है। यदि परमार्थ ही में लगकर व्यौहार को छोड़ बैठें तो शरीर के निर्वाह में और आत्मसंपादन में कठिनता होती है, इन हेतुओं से परमार्थ को मुख्य सन्मुख रखकर व्यौहार को कोतल की तरह पीछे रखना उचित है । मुख्य आत्म तत्त्व है, उस के पीछे व्यौहार है, इन दोनों के पलड़े करीब २ बराबर रखने चाहिये, आत्म तत्त्व का पलड़ा थोड़ासा झुका (अधिक) रहना चाहिये, संपादन दोनों का आवश्यक है, उनमें से एक दूसरे का सहकारी है और जब दोनों को उचित रीति से संपादन करते हैं तभी दोनों की प्राप्ति में हम उन्नति पाते हैं ॥

अथ विचार कौ अंग ॥ १८ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

॥ अज्ञान परचै ॥

दादू जल में गगन, गगन में जल है, फुनि वै गगन निरालं ।
ब्रह्म जीव इंहिं विधि रहै, ऐसा भेद विचारं ॥ २ ॥
ज्यूं दर्पन में मुष देषिये, पानी में प्रतिब्यंब ।
ऐसें आतमराम है, दादू सब ही संग ॥ ३ ॥

॥ साच ॥

जब दर्पन माँहैं देषिये, तब अपना सूझै आप ।
दर्पन बिन सूझै नहीं, दादू पुनि रु पाप ॥ ४ ॥

---

(२) इस सास्त्री का पूरा अर्थ "स्वामी दादूदयाल के जीवनचरित्र और उपदेश" नामक दूसरी पुस्तक में दिया जायगा, जैसे आकाश मंडल में जल होता है और उसी जल में आकाश व्यापक होता है तौ भी जल की गमनागमन क्रिया से आकाश गीला नहीं होता, तैसे ही आकाशवत ब्रम्ह व्यापक है और जीव में रहता है और जीव ब्रम्ह में रहता ॥

(३) जैसे दर्पन में वा पानी ही में मुख का प्रतिबिंब दिखाई देता है, तैसे आत्मा ही में राम प्रतीत होता है, अर्थात् सब जीवों के अंतःकरण रूपी दर्पण वा जल में परमेश्वर का प्रतिबिंब (चिदाभास) पड़कर अंतःकरण को चेतनता देता है ॥

(४) अंतःकरण रूपी उपाधी से पुण्य पाप रूपी संसार प्रतीत होता है,

॥ ज्ञान परचै ॥

जींयें तेल तिलंनि में, जींयें गंध फुलंन्न ।
जींयें मापरा पीर में, ईयें रबु रूहंनि ॥ ५ ॥
ईयें रबु रूहंनि में, जींयें रूह रगंनि ।
जींयें जेरो सूर मां, ठंढो चंद्र घसंनि ॥ ६ ॥
दादू जिन यहु दिल मंदिर किया, दिल मंदिर में सोइ ।
दिल माँहिं दिलदार है, और न दूजा कोइ ॥ ७ ॥
मीत तूम्हारा तुम्ह कने, तुमहीं लेहु पिछाणि ।
दादू दूरि न देषिये, प्रतिबिंब ज्यूं जाणि ॥ ८ ॥

॥ विरक्तता ॥

दादू नाल कंवल जल ऊपजे, क्यूं जुदा जल मांहिं ।
चंदहि हित चित प्रीतड़ी, यों जल सेती नांहिं ॥ ६ ॥

यदि अंतःकरण न हो तो संसार भी प्रतीत न हो, जैसे दर्पणरूपी उपाधी बिना प्रतिबिंब भान नहीं होता ॥

(५-६) जैसे तेल तिलों में, जैसे सुगंध फूलों में, जैसे मक्खन दूध में, जैसे रूह रगों (नाड़ियों) में, जैसे प्रकाश सूर्य में, जैसे शीतलता चंद्र में है, तैसे परमात्मा रूहों (जीवात्माओं) में व्यापक है ॥

(७) जिस पुरुष ने अपने हृदय को मंदिर बनाया है, तिस हृदयरूपी मंदिर में सो परमात्मा है, सोई दिलदार (मित्र) है और कोई दूसरा नहीं ॥

(६) नालकवल (कुमोदनी, नार) जल में उपजती है पर जल से जुदी क्यों ? उत्तर—कुमोदनी की प्रीति चंद्रमा से है जल से नहीं, इस हेतु से कुमोदनी जल से जुदी रहती है ॥

दोहा—जल में बसै कुमोदनी, चंदा बसै अकास ।
जो जाहू के मन बसै, सो ताहू के पास ॥

तैसे ही परमात्मा से जो हम प्रीति रक्खें तौ संसार से स्नेह कम हो जाय ॥

दादू एक विचार सौं, सब थैं न्यारा होइ ।
माहै है पर मन नहीं, सहज निरंजन सोइ ॥ १० ॥
दादू गुण निर्गुण मन मिलि रह्या, क्यूं बेगर ह्वै जाइ ।
जहं मन नाहीं सो नहीं, जहां मन चेतन सो आहि ॥११॥

॥ विचार ॥

दादू सबहीं व्याधि की, औषधि एक विचार ।
समझे थैं सुप पाइये, कोइ कुछ कहौ गंवार ॥ १२ ॥
दादू इक निर्गुण इक गुण मई, सब घटि ये द्वै ज्ञान ।
काया का माया मिले, आत्म ब्रह्म समान ॥ १३ ॥
दादू कोटि अचारिन एक विचारी, तऊ न सरभरि होइ ।
आचारी सब जग भरया, विचारी विरला कोइ ॥ १४ ॥
दादू घट में सुप आनंद है, तब सब ठाहर होइ ।
घट में सुप आनंद बिन, सुपी न देप्या कोइ ॥ १५ ॥

---

(१०) निरंजन परमात्मा स्वभाव (सहजरूप) से जीव के अंदर है, पर मनुष्य का मन उस में नहीं लगता, विचार करके सब संसार से न्यारा हो कर परमात्मा से मिलता है ॥

(११) गुण निर्गुण में मन मिल रहा है सो किस तरह से जुदा होय ? उत्तर-जिस वस्तु में मन नहीं है सो वस्तु उसकी दृष्टि में है नहीं, जहां मन चेतन (लगा हुआ) है सो ही वस्तु प्रतीत होती है। इस रीति से परमात्मा में मन लगाने से संसार छूट जाता है ॥

(१३) सब शरीरों में निर्गुण और सगुण दो ज्ञान हैं, तिस में सगुण (माया) रूप काया (स्थूल शरीर) है और निर्गुण आत्मा ब्रह्म समान है॥

(१४) कोटि आचार वालों की एक भी विचारवान से सरभरि (तुलना) नहीं होती ॥

॥ विरक्तता ॥

काया लोक अनंत सब, घट में भारी भीर ।
जहां जाइ तहं संगि सब, दरिया पैली तीर ॥ १६ ॥
काया माया ह्वै रही, जोधा बहु बलिवंत ।
दादू दुस्तर क्यूं तिरै, काया लोक अनंत ॥ १७ ॥
मोटी माया तजि गये, सूषिम लीयें जाइ ।
दादू को छूटै नहीं, माया बड़ी बलाइ ॥ १८ ॥
दादू सूषिम मांहिले, तिन का कीजे त्याग ।
सब तजि राता राम सौं, दादू यहु बैराग ॥ १९ ॥
गुणातीत सो दरसनी, आपा धरे उठाइ ।
दादू निर्गुण राम गहि, डोरी लागा जाइ ॥ २० ॥

(१६) काया लोक (शरीर) असंख्य हैं तिन में काम, क्रोध, पाप पुण्यादि भरे हैं। जिस योनि में जीव जाता है तहां वो उस के संग जाते हैं ॥

(१७) काया एक बड़ी माया (इंद्रजाल) बन रही है, तिस में कामादिक बड़े योद्धा बसते हैं। यह संसार बड़ा कठिन है। इससे कैसे पार उतरा जाय, क्योंकि काया लोक असंख्य हैं। इस साखी के "दुस्तर" शब्द के बदले मूल पुस्तकों में "दूतर" वा "दुरतर" आया है ॥

(१८) "मोटी माया" = घरबारादि। सूषिम = राग द्वेषादि मनोराज्य ॥

सकल कुसंगी काप मैं, क्या छाडै घरबार ।
रजब जीव जीवै नहीं, मांहै मारनहार ॥
काया सौं कामनि तजै, मन भुगतै रनिवास ।
रजब बपु बन पंट मैं, चाहै महल अवास ॥
नारी मांहै नर घनैं, नर मैं नारि अनंत ।
महिलायन मन मांहिली, तजै सु साधू संत ॥

(२०) गुणातीत पुरुष जिसका अहंकार छूट गया है, जो निर्गुण राम

प्यंड मुक्ति सब को करैं, प्राण मुक्ति नहिं होइ ।
प्राण मुक्ति सतगुर करै, दादू विरला कोइ ॥ २१ ॥

॥ शिष्य जिज्ञासा—प्रश्न ॥

दादू पुष्या त्रिषा क्यूं भूलिये, सीत तपति क्यूं जाइ ।
क्यूं सब छूटे देह गुण, सतगुर कहि समझाइ ॥ २२ ॥

॥ उत्तर ॥

मांही थैं मन काढ़ि करि, ले राषै निज ठौर ।
दादू भूलै देह गुण, विसरि जाइ सब और ॥ २३ ॥
नांव भुलावै देह गुण, जीव दसा सब जाइ ।
दादू छाडै नांव कौं, तौ फिरि लागै आइ ॥ २४ ॥
दादू दिन दिन राता राम सौं, दिन दिन अधिक सनेह ।
दिन दिन पीवै रामरस, दिन दिन दर्पण देह ॥ २५ ॥
दादू दिन दिन भूलै देह गुण, दिन दिन इंद्री नास ।
दिन दिन मन मनसा मरै, दिन दिन होइ प्रकास ॥ २६ ॥

॥ सजीवन ॥

देह रहै संसार मैं, जीव राम के पास । (२६-२३)

में रत है और "डोरी लागा जाइ" उसी मार्ग में चल रहा है, सो महात्मा दर्शनों के योग्य है ॥

(२१) स्थूल शरीर की मुक्ति भोजन छाजन द्वारा सब कोई कर लेता है, पर उससे लिंग शरीर की मुक्ति नहीं होती । यह (प्राण) मुक्ति यथार्थ ज्ञान से कोई विरला ही सद्गुरू देता है ॥

(२३) देहादिकों में जो मन का अध्यास है सो छोड़ कर मन को अपने स्वरूप में स्थिर करे ॥

(२४) नांव=राम नाम का सुमिरण ॥

(२५) दर्पण देह=दर्पणवत अंतःकरण स्वच्छ होता जाय ॥

दादू कुछ व्यापै नहीं, काल झाल दुप त्रास ॥ २७ ॥
काया की संगति तजे, बैठा हरिपद मांहि । (२६–२४)
दादू निर्भै ह्वै रहै, कोइ गुण व्यापै नाहिं ॥ २८ ॥
काया मांहैं भै घणा, सब गुण व्यापैं आइ ।
दादू निरभै घर किया, रहै नूर में जाइ ॥ २९ ॥
पड़ग धार विष ना मरै, कोइ गुण व्यापै नाहिं ।
राम रहै त्यूं जन रहै, काल झाल जल मांहि ॥ ३० ॥

॥ बिचार ॥

सहज बिचार सुप में रहै, दादू बड़ा बमेक ।
मन इंद्री पसरैं नहीं, अंतरि राषै एक ॥ ३१ ॥
मन इंद्री पसरैं नहीं, अहिनिसि एकै ध्यान ।
पर उपगारी प्राणिया, दादू उत्तिम ज्ञान ॥ ३२ ॥
दादू आपा उरझै उरझिया, दीसै सब संसार । (१–१३२)
आपा सुरझै सुरझिया, यहु गुर ज्ञान बिचार ॥३३॥(खगघङ)
दादू मैं नाहीं तब नांव क्या, कहा कहावै आप ।
साधौ कहौ बिचारि करि, मेटहु तन की ताप ॥ ३४ ॥

---

(२८) काया की संगति = काया में अध्यास ॥

(३०) नूर = आत्मप्रकाश में प्रवेश हुआ पुरुष न तलवार की धार से मर सकता है ना विष से, न उसमें कोई गुण व्यापि सकता है। जैसे राम रहता है तैसे वह पुरुष भी रहता है, काल की लपट जैसे जल को नहीं दाह कर सकती है अथवा काल की लपट अपने ही भीतर जल कर शांत हो जाती है॥

(३४) जब अहंभाव ममभाव–मेरा तेरा पन–मन से मिट गया, तब जीव सर्व में अपने आप को और सर्व को अपने आप में देखता है। इस दृष्टि के

जब समझ्या तब सुरझिया, उलटि समाना सोइ ।
कछू कहावे जब लगें, तब लग समझि न होइ ॥ ३५ ॥
जब समझ्या तब सुरझिया, गुर मुषि ज्ञान अलेष ।
उर्ध कवल में आरसी, फिरि करि आपा देष ॥ ३६ ॥
प्रेम भगति दिन दिन बधै, सोई ज्ञान विचार ।
दादू आत्म सोधि करि, मथि करि काढ्या सार ॥ ३७ ॥
दादू जिहि विरियां यहु सब कुछ भया, सो कुछ करौ विचार ।
काजी पंडित बावरे, क्या लिषि बंधे भार ॥ ३८ ॥
दादू जब यहु मन हीं मन मिल्या, तब कुछ पाया भेद ।

स्थिर हुये पर नामादिक भेद नहीं देखता और सर्व में आपामयी देखकर संपूर्ण राग द्वेष क्रोध ईर्षा भय संशयादि दुःख संतापों से मुक्त हो जाता है ॥

(३५) इस प्रकार की समझ (ज्ञान) उत्पन्न हुये पीछे जगत के जंजालों से (जिनमें पहले अपने आप उलझ रहा था—जैसे सुवा पक्षी पोंगी पर, बंदर मटकी में मूठी बांधकर) छूट जाता है, किंतु जब तक मन में कुछ भी आपा है वा मान बड़ाई की इच्छा है अथवा भय क्रोध बंध मोक्ष का संदेह है, तब तक निःसंशय ज्ञान नहीं समझना चाहिये ।

(३६) उर्धकवल=हृत्पुण्डरीक रूपी दर्पण में अंतर्मुख वृत्ति फेरि कर अपने आत्म स्वरूप में दृष्टि रखें ॥

(३८) दृष्टांत—गुर दादू गये सीकरी, तहं यहु साषी भाषि ।
उत्तर भयो न किसी तें, बपनों उत्तर आषि ॥

यथा—संसमश्न—काजी पंडित बूझिया, किन जबाब न दीया ।
बपनां बरियां कौन थी, जब सब कुछ कीया ॥
उत्तर—जिहि बरियां यहु सब भया, सो हम किया विचार ।
बपनां बरियां पुसी की, कर्ता सिरजनहार ॥

दादू ले करि लाइये, क्या पढ़ि मरिये वेद ॥ ३९ ॥
पाणी पावक, पावक पाणी, जाणै नहीं अजाण ।
आदि अंति विचार करि, दादू जांण सुजांण ॥ ४० ॥
सुष मांहें दुष बहुत हैं, दुष मांहें सुष होइ ।
दादू देषि विचारी करि, आदि अंति फल दोइ ॥ ४१ ॥
मीठा षारा, षारा मीठा, जाणै नहीं गंवार ।
आदि अंत गुण देषि करि, दादू किया विचार ॥ ४२ ॥
कोमल कठिन कठिन है कोमल, मूरिष मर्म न बूझै ।
आदि अंति विचार करि, दादू सब कुछ सूझै ॥ ४३ ॥
पहली प्राण विचार करि, पीछै पग दीजे ।
आदि अंति गुण देषि करि, दादू कुछ कीजे ॥ ४४ ॥
पहली प्राण विचार करि, पीछै चलिये साथ ।
आदि अंति गुण देषि करि, दादू घाली हाथ ॥ ४५ ॥
पहली प्राण विचार करि, पीछै कुछ कहिये ।
आदि अंति गुण देषि करि, दादू निज गहिये ॥ ४६ ॥

---

(३९) "ले करि लाइये"=मन को अंतर्मुख वृत्ति में लगाइये; यही सर्व साधनों का सार है और वेद के पठन मात्र से उत्तम है । यहां वेद की निंदा नहीं है किंतु तोते की तरह पठन को व्यर्थ दिखाया है ॥

(४०) पानी से काष्ठादिक की उत्पत्ति होती है और काष्ठादिक से अग्नि होती है । अग्नि से जल की उत्पत्ति प्रसिद्ध है । आदि और अंत संपूर्ण जगत का केवल परब्रह्म है, उसको सुजान ज्ञानी जानते हैं ।

(४१–४३) विषय सुख में दुःख बहुत हैं, तपादिक में जो दुःख होता है उस का परिणाम सुख है ।

(४४) पहली प्राण=किसी कार्य के आरंभ में पहली स्वास लेते ही ॥

पहली प्राण विचार करि, पीछे आवै जाइ ।
आदि अंति गुण देषि करि, दादू रहै समाइ ॥ ४७ ॥
दादू सोचि करै सो सूरिवां, करि सोचै सो कूर ।
करि सोच्यां मुष स्याम है, सोचि कियां मुष नूर ॥४८॥ क ख घ
जे मति पीछै ऊपजै, सो मति पहिली होइ ।
कबहुं न होवै जी दुषी, दादू सुषिया सोइ ॥ ४९ ॥
आदि अंति गाहन किया, माया ब्रह्म बिचार ।
जहं का तहं ले दे धरया, दादू देत न वार ॥ ५० ॥

इति विचार कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ १८ ॥

———:०:———

(५०) इस अंग की आदि साखी से अंत पर्यंत, दयालजी कहते हैं, हमने गाहन विचार (माया और ब्रम्ह का निरूपण) किया है, माया और ब्रम्ह के लक्षण जो मिले हुये प्रतीत होते हैं तिन को जुदे जुदे जहां के तहां लगाये हैं, जिनके समझने में विचारवानों को बार न होगी । अथवा जिन महात्माओं ने माया ब्रम्ह का आदि अंत रूपी गाहन विचार करके जैसा है तैसा निश्चय किया है, उन को मुक्त होने में बार (देर) नहीं है ॥

अथ वेसास कौ अङ्ग ॥ १९ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
दादू सहजैं सहजैं होइगा, जे कुछ रचिया राम ।
काहे कौं कलपे मरै, दुपी होत वे काम ॥ २ ॥
सांई किया सो ह्वै रह्या, जे कुछ करै सो होइ ।
कर्ता करै सो होत है, काहे कलपे कोइ ॥ ३ ॥
दादू कहे—जे तैं किया सो ह्वै रह्या, जे तूं करै सो होइ ।
करण करावण एक तूं, दूजा नांहीं कोइ ॥ ४ ॥
दादू सोइ हमारा सांईयां, जे सब का पूरणहार ।
दादू जीवण मरण का, जाके हाथ विचार ॥ ५ ॥
दादू सर्ग भवन पाताल मधि, आदि अंत सब सिष्ट ।
सिरजि सबनि कौं देत है, सोई हमारा इष्ट ॥ ६ ॥
दादू करणहार कर्ता पुरिष, ह्म कौं कैसी चिंत ।
सब काहू की करत है, सो दादू का मिंत ॥ ७ ॥
दादू मनसा वाचा कर्मणा, साहिब का वेसास ।
सेवग सिरजनहार का, करै कौन की आस ॥ ८ ॥
सुरम न आवे जीव कूं, अणकीया सब होइ ।

(४) करण करावण = करनेवाला करानेवाला ॥

दादू मारग मिहर का, बिरला चूझै कोइ ॥ ९ ॥
दादू उदिम औगुण को नहीं, जे करि जाणै कोइ ।
उदिम में आनंद है, जे सांई सेती होइ ॥ १० ॥
दादू पूरणहारा पूरसी, जो चित रहसी ठांम ।
अंतर थैं हरि उमंगसी, सकल निरंतर राम ॥ ११ ॥
पूरिक पूरा पासि है, नाहीं दूरि गंवार ।
सब जानत है बावरे, देवे कौं हुसियार ॥ १२ ॥
दादू च्यंता राम कौं, समरथ सब जाणै ।
दादू राम संभालि ले, च्यंता जिनि आणै ॥ १३ ॥
दादू च्यंता कीयां कुछ नहीं, च्यंता जीव कूं पाइ ।
हूंणा था सो ह्वै रह्या, जाणा है सो जाइ ॥ १४ ॥

॥ पोष प्रतिपाल रक्षक ॥

दादू जिन पहुंचाया प्राण कौं, उदर उर्ध मुपि पीर ।
जठर अगनि में रापिया, कोमल काया सरीर ॥ १५ ॥

---

(९) जीव को शर्म भी नहीं आती कि परमेश्वर अपने आप " अण-कीया" (बिना जीव के प्रयत्न के) सब का भरण पोषण कर रहा है। उस की इस मेहर (कृपा) को कोई बिरला ही जानता है ॥

(१०) परमात्मा से मिलने का ही उद्यम सब से उत्तम उद्यम है ॥

(११) पूरणहारा (परमेश्वर) सब कुछ पूरसी (पूरण करेगा) यदि मनुष्य को पूरण विश्वास है, यथा—

दृष्टांत—बंदै जल तट धिठि कै, कीन गाढ़ विश्वास ।
लई मतीरा (तर्बूज) गोद में, प्रभु भेजे लपि दास ॥

(१२) पूरिक = अन्न देनेवाला, पालन करनेवाला । पूरा = व्यापक ॥

(१५) उदर उर्ध मुपि = माता के पेट में, यथा—

मात पिता गमि नांहि, मांहि तहं पीर पियायो ।

सो समरथ संगी सांगि रहे, विकट घाट घट भीर ।
  सो सांई सूं गह गही, जिनि भूलें मन वीर ॥ १६ ॥
गोविंद के गुण चीति करि, नैन वैन पग सीस ।
  जिन मुष दीया कान कर, प्राणनाथ जगदीस ॥ १७ ॥
तन मन सौंज संवारि सब, राषै विसवा वीस ।
  सो साहिब सुमिरै नहीं, दादू भानि हदीस ॥ १८ ॥
दादू सो साहिब जिनि वीसरै, जिन घट दीया जीव ।
  गर्भवास में राषिया, पालै पोषै पीव ॥ १६ ॥
दादू राजिक रिजक लीये षड़ा, देवै हाथों हाथ ।
  पूरिक पूरा पासि है, सदा हमारे साथ ॥ २० ॥
हिरदै राम संभालि ले, मन राषै वेसास ।
  दादू समरथ सांईयां, सब की पूरे आस ॥ २१ ॥
दादू सांई सबन कौं, सेवग ह्वै सुष देइ ।
  अया मूढ़ मति जीव की, तौभी नांव न लेइ ॥ २२ ॥
दादू सिरजनहारा सबन का, ऐसा है सामर्थ ।
  सोई सेवग ह्वै रह्या, जहं सकल पसारैं हथ ॥ २३ ॥

---

(१६) कठिन स्थान में जहां घट (शरीर) को पीड़ा पड़ती है तहां वह परमेश्वर ही संग रहता है । उस सांई से गह गही (प्रीति कर) और उसका पश मत भूल ॥

(१८) जो परमात्मा तेरे तन मन आचार को संभाल कर अच्छी तरह से रखता है । उसका तूं हदीस (मर्यादा) तोड़ कर सुमिरण नहीं करता ॥

(२२) परमात्मा सब जीवों को सेवक की तरह सुख देता है, पर जीव ऐसा मूढ़ है कि उसका नाम भी नहीं लेता ॥

धनि धनि साहिब तू बड़ा, कौन अनूपम रीति ।
सकल लोक सिर सांईयां, है करि रह्या अतीत ॥ २४ ॥
दादू हूं बलिहारी सुरति की, सब की करे संभाल ।
कीड़ी कुंजर पलक में, करता है प्रतिपाल ॥ २५ ॥

॥ छाजन भोजन ॥

दादू छाजन भोजन सहज में, संइयां देइ सो लेइ ।
तायें अधिका और कुछ, सो तूं कांइ करेइ ॥ २६ ॥
दादू टूका सहज का, संतोषी जन पाइ ।
मृतक भोजन गुरमुषी, काहे कलपे जाइ ॥ २७ ॥
दादू भाड़ा देह का, तेता सहजि बिचारि ।
जेता हरि बिचि अंतरा, तेता सबै निवारि ॥ २८ ॥
दादू जल दल राम का, हम लेवें परसाद ।
संसार का समझैं नहीं, अविगत भाव अगाध ॥ २९ ॥
परमेसुर के भाव का, एक कणूंका पाइ ।
दादू जेता पाप था, भरम कर्म सब जाइ ॥ ३० ॥

(२७) मृतक भोजन गुरमुषी=गुर आज्ञाकारी संतोषी जन क्यों पदार्थों की याचना करें। मांगा पदार्थ मृतक भक्ष कहाता है, देखो मनुस्मृति अ० ४ श्लोक ५ ॥

(२८) जितने पदार्थ शरीर के निर्वाहार्थ आवश्यक हैं उनको अनायास से ग्रहण करे, जो कुछ परमात्मा के बीच अंतरा डाले, सो सब त्याग दे॥

(२९-३०) विष्णुरात्मा वर्धनार्थे परिपालनत्वे यथा ।
तस्मिन तेन मे दुष्कं अर्पितकर्मादिन्दया ॥

दादू कौण पकावै कौण पीसै, जहां तहां सीधा ही दीसै ॥३१॥

दादू जे कुछ पुसी पुदाइ की, होवैगा सोई ।
पचि पचि कोई जिनि मरे, सुणि लीज्यो लोई ॥ ३२ ॥

दादू छूटि पुदाइ, कहीं को नाहीं, फिरिहो पिरथी सारी ।
दूजी दहणि दूरि करि बौरे, साधू सबद विचारी ॥ ३३ ॥

दादू बिना राम कहीं को नाहीं, फिरिहो देस विदेसा ।
दूजी दहणि दूरि करि बौरे, सुणि यहु साध संदेसा ॥ ३४ ॥

दादू सिदक सबूरी साच गहि, स्याबति राषि अकीन।(२३–६)
साहिब सौं दिल लाइ रहु, मुरदा ह्वै मसकीन ॥ ३५ ॥ ६

दादू अणवंछित टूका पात हैं, मर्महि लागा मन ।
नांव निरंजन लेत हैं, यों निर्मल साधू जन ॥ ३६ ॥

अणवंछ्या आगैं पड़े, पिरथा विचारि रु पाइ ।
दादू फिरे न तोड़ता, तरवर ताकि न जाइ ॥ ३७ ॥

अणवंछ्या आगैं पड़े, पीछैं लेइ उठाइ ।
दादू के सिरि दोस यहु, जे कुछ राम रजाइ ॥ ३८ ॥

अणवंछी अजगैब की, रोजी गगन गिरास ।
दादू साति करि लीजिये, सो सांई के पास ॥ ३८½ ॥ (क्षेपक)

॥ कर्ता कसौटी ॥

मीठे का सब मीठा लागै, भावै विष भरि देइ ।
दादू कड़वा ना कहै, अमृत करि करि लेइ ॥ ३९ ॥

---

(३१) सीधा = सिदाम, बनी तैयार भोजन सामग्री ॥
(३३) दूजी दहणि = द्वैत की दाह ॥

बिपति भली हरि नांव सों, काया कसौटी दुप ।
राम बिना किस काम का, दादू संपति सुप ॥ ४० ॥

॥ वेसास, संतोष ॥

दादू एक वेसास विन, जियरा डांवां डोल ।
निकटि निधि दुप पाइये, चिंतामणी अमोल ॥ ४१ ॥

दादू विन वेसासी जीयरा, चंचल, नाहीं ठौर ।
निहचै निहचल ना रहै, कछू और की और ॥ ४२ ॥

दादू होणा था सो ह्वै रह्या, सर्ग न वांछी धाइ ।
नरक कनेथी ना डरी, हुवा सो होसी आइ ॥ ४३ ॥

दादू होणा था सो ह्वै रह्या, जिनि वांछे सुप दुप ।
सुप मांगें दुप आइसी, पै पिव न विसारी मुप ॥ ४४ ॥

दादू होणा था सो ह्वै रह्या, जे कुछ कीया पीव ।
पल बधै न छिन घटै, ऐसी जाणी जीव ॥ ४५ ॥

दादू होणा था सो ह्वै रह्या, और न होवै आइ ।
लेणा था सो ले रहे, और न लीया जाइ ॥ ४६ ॥

ज्यूं रचिया त्यूं होइगा, काहे कौं सिरि लेह ।
साहिब ऊपरि रापिये, देपि तमासा येह ॥ ४७ ॥

॥ पतिव्रत निःकाम ॥

ज्यूं जाणौ त्यूं रापियौ, तुमं सिरि ढाली राइ ।

---

(४१) विश्वास के विना चित्त डामाडोल रहता है और मनुष्य दुःख पाता है यद्यपि अमोल चिंतामणी निधिरूपी परमात्मा उसके अंदर ही है ॥

(४३) होनहार है सो हो रहा है, दौड़ करके स्वर्ग की इच्छा नहीं करनी, नर्क से डरना नहीं, नियत हुआ है सो होवेगा ॥

(४५) ऐसी जाणी जीव = जीव ऐसा जानै अथवा जीव ऐसा निश्चय करै ॥

दूजा को देखौं नहीं, दादू अनत न जाइ ॥ ४८ ॥
ज्यूं तुम भावै त्यूं षुसी, हम राजी उस बात ।
दादू के दिल सिदक सूं, भावै दिन कूं रात ॥ ४९ ॥
दादू करणहार जे कुछ किया, सो बुरा न कहणा जाइ ।
सोई सेवग संत जन, रहिबा राम रजाइ ॥ ५० ॥

॥ बेसास संतोष ॥

दादू करणहार जे कुछ किया, सोई हूं करि जाणि । (६-२६)
जे तूं चतुर सयाणा जाण राइ, तौ याही परवाणि॥५१(सगषक)
दादू कर्ता हम नहीं, कर्ता औरै कोइ ।
कर्ता है सो करैगा, तूं जिनि कर्ता होइ ॥ ५२ ॥

॥ हरि भरोस ॥

कासी तजि मगहर गया, कबीर भरोसै राम ।
सैंदे ही सांई मिल्या, दादू पूरे काम ॥ ५३ ॥
दादू रोजी राम है, राजिक रिजक हमार ।
दादू उस परसाद सौं, पोष्या सब परिवार ॥ ५४ ॥
पंच संतोषे एक सौं, मन मतिवाला मांहि ।
दादू भागी भूष सब, दूजा भावै नाहिं ॥ ५५ ॥
दादू साहिब मेरे कपड़े, साहिब मेरा षाण ।
साहिब सिर का ताज है, साहिब पिंड पराण ॥ ५६ ॥

---

(४८) तुम्हारे सिर (आधीन) दाली (रक्खी) यह राइ (बात) ॥

(५३) कहावत है कि व्यासजी ने श्राप दिया था कि मगहर खेत में जो मरै सो गधे का जन्म पाता है। कबीरजी ने काशी से जाकर मगहर में शरीर छोड़ा था। तिस बात को यहां इंगित किया है ॥

(५५) पंच इंद्रियां और मतवाला मन एक राम भजन से शांत किये ॥

॥ विनती ॥

सांई सत संतोष दे, भाव भगति वेसास । (३४-२६)
सिदक सबूरी साच दे, मांगे दादू दास ॥ ५७ ॥

॥ इति वेसास कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ १६ ॥

अथ पीव पिछाण कौ अंग ॥ २० ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

सारों के सिरि देषिये, उस परि कोई नांहिं ।
दादू ज्ञान विचारि करि, सो राष्या मन मांहिं ॥ २ ॥

सब लालों सिरि लाल है, सब पूबों सिरि पूब ।
सब पाकों सिरि पाक है, दादू का महबूब ॥ ३ ॥

परब्रह्म परापरं, सो मम देव निरंजनम् । (१-२)
निराकारं निर्मलं, तस्य दादू वंदनम् ॥ ४ ॥

---

(२) दृष्टांत—नेम लियो रजपूत इक, सब सिर हो तेहि सेउं ।
नृप तजि, त्याग्यौ पादशाह, साहिब सेवहि लेउं ॥

(३) व्यापक ब्रह्म अखंड अनावृत, बाहर भीतरि अंतरजामी ।
ओर न छोर अनंत कौं गुन, याही तैं सुंदर है घन नामी ॥
ऐसो प्रभू जिनके सिरि ऊपरि, क्यूं परि है तिन की कछु षामी ॥

एक तत्त ता ऊपरि इतनी, तीनि लोक ब्रह्मंडा ।
धरती गगन पवन अरु पानी, सप्त दीप नौ पंडा ॥५॥
चंद सूर चौरासी लय, दिन अरु रैंणी, रचिले सप्त समंदा ।
सवा लाप मेर गिर पर्वत, अठार भार तीर्थ व्रत, ता ऊपर मंडा ।
चौदह लोक रहैं सब रचनां, दादू दास तास घरि बंदा ॥६॥
दादू जिनि यहु एती करि धरी, थंभ बिन रापी ।
सो हम कौं क्यूं वीसरै, संत जन सापी ॥ ७ ॥
दादू जिन प्राण पिंड हम कौं दिया, अंतरि सेवैं ताहि । (२—२४)
जे आवै औसाण सिरि, सोई नांव संवाहि ॥ ८ ॥ ५८ ।
दादू जिन मुझ कौं पैदा किया, मेरा साहिब सोइ ।
मैं बंदा उस राम का, जिनि सिरज्या सब कोइ ॥ ९ ॥
दादू एक सगा संसार मैं, जिनि हम सिर्जे सोइ ।
मनसा वाचा कर्मना, और न दूजा कोइ ॥ १० ॥ ५ ॥
जे था कंत कबीर का, सोई वर वरि हूं ।
मनसा वाचा कर्मना, मैं और न करि हूं ॥ ११ ॥

---

(५) एक तत्त ता ऊपरि इतनी = एक ब्रम्ह जिसके आसरे इतनी सृष्टि है॥

(७) वीसरै = विसारै, भूलै । संतजन सापी = संतजन साक्षी हैं ॥

(८) जिसने हमको प्राण और शरीर दिया है, उसी की अंतःकरण से सेवा करैं । जब कभी औसाण (अवसर) मिले, तब उसी के नाम को संवाहैं-संभालैं ॥

(१०) देखो १—१४० भी ॥

(११) दृष्टांत—नृप पूछी आंबेर के, बायां को घो ब्याहि ।
जो पति वरयो कबीरजी, सो करि बरयो निचाहि ॥

दादू सब का साहिब एक है, जाका परगट नांव् ।
दादू सांई सोधि ले, ताकी मैं बलि जांव् ॥ १२ ॥
साचा सांई सोधि करि, साचा राषी भाव् ।
दादू साचा नांव् ले, साचे मारग आव् ॥ १३ ॥
साचा सतगुर सोधि ले, साचे लीजे साध । (१–५४)
साचा साहिब सोधि करि, दादू भगति अगाध ॥१४॥ गपरु॥
जामै मरे सु जीव् है, रमिता राम न होइ ।
जामण मरण थैं रहित है, मेरा साहिब सोइ ॥ १५ ॥
उठे न बैसे एक रस, जागै सोवै नांहिं ।
मरै न जीवै जगत गुर, सब उपजि षपै उस मांहिं ॥ १६ ॥
नां वहु जामै नां मरै, ना आवै गर्भवास ।
दादू ऊंधे मुष नहीं, नर्क कुंड दस मास ॥ १७ ॥
कृतम नहीं सो ब्रह्म है, घटै बधै नहिं जाइ ।
पूरण निहचल एक रस, जगति न नाचै आइ ॥ १८ ॥
उपजै, विनसै, गुण धरै, यहु माया का रूप ।
दादू देषत थिर नहीं, षिण छांहीं षिण धूप ॥ १६ ॥
जे नाहीं सो ऊपजे, है सो उपजै नांहिं ।
अलप आदि अनादि है, उपजै माया मांहिं ॥ २० ॥

(१५) जीव् = साभास अंतःकरण । साहिब = ब्रह्म ॥
(१८) कृतम = किया (बनाया) हुआ ॥
(१६) यह साखी केवल जीव् के लक्षण बताती है ॥
(२०) संसार जो वास्तव में है नहीं सो उपजना प्रतीत होता है, ब्रह्म वस्तु है सो उपजना नहीं, अलप (जो लखने में आवै नहीं। और आदि अनादि (उत्पत्ति रहित) है, जो कुछ उपजता है सो माया ही में है ॥

॥ प्रश्न ॥

जे यहु करता जीव़ था, संकट क्यूं आया ?
कर्मों के वसि क्यूं भया, क्यूं आप वंधाया ? ॥ २१ ॥
क्यूं सब जोनी जगत में, घर बार नचाया ।
क्यूं यह कर्ता जीव है, पर हाथि विकाया ? ॥ २२ ॥

॥ उत्तर—जीव़ लक्षण ॥

दादू कृतम काल वसि, बंध्या गुण मांहीं ।
उपजे विनसे देषतां, यहु कर्ता नांहीं ॥ २३ ॥
जाती नूर अल्लाह का, सिफ़ाती अरवाह ।
सिफ़ाती सिजदा करे, ज़ाती बे परवाह ॥ २४ ॥
परम तेज परापरं, परम जोति परमेसुरं ।
सुयं ब्रह्म सदई सदा, दादू अविचल अस्थिरं ॥ २६ ॥
अविनासी साहिब सति है, जे उपजे विनसै नांहिं ।
जेता कहिये काल सुप, सो साहिब किस मांहिं ॥ ३२ ॥
सांई मेरा सति है, निरंजन निरकार ।
दादू विनसे देषतां, झूठा सब आकार ॥ ३३ ॥

(२३) कर्तृम (जीव) काल के वश, गुणों में बंधा हुआ, प्रत्यक्ष उपजता और विनशता है, सो जगत का कर्ता नहीं ॥

(२४) ज़ाती = स्वतंत्र । सिफ़ाती = परतंत्र ॥

(२५–२८) देखो ४ थे अंग की १०४, ५, ६ और १०७ साखियां । ग घ ङ ॥

(३०–३१) देखो ४–२५४, २५५ । क ग घ ङ ॥

(३२) जेता कहिये काल सुप = जितने पदार्थ नाशवान हैं सो साहिब नहीं ॥

राम रटणि छाडे नहीं, हरि लै लागा जाइ ।
बीचैं ही अटकै नहीं, कला कोटि दिपलाइ ॥ ३४ ॥ ग ॥
उरैं हीं अटकै नहीं, जहां राम तहं जाइ ।
दादू पावै परम सुष, विलसै वस्त अघाइ ॥ ३५ ॥
दादू उरै हीं उरझे घणे, मूये गल दे पास ।
ऐन अंग जहं आप था, तहां गये निज दास ॥ ३६ ॥

॥ जगत भुलावन ॥

सेवा का सुप प्रेमरस, सेज सुहाग न देइ ।
दादू बाहै दास कौं, कह दूजा सब लेइ ॥ ३७ ॥

पति पहचान ॥

लोहा माटी मिलि रह्या, दिन दिन काई पाइ ।
दादू पारस राम बिन, कतहूं गया बिलाइ ॥ ४० ॥
लोहा पारस परसि करि, पलटै अपना अंग ।
दादू कंचन है रहै, अपने सांई संग ॥ ४१ ॥
दादू जिहिं परसें पलटे प्राणिया, सोई निज करि लेह ।
लोहा कंचन है गया, पारस का गुण येह ॥ ४२ ॥

---

(३७) सेवा (प्रेमाभक्ति) का सुख है प्रेमरस वा सेज सुहाग, तिस प्रेमाभक्ति को न देकर, दूजा सब (प्रेमाभक्ति अतिरिक्त) रिद्धि सिद्धि धनादिकौं का लालच देकर मंद भक्तों को जगत बाहे (बहकाय देता है) और प्रेमाभक्ति से प्रच्युत कर देता है ॥

(३८–३९) देखो ८–३८ और ३९ । घ ङ ॥

(४०) लोहा=जीव । माटी मिलि रह्या = देह अभिमान में फंसा हुआ ॥

(४३—४४) देखो २८ वें अंग की २ और ३ । ख ग घ ङ ॥

॥ परचै जिज्ञासा उपदेश ॥

दह दिसि फिरै सो मन है, आवै जाइ सो पवन।(२७-८)
रापणहारा प्राण है, देषणहारा ब्रह्म ॥ ४५ ॥

इति पीव पिछाण कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ २० ॥

अथ समर्थाई कौ अङ्ग ॥ २१ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
दादू कर्ता करै त निमष मैं, कीड़ी कुंजर होइ ।
कुंजर थैं कीड़ी करै, मेटि सकै नहिं कोइ ॥ २ ॥
दादू कर्ता करै त निमष मैं, राई मेर समान ।
मेर कौं राई करै, तौ को मेटै फुरमान ॥ ३ ॥
दादू कर्ता करै त निमष मैं, जल मांहैं थल थाप ।
थल मांहिं जलहर करै, ऐसा समर्थ आप ॥ ४ ॥
दादू कर्ता करै त निमष मैं, ठाली भरै भंडार ।
भरिया गहि ठाली करै, ऐसा सिरजनहार ॥ ५ ॥

---

(४५) दशों दिशावों में फिरनेवाला मन है, स्वास प्रस्वास ले सो पवन है, तीनों अवस्थाओं में जो जीवित रखता है सो प्राण है । जीव साक्षी (कूटस्थ) ब्रह्म है ॥

(३) कबीर सांई सौं सब होइगा, बंदे थैं कुछ नांहि ।
राई थैं परबत करै, परबत राई मांहि ॥

दादू धरती कौं अंबर करै, अंबर धरती होइ ।
निस अंधियारी दिन करै, दिन कौं रजनी सोइ ॥ ६ ॥
मृतक काढ़ि मसाण थैं, कहु कौन चलावै ।
अविगत गति नहिं जाणिये, जगि आणि दिपावै ॥ ७ ॥
दादू गुप्त-गुण परगट करै, परगट गुप्त समाइ ।
पलक मांहि भाने घड़े, ताकी लपी न जाइ ॥ ८ ॥

॥ पोष पाल रक्षक ॥

दादू सोई सही साबित हुवा, जा मस्तकि कर देइ ।
गरीब निवाजै देपतां, हरि अपणा करि लेइ ॥ ९ ॥

॥ सूक्ष्म मार्ग ॥

दादू सब ही मार्ग सांइयां, आगैं एक मुकाम ।
सोई सनमुप करि लिया, जाही सेती काम ॥ १० ॥

॥ पोष प्रतिपाल रक्षक ॥

मीरां मुझ सौं मिहर करि, सिर पर दीया हाथ ।
दादू कलिजुग क्या करै, सांई मेरा साथ ॥ ११ ॥ ॥

॥ ईश्वर समर्थाई ॥

दादू समर्थ सब विधि सांइया, ताकी मैं बलि जांऊं ।
अंतर एक जु सो बसै, औरां चित्त न लांऊं ॥ १२ ॥
दादू मारग मेहर का, सुपी सहज सौं जाइ ।
भौ सागर थैं काढ़ि करि, अपणे लिये बुलाइ ॥ १३ ॥

---

(१०) सब मार्गों का मुकाम (ठिकाना) एक परमेश्वर ही है । तिन मार्गों में से हमने वही स्वीकार किया जिससे अपना काम है ॥
(१३) अपणे लिये बुलाइ = अपने समीप कर लिया ॥

दादू जे हम चितवें, सो कछू न होवे आइ ।
सोई कर्ता सति है, कुछ औरे करि जाइ ॥ १४ ॥
एकूं लेइ बुलाइ करि, एकूं देइ पठाइ ।
दादू अद्भुत साहिबी, क्योंही लषी न जाइ ॥ १५ ॥
ज्यूं राषे त्यूं रहेंगे, अपणें बलि नांहीं ।
सबै तुम्हारे हाथि हे, भाजि कत जांहीं ॥ १६ ॥
दादू डोरी हरि के हाथि है, गल मांहै मेरे ।
बाजीगर का बांदरा, भावै तहां फेरे ॥ १७ ॥
ज्यूं राषे त्यूं रहेंगे, मेरा क्या सारा ।
हुक्मी सेवग राम का, बंदा बेचारा ॥ १८ ॥
साहिब राषे तौ रहे, काया मांहे जीव ।
हुक्मी बंदा उठि चले, जबहिं बुलावै पीव ॥ १९ ॥

॥ पाति पहिचान ॥

पंड पंड परकास है, जहां तहां भरपूर ।
दादू कर्ता करि रह्या, अनहद बाजें तूर ॥ २० ॥

॥ ईश्वर समर्थाई ॥

दादू दादू कहत है, आपे सब घट मांहिं ।
अपणी रुचि आपे कहे, दादू थें कुछ नांहिं ॥ २१ ॥

---

(१८) सारा = बस ॥
(२१) कवित्त—करौली के देस मधि, रामत करण कान,
स्वामीजी पधारे तहां, निकंदन काल के ।
जहां २ जांइ, तहां २ कहैं यही, बैन प्रिय लागैं मन में कृपाल के ।
जद्यपि अदेह राम, देह धारि ठाढ़े भये, श्रोत पोन चाहैं जन, प्यारे भक्त लाल के ॥
दादू कहैं राम कहौ, राम कहैं दादू कहौ, दादूराम दादूराम, रटि रहे बाल के ॥

हम थैं हुवा न होइगा, ना हम करणे जोग ।
ज्यूं हरि भावै त्यूं करै, दादु कहैं सब लोग ॥ २२ ॥

॥ पतिव्रत निहकाम ॥

दादू दूजा क्यूं कहै, सिर परि साहेब एक ।
सो हम कौं क्यूं बीसरै, जे जुग जाहिं अनेक ॥ २३ ॥

॥ समर्थ साषीभूत ॥

आप अकेला सब करै, औरों के सिर देइ ।
दादू सोभा दास कौं, अपना नांव न लेइ ॥ २४ ॥
आप अकेला सब करै, घट में लहरि उठाइ ।
दादू सिरि दे जीव के, यौं न्यारा ह्वै जाइ ॥ २५ ॥

॥ ईश्वर समर्थाई ॥

ज्यूं यहु समझै त्यूं कहौ, यहु जीव अज्ञानी ।
जेती बाचा तैं कही, इन एक न मानी ॥ २६ ॥
दादू पर्चा मांगैं लोग सब, कहैं हम कौं कुछ दिपलाइ ।
समर्थ मेरा सांइयां, ज्यूं समझैं त्यूं समझाइ ॥ २७ ॥
दादू तन मन लाइ करि, सेवा दिढ़ करि लेइ ।
ऐसा समर्थ राम है, जे मांगै सो देइ ॥ २८ ॥

दृष्टांत—रामति करता बालकां, दादू दादू भाषि ।
हरि परगट कियो भक्त,कौं, सदना सिवरी साषि ॥
(२२) कबीर ना कुछ किया न करि सक्या, ना करणे जोग्य सरीर ।
जे कुछ किया सु हरि किया, तायैं भया कबीर ॥
(२६–२७) दृष्टांत—साहपुरे दादू गये, ले गया साहति लोक ।
परचा की मन मैं रही, चलत दिषाये दोक ॥

॥ समर्थ सापीभूत ॥

समूथ सो सेरी समझाइनें, करि अणकरता होइ ।
घटि घटि व्यापक पूरि सब, रहै निरंतर सोइ ॥ २९ ॥

रहै नियारा सब करै, काहू लित न होड ।
आदि अंति भानै घड़ै, ऐसा समूथ सोड ॥ ३० ॥

॥ कर्ता सापीभूत ॥

सुरन नहीं सब कुछ करै, यौं कलि धरी बणाइ ।
कौतिगहारा ह्वै रह्या, सब कुछ होता जाइ ॥ ३१ ॥

लिपै छिपै नहिं सब करै, गुण नहिं व्यापै कोइ ।
दादू निहचल एकरस, सहजैं सब कुछ होइ ॥ ३२ ॥

बिन गुण व्यापै सब किया, समूथ आपै आप ।
निराकार न्यारा रहै दादू पुन्य न पाप ॥ ३३ ॥

॥ ईश्वर समर्थाई ॥

समिता के घरि सहज में, दादू दुविध्या नांहिं ।
सांई समय सब किया, समझि देपि मन मांहि ॥ ३४ ॥

पैदा कीया घाट घड़ि, आपै आप उपाइ । (२२–१३)
हिकमति हुनर कारीगरी, दादू लपी न जाइ ॥ ३५ ॥ घड ॥

जंत्र बजाया साजि करि, कारीगर करतार । (२२–१४)
पंचौं का रस नाद है, दादू बोलणहार ॥ ३६ ॥ घड ॥

---

(२९) हे समर्थ! सो सेरी (रहस्य–मार्ग) हम को समझादे कि जिस से आप सब कुछ करते हो तौ भी अकर्ता हो ।

दोहा–कबीर पूछै राम कौं, सकल भुवन पति राइ ।
सकल करि अलगा रहो, सो विधि हमहि बताइ ॥

(३१) सुरन= अन ॥

पंच ऊपना सबद थैं, सबद पंच सौं होइ । (२२-१५)
साँई मेरे सब किया, बूझै बिरला कोइ ॥ ३७ ॥ घङ॥
है, तौ रती, नहिं, तौ नाहीं, सब कुछ उतपति होइ ।
हुक्मैं हाजिर सब किया, बूझै बिरला कोइ ॥ ३८ ॥
नहीं तहां थैं सब किया, आपै आप उपाइ ।
निज तत न्यारा ना किया, दूजा आवै जाइ ॥ ३९ ॥
नहीं तहां थैं सब किया, फिरि नांहीं ह्वै जाइ । (२३-५७)
दादू नाहीं होइ रहु, साहिब सौं ल्यौ लाइ॥४०॥घङ॥
दादू पालिक पेलै पेल करि, बूझै बिरला कोइ ।
ले करि सुपिया ना भया, देकरि सुपिया होइ ॥ ४१ ॥
देबे की सब भूप है, लेवे की कुछ नांहिं ।
सांई मेरे सब किया, समझि देषि मन मांहिं ॥ ४२ ॥
दादू जे साहिब सिरजै नहीं, तौ आपै क्यूं करि होइ ।
जे आपै ही ऊपजै, तौ मरिकरि जीवै कोइ ॥ ४३ ॥

॥ कर्तृत कर्म ॥

कर्म फिरावै जीव कौं, कर्मों कौं करतार ।
करतार कौं कोई नहीं, दादू फेरनहार ॥ ४४ ॥

इति समर्थाई कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ २१ ॥

——:०:——

अथ सबद कौ अंग ॥ २२ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
दादू सबदैं बंध्या सब रहे, सबदैं ही सब जाइ ।
सबदैं ही सब ऊपजे, सबदैं सबै समाइ ॥ २ ॥
दादू सबदैं ही सचु पाइये, सबदैं ही संतोष ।
सबदैं ही अस्थिर भया, सबदैं भागा सोक ॥ ३ ॥
दादू सबदैं ही सूषिम भया, सबदैं सहज समान ।
सबदैं हीं निर्गुण मिलै, सबदैं निर्मल ज्ञान ॥ ४ ॥
दादू सबदैं ही मुक्ता भया, सबदैं समझै प्राण ।
सबदैं ही सूझै सबै, सबदैं सुरझै जाण ॥ ५ ॥

॥ सृष्टि क्रम ॥

दादू ओंकार थैं ऊपजे, अरस परस संजोग ।
अंकुर बीज द्वे पाप पुण्य, इहि विधि जोग रु भोग ॥ ६ ॥
ओंकार थैं ऊपजे, विनसे बहुत विकार ।
भाव भगति लै थिर रहै, दादू आतमसार ॥ ७ ॥
पहली कीया आप थैं, उतपति ओंकार ।
ओंकार थैं ऊपजे, पंच तत्त आकार ॥ ८ ॥
पंच तत्त थैं घट भया, बहु विधि सब विस्तार ।
दादू घट थैं ऊपजे, मैं तैं बरण विचार ॥ ९ ॥

एक सबद सब कुछ किया, ऐसा समरथ सोइ ।
आगैं पीछैं तौ करै, जे बल हीणा होइ ॥ १० ॥
निरंजन निराकार है, ओंकार आकार ।
दादू सब रंग रूप सब, सब बिधि सब विस्तार ॥ ११ ॥
आदि सबद ओंकार है, बोलै सब घट मांहिं ।
दादू माया विस्तरी, परम तत्त यहु नांहिं ॥ १२ ॥

॥ ईश्वर समर्थाई ॥

पैदा कीया घाट घड़ि, आपै आप उपाइ । (२१–३५)
हिकमत, हुनर कारीगरी, दादू लषी न जाइ ॥ १३ ॥ क ॥
जंत्र बजाया साजि करि, कारीगर करतार । (२१–३६)
पंचों का रस नाद है, दादू बोलनहार ॥ १४ ॥ क ॥
पंच ऊपना सबद सौं, सबद पंच सौं होइ । (२१–३७)
सांई मेरे सब किया, बूझै बिरला कोइ ॥ १५ ॥ क ॥
दादू एक सबद सौं ऊनवै, बर्षन लागै आइ ।

---

(१०) यह साखी अकबरशाह बादशाह के प्रश्न के उत्तर में कही थी । बादशाह का प्रश्न यह था कि पहिले आब की पैदाइश हुई या बाद की, अथवा ज़मीन या आसमान की, अथवा पुरुष या स्त्री की ॥

(१४) देह तँबूरा, दाँत जउग, जीभ तार तहँ लाग ।
सुंदर चेतन चतुर बिन, कौन बजावन हार ॥

पांचों (पंच तत्वों) का रस (कारण) नाद (ओंकार) है, सो चार्य-रूप (जीव) होकर बोलता है । देखो छान्दोग्य उपनिषद् के पहिले प्रपाठक प्रथम खंड का दूसरा मंत्र ॥

(१५) पंच तत्व ओंकार शब्द से उत्पन्न हुये और ओंकार शब्द का उच्चारण पंचभूतात्मक शरीर से होता है ॥

एक सबद सौं बीयरे, आप आप कौं जाइ ॥ १६ ॥
दादू साध सबद सौं मिलि रहे, मन राषे बिलमाइ ।
साध सबद बिन क्यूं रहै, तबहीं बीयरि जाइ ॥ १७ ॥
दादू सबद जरे सो मिलि रहै, एक रस पूरा ।
काइर भाजे जीव ले, पग मांडे सूरा ॥ १८ ॥
सबद बिचारे, करणी करै, राम नाम निज हिरदै धरै ।
काया मांहै सोधे सार, दादू कहै लहै सो पार ॥ १९ ॥
दादू काहे कौड़ी षरचिये, जे पैके सीझै काम ।
सबदौं कारिज सिध भया, तौ स्रम न दीजे राम ॥२०॥
दादू सबद बाण गुर साध के, दूरि दिसंतर जाइ । (१–२८)
जिहिं लागे सो ऊबरे, सूते लिये जगाइ ॥ २१ ॥ ॥ गवक ॥
दादू राम रिदै रस भेलि करि, को साधू सबद सुणाइ ।
जाणौ कर दीपक दिया, भरम तिमर सब जाइ ॥ २२ ॥
दादू बाणी प्रेम की, कवल बिगासै होइ ।
साध सबद माता कहै, तिन सबदौं मोह्या मोहि ॥२३॥
दादू हरि सुरकी बाणी साध की, सो परियो मेरे सीस ।

(१६) जैसे परमेश्वर की एक शब्दरूपी आज्ञा से मेघों की उत्पत्ति, वृष्टि और बिखर जाना होता है, तैसे ही सृष्टि स्थिति और प्रलय होता है ॥

(२०) जहां शब्द ही से कार्य बन जाय तहां धन का खर्चना व्यर्थ है। तैसे ही रामभजन से मोक्षरूपी कार्य की सिद्धि हो जाय तो अनेक प्रकार के तपादि श्रम क्यों करै ॥

(२३) पुस्तक नं० १ में "माता कहै" के बदले "माता रहै" है ॥

छूटै माया मोह थैं, प्रेम भजन जगदीस ॥ २४ ॥
दादू मुरकी राम है, सबद कहै गुर ज्ञान ।
तिन सबदों मन मोहिया, उन मन लागा ध्यान ॥२५॥
दादू बाणी ब्रह्म की, अनभै घटि परकास । (४-२०८)
राम अकेला रहि गया, सबद निरंजन पास ॥२६॥ सगवग ॥
सब्दों माँहैं राम धन, जे कोई लेइ बिचारि ।
दादू इस संसार मैं, कबहुं न आवै हारि ॥ २७ ॥
दादू राम रसाइन भरि धरया, साधन सबद मंझारि ।
कोइ पारिख पीवै प्रीति सौं, समझै सब्द बिचारि ॥२८॥
सबद सरोवर सूभर भरया, हरि जल निर्मल नीर ।
दादू पीवै प्रीति सौं, तिन के अखिल सरीर ॥ २९ ॥
सबदों माँहै राम रस, साधों भरि दीया ।
आदि अंति सब संत मिलि, यों दादू पीया ॥ ३० ॥

॥ गुरुदेव कसौटी ॥

पाणी माँहै राखिये, कनक कलंक न जाइ । (१-१०५)
दादू साचा सबद दे, ताइ अगनि मैं बाहि ॥३१॥ सगवग ॥

(२४) साध के मुखारविंद से हरि के नामरूपी मुरकी (कुन्डी) मेरे सिर पर पड़ै । जिससे माया मोह छूटै और जगदीश का प्रेम सहित भजन हो ॥

(२८) साधों ने शब्द के अंदर रामरूपी रसायन भर रखी है उस शब्द को विचार कर और समझ कर कोई परखने वाला ही प्रीति से पीता है ॥

(२९) शब्दरूपी सरोवर में ब्रह्मानंदरूपी निर्मल नीर सूभर (भले प्रकार से) भरा है । जिसको जो प्रीति से पीवै जिनका शरीर (तन मन) ब्रह्म में मग्न जाय ॥

(३१) सोने का मैल पानी से नहीं छुटता है, किंतु अग्नि में ताइ देने

कारिज को सीझै नहीं, मीठा बोलै बीर ।
दादू साचे सबद बिन, कटै न तन की पीर ॥ ३२ ॥

॥ सबद ॥

दादू गुण तजि निर्गुण बोलिये, तेता बोल अबोल ।
गुण गहि आपा बोलिये, तेता कहिये बोल ॥ ३३ ॥

साचा सबद कबीर का, मीठा लागै मोहिं ।
दादू सुनतां परम सुष, केता आनंद होइ ॥ ३४ ॥

॥ इति सबद को अंग संपूर्ण समाप्त ॥ २२ ॥

अथ जीवत मृतक कौ अंग ॥ २३ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

से सोना शुद्ध होता है, तैसे सतगुर के उपदेश से संसार रूपी मल निवृत्त होता है ॥

(३२) पुस्तक नं० २, ३ और ५ में निम्नलिखित साखी ३२ वीं और ३३ वीं साखियों के बीच में लिखी है परन्तु पुस्तक नं० १ और ४ में (जो सब से पुरानी है) यह साखी नहीं है ॥

सबद बंधाणा साह कै, तायैं दादू आया ।
दुनियां जीवी बापुड़ी, सुख दरसन पाया ॥

इसका तात्पर्य यह है कि साह (परमेश्वर) की आज्ञा से दादूजी जगत में आये, जिनके दर्शन से सुख हुआ और दुनियां बेचारी का जीवन हुआ ॥

धरती मत आकास का, चंद सूर का लेइ ।
दादू पानी पवन का, राम नाम कहि देइ ॥ २ ॥
दादू धरती ह्वै रहै, तजि कूड़ कपट हंकार ।
सांई कारण सिरि सहै, ताकौं परतषि सिरजनहार ॥३॥
जीवत माटी मिलि रहै, सांई सन्मुष होइ ।
दादू पहली मरि रहै, पीछै तौ सब कोइ ॥ ४ ॥

॥ दीनता गरीबी ॥

आपा गर्व गुमान तजि, मद मंछर हंकार ।
गहै गरीबी बंदगी, सेवा सिरजनहार ॥ ५ ॥
मद मंछर आपा नहीं, कैसा गर्व गुमान ।
सुपिनै ही समझै नहीं, दादू क्या अभिमान ॥ ६ ॥
झूठा गर्व गुमान तजि, तजि आपा अभिमान ।
दादू दीन गरीब ह्वै, पाया पद निर्वाण ॥ ७ ॥

॥ जीवत मृतक ॥

दादू भाव भगति दीनता अंग, प्रेम प्रीति सदा तिहि संग ॥ ८ ॥
तब साहिब कौं सिजदा किया, तब सिर धर्‌या उतारि । (२४-३८)
यौं दादू जीवत मरै, हिरस हवा कूं मारि ॥ १० ॥ खगघङ ॥

---

(२) धर्ती का गुण क्षमा, आकाश की निर्लेपता, चंद्रमा की शीतलता, सूर्य का तेजस्वीपना, पानी की निर्मलता, पवन की अनाशक्ति । इन गुणों को मनुष्य धारण करै और राम नाम का भजन करता रहै ॥

(३) "सांई कारण सिरि सहै"=सर्व में एक परमात्मा को अवलोकन करता हुआ शब्दापिशब्द सुखदुःखादि को सहन करै ॥

(६) देखो वेसास के अंग की ३५ वीं साखी । खगघ ॥

राव रंक सब मरहिंगे, जीवै नाहीं कोइ ।
सोई कहिये जीवता, जे मरि जीवा होइ ॥ ११ ॥
दादू मेरा वैरी मैं मुवा, मुझे न मारे कोइ ।
मैं ही मुझ कौं मारता, मैं मर जीवा होइ ॥ १२ ॥
दादू आपा जब लगै, तबलग दूजा होइ । (४–४७)
जब यहु आपा मिटि गया, तब दूजा नाहीं कोइ ॥१३॥ खगघङ॥
वैरी मारे मरि गये, चित थैं विसरे नांहिं ।
दादू अजहूं साल है, समझि देष मन मांहिं ॥ १४ ॥

॥ उभै असमाव ॥

दादू तौ तूं पावै पीव कौं, जे जीवत मृतक होइ ।
आप गंवाये पिव मिलै, जानत है सब कोइ ॥ १५ ॥
दादू तौ तूं पावै पीव कौं, आपा कछू न जान ।
आपा जिस थैं उपजै, सोई सहज पिछान ॥ १६ ॥
दादू तौ तूं पावै पीव कौं, मैं मेरा सब पोइ ।
मैं मेरा सहजैं गया, तब निर्मल दर्सन होइ ॥ १७ ॥

---

(१२) "मैं" नाम अहंकार अथवा ममभाव् का है, तिस को मार कर जीव् (अमर) होय । तथा—

रजब मुये जु मारने, विनसैं वैरी पंच ।
तब ताकौं व्यापै नहीं, जरा मरण जम अंच ॥

(१४) वैरी=काम क्रोध मन इंद्रियादिक । इनको मार भी ले, पर जितने काल इनके मार लेने का अभिमान फुरता है तब तक मन में साल (दुःख) अवश्य रहता है ॥

(१५) आप=मैं तैं रूपी भेदज्ञान ॥

(१६) आपा=ममभाव । इसकी उत्पत्ति स्फुरित ब्रह्म से है, सो आदि सत्ता ब्रह्म को सहज (सम) रूप चीन्ह ले ॥

मैं ही मेरे पोट सिरि, मरिये ताके भार ।
दादू गुर परसाद सौं, सिर थैं धरी उतार ॥ १८ ॥
मेरे आगें मैं पड़ा, ताथैं रह्या लुकाइ ।
दादू परगट पीव है, जे यहु आपा जाइ ॥ १९ ॥

॥ सूषिम मार्ग ॥

दादू जीवत मृतक होइ करि, मारग माँहैं आव ।
पहली सीस उतारि करि, पीछे धरिये पांव ॥ २० ॥
दादू मारग साध का, परा दुहेला जाण ।
जीवत मृतक ह्वै चले, राम नाम नीसाण ॥ २१ ॥
दादू मारग कठिन है, जीवत चलै न कोइ ।
सोई चलि है बापुरा, जे जीवत मृतक होइ ॥ २२ ॥
मृतक होवै सो चलै, निरंजन की बाट ।
दादू पावै पीव कौं, लंघे औघट घाट ॥ २३ ॥

॥ जीवत मृतक ॥

दादू मृतक तबहीं जाणिये, जब गुण इंद्री नांहिं ।
जब मन आपा मिटि गया, तब ब्रह्म समाना मांहिं ॥ २४ ॥
दादू जीवत हीं मरि जाइये, मरि माँहै मिलि जाइ ।
सांई का संग छाडि करि, कौण सहै दुष आइ ॥ २५ ॥
दादू कदि यहु आपा जाइगा, कदि यहु विसरै और । (१–६१)
कदि यहु सूषिम होइगा, कदि यहु पावै ठौर ॥ २६ ॥ खगघङ ॥

---

(१८) "पोट" की जगह "मोट" अधिक पुस्तकों में है ॥
(१९) मन की स्फुरता के शांत हुये केवल ब्रह्म ही रह जाता है । देखो आगे सालियां २४ और ३० ॥

॥ उभै असमाव ॥

दादू आपा कहा दिपाइये, जे कुछ आपा होइ ।
यहु तो जाता देपिये, रहता चीन्हों सोइ ॥ २७ ॥

दादू आप छिपाइये, जहां न देषै कोइ ।
पिव कौं देपि दिपाइये, त्यौं त्यौं आनंद होइ ॥ २८ ॥

॥ आपा निर्दोष ॥

दादू अंतर गति आपा नहीं, मुप सौं मैं तैं होइ ।
दादू दोस न दीजिये, यौं मिलि पेलैं दोइ ॥ २९ ॥

जे जन आपा मेटि करि, रहै राम ल्यौ लाइ ।
दादू सब ही देपतां, साहिब सौं मिलि जाइ ॥ ३० ॥

॥ दीनता गरीबी ॥

गरीब गरीबी गहि रह्या, मसकीनी मसकीन ।
दादू आपा मेटि करि, होइ रह्या ले लीन ॥ ३१ ॥

॥ उभै असमाव ॥

मैं हों मेरी जब लगे, तब लग बिलसै पाइ ।
मैं नाहीं मेरी मिटै, तब दादू निकटि न जाइ ॥ ३२ ॥

दादू मना मनी सब ले रहे, मनी न मेटी जाइ ।
मना मनी जब मिटि गई, तबहीं मिले पुदाइ ॥ ३३ ॥

दादू मैं मैं जालि दे, मेरे लागौ आगि ।
मैं मैं मेरा दूरि करि, साहिब के संगि लागि ॥ ३४ ॥

॥ मन मुषी (यथेष्ट) मान ॥

दादू पोई आपणी, लज्या कुल की कार ।
मान घड़ाई पति गई, तब सन्मुष सिरजनहार ॥ ३५ ॥

॥ उभै असमाव ॥

दादू मैं नाहीं तब एक है, मैं आई तब दोइ ।

मैं तैं पड़दा मिटि गया, तब ज्यों था त्यों ही होइ ॥ ३६ ॥

॥ परचै करुणा विनती ॥

नूर सरीपा करि लिया, बंदों का बंदा ।
दादू दूजा को नहीं, मुझ सरीपा गंदा ॥ ३७ ॥

॥ जीवत मृतक ॥

दादू सीष्यूं प्रेम न पाइये, सीष्यूं प्रीति न होइ ।
सीष्यूं दर्द न ऊपजै, जब लग आप न षोइ ॥ ३८ ॥
कहिबा सुणिबा गत भया, आपा पर का नास ।
दादू मैं तैं मिटि गया, पूरण ब्रह्म प्रकास ॥ ३९ ॥
दादू सांई कारण मांस का, लोही पानी होइ ।
सूकै आटा अस्थि का, दादू पावै सोइ ॥ ४० ॥
तन मन मैदा पीसि करि, छांणि छांणि ल्यो लाइ ।
यों बिन दादू जीव का, कबहूं साल न जाइ ॥ ४१ ॥
पीसे ऊपरि पीसिये, छांणे ऊपरि छांणि ।

---

(३७) मुझ = ममभाव, अहंकार, खुदी ॥

(३८) आप = आपा ॥

(४०) अस्थि की जगह अस्त, मूल पुस्तकों में है । इस साखी पर मंकण ऋषि का एक दृष्टांत है जिन्हों ने तप करते २ अपना रक्त सुखा दिया, यहां तक कि अंगुली में ज़ख्म लगने पर केवल पानी निकला, रक्त का लेश नहीं । तब शिवजी उन पर प्रसन्न हुये । यथा—

मंकण ऋषि कै जल भयो, नाच्यौ सिव समझाइ ।
त्यूं रजबजू नैं कही, गुर आज्ञा इक आइ ॥

(४१) तन मन को अत्यंत वस किये बिना और राम में लय लगाये बिना, जीव के दुःखों का नाश नहीं होता ॥

तौ आतम कण ऊबरै, दादू ऐसी जाण ॥ ४२ ॥
पहली तन मन मारिये, इन का मर्दै मान ।
दादू काढ़ै जंत्र में, पीछै सहज समान ॥ ४३ ॥
काटे ऊपरि काटिये, दाधे कौं दौं लाइ ।
दादू नीर न सींचिये, तौ तरवर बधता जाइ ॥ ४४ ॥
दादू सबकौं संकुट एक दिन, काल गहैगा आइ ।
जीवत मृतक ह्वै रहै, ताके निकटि न जाइ ॥ ४५ ॥
दादू जीवत मृतक ह्वै रहै, सब को विरकत होइ ।
काढौ काढौ सब कहैं, नांव न लेवै कोइ ॥ ४६ ॥

॥ जरना ॥

सारा गहिला ह्वै रहै, अंतरजामी जाणि ।
तौ छूटै संसार थैं, रस पीवै सारंगपाणि ॥ ४७ ॥
गुंगा गहिला बावरा, सांई कारण होइ ।
दादू दिवाना ह्वै रहै, ताकौं लपै न कोइ ॥ ४८ ॥

(४२) तन मन को बार बार निग्रह करने से आत्मतत्व का प्रकाश होता है ॥

(४३) "सहज समान" की जगह दूसरी पुस्तक में "सज सामान" है ॥

(४६) जीवत मृतक ऐसा होय कि माता पितादि सब जन उस से विरक्त होजांय, "काढ़ौ काढ़ौ" करैं। ("करैं" के बदले किसी किसी पोथी में "कहैं" है) और निकले पीछे कोई उस का नाम भी न ले ॥

(४७) "सारंगपाणि" लिखित पुस्तकों में "सारंगमाण" है। सारंग= धनुष हाथ में रखनेवाले रामजी, श्री भगवान, तिनका भजन रूपी रस पीवै ॥ इस साखी पर यह दृष्टांत दिये हैं:—

ऋषभदेव बोले नहीं, गहिले है जड़ भरथ ।
बाल्मीक बावल भये, ॥

॥ जीवत मृतक ॥

जीवत मृतक साधकी, बाणी का परकास ।
दादू मोहे रामजी, लीन भये सब दास ॥ ४६ ॥

॥ उभै असमाव ॥

दादू जे तूं मोटा मीर है, सब जीवों में जीव ।
आपा देषि न भूलिये, परा दुहेला पीव ॥ ५० ॥
आपा मेटि समाइ रहु, दूजा धंधा वादि ।
दादू काहे पचि मरे, सहजें सुमिरण साधि ॥ ५१ ॥
दादू आपा मेटे एक रस, मन अस्थिर ले लीन ।
अरस परस आनंद करे, सदा सुषी सो दीन ॥ ५२ ॥
दादू है को भै घणां, नाहीं कौं कुछ नाहिं । (४–४६)
दादू नाहीं होइ रहु, अपणे साहिब मांहि ॥५३॥ खगघङ॥
दादू मैं नाहीं तहं मैं गया, एकै दूसर नाहिं । (४–४५)
नाहीं कूं ठाहर घणी, दादू निज घर मांहि ॥५४॥ खगघङ॥
जहां राम तहं मैं नहीं, मैं तहं नाहीं राम । (४–४४)
दादू महल बारीक है, द्वै कूं नाहीं ठाम ॥ ५५ ॥ खगघङ॥
विरह अगिन का दाग दे, जीवत मृतक गोर । (३–६७)
दादू पहली घर किया, आदि हमारी ठौर ॥ ५६॥ खगघङ॥

॥ ईश्वर समर्थाई ॥

नहीं तहां थें सब किया, फिर नाहीं ह्वै जाइ । (२१–४०)
दादू नाहीं होइ रहु, साहिब सों ल्यौ लाइ ॥ ५७ ॥ क ॥

(४६) "सब दास" की जगह चौथी पुस्तक में "निजदास" है ॥

॥ सुमिरण नाम निःसंशय ॥

हमौं हमारा करि लिया, जीवृत करणी सार ।
पीछे संसा को नहीं, दादू अगम अपार ॥ ५८ ॥

॥ मधि निर्पष ॥

माटी मांहैं ठौर करि, माटी माटी मांहिं ।
दादू समि करि राषिये, द्वै पष दुविधा नांहिं ॥ ५६ ॥

इति जीवत मृतक को अंग संपूर्ण समाप्त ॥ २३ ॥

अथ सूरातन कौ अङ्ग ॥ २४ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

॥ सूर सती साध निर्णय ॥

साचा सिर सौं पेल है, यह साधू जन का काम ।
दादू मरणा आसंघे, सोई कहेगा राम ॥ २ ॥

(५६) देखो साखी ४ इसी अंग की । "राषिये" की जगह "देषिये" पुस्तक नं० ४—५ में है ॥

(२) पिछले अंग में जीवत मृतक होने का उपदेश आया है, मरना मारना काम शूरवीरों का है । इस हेतु से दयालजी इस अंग में साधु की शूरवीरता वतलाते हैं । वाय वैरियों का रण में जीतना शारीरिक बल का काम है, तैसे अंतर मन का जीतना आत्मिक बल पर निर्भर है, बाहुबल से रण का जीतना सहज है किंतु मन की कल्पनाओं को शांत करना सच्चे शूरवीर का काम है ।।

राम कहें ते मरि कहें, जीवत कह्या न जाइ ।
दादू ऐसें राम कहि, सती सूर सम भाइ ॥ ३ ॥
जब दादू मरिबा गहे, तब लोगों की क्या लाज ।
सती राम साचा कहे, सब तजि पति सों काज ॥ ४ ॥

॥ सूरबीर कायर ॥

दादू हम काइर कड़वा करि रहे, सूर निराला होइ ।
निकसि पड़ा मैदान में, ता सम और न कोइ ॥ ५ ॥

॥ सूर सती साध निरनै ॥

मडा न जीवै तो संगि जलै, जीवै तो घर आण ।
जीवन मरणा राम सों, सोई सती करि जाण ॥ ६ ॥
जन्म लगें बिभचारणी, नष सिष भरी कलंक ।
पलक एक सन्मुष जली, दादू धोये अंक ॥ ७ ॥
स्वांग सती का पहरि करि, करै कुटंब का सोच ।
बाहरि सूरा देषिये, दादू भीतरि पोच ॥ ८ ॥
दादू सती त सिरजनहार सों, जलै विरह की झाल ।
ना वहु मरै न जलि बुझै, ऐसें संगिं दयाल ॥ ९ ॥
जे मुझ होते लाष सिर, तो लाषों देती वारि ।
सह मुझ दीया एक सिर, सोई सोंपे नारि ॥ १० ॥

---

(५) कड़वा = खड़वा = चलने की तैयारी ॥

(६) यह साखी दादूजी ने उस समय अपने शिष्यों से कही थी जब वे आंबेर से अकबरशाह के पास चले थे और शिष्य बादशाह के भय का संदेह करते थे, इस साखी का तात्पर्य यह है कि सती का शरीर त्यागना पति के निमित्त, शूरवीर का धन कीर्ति के निमित्त, साधु का भगवत के निमित्त, श्रेष्ठ है ॥

सती जलि कोइला भई, मुये मड़े की लार ।
यों जे जलती राम सौं, साचे संगि भर्तार ॥ ११ ॥
मुये मड़े सौं हेत क्या, जे जीव कि जाणे मांहिं ।
हेत हरी सौं कीजिये, जे अंतरजामी मांहिं ॥ १२ ॥

॥ सूरबीर–काइर ॥

सूरा चढ़ि संग्राम कौं, पाछा पग क्यौं देइ ।
साहिब लाजे भाजनां, धृग जीवन दादू तेइ ॥ १३ ॥
सेवग सूरा राम का, सोई कहेगा राम ।
दादू सूर सन्मुष रहै, नहिं काइर का काम ॥ १४ ॥
काइर कामि न आवई, यहु सूरे का षेत ।
तन मन सौंपे राम कौं, दादू सीस सहेत ॥ १५ ॥
जब लग लालच जीव का, तब लग निर्भे हुवा न जाइ ।
काया माया मन तजै, तब चौड़े रहै बजाइ ॥ १६ ॥
दादू चौड़े में आनंद है, नांव धरया रणजीत ।
साहिब अपना करि लिया, अंतर गति की प्रीति ॥ १७॥
दादू जे तुझ काम करीम सौं, तौ चौहटै चढ़ि करि नाच ।
झूठा है सो जाइगा, निहचै रहसी साच ॥ १८ ॥

॥ जीवत मृतक ॥

राम कहेगा एक कोइ, जे जीवत मृतक होइ ।
दादू ढूंढे पाइये, कोटी मध्ये कोइ ॥ १९ ॥

॥ सूर सती साध निर्णय ॥

सूरा पूरा संत जन, सांई कौं सेवे ।

(१९) "कोटी" की जगह पुस्तक नं० ३, ४, ५ में "कोटि" है। कोटि = करोड़॥

दादू साहिब कारणै, सिर अपणां देवै ॥ २० ॥
सूरा झूझै षेत में, सांई सन्मुष आइ ।
सूरे कौं सांई मिलै, तब दादू काल न षाइ ॥ २१ ॥
मरिबे ऊपरि एक पग, करता करै सो होइ ।
दादू साहिब कारणै, तालाबेली मोहि ॥ २२ ॥

॥ हरि भरोसा ॥

दादू अंग न षैंचिये, कहि समझाऊं तोहि ।
मौंहिं भरोसा राम का, बंका बाल न होइ ॥ २३ ॥
बहुत गया थोड़ा रह्या, अब जिव सोच निवार ।
दादू मरणा मांडि रहु, साहिब के दरबार ॥ २४ ॥

॥ सूरबीर–काइर ॥

जीवूं का संसा पड़्या, को का कौं तारै ।
दादू सोई सूरिवां, जे आप उबारै ॥ २५ ॥
जे निकसै संसार थैं, सांई की दिसि धाइ ।
जे कबहूं दादू बाहुड़ै, तौ पीछै मार्‍या जाइ ॥ २६ ॥
दादू कोइ पीछैं हेला जिनि करै, आगैं हेला आव ।
\ आगैं एक अनूप है, नहिं पीछैं का भाव ॥ २७ ॥

---

(२३) समरभूमि में जाकर अंग को संकोचित नहीं करना ॥

(२४) मरणा मांडि रहु = मरने के लिये तैयार रहो ॥

(२५) जीवूं का संसा = जीवों को संशय ॥

(२७) तात्पर्य यह है कि साधक शूर आगे आने की पुकार (अनाहद शब्द) सुन कर आगे ही चलता जाय, पीछे न फिरे, अर्थात् ज्यौं २ अंतर्मुख वृत्ति बढ़ती जाय त्यौं २ वृत्ति को भीतर ही बढ़ाता जाय, बाह्य विषयों की ओर न उलटने दे ॥

पीछैं कौं पग ना भरै, आगें कौं पग देइ ।
दादू यहु मत सूर का, अगम ठौर कौं लेइ ॥ २८ ॥
आगा चलि पीछा फिरै, ताका मुंह मदीठ ।
दादू देषै दोइ दल, भागे देकरि पीठ ॥ २९ ॥
दादू मरणां मांडि करि, रहै नहीं ल्यौ लाइ ।
काइर भाजे जीव ले, आरणि छांड़े जाइ ॥ ३० ॥
सूरा होइ सुमेर उलंघै, सब गुण बंध्या छूटै ।
दादू निर्भै ह्वै रहै, काइर तिणा न टूटै ॥ ३१ ॥

॥ सूर सती साध निर्णय ॥

अप केसरि काल कुंजर, बहु जोध मारग मांहि ।
कोटि मैं कोइ एक ऐसा, मरण आसंधि जांहि ॥ ३२ ॥
दादू जब जागै तब मारिये, बैरी जिय के साल ।
मनसा डायनि काम रिपु, क्रोध महाबलि काल ॥ ३३ ॥
पंच चोर चितवत रहीं, माया मोह विषभाल ।
चेतन पहरै आपणौ, कर गहि षड़ग संभाल ॥ ३४ ॥
काया कवज कमान करि, सार सबद करि तीर ।
दादू यहु सर सांधि करि, मारै मोटे मीर ॥ ३५ ॥
काया कठिन कमान है, पांचै विरला कोइ ।

---

(२९) मुंह मदीठ = मुंह देखने के अयोग्य ॥ "आगा" की जगह "आपा" पुस्तक नं० २, ३, ४, ५ में है ॥

(३२) सर्पसिंहादि (काम क्रोधादि) अनेक विघ्न सन्मार्ग में हैं ॥

(३५) काया की कमान से राम नाम का तीर मीर (परमेश्वर) को लक्ष करै ॥

मारै पंचों मृगला, दादू सूरा सोइ ॥ ३६ ॥
जे हरि कोप करैं इन ऊपरि, तौ काम कटक दल जांहिं कहां ।
लालच लोभ क्रोध कत भाजैं, प्रगट रहे हरि जहां तहां ॥३७॥

॥ जीवत मृतक ॥

तब साहिब कौं सिजदा किया, जब सिर धर्‌या उतारि । (२३-१०)
यौं दादू जीवत मरे, हिरस हवा कौं मारि । ३८ ॥

॥ मृगतन ॥

दादू तन मन काम करीम के, आवै तौ नीका ।
जिसका तिसकौं सौंपिये, सोच क्या जी का ॥ ३६ ॥
जे सिर सौंप्या रामकौं, सो सिर भया सनाथ ।
दादू दे उरण भया, जिसका तिसके हाथ ॥ ४० ॥
जिसका है तिसकौं चढ़े, दादू उरण होइ ।
पहली देवै सो भला, पीछै तौ सब कोइ ॥ ४१ ॥
सांई तेरे नांव परि, सिर जीव करूं कुरबान ।
तन मन तुम परि वारणौं, दादू प्यंड पराण ॥ ४२ ॥
अपणे सांई कारणे, क्या क्या नहिं कीजे ।
दादू सब आरंभ तजि, अपणा सिर दीजे ॥ ४३ ॥
सिर के साटै लीजिये, साहिब जी का नांव ।
पेलै सीस उतारि करि, दादू मैं बलि जांव ॥ ४४ ॥
पेलै सीस उतारि करि, अधर एक सौं आइ ।
दादू पावे प्रेम रस, सुष मैं रहै समाइ ॥ ४५ ॥

(३६) पंचों मृगला = पंच इन्द्रियां ॥
(३६) "सौंपिये" की जगह "दीजिये" पुस्तक नं० २, ५ में है ॥

॥ मरण भय निवारण ॥

दादू मरणे थीं तूं मति डरै, सब जग मरता जोइ ।
मिलि करि मरणा राम सौं, तौ कलि अजरावर होइ ॥४६॥
दादू मरणे थीं तूं मति डरै, मरणां अंति निदान ।
रे मन मरणा सिरज्यया, कहिले केवल राम ॥ ४७ ॥
दादू मरणे थीं तूं मति डरै, मरणा पहुंच्या आइ ।
रे मन मेरा राम कहि, वेगा वार न लाइ ॥ ४८ ॥
दादू मरणे थीं तूं मति डरै, मरणा आजि कि काल्हि ।
मरणा मरणा क्या करै, वेगा राम संभालि ॥ ४९ ॥
दादू मरणा खूब है, निपट बुरा बिभचार ।
दादू पति कौं छाड़ि करि, आन भजै भर्तार ॥ ५० ॥
दादू तन थैं कहा डराइये, जे विनासि जाइ पल वार ।
काइर हुवां न छूटिये, रे मन हो हुसियार ॥ ५१ ॥
दादू मरणा खूब है, मरि मांहै मिलि जाइ ।
साहिब का संग छांडि करि, कौन सहै दुष आइ ॥५२॥ ङ ॥

॥ सूरातन ॥

दादू मांहैं मन सौं झूझ करि, ऐसा सूरा वीर ।
इंद्री अरि दल भानि सब, यौं कलि हुवा कबीर ॥५३॥
सांई कारण सीस दे, तन मन सकल सरीर ।
दादू प्राणी पंच दे, यौं हरि मिल्या कबीर ॥५४॥ ङ ॥
सधै कसौटी सिर सहै, सेवग सांई काज ।
दादू जीवनि क्यौं तजै, भाजै हरि कौं लाज ॥ ५५ ॥

(५५) इस साखी में दयालजी कहते हैं कि परमेश्वर की प्राप्ति के नि-

साँई कारण सब तजै, जन का ऐसा भाव ।
दादू राम न छाडिये, भावै तन मन जाव ॥ ५६ ॥

॥ पतिव्रत निष्काम ॥

दादू सेवग सो भला, सेवै तन मन लाइ ।
दादू साहिब छाडि करि, काहू संगि न जाइ ॥ ५७ ॥
पतिव्रता पति पीवकों, सेवै दिन अरु राति ।
दादू पतिकूं छाडि करि, काहू संगि न जात ॥ ५८ ॥

॥ सूरातन ॥

सोरठा—दादू मरिबो एकजु बार, अमर झुकेड़े मारिये ।
तौ तिरिये संसार, आत्म कारिज सारिये ॥ ५९ ॥
दादू जे तूं प्यासा प्रेमका, तौ जीवन की क्या आस ।
सिरके साटै पाइये, तौ भरि भरि पीवै दास ॥ ६० ॥

॥ कायर ॥

मन मनसा जीते नहीं, पंच न जीते प्राण ।
दादू रिपु जीते नहीं, कहैं हम सूर सुजाण ॥ ६१ ॥
मन मनसा मारे नहीं, काया मारण जाहि ।
दादू बांबी मारिये, सर्प मरे क्यों मांहि ॥ ६२ ॥

॥ सूरातन ॥

दादू पाषर पहरि करि, सब को झूझण जाइ ।
अंगि उघाड़े सूरिवां, चोट मुहें मुंह पाइ ॥ ६३ ॥

मिष सब तरह के दुःख सेवक को सहने चाहियें। अपनी जीवनरूपी मेवा भक्ति को क्यों तजे ? इस बात की लाज परमेश्वर ही को है ॥

जब झूझे तब जाणिये, काछि पड़े क्या होइ ।
चोट मुंहें मुंह पाइगा, दादू सूरा सोइ ॥ ६४ ॥
सूरातन सहजें सदा, साच सेल हथियार ।
साहिब के बल झूझतां, केते किये सुमार ॥ ६५ ॥
दादू जब लग जिय लागै नहीं, प्रेम प्रीति के सेल ।
तब लग पिव क्यों पाइये, नहिं बाजीगर का षेल ॥ ६६॥
दादू जे तूं प्यासा प्रेम का, तौ किस कौं सेंतै जीव ।
सिर के साटै लीजिये, जे तुझ प्यारा पीव ॥ ६७ ॥
दादू महा जोध मोटा बली, सो सदा हमारी भीर ।
सब जग रूठा क्या करै, जहां तहां रणधीर ॥ ६८ ॥
दादू रहते पहते रामजन, तिन भी मांड्या झूझ ।
साचा मुंह मोड़ै नहीं, अर्थ इताही बूझ ॥ ६९ ॥

॥ हरि भरोस ॥

दादू कांधै सबल के, निर्वाहैगा ओर ।
आसांणि अपने ले चल्या, दादू निहचल ठौर ॥ ७० ॥

॥ सूरातन ॥

दादू क्या बल कहा पतंग का, जलत न लागै बार ।
बल तौ हरि बलवंत का, जीवैं जिहिं आधार ॥ ७१ ॥
रावण हारा राम है, सिर ऊपरि मेरे ।
दादू केते पचि गये, वैरी बहुतेरे ॥ ७२ ॥

---

(६५) सूर वीर अपने तन को सदा सजा रखता है, सांच रूपी सेल (भाला) हाथ में रखके साहेब के बल से युद्ध करता हुआ, कितने ही कामादिक को परास्त करता है ॥

॥ सूरातन विनती ॥

दादू वलि तुम्हारे वापजी, गिणत न राणा राव ।
मीर मलिक प्रधान पति, तुम विन सवही वाव ॥ ७३ ॥

दादू रापी राम पर, अपणी आप संवाहि ।
दूजा को देषूं नहीं, ज्यों जाणें त्यों निर्वाहि ॥ ७४ ॥

तुम बिन मेरे को नहीं, हमकौं रापनहार ।
जे तूं रापै सांईयां, तौ कोई न सकै मार ॥ ७५ ॥

सब जग छाडै हाथ थैं, तौ तुम जिनि छाडहु राम ।
नहिं कुछ कारिज जगत सौं, तुमहीं सेती काम ॥ ७६ ॥

॥ सूरातन ॥

दादू जाते जिवथैं तौ डरूं, जे जिव मेरा होइ ।
जिन यहु जीव उपाइया, सार करैगा सोइ ॥ ७७ ॥

दादू जिनकौं सांई पधरा, तिन वंका नाहीं कोइ ।
सब जग रूठा क्या करै, रापणहारा सोइ ॥ ७८ ॥

दादू साचा साहिब सिर ऊपरै, तती न लागै वाव ।
चरण कवल की छाया रहै, कीया बहुत पसाव ॥ ७९ ॥

॥ विनती ॥

दादू कहै जे तूं रापै सांइया, तौ मारि सकै ना कोइ ।
वाल न वंका करि सकै, जे जग वैरी होइ ॥ ८० ॥

दादू रापण हारा रापै, तिसैं कौन मारै ।
उसे कौन डवोवै, जिसे सांइ तारै ॥
कहै दादू सो कबहूं न हारै, जे जन सांई संभारै ॥८१॥

निर्भै बैठा राम जपि, कबहूं काल न पाइ ।

जब दादू कुंजर चढ़े, तब सुनहां झपि जाइ ॥ ८२ ॥
कायर कूकर कोटि मिलि, भौंके अरु भागै ।
दादू गरवा गुरमुखी, हस्ती नहिं लागै ॥ ८३ ॥

इति सूरातन को अंग संपूर्ण समाप्त ॥ २४ ॥

अथ काल कौ अङ्ग ॥ २५ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
काल न सूझै कंध पर, मन चितवै बहु आस ।
दादू जीव जाणै नहीं, कठिन काल की पास ॥ २ ॥
दादू काल हमारे कंध चढ़ि, सदा बजावै तूर ।
काल हरण करता पुरिष, क्यों न संभालै सूर ॥ ३ ॥
जहं जहं दादू पग धरै, तहां काल का फंध ।
सिर ऊपर सांधे पड़ा, अजहुं न चेतै अंध ॥ ४ ॥
दादू काल गिरासन का कहिये, काल रहित कहि सोइ ।
काल रहित सुमिरण सदा, बिना गिरासन होइ ॥ ५ ॥

---

(५) काल के ग्रास सभी जन हैं उनकी क्या कहैं, जो कोई काल से बचा हो तो उसकी कहनी चाहिये । सो काल से बचा (बिना गिरासन) वही है जो सदा काल रहित (अमर) परमात्मा के सुमिरण में रत है ॥

दादू मरिये राम बिन, जीजे राम संभाल ।
अमृत पीवै आत्मा, यों साधू वंचै काल ॥ ६ ॥
दादू यहु घट काचा जल भरया, बिनसत नाहीं वार ।
यहु घट फूटा जल गया, समझत नहीं गंवार ॥ ७ ॥
फूटी काया जाजरी, नव ठाहर काणी ।
तामें दादू क्यों रहे, जीव सरीपा पाणी ॥ ८ ॥
बाव भरी इस पाल का, झूठा गर्व गुमान ।
दादू बिनसै देपतां, तिस का क्या अभिमान ॥ ६ ॥
दादू हम तो मूये मांहिं हैं, जीवण कार भरंम ।
झूठे का क्या गरबबा, पाया मुझ मरंम ॥ १० ॥
यहु वन हरिया देपिकर, फूल्यों फिरै गंवार ।
दादू यहु मन मृगला, काल अहेड़ी लार ॥ ११ ॥
सबहीं दीसै काल मुपि, आपै गहि करि दीन्ह ।
बिनसे घट आकार का, दादू जे कुछ कीन्ह ॥ १२ ॥
काल कीट तन काठ कों, जुरा जनम कूं पाइ ।
दादू दिन दिन जीवकी, आव घटंती जाइ ॥ १३ ॥
काल गिरासै जीव कों, पल पल सासैं सास ।
पग पग मांहैं दिन घड़ी, दादू लपै न तास ॥ १४ ॥

(१०) हम तो मरे हुओं की कोटि में हैं, जो शरीर को ज़िंदा मानते हैं उन्हीं को यह संसार रूपी भ्रम है। झूठी काया का वह गर्व नहीं करता जिसने आत्मा का भेद पाया है ॥

"कार" की जगह पु० नं० २ में "कारु" है। "गरबबा" की जगह पु० नं० २-३ में "गारिबा" वा "गारबा" है ॥

पग पलक की सुधि नहीं, सास सबद क्या होइ ।
कर मुष मांहै मेल्हतां, दादू लषै न कोइ ॥ १५ ॥
दादू काया कारवीं, देषत चलि ही जाइ ।
जब लग सास सरीर मैं, राम नाम ल्यौ लाइ ॥ १६ ॥
दादू काया कारवीं, मोहिं भरोसा नांहिं ।
आसण कुंजर सिरि छत्र, विनासि जाहिं षिण मांहिं ॥ १७ ॥
दादू काया कारवीं, पड़त न लागै बार ।
बोलणहारा महल मैं, सो भी चालणहार ॥ १८ ॥
दादू काया कारवीं, कदे न चालै संग ।
कोटि बरस जे जीवणा, तऊ होइला भंग ॥ १९ ॥
कहतां सुनतां देषतां, लेतां देतां प्राण ।
दादू सो कतहूं गया, माटी धरी मसाण ॥ २० ॥
सींगी नाद न बाजहीं, कत गये सो जोगी ।
दादू रहते मढ़ी मैं, करते रस भोगी ॥ २१ ॥
दादू जियरा जाइगा, यहु तन माटी होइ ।
जे उपज्या सो विनसि है, अमर नहीं कलि कोइ ॥२२॥
दादू देही देषतां, सब किस ही की जाइ ।

---

(१५) किसी को यह भरोसा नहीं है कि अगले क्षण में क्या होगा ॥
(१६) काया कारवीं । दृष्टांत—
चार पुरुष भाड़े लई, वणिक कोठड़ी चारि ।
कहि भाड़ो हमरो यहै, कबहूं देंउ निकारि ॥
(२१) दृष्टांत—गुर दादू आंबेर थे, ढिग जोगी के थान ।
इक दिन सींगी ना बजी, मरिगौ जोगी जान ॥

जब लग सास सरीर में, गोविंद के गुण गाइ ॥ २३ ॥
दादू देही पाहुणी, हंस बटाऊ मांहिं ।
का जाणों कब चालिसी, मोहिं भरोसा नांहिं ॥ २४ ॥
दादू सब को पाहुणां, दिवस चारि संसार ।
अवसर अवसर सब चले, हम भी इहै विचार ॥ २५ ॥

॥ भयमई– पंथ विषमता ॥

सब को बैठे पंथ सिरि, रहे बटाऊ होइ ।
जे आये ते जाहिंगे, इस मारग सब कोइ ॥ २६ ॥
बेग बटाऊ पंथ सिरि, अब बिलंब न कीजै ।
दादू बैठा क्या करै, राम जपि लीजै ॥ २७ ॥
संझ्या चलै उतावला, बटाऊ बनपंड मांहि ।
बरियां नाहीं ढील की, दादू बेगि घरि जांहि ॥ २८ ॥
दादू करह पलाणि करि, को चेतन चढ़ि जाइ ।
मिलि साहिब दिन देषतां, सांझ पड़े जिनि आइ ॥२९॥
पंथ दुहेला दूरि घर, संग न साथी कोइ ।
उस मारग हम जाहिंगे, दादू क्यों सुप सोइ ॥ ३० ॥
लंघण के लकु घणा, कपर चाट डीन्ह ।
अथा पांधी पंथ में, विहंदा आहीन ॥३१ ॥

॥ काल चितावणी ॥

दादू हंसतां रोवतां पाहुणा, काहू छाडि न जाइ ।
काल पड़ा सिर ऊपरै, आवणहारा आइ ॥ ३२ ॥

(३२) पाहुणा (दामाद) हंसती हुई अथवा रोती हुई लड़की को छोड़ नहीं जाता । तैसे ही आने वाला काल सिर पर सवार है ॥

दादू जोरा वैरी काल है, सो जीव न जानै ।
सब जग सूता नींदड़ी, इस तानै बानै ॥ ३३ ॥
दादू करणी काल की, सब जग परलै होइ ।
राम विमुप सब मरि गये, चेति न देषै कोइ ॥ ३४ ॥
साहिब कौं सुमिरै नहीं, बहुत उठावै भार ।
दादू करणी काल की, सब परलै संसार ॥ ३५ ॥
सूता काल जगाइ करि, सब पैसें मुष मांहिं ।
दादू अचिरज देषिया, कोई चेतै नांहिं ॥ ३६ ॥
सब जीव विसाहैं काल कौं, करि करि कोटि उपाइ ।
साहिब कौं समझै नहीं, यौं परलै ह्वै जाइ ॥ ३७ ॥
दादू कारण काल के, सकल संवारै आप ।
मीच विसाहैं मरण कौं, दादू सोग संताप ॥ ३८ ॥
दादू अमृत छाडि करि, विषै हलाहल षाइ ।
जीव विसाहै काल कौं, मूढ़ा मरि मरि जाइ ॥ ३९ ॥
निर्मल नांव विसारि करि, दादू जीव जंजाल ।
नहीं तहां थैं करि लिया, मनसा मांहै काल ॥ ४० ॥
सब जग छेली, काल कसाई, कर्द लिये कंठ काटै ।
पंच तत्त की पंच पंषरी, षंड षंड करि बांटै ॥ ४१ ॥
काल झाल में जग जलै, भाजि न निकसै कोइ ।

---

(३९) दृष्टांत—दोय पुरुष मग जात थे, देख्यौ सोवत नाग ।
एक बरजतैं लात दी, षात मर्यौ वही जाग (जगह) ॥
(४०) दृष्टांत – विद्या पढ़ी सजीवनी, काल पंचयौ नांहि ।
जागीवन गुरु ज्ञान बिन, पड़या सिंह मुष मांहि ॥

दादू सरणैं साच के, अभै अमरपद होइ ॥ ४२ ॥
सब जग सूता नींद भरि, जागै नाहीं कोइ ।
आगै पीछै देषिये, प्रतषि परलै होइ ॥ ४३ ॥

॥ आसक्तिता·मोह ॥

ये सजन दुर्जन भये, अंति काल की बार ।
दादू इन मैं को नहीं, विपति बटावणहार ॥ ४४ ॥
संगी सजण आपणां, साथी सिरजनहार ।
दादू दूजा को नहीं, इहि कलि इहि संसार ॥ ४५ ॥

॥ काल चितावणी ॥

ए दिन बीते चालि गये, वै दिन आये धाइ ।
राम नाम बिन जीव कौं, काल गरासै जाइ ॥ ४६ ॥
जे उपज्या सो विनसि है, जे दीसै सो जाइ ।
दादू निर्गुण राम जप, निहचल चित्त लगाइ ॥ ४७ ॥
जे उपज्या सो विनसि है, कोई थिर न रहाइ ।
दादू बारी आपणी, जे दीसै सो जाइ ॥ ४८ ॥
दादू सब जग मरि मरि जात है, अमर उपावणहार ।
रहता रमता राम है, बहता सब संसार ॥ ४९ ॥

॥ सजीवन ॥

दादू कोइ थिर नहीं, यहु सब आवै जाइ ।
अमर पुरिस आपै रहै, कै साधू ल्यौ लाइ ॥ ५० ॥

॥ काल चितावणी ॥

यहु जग जाता देषि करि, दादू करी पुकार ।
घड़ी महूरत चालनां, राखै सिरजनहार ॥ ५१ ॥

दादू विष सुष मांहे षेलतां, काल पहूंच्या आइ।
उपजे विनसे देषतां, यहु जग यौंहीं जाइ ॥ ५२ ॥
राम नाम बिन जीव जे, केते मुये अकाल।
मीच बिना जे मरत हैं, ताथें दादू साल ॥ ५३ ॥

॥ कठोरता ॥

सर्प सिंह हस्ती घणां, राकस भूत परेत।
तिस वन में दादू पड्या, चेतै नहीं अचेत ॥ ५४ ॥
पूत पिता थें बीछुट्या, भूलि पड्या किस ठौर।
मरे नहीं उर फाटि करि, दादू बड़ा कठोर ॥ ५५ ॥

॥ काल चितावणी ॥

जे दिन जाइ सो बहुरि न आवै, आव घटै तन छीजे।
अंति काल दिन आइ पहूंता, दादू ढील न कीजे ॥ ५६ ॥
दादू अवसर चलि गया, बरियां गई बिहाइ।
कर छिटकें कहं पाइये, जन्म अमोलिक जाइ ॥ ५७ ॥
दादू गाफिल ह्वै रह्या, गहिला हुवा गंवार।
सो दिन चीति न आवई, सोवै पांव पसार ॥ ५८ ॥
दादू काल हमारा कर गहै, दिन दिन षेंचत जाइ।
अजहुं जीव जागै नहीं, सोवत गई बिहाइ ॥ ५९ ॥
सूता आवै सूता जाइ, सूता षेलै सूता पाइ।
सूता लेवै सूता देवै, दादू सूता जाइ ॥ ६० ॥

---

(५७) कर छिट कें = हाथ से छूटे।

(६०) सूता = अज्ञान दशा में।

दादू देषत हीं भया, स्याम वर्ण थैं सेत।
तन मन जोवन सब गया, अजहुं न हरिसौं हेत ॥ ६१ ॥

दादू झूठे के घर देषि करि, झूठे पूछे जाइ।
झूठे झूठा बोलते, रहे मसाणों आइ ॥ ६२ ॥

दादू प्राण पयाणा करि गया, माटी धरी मसांण।
जालण हारे देषि करि, चेतें नहीं अजांण ॥ ६३ ॥

दादू केइ जाले केइ जालिये, केई जालन जांहिं।
केई जालन की करैं, दादू जीवन नांहिं ॥ ६४ ॥

केई गाड़े केइ गाड़िये, केई गाड़न जांहिं।
केई गाडन की करैं, दादू जीवन नांहिं ॥ ६५ ॥

दादू कहै–उठ रे प्राणी जाग जिव, अपना सजन संभाल।
गाफिल नींद न कीजिये, आइ पहूंता काल ॥ ६६ ॥

समृथ की सरणा तजे, गहे आनकी ओट।
दादू बलिवंत कालकी, क्यों करि बंचे चोट ॥ ६७ ॥

॥ सजीवन ॥

अविनासीके आसरै, अजरावरकी ओट।
दादू सरणे साचके, कदे न लागे चोट ॥ ६८ ॥

॥ काल चितावणी ॥

मूसा भागा मरण थैं, जहां जाइ तहं गोर।

---

(६२) इस साखी का तात्पर्य यह है कि झूठे व्यौहारों में जन आयु व्यतीत करते हैं।

(६५) दृष्टांत—करी पादशाह मौरि कौं मीच न याद रहाय।
लाय बीरबल बांड़ (कबर खोदनेवाले) बहु, खड़े दिखाये आय ॥

दादू सर्ग पयाल सब, कठिन काल का सोर ॥ ६९ ॥
सब मुष माँहिं काल के, मांड्या माया जाल ।
दादू गोर मसाण में, झंपे सर्ग पयाल ॥ ७० ॥
दादू मड़ा मसाण का, केता करे डफान ।
मृतक मुरदा गोर का, बहुत करे अभिमान ॥ ७१ ॥
राजा राणा राव में, में पानों सिर पान ।
माया मोह पसारे एता, सब धरती असमान ॥ ७२ ॥
पंच तत्त का पूतला, यहु पिंड संवारा ।
मंदिर माटी मांस का, बिनसत नाहीं बारा ॥ ७३ ॥
हाड़ चाम का प्यंजरा, बिचि बोलणहारा ।
दादू तामें पैसि करि, बहु किया पसारा ॥ ७४ ॥
बहुत पसारा करि गया, कुछ हाथि न आया ।
दादू हरि की भगति बिन, प्राणी पछिताया ॥ ७५ ॥
माणस जल का बुदबुदा, पानी का पोटा ।
दादू काया कोट में, में वासी मोटा ॥ ७६ ॥
बाहरि गढ़ निर्भै करै, जीवे के तांई ।
दादू माँहिं काल है, सो जाणे नांहीं ॥ ७७ ॥

॥ चित कपटी ॥

दादू साचे मत साहिब मिले, कपट मिलैगा काल ।
साचे परम पद पाइये, कपट काया में ज्वाल ॥ ७८ ॥

॥ काल चितावणी ॥

मन ही माँहिं मीच है, सारों के सिर साल ।

(७१) तात्पर्य—यह मरनहारा जीव कितने ? अभिमान करता है ॥

जे कुछ व्यापै राम बिन, दादू सोई काल ॥ ७६ ॥
दादू जेती लहरि विकार की, काल कंवल में सोइ ।
प्रेम लहरि सो पीव की, भिन्न भिन्न यों होइ ॥ ८० ॥
दादू काल रूप मांहें बसै, कोई न जाणै ताहि ।
यह कूड़ी करणी काल है, सब काहू कूं पाइ ॥ ८१ ॥
दादू विष अमृत घट में बसै, दून्यूं एकै ठांव ।
माया विषै विकार सब, अमृत हरि का नांव ॥ ८२ ॥
दादू कहां महम्मद मीर था, सब नबियों सिरताज ।
सो भी मरि माटी हुवा, अमर अलह का राज ॥ ८३ ॥
केते मरि माटी भये, बहुत बड़े बलवंत ।
दादू केते है गये, दानां देव अनंत ॥ ८४ ॥
दादू धरती करते एक डग, दरिया करते फाल ।
हाकों पर्वत फाड़ते, सो भी पाये काल ॥ ८५ ॥
दादू सब जग कंपै काल थें, ब्रह्मा विश्न महेस ।
सुरनर मुनिजन लोक सब, सर्ग रसातल सेस ॥ ८६ ॥
चंद सूर धर पवन जल, ब्रह्मंड पंड परवेस ।
सो काल डरै करतार थें, जे जे तुम आदेस ॥ ८७ ॥
पवना पानी धरती अंबर, बिनसै रवि ससि तारा ।
पंच तत्त सब माया बिनसै, मानिष कहा बिचारा ॥ ८८ ॥
दादू बिनसैं तेज के, माटी के किस मांहिं ।

(८५) बावनजी ने एक डग पृथ्वी का किया, समुद्र फलांग हनुमान जी की ॥

अमर उपावणहार है, दूजा कोई नांहिं ॥ ८६ ॥

प्राण पवन ज्यों पतला, काया करै कमाइ । (४–१६६)
दादू सब संसार में, क्यों ही गह्या न जाइ ॥ ६० ॥ खगघङ ॥

नूर तेज ज्यों जोति है, प्राण पिंड यों होइ । (४–२००)
दिष्टि मुष्टि आवै नहीं, साहिब के वस सोइ ॥ ६१ ॥ खगघङ ॥

॥ स्वकीय मित्र शत्रुता ॥

मनहीं मांहैं ह्वै मरै, जीवै मनहीं मांहिं । (३५–१२)
साहिब सापीभूत है, दादू दूसण नांहिं ॥ ६२ ॥

आपै मारै आप कौं, आप आप कौं खाइ । (१२–५६)
आपै अपना काल है, दादू कहि समझाइ ॥ ६३ ॥ खगघङ ॥

आपै मारै आप कौं, यहु जीव विचारा । (१२–६०)
साहिब राखणहार है, सो हितू हमारा ॥ ६४ ॥ खगघङ ॥

॥ मत्सर ईर्षा ॥

दीसै माणस प्रत्यष काल । (३३–१२)
ज्यों करि त्यों करि दादू टाल ॥ ६५ ॥ क ॥

॥ इति काल कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ २५ ॥

---

(८६) तेज के = चंद्र सूर्य तारे देवते । माटी के = मनुष्यादि ॥

(६२) "मन ही मांहैं ह्वै मरै" की जगह "मन ही मांहैं मीच है" पुस्तक नं० ४ में है ॥

अथ सजीवन को अङ्ग ॥ २६ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
दादू जे तूं जोगी गुरमुषी, तौ लेना तत्त बिचारि ।
गहि आवध गुर ज्ञान का, काल पुरिस कौं मारि ॥ २ ॥
नाद बिंद सौं घट भरै, सो जोगी जीवै ।
दादू काहे कौं मरै, राम रस पीवै ॥ ३ ॥
साधू जनकी वासना, सबद रहै संसार ।
दादू आतम ले मिलै, अमर उपावणहार ॥ ४ ॥
राम सरीषे ह्वै रहै, यहु नाहीं उनहार ।
दादू साधू अमर है, बिनसै सब संसार ॥ ५ ॥
जे कोइ सेवै राम कौं, तौ राम सरीषा होइ ।
दादू नाम कबीर ज्यौं, साषी बोलै सोइ ॥ ६ ॥
अर्थि न आया सो गया, आया सो क्यों जाइ ।

---

(४) साधू जन की वासना (रहन) और सबद (बोल चाल) तौ संसारभाव से रहती है किंतु आतम उन का अमर उपावणहार परमात्मा में लीन होता है ॥

(५) यहु "नाहीं" उनहार = यही अहंता ममता रहित मोक्ष का स्वरूप है, देखो परचा के अंग की ४६ वीं साखी ।

(६) नाम कबीर ज्यौं = जैसे नामदेव और कबीरजी हुये ॥

दादू तन मन जीवताँ, आपा ठौरं लगाइ ॥ ७ ॥
पहली था सो अब भया, अब सो आगैं होइ । (७–७½)
दादू तीन्यूं ठौर की, बिरला बूझै कोइ ॥ ८ ॥
जे जन बेधे प्रीति सौं, ते जन सदा सजीव ।
उलटि समाने आप मैं, अंतर नाहीं पीव ॥ ९ ॥

॥ दया बिनती ॥

दादू कहै—सब रंग तेरे, तैं रंगे, तूंहीं सब रंग मांहिं ।
सब रंग तेरे, तैं किये, दूजा कोई नांहिं ॥ १० ॥

॥ सजीवन ॥

छूटै दंद तौ लागै बंद, लागै बंद तौ अमरकंद,
अमरकंद दादू आनंद ॥ ११ ॥
प्रश्न—कहं जमजौरा भंजिये, कहां काल कौ डंड ।
कहां मीच कौं मारिये, कहां जुरा सत खंड ॥ १२ ॥
उत्तर—अमर ठौर अविनासी आसन, तहां निरंजन लागि रहे ।
दादू जोगी जुगि जुगि जीवै, काल व्याल सब सहज गये ॥ १३ ॥
रोम रोम लै लाइ धुनि, ऐसैं सदा अखंड ।
दादू अविनासी मिलै, तौ जम कौं दीजै डंड ॥ १४ ॥
दादू जुरा काल जामण मरण, जहां जहां जिव जाइ ।

---

(७) जो जन राम भजन में नहीं लगे, सो इस संसार में आकर वृथा ही गये । जो राम भजन में लग गये सो वृथा नहीं जाते । सो दयालजी कहते हैं कि तन मन अहंभाव को जीते जी ठौर (परमेश्वर में) लगाना उचित है ॥

(११) दंद=रागद्वेषादि द्वंद । बंद=ध्यान । अमरकंद=मोक्ष ।

भयति पराइण लीन मन, ताकौं काल न षाइ ॥ १५ ॥
मरबा भागा मरण थैं, दुषैं नाठा दुष।
दादू भै सौं भै भया, सुषैं छूटा सुष ॥ १६ ॥

॥ इति अमोघ ॥

जीवत मिले सो जीवते, मूर्ये मिलि मरि जाइ।
दादू दून्यूं देषि करि, जहं भावै तहं लाइ ॥ १७ ॥

॥ सजीवन ॥

दादू साधन सब किया, जब उनमन लागा मन।
दादू अस्थिर आतमा, यौं जुग जुग जीवै जन ॥ १८ ॥
रहते सेती लागि रहु, तौ अजरावर होइ।
दादू देषि विचारि करि, जुदा न जीवै कोइ ॥ १९ ॥
जेती करणी कालकी; तेती परहरि प्राण।
दादू आतमराम सौं, जे तूं षरा सुजाण ॥ २० ॥
विष अमृत घटमें बसै, बिरला जाणै कोइ।
जिन विष पाया ते मुये, अमर अमी सौं होइ ॥ २१ ॥
दादू सबही मरि रहे, जीवै नांहीं कोइ।
सोई कहिये जीवता, जे कलि अजरावर होइ ॥ २२ ॥
देह रहे संसार में, जीव राम के पास। (१८—२३)
दादू कुछ व्यापै नहीं, काल झाल दुषत्रास ॥२३॥ सनपद ॥

(१६) हर्ष शोक से रहित हुआ ॥
(१७) जीवन है परमात्मा, उस से अतिरिक्त सब मुर्दा कहाता है ॥
(१८) अस्थिर = स्थिर का भाषा रूपान्तर है ॥
(१९) रहते सेती = सदा रहनेवाले परमात्मा के साथ ॥

काया की संगति तजै, बैठा हरिपद मांहिं। (१८-२८)
दादू निर्भै ह्वै रहै, कोइ गुण व्यापै नांहिं ॥२४॥ खगघछ॥

दादू तजि संसार सब, रहै निराला होइ।
अविनासी के आसिरै, काल न लागै कोइ ॥ २५ ॥

जागहु लागहु रामसौं, रैनि बिहानी जाइ।
सुमिर सनेही आपणा, दादू काल न खाइ ॥ २६ ॥

दादू जागहु लागहु राम सौं, छाड़हु विषै बिकार।
जीवहु पीवहु रामरस, आतम साधन सार ॥ २७ ॥

॥ सुमिरण नाम निःसंशय ॥

मरे त पावै पीव कौं, जीवत बंचे काल।
दादू निर्भै नांव ले, दून्यौं हाथि दयाल ॥ २८ ॥

दादू मरणे कौं चल्या, सजीवन के साथि।
दादू लाहा मूल सौं, दून्यौं आये हाथि॥ २९ ॥

॥ करुणा ॥

दादू जाता देषिये, लाहा मूल गंवाइ।
साहिब की गति अगम है, सो कुछ लषी न जाइ॥ ३० ॥

॥ सजीवन ॥

साहिब मिलै तो जीयिये, नहीं तो जीवैं नांहिं।
भावै अनंत उपाव करि, दादू मूवौं मांहिं॥ ३१ ॥

सजीवनि साधे नहीं, तार्थें मरि मरि जाइ।
दादू पीवे रामरस, सुष में रहै समाइ ॥ ३२ ॥

दिन दिन लहुड़े होंहिं सब, कहैं मोटा होता जाइ।
दादू दिन दिन ते बढ़ैं, जे रहे राम ल्यौ लाइ ॥ ३३ ॥

न जाणूं हांजी चुप गहि, मेटि अग्नि की झाल। (१६–७०)
सदा सजीवन सुमिरिये, दादू वंचै काल ॥ ३४ ॥

॥ मुक्ति ममोष=जीवन्मुक्ति ॥

दादू जीवत छूटे देह गुण, जीवत मुकता होइ ।
जीवत काटे कर्म सब, मुकति कहावै सोइ ॥ ३५ ॥
दादू जीवत ही दुतर तिरे, जीवत लंघे पार ।
जीवत पाया जगत गुर, दादू ज्ञान विचार ॥ ३६ ॥
जीवत जगपति कों मिले, जीवत आतमराम ।
जीवत दर्सन देषिये, दादू मन विसराम ॥ ३७ ॥
जीवत पाया प्रेमरस, जीवत पिया अघाइ ।
जीवत पाया स्वाद सुष, दादू रहे समाइ ॥ ३८ ॥
जीवत भागे भरम सब, छूटे कर्म अनेक ।
जीवत मुकत सदगत भये, दादू दर्सन एक ॥ ३९ ॥
जीवत मेला ना भया, जीवत परस न होइ ।
जीवत जगपति ना मिले, दादू बूड़े सोइ ॥ ४० ॥
जीवत दुतर ना तिरे, जिवत न लंघे पार ।
जीवत निरभै ना भये, दादू ते संसार ॥ ४१ ॥
जीवत प्रगट ना भया, जीवत पर्चा नांहि ।

---

(३४) सजीवन जो परमात्मा है, जिस के विषय यह नहीं कह सकते कि हम उसे जानते हैं अथवा नहीं जानते (यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह); जिस के विषय में चुप ही धारण करना पड़ता है, ऐसे अपार परमात्मा का सदैव सुमिरण करते हुये हम संसार की दाह को मिटाकर, काल से बचते हैं ॥

जीवत न पाया पीव कों, बूड़े भौजल मांहिं ॥ ४२ ॥
जीवत पद पाया नहीं, जीवत मिले न जाइ ।
जीवत जे छूटे नहीं, दादू गये विलाइ ॥ ४३ ॥
दादू छूटे जीवतां, मूवां छूटे नांहिं ।
मूवां पीछें छूटिये, तो सब आये उस मांहिं ॥ ४४ ॥
मूवां पीछें मुकति बतावें, मूवां पीछे मेला ।
मूवां पीछें अमर अभै पद, दादू भूले गहिला ॥ ४५ ॥
मूवां पीछें बैकुंठ बासा, मुवां सुरग पठावें ।
मूवां पीछें मुकति बतावें, दादू जग बौरावें ॥ ४६ ॥
मूवां पीछें पद पहुंचावें, मूवां पीछें तारें ।
मूवां पीछें सद्गति होवें, दादू जीवत मारें ॥ ४७ ॥
मूवां पीछें भगति बतावें, मूवां पीछें सेवा ।
मूवां पीछें संजम राषें, दादू दोजग देवा ॥ ४८ ॥

॥ सजीवन ॥

दादू धरती क्या साधन किया, अंबर कौन अभ्यास ।
रवि ससि किस आरंभ थैं, अमर भये निज दास ? ॥ ४६ ॥
साहिब मारे ते मुये, कोई जीवे नांहिं ।
साहिब राषे ते रहे, दादू निज घर मांहिं ॥ ५० ॥
जे जन राषे रामजी, अपनें अंगि लगाइ ।
दादू कुछ व्यापे नहीं, जे कोटि काल झपि जाइ ॥ ५१ ॥

इति सजीवन को अंग सम्पूर्ण समास ॥ २६ ॥

अथ पारिष कौ अंग ॥ २७ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

॥ साधुत्व परीक्षा ॥

दादू मन चित आतम देषिये, लागा है किस ठौर ।
जंहं लागा तैसा जाणिये, का देषे दादू और ॥ २ ॥

दादू साध परषिये, अंतर आतम देष ।
मन मांहें माया रहे, के आपे आप अलेप ॥ ३ ॥

दादू मन की देषि करि, पीछे धरिये नांव ।
अंतरगति कीजे लषें, तिन की मैं बलि जांव ॥ ४ ॥

दादू बाहर का सब देषिये, भीतरि लष्या न जाय । १४-३७
बाहरि दिपावा लोक का, भीतरि राम दिषाइ ॥ ५ ॥ खगघङ॥

यहु परष सराफी ऊपली, भीतर की यहु नांहिं ।
अंतर की जाणें नहीं, तार्थें षोटा षांहिं ॥ ६ ॥ घ ।

दादू जे नांहीं सो सब कहैं, है सो कहै न कोइ ।
षोटा परा परषिये, तब ज्यौं था त्यौं ही होइ ॥ ७ ॥

दह दिस फिरै सो मन है, आवै जाइ सो पवन । (२०-४५)
राषणहारा प्राण है, देषणहारा ब्रह्म ॥ ८ ॥ खगघङ ॥

घट की भानि अनीति सब, मनकी मेटि उपाधि ।

दादू परहर पंचकी, राम कहैं ते साध ॥ ६ ॥

अरथ आया तब जाणिये, जब अनरथ छूटै।
दादू भांडा भरम का, गिरि चौड़े फूटै ॥ १० ॥

दादू दूजा कहिबे कों रह्या, अंतर डारया धोइ।
ऊपर की ये सब कहैं, मांहिं न देषै कोइ ॥ ११ ॥

दादू जैसे मांहें जीव रहे, तैसी आवै बास।
मुषि बोलै तब जाणिये, अंतर का परकास ॥ १२ ॥

दादू ऊपर देषि करि, सब को राषै नांव।
अंतरगति की जे लषैं, तिनकी मैं बलि जांव ॥ १३ ॥

॥ जगजन विपरीति ॥

तन मन आत्म एक है, दूजा सब उनहार। (२६–२०)
दादू मूल पाया नहीं, दुविध्या भर्म बिकार ॥ १४ ॥

काया के सब गुण बंधे, चौरासी लष जीव। (२६–२१)
दादू सेवग सो नहीं, जे रंग राते पीव ॥ १५ ॥

काया के बासि जीव सब, ह्वै गये अनंत अपार।
दादू काया वसि करै, निरंजन निरकार ॥ १६ ॥

पूरण ब्रह्म बिचारिये, तब सकल आतमा एक। (२६–२६)
काया के गुण देषिये, तौ नाना बरण अनेक ॥ १७ ॥ खगघङ ॥

---

(१४) सब जीवों के तन मन आत्मा और सब लक्षण समान हैं। जिस ने मूल तत्व नहीं पाया है उस को दुबिधा भ्रमादि मलीन होते हैं ॥

(१५) जो पीव के रंग में रत हैं वो काया के दुःखादि गुणों में बंधे नहीं ॥

(१६) "ह्वै गये अनंत अपार" की जगह पहली पुस्तक में "आत्म इम आकार" है ॥

॥ नर विडरूप ॥

मति बुद्धि बमेक विचार विन, माणस पसू समान ।
समझाया समझै नहीं, दादू परम गियान ॥ १८ ॥

सब जीव़ प्राणी भूत हैं, साध मिलै तब देव़ ।
ब्रह्म मिले तब ब्रह्म हैं, दादू अलप अभेव़ ॥ १६ ॥

॥ करतूति कर्म ॥

दादू बंध्या जीव़ है, छूटा ब्रह्म समान ।
दादू दोनौं देषिये, दूजा नांहीं आन ॥ २० ॥

कर्मों के बस जीव़ है, कर्म रहित सो ब्रह्म ।
जहं आतम तहं पर आत्मा, दादू भागा भर्म ॥ २१ ॥

॥ पारिष अपारिष ॥

काचा उछलै ऊफणै, काया हांडी मांहिं ।
दादू पाका मिलि रहै, जीव़ ब्रह्म द्वै नांहिं ॥ २२ ॥

दादू बांधे सुर नवाये बाजैं, एहा सोधि रु लीज्यौं ।
राम सनेही साधु हाथे, बेगा मोकलि दीज्यौं ॥ २३ ॥

प्राण जौहरी पारिषू, मन षोटा ले आवै ।
षोटा मनकै माथै मारे, दादू दूरि उड़ावै ॥ २४ ॥

श्रवणा हैं नैना नहीं, ताथैं षोटा पांहिं ।
ज्ञान विचार न ऊपजै, साच झूठ समझांहिं ॥ २५ ॥

॥ साच ॥

दादू साचा लीजिये, झूठा दीजै डारि ।

---

(२३) दृष्टांत—सुर दादू गुनगात थे, मंगवाये मंजीर ।
तब यह साषी लिषदई, सुनि लाये सिष वीर ॥

साचा सन्मुष राषिये, झूठा नेह निवारि ॥ २६ ॥

साचे कूं साचा कहै, झूठे कूं झूठा ।
दादू दुविध्या को नहीं, ज्यौं था त्यौं दीठा ॥ २७ ॥

॥ पारिष अपारिष ।

दादू हीरे कौं कंकर कहैं, मूरिष लोग अजान ।
दादू हीरा हाथि ले, परषैं साध सुजान ॥ २८ ॥

हीरा कौड़ी ना लहै, मूरिष हाथि गंवार । (४-१६१)
पाया पारिष जौंहरी, दादू मोल अपार ॥ २६ ॥ गघ ॥

अंधे हीरा परषिया, कीया कौड़ी मोल । (४-१६२)
दादू साधू जौंहरी, हीरे मोल न तोल ॥ ३० ॥ गघ ॥

॥ सगुरा निगुरा ॥

सगुरा निगुरा परषिये, साध कहैं सब कोइ ।
सगुरा साचा निगुरा झूठा, साहिब के दरि होइ ॥३१॥

सगुरा साँति संजम रहै, सन्मुष सिरजनहार ।
निगुरा लोभी लालची, भूंचे विषै विकार ॥ ३२ ॥

॥ कर्ता कसौटी ॥

षोटा षरा परषिये, दादू कसि कसि लेइ ।
साचा है सो राषिये, झूठा रहण न देइ ॥ ३३ ॥

॥ पारिष अपारिष ॥

षोटा षरा करि देवै पारिष, तौ कैसें बनि आवै ।
षरे षोटे का न्याव नबेरैं, साहिब के मन भावै ॥ ३४ ॥

दादू जिन्हें ज्यौं कही तिन्हें त्यौं मानी, ज्ञान विचार न कीन्हां ।
षोटा षरा जिव परषि न जानें, झूठ साच करि लीन्हां ॥३५॥

॥ स्तो कसौटी ॥

जे निधि कहीं न पाइये, सो निधि घरि घरि आहि ।
दादू मंहगे मोल बिन, कोई न लेवै ताहि ॥ ३६ ॥
परी कसौटी कीजिये, बाणी बधती जाइ ।
दादू साचा परषिये, मंहगे मोलि बिकाइ ॥ ३७ ॥
दादू राम कसै, सेवग परा, कदे न मोड़ै अंग ।
दादू जब लग राम है, तब लग सेवग संग ॥ ३८ ॥
दादू कसि कसि लीजिये, यहु ताते परिमान ।
पोटा गांठि न बांधिये, साहिब के दीवान ॥ ३९ ॥
दादू परी कसौटी पीव की, कोइ बिरला पहुंचनहार ।
जे पहुंचे ते ऊबरे, ताइ किये ततसार ॥ ४० ॥
दुर्बल देही निर्मल वाणी, दादू पंथी ऐसा जाणी ॥४१॥ कखघङ॥
दादू साहिब कसै सेवग परा, सेवग कौं सुष होइ ।
साहिब करै सो सब भला, बुरा न कहिये कोइ ॥ ४२ ॥
दादू ठग आंबेरि में, साधों सौं कहियो ।
हम सरणाई राम की, तुम नीके रहियो ॥ ४३ ॥ कखघङ॥

॥ इति पारिष कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ २७ ॥

---

(३९) "ताते परिमान" = गरम (कड़ी) कसौटी ॥
(४०) ताइ किये ततसार = अग्नि में तपाये हुवे स्वर्ण की भांति शुद्ध किये ॥

अथ उपजणि कौ अङ्ग ॥ २८ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

॥ विचार ॥

दादू माया का गुण बल करै, आपा उपजै आइ । (२०—४४)
राजस तामस सातगी, मन चंचल ह्वै जाइ ॥ २ ॥
आपा नाहीं बल मिटै, त्रिविधि तिमिर नहिं होइ। (२०—४३)
दादू यहु गुण ब्रह्म का, सुंनि समाना सोइ ॥ ३ ॥

(२-३) आदि सत्ता परब्रम्ह है, तिसकी शक्ति वा प्रभा (चमक) माया है। जैसे प्रभा हीरे से अलग नहीं, तैसे माया ब्रम्ह से भिन्न नहीं, किंतु ब्रम्हरूप ही है। शांत अवस्था में मूल सत्ता का नाम ब्रम्ह है, वही अपनी ज्ञान (प्रभा) रूपी माया के स्वाभाविक प्रदीप्त होने से स्फुरित होकर अहं २, अनेकोऽहं, जीवोऽहं, इत्यादि नाना प्रकार के प्रपंच खड़े करता है। अपनी चमक का प्रतिबिंब अपने ही प्रकाश में पड़कर दूसरे नये प्रकाश को खड़ा करता है। इस नये प्रतिबिंब रूपी प्रकाश में फिर उसी प्रतिबिंब का प्रतिबिंब पड़कर तीसरा प्रकाश बन जाता है, इसी प्रकार से अनेक प्रतिबिंबों के दुगुने प्रतिबिंब होकर असंख्य प्रकाश खड़े होते हैं, ज्यौं २ यह प्रतिबिंब एक दूसरे प्रतिबिंब के सन्मुख होकर मिलते जाते हैं त्यौं २ उनका बल बढ़ता जाता है, जैसे एक सूर्य के अनेक सूर्य दर्पणों में प्रतिबिंब द्वारा प्रतीत होते हैं, वैसे मूल सत्ता का स्वयं प्रकाश स्व प्रभा में स्वाभाविक पड़कर नाना जीवरूपी प्रतिबिंब बना देता है। उन में नाना प्रकार की क्रियायें होती प्रतीत होती हैं। इस प्रकार से ब्रम्ह अपनी सत्ता से आप ही अपने आप को नाना रूप से

॥ उपजण ॥

दादू अनभै उपजी गुणमयी, गुण ही पै लेजाइ ।
गुणहीं सौं गहि बंधिया, छूटै कौन उपाइ? । ४ ॥
द्वै पष उपजी परहरे, निर्पष अनभै सार ।
एक राम दूजा नहीं, दादू लेहु विचार ॥ ५ ॥
दादू काया ब्यावर गुणमयी, मन मुष उपजै ज्ञान ।
चौरासी लष जीवकों, इस माया का ध्यान ॥ ६ ॥
आतम बोध बंझ का बेटा, गुरमुषि उपजै आइ । (१-२१)
दादू पंगुल पंच बिन, जहां राम तहं जाइ ॥ ७ ॥ खगवड ॥
आतम माहैं ऊपजै, दादू पंगुल ज्ञान । (१-२०)
कृतम जाइ उलंघि करि, जहां निरंजन थान ॥ ८ ॥ खगघड ॥
आतम उपजि अकास की, सुणि धरती की वाट ।
दादू मारग गैब का, कोई लषै न घाट ॥ ९ ॥
आतम बोधी अनभई, साधू निर्पष होइ ।

देखता है। इस लीला को यथार्थ जानना ही आत्मज्ञान (अपने आप को जानना) है। यह विषय विस्तार से दयालजी के जीवनचरित्र और उपदेश नामक ग्रंथ में लिखा जायगा ॥

(४) स्वयं प्रकाशरूप परमात्मा अपनी स्वाभाविक स्फुरता से गुणमय सृष्टि को उत्पन्न करता है, ज्यौं २ चेतन स्फुरता बढ़ती है त्यौं २ गुण प्रधान प्रपंच पसरता जाता है। प्रपंच में जीव (चिदाभास) गुणौं करके बंध रहा है, सो किस प्रकार से छूटै ?

(५) उपजी हुई संपूर्ण द्वैतभाव की कल्पनाओं का त्याग कर, सर्व प्रपंच में एक अद्वैत शांत पूर्णानंद रूप सत्ता ही को मानें और उसी विचार में लीन रहै, तब गुण के बंधनों से छूटै ॥

दादू राता राम सौं, रस पीवैगा सोइ ॥ १० ॥

प्रेम भगति जब ऊपजे, निहचल सहज समाधि ।
दादू पीवै रामरस, सतगुर के परसाद ॥ ११ ॥

प्रेम भगति जब ऊपजे, पंगुल ज्ञान विचार ।
दादू हरिरस पाइये, छूटैं सकल विकार ॥ १२ ॥

दादू भगति निरंजन राम की, अविचल अविनासी । (४-२४४)
सदा सजीवनि आतमा, सहजैं परकासी ॥ १३ ॥ खगघङ ॥

दादू बंझ बियाई आत्मा, उपज्या आनंद भाव ।
सहज सील संतोष सत, प्रेम मगन मन राव ॥ १४ ॥

॥ निंदा ॥

जब हम ऊजड़ चालते, तब कहते मारग मांहिं ।
दादू पहुंचे पंथ चलि, कहैं यहु मारग नांहिं ॥ १५ ॥

॥ उपजणि ॥

पहिले हम सब कुछ किया, भर्म कर्म संसार ।
दादू अनभै ऊपजी, राते सिरजनहार ॥ १६ ॥

सोई अनभै सोई उपजी, सोई सबद तत सार । (१३-५४)
सुणतां हीं साहिब मिलै, मन के जांहिं बिकार ॥ १७ ॥ क ॥

॥ परिचय जिज्ञासा उपदेश ॥

पारब्रह्म कह्या प्राण सौं, प्राण कह्या घट सोइ ।

---

(१४) बंझ बियाई आत्मा = बंझ बुद्धि से आत्मज्ञान उपजता है ।

(१५) जब हम पहले अज्ञान दशा में जगत व्यौहारों में वर्तते थे, तब उसी को हम सन्मार्ग समझते थे और सन्मार्ग को ऊजड़ मानते थे । जब हम को ज्ञान दशा में सन्मार्ग प्राप्त हुआ, तब जगत व्यौहार ऊजड़ दीखने लगा ॥

दादू घट सब सौं कह्या, विष अमृत गुण दोइ ॥१८॥
दादू मालिक कह्या अरवाह सौं, अरवाह कह्या औजूद ॥
औजूद आलम सौं कह्या, हुकम पवर मौजूद ॥ १९ ॥

॥ उपजणि ॥

दादू जैसा ब्रह्म है, तैसी अनभै उपजी होइ ।
जैसा है तैसा कहै, दादू विरला कोइ ॥ २० ॥

इति उपजणि कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ २८॥

अथ दया निर्वैरता कौ अंग ॥ २९ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम, नमस्कार गुर देवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
आपा मेटै हरि भजै, तन मन तजै विकार ।
निर्वैरी सब जीव सौं, दादू यहु मत सार ॥ २ ॥

---

(१८) इस साखी में दयालजी ने ज्ञान की परंपरा संम्प्रदाय बतलाई है, अर्थात् परब्रम्ह ने प्राण (हिरण्यगर्भ) को उपदेश किया, हिरण्यगर्भ ने जीवों को उपदेश किया, पीछे जीवों ने अपने २ शिष्यों को उपदेश किया, इस प्रकार से विष अमृत (प्रवृत्ति-निवृत्ति मार्गों) का उपदेश संसार में फैला आया है ।

अथवा स्वयंप्रकाश परब्रम्ह से प्राण चेतन हुये, प्राणों से शरीर चेतन हुये, शरीर से विहित प्रतिसिद्ध सेवनात्मक अमृतविष रूपी धर्माधर्म का ज्ञान संपादित हुआ ॥

दादू निर्वैरी निज आत्मा, साधन का मत सार ।
दादू दूजा राम बिन, बैरी मंझि बिकार ॥ ३ ॥
निर्वैरी सब जीव सौं, संत जन सोई ।
दादू एकै आत्मा, बैरी नहिं कोई ॥ ४ ॥
सब हम देष्या सोधि करि, दूजा नांहीं आन ।
सब घट एकै आत्मा, क्या हिंदू मुसलमान ॥ ५ ॥
दादू नारि पुरिष का नांउं धरि, इहिं संसै भर्मि भुलान ।
सब घट एकै आत्मा, क्या हिंदू मुसलमान ॥ ६ ॥
दादू दोनौं भाई हाथ पग, दोनौं भाई कान ।
दोनौं भाई नैन हैं, हिंदू मुसलमान ॥ ७ ॥
दादू कै दूजा नहीं, एकै आतमराम । (१-१४१)
सतगुर सिर परि साध सब, प्रेम भगति विश्राम ॥=॥ खगघङ।
दादू संता आरसी, देषत दूजा होइ ।
भर्म गया दुबिध्या मिटी, तब दूसर नांहीं कोइ ॥ ९ ॥

(३) दूसरी साखी में कहा है कि सब जीवों से निर्वैरता रखना ही सार मत है। सो निर्वैरता कैसी हो? जैसी अपने आप से प्रत्येक जीव रखता है, अर्थात् सब जीवों को अपनी सदृश प्रिय मानना ही उचित है। आत्मराम (अपने आप ब्रह्म स्वरुप) के सिवाय जो द्वैत प्रतीति है सोई अपना वैरी (दुःखदायी) मन का विकार (दोष) है ॥

(९) कुत्ता जैसे शीशे में अपना स्वरुप देख कर दूसरे जीव का भ्रम करके भूंकता है, तैसे ही हम (चिदाभास) अपनी अंतःकरण रूपी उपाधी द्वारा एक अद्वैत चेतन की स्व प्रभा में अनेक प्रतिबिंब (चिदाभास) देख कर द्वैतभाव मान बैठे हैं। जब यह द्वैत भ्रम छूटे तब सर्वत्र आत्मा ही आत्मा (आप ही आप) प्रतीत हो ॥

किस सौं वैरी ह्वै रह्या, दूजा कोई नांहिं ।
जिस के अंग थैं ऊपजे, सोई है सब मांहिं ॥ १० ॥
सब घटि एकै आत्मा, जानै सो नीका ।
आपा पर में चीन्हि ले, दर्सन है पीव्का ॥ ११ ॥
काहे कों दुष दीजिये, घटि घटि आतमराम ।
दादू सब संतोषिये, यह साधू का काम ॥ १२ ॥
काहे कों दुष दीजिये, सांई है सब मांहिं ।
दादू एकै आत्मा, दूजा कोई नांहिं ॥ १३ ॥
साहिबजी की आत्मा, दीजै सुष संतोष ।
दादू दूजा को नहीं, चौदह तीनों लोक ॥ १४ ॥
दादू जब प्राण पिछाणै आप कों, आत्म सब भाई ।
सिरजनहारा सबन का, तासों ल्यौ लाई ॥ १५ ॥
आत्मराम विचारि करि, घटि घटि देव दयाल ।
दादू सब संतोषिये, सब जीऊं प्रतिपाल ॥ १६ ॥
दादू पूरण ब्रह्म विचारि ले, दुतीभाव करि दूर ।
सब घटि साहिब देषिये, राम रह्या भरपूर ॥ १७ ॥
दादू मंदिर काच का, मर्कट सुनहां जाइ ।
दादू एक अनेक ह्वै, आप आप कों पाइ ॥ १८ ॥

---

(११) "मैं" की जगह "सब" पुस्तक नं० ५ में है ॥

(१८) जैसे कांच के मंदिर में बंदर अथवा कुत्ता अपनी मूरत कांच में देख कर, और जानवरों के होने का भ्रम करता है तैसे मनुष्य अपने आत्मरूप का प्रतिबिंब जुदे २ अंतःकरणों (चिदाभासों) में देख कर एक दूसरे से विरोध करते हैं, और यह नहीं जानते कि परछांही रूपी दूसरे जीव अपने ही प्रतिबिंब हैं॥

आतम भाई जीव सब, एक पेट परिवार ।
दादू मूल बिचारिये, तौ दूजा कौन गंवार ॥ १६ ॥
तन मन आरम एक है, दूजा सब उनहार । २७-१४ ॥
दादू मूल पाया नहीं, दुविधा भर्म बिकार ॥२०॥खगघङ॥
कायाके बसि जीव सब, ह्वैगये अनंत अपार । २७-१६ ॥
दादू काया बसि करि, निरंजन निरकार ॥ २१ ॥ खगघङ॥

॥ मदया हिंसा—बनस्पतियों में जीव भाव ॥

दादू सूका सहजें कीजिये, नीला भानै नांहिं ।
काहे कौं दुष दीजिये, साहिब है सब मांहिं ॥ २२ ॥

॥ दया निरवैरता ॥

घट घट के उणहार सब, प्राण परस है जाइ ।
दादू एक अनेक है, बरतै नाना भाइ ॥२३॥
आये एकंकार सब, सांई दिये पठाइ ।
दादू न्यारे नांव धरि, भिन्न भिन्न ह्वै जाइ ॥ २४ ॥
आये एकंकार सब, सांई दिये पठाइ ।
आदि अंति सब एक है, दादू सहज समाइ ॥ २५॥
आत्म देव अराधिये, विरोधिये नहिं कोइ ।
आराधें सुप पाइये, विरोधें दुष होइ ॥ २६ ॥

(२२) सब बनस्पतियों में भी परमेश्वर है । हरे पेड़ को तोड़ै नहीं, सूखे को काम में भले लावै ॥

(२३) जा घट की उनिहार है जैसी, ता घट चेतन तैसोइ दीसै ।
हाथी की देह में हाथी सो मानत, चींटी की देह में चींटी की रीसै ॥
सिंह की देह में सिंह सो मानत, कीस की देह में मानत कीसै ।
जैसी उपाधि भई जहं सुंदर, तैसोहि होइ रह्यो नख सीसै ॥

ज्यौं आपै देषै आप कौं, यौं जे दूसर होइ ।
तौ दादू दूसर नहीं, दुष न पावै कोइ ॥ २७ ॥ खगघह ॥
दादू सम करि देषिये, कुंजर कीट समान ।
दादू दुबिध्या दूरि करि, तजि आपा अभिमान ॥२८॥

॥ अदया हिंसा ॥

दादू पूरण ब्रह्म विचारिये, तब सकल आतमा एक। (२७-१७)
काया के गुण देषिये, तौ नाना बरण अनेक ॥२९॥ खगग्रह ॥
दादू अरस षुदाय का, अजरावर का थान ।
दादू सो क्यौं ढाहिये, साहिब का नीसाण ॥ ३० ॥
दादू आर बिणावै देहुरा, तिसका करहि जतन ।
प्रत्यष परमेसुर किया, सो भानै जीव रतन ॥ ३१ ॥
मसीति संवारी माणसौं, तिसकौं करैं सलाम ।
ऐन आप पैदा किया, सो ढाहैं मुसलमान ॥ ३२ ॥
दादू जंगल मांहैं जीव जे, जग थैं रहैं उदास ।
भै भीत भयानक रातिदिन, निहचल नांहीं बास ॥३३॥
बाचा बंधी जीव सब, भोजन पानी घास ।
आतमज्ञान न ऊपजै, दादू करहि बिनास ॥ ३४ ॥
काला मुंह करि करद का, दिल थैं दूरि निवार ।

---

(२७)-जैसे हम अपने आपको देखते हैं, वैसे ही जो हम औरों को भी देखें (क्योंकि दूसरा वास्तव में कोई है नहीं) तो कोई दुःख न पावै ॥

(३०) अजरामर खुदा का अर्श (उत्तम स्थान) जीवों का शरीर है, तिसका हिंसन दयालजी वर्जते हैं ॥

सब सूरति सुबहान की, मुल्लां ! मुग्ध न मार ॥ ३५ ॥

गला गुसेका काटिये, मियां मनी कों मारि ।

पंचों बिसमिल कीजिये, ये सब जीव उबारि ॥ ३६ ॥

वैर विरोधें आतमा, दया नहीं दिल मांहिं ।

दादू मूरति रामकी, ताकों मारन जांहिं ॥ ३७ ॥

॥ दया निर्वैरता ॥

कुल आलम यके दीदम, अरवाहे इखलास ।

बद अमल बदकार दुई, पाक यारां पास ॥ ३८ ॥

भावहीण जे पृथमी, दया विहूणां देस । (१६-६८)

भगति नहीं भगवंत की, तहं कैसा परवेस ॥ ३६ ॥ सगपक्ष ॥

काल झाल थें काढ़ि करि, आतम अंगि लगाइ ।

जीव दया यहु पालिये, दादू अमृत पाइ ॥ ४० ॥

दादू बुरा न वांछे जीवका, सदा सजीवन सोइ ।

परलै विषै बिकार सब, भाव भगति रत होइ ॥ ४१ ॥

---

(३५) हे मुल्लां, दीन पशुओं को मत मार ॥

(३८) दृष्टांत—दादूजी आंबेर थे, तुर्क संगोती न्याय ।

शासन या साखी कही, लज्जित भै उठिजाय ॥

कुल (संपूर्ण) आलम (संसार) यके (एक) दीदम (देखता हूं) अरवाहे (जीव) इखलास (भिन्न हैं) बद अमल (खोटे काम) बदकार (खोटे काम) दुई (द्वैतभाव से होते हैं) पाक (पवित्र परमेश्वर) यारां (हम मित्रों) के पास (समीप) है ॥

(४०) मन को विषयरूपी काल झाल से निकाल कर आत्मा में लगाय कर जीवों पर दया रक्खै, सोई अमृत का खाना है ॥

(४१) परलै = नाशवान ॥

॥ मंत्र: इंदो ॥

ना को बैरी नाको मीत, दादू राम मिलन की चीत ॥ ४२ ॥

॥ इति दया निर्वैरता को अंग संपूर्ण समाप्त ॥ २९ ॥

अथ सुन्दरी को अङ्ग ॥ ३० ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
 बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

॥ सुन्दरि विलाप ॥

आरतिवंती सुंदरी, पल पल चाहै पीव ।
 दादू कारणि कंत के, तालाबेली जीव ॥ २ ॥

रतिवंती आरति करै, राम सनेही आव । (३-२)
 दादू अवसर अब मिले, यहु बिरहनि का भाव ॥३॥ खगपह ॥

काहे न आवहु कंत घरि, क्यों तुम रहे रिसाइ ।
 दादू सुंदरि सेज परि, जन्म अमोलिक जाइ ॥ ४ ॥

आतम अंतरि आव तूं, या है तेरी ठौर ।
 दादू सुंदरि पीव तूं, दूजा नांहीं और ॥ ५ ॥

दादू पीव न देष्या नैन भरि, कंठि न लागी धाइ ।
 सूती नहिं गलि बांह दे, बिचहीं गई बिलाइ ॥ ६ ॥

सुरति पुकारै सुंदरी, अगम अगोचर जाइ ।

दादू बिरहनि आतमा, उठि उठि आतुर धाइ ॥ ७ ॥
सांई कारणि सेज संवारी, सब थैं सुंदर ठौर ।
दादू नारी नाह बिन, आणि बिठाये और ॥ ८ ॥
कोइ अवगुण मन बस्या, चित थैं धरी उतार ।
दादू पति बिन सुंदरी, हांडै घर घर बार ॥ ९ ॥

॥ आनलगनि (परपुरुष) व्यभिचार ॥

प्रेम प्रीति सनेह बिन, सब झूठे सिंगार ।
दादू आतम रत नहीं, क्यों मानै भर्तार ॥ १० ॥
प्रेम लहरि की पालकी, आतम बैसे आइ । (४–२७८)
दादू षेलै पीव सौं, यहु सुष कह्या न जाइ ॥११॥ लगपग ॥

॥ सुंदरी बिलाप ॥

दादू हूं सुष सूती नींद भरि, जागै मेरा पीव ।
क्यों करि मेला होइगा, जागै नांहीं जीव ॥ १२ ॥
सषी न षेलै सुंदरी, अपने पीव सौं जागि ।
स्वाद न पाया प्रेम का, रही नहीं उर लागि ॥ १३ ॥
पंच दिहाड़े पीव सौं, मिलि काहे ना षेलै ।
दादू गहिली सुंदरी, क्यों रहै अकेलै ॥ १४ ॥

---

(७) सुरति (वृत्ति) रूपी सुंदरी अगम अगोचर पति के पास जाने की पुकार करती है ॥

(८) आणि बिठाये और=और पुरुष कहिये संसार के विषय भोगों से नेह जोड़ लिया ॥

(९) अवगुण देखकर पति ने सुंदरी से कृपा खेंच ली, तब वह विषयों में भटकती फिरी ॥

(१०) क्यों मानै भर्तार- ऐसी व्यभिचारिणी को भर्तार क्यों स्वीकार करै ॥

सषी सुहागनि सब कहैं, हूंर दुहागनि आहि ।
पिव का महल न पाइये, कहां पुकारौं जाइ ॥ १५ ॥
सषी सुहागनि सब कहैं, कंत न बूझै बात ।
मनसा बाचा कर्मणा, मुर्छि मुर्छि जिव जात ॥ १६ ॥
सषी सुहागनि सब कहैं, पिव सौं परस न होइ ।
निसि बासुरि दुष पाइये, यहु बिथा न जाणै कोइ ॥१७॥
सषी सुहागनि सब कहैं, प्रगट न पेलै पीव ।
सेज सुहाग न पाइये, दुषिया मेरा जीव ॥ १८ ॥
पर पुरिषा सब परिहरै, सुंदरि देषै जागि । (८—३८ / २०-३८)
अपणा पीव पिछाणि करि, दादू रहिये लागि ॥१९॥ लगपरा।

॥ ज्ञानलगनि व्यभिचार ॥

पुरष पुरातन छाड़ि करि, चली आन के साथ ।
सो भी संग थैं बीछट्या, पड़ी मरोड़े हाथ ॥ २० ॥

॥ सुंदरी बिलाप ॥

सुंदरि कबहूं कंत का, मुष सौं नांव न लेइ ।
अपणे पिव के कारणैं, दादू तन मन देइ ॥ २१ ॥
नैन बैन करि वारणैं, तन मन प्यंड परान ।
दादू सुंदरि बलि गई, तुम परि कंत सुजान ॥ २२ ॥
तन भी तेरा मन भी तेरा, तेरा प्यंड परान ।
सब कुछ तेरा, तूं है मेरा, यहु दादू का ज्ञान ॥ २३ ॥
पंच अभूषन पीव करि, सोलह सबही ठांव । (८—३०)

---

(२१) मुष सौं नांव न लेइ = पति से कभी विमुख न हो अथवा पति का मान रक्खै ॥

सुंदरि यहु सिंगार करि, लै लै पीव क नांव ॥२४॥ खगघङ॥
यहु व्रत सुंदरि ले रहै, तौ सदा सुहागनि होइ । (८–३१)
दादू भावै पीव कौं, तासमि और न कोइ ॥२५॥ खगघङ॥
सुंदरि मोहै पीव कौं, बहुत भांति भर्तार ।
त्यौं दादू रिझवै राम कौं, अनंत कला कर्तार ॥ २६ ॥
दादू नीच ऊंच कुल सुंदरी, सेवा सारी होइ । (८–३६)
सोई सुहागनि कीजिये, रूप न पीजै धोइ ॥२७॥ खगघङ ॥
नदिया नीर उलंघि करि, दरिया पैली पार ।
दादू सुंदरि सो भली, जाइ मिलै भर्तार ॥ २८ ॥

॥ सुंदरी सोहाग ॥

प्रेम लहरि गहि ले गई, अपने प्रीतम पास ।
आत्म सुंदरि पीव कौं, बिलसै दादू दास ॥ २९ ॥
सुंदरि कौं सांई मिल्या, पाया सेज सुहाग ।
पीव सौं पेलै प्रेमरस, दादू मोटे भाग ॥ ३० ॥
दादू सुंदरि देह में, सांई कौं सेवै ।
राती आपणे पीव सौं, प्रेमरस लेवै ॥ ३१ ॥
दादू निर्मल सुंदरी, निर्मल मेरा नाह ।
दून्यौं निर्मल मिलि रहे, निर्मल प्रेम प्रवाह ॥ ३२ ॥
तेज पुंज की सुंदरी, तेज पुंज का कंत । (४–१०६)
तेज पुंज की सेज पर, दादू बन्या बसंत ॥३३॥ खगघङ॥

---

(२८) संसार रूपी नदी के जल रूपी विषयों की कामनाओं को त्याग कर, बाह्य विषयों से परे जो परमात्म दृष्टि है, तिसमें वृत्ति को जोड़ै ॥

साईं सुंदरि सेज परि, सदा एक रस होइ।
दादू पेले पीव सौं, तासमि और न कोइ ॥ ३४ ॥

॥ इति सुंदरी कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ ३० ॥

अथ कस्तूरिया मृग कौ अंग ॥ ३१ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
दादू घटि कस्तूरी मृग के, भर्मत फिरै उदास।
अंतरि गति जाणै नहीं, तार्थें सूंघै घास ॥ २ ॥
दादू सब घट में गोविंद है, संगि रहै हरिपास।
कस्तूरी मृग में बसै, सूंघत डोलै घास ॥ ३ ॥
दादू जीव न जानै राम कौं, राम जीव के पास।
गुर के सब्दौं बाहिरा, तार्थें फिरै उदास ॥ ४ ॥
दादू जा कारणि जग ढूंढिया, सो तौ घट ही मांहिं।
मैं तैं पड़दा भरम का, तार्थें जानत नांहिं ॥ ५ ॥
दादू दूरि कहैं ते दूरि हैं, राम रह्या भरपूरि।

---

(२) घटि कस्तूरी मृग के=मृग के शरीर में ही कस्तूरी है॥
(४) बाहिरा=बहिरा, बधिर॥

नैनहुं बिन सूझै नहीं, तार्थें रवि कत दूरि ॥ ६ ॥
दादू ओडो हूंवो पाण सें, न लधाऊं मंझ ।
नें जातां ऊपाण में तांई क्या ऊपंध ॥ ७ ॥
दादू केई दौड़े द्वारिका, केई कासी जांहिं ।
केई मथुरा कौं चले, साहिब घटही मांहिं ॥ ८ ॥
दादू सब घट मांहें रमि रह्या, बिरला बूझै कोइ ।
सोई बूझै राम कौं, जे राम सनेही होइ ॥ ९ ॥
सदा समीप रहै सांगि सनमुष, दादू लषै न गूझ। (१३–७६)
सुपिनैंहीं समझै नहीं, क्यूं करि लहै अबूझ ॥१०॥ खगघङ।
दादू जड़मति जीव जाणै नहीं, परम स्वाद सुष जाइ ।
चेतानि समझै स्वाद सुष, पीवै प्रेम अघाइ ॥ ११ ॥
जागत जे आनंद करै, सो पावै सुष स्वाद ।
सूतें सुष ना पाइये, प्रेम गंवाया बाद ॥ १२ ॥
दादू जिसका साहिब जागणा, सेवग सदा सुचेत ।
सावधान सनमुष रहै, गिरि गिरि पड़े अचेत ॥ १३ ॥
दादू सांईं सावधान, हमहीं भये अचेत ।

---

(६) अंधा यह नहीं कह सकता कि सूर्य कितनी दूरि है, तैसे अज्ञ जन नहीं जानते कि व्यापक परमेश्वर कहां है ॥

(१२) प्रेम की जगह "जनम" पुस्तक नं० ४, ५ में है ॥ जागत = आत्मानंद में जो सचेत रहे । सूतें=अज्ञान में ॥

(१३) जिसका साहिब (मालिक) जागणा (होशियार) होता है, सो सेवक भी सचेत रहता है । सावधान हमेशा मुस्तैद रहता है, गिरता पड़ता अचेत ही है ॥

प्राणी रापि न जाणहीं, तार्थें निर्फल पेत ॥ १४ ॥

॥ सगुना निगुना कृतघनी ॥

दादू गोविंद के गुण बहुत हैं, कोई न जाणै जीव् ।
अपणी बूझै आप गति, जे कुछ कीया पीव् ॥ १५ ॥

॥ इति कस्तूरिया मृग कौ अंग संपूर्ण समास ॥ ३१ ॥

अथ निंद्या कौ अंग ॥ ३२ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

॥ मत्सर ईर्षा ॥

साधू निर्मल मल नहीं, राम रमै सम भाइ ।
दादू अवगुण काढ़ि करि, जीव् रसातल जाइ ॥ २ ॥
दादू जबहीं साध सताइये, तबहीं ऊंध पलट ।
आकास धसै धरती पिसै, तीनों लोक गरक ॥ ३ ॥

॥ निंदा ॥

दादू जिहिं घरि निंद्या साध की, सो घर गये समूल ।

---

(१४) हमारा मालिक (सांई) तो सावधान है, किंतु अचेत हमहीं हैं, क्योंकि जीव् आत्मतत्व का रहस्य नहीं जानता, इसी से खेत रूपी जीव् निष्फल (दुःखी) होता है ॥

(२) जो जन साधु में अवगुण बनाता है सो रसातल को जाता है ॥

तिनकी नीव न पाइये, नांव न ठांव न धूल ॥ ४ ॥
दादू निंदा नांव न लीजिये, सुपिनैहीं जिनि होइ ।
ना हम कहैं न तुम सुनों, हम जिनि भाषै कोइ ॥ ५ ॥
दादू निंदा कीये नर्क है, कीट पड़ै मुष मांहिं ।
राम विमुख जामैं मरैं, भग मुष आवैं जांहिं ॥ ६ ॥
दादू निंदक बपुरा जिनि मरै, पर उपगारी सोइ ।
हम कूं करता ऊजला, आपण मैला होइ ॥ ७ ॥
दादू जिहि विधि आत्म उधरै, परसै प्रीतम प्राण ।
साध सबद कूं निंदणां, समझैं चतुर सुजाण ॥ ८ ॥

॥ मछर (मत्सर) ईर्षा ॥

अणदेष्या अनरथ कहैं, कलि प्रथमी का पाप ।
धरती अंबर जब लगैं, तब लग करैं कलाप ॥ ९ ॥
अणदेष्या अनरथ कहैं, अपराधी संसार ।
जदि तदि लेखा लेइगा, समर्थ सिरजनहार ॥ १० ॥
दादू डरिये लोक थैं, कैसी धरहिं उठाइ ।
अणदेषी अजगैब की, ऐसी कहैं बनाइ ॥ ११ ॥

॥ अमिट पाप प्रचंड ॥

दादू अमृत कूं विष, विष कूं अमृत, फेरि धरैं सब नांव ।
निर्मल मैला, मैला निर्मल, जाहिंगे किस ठांव ॥ १२ ॥

॥ मछर ईर्षा ॥

दादू साचे कूं झूठा कहैं, झूठे कूं साचा ।
राम दुहाई काढ़िये, कंठ थैं वाचा ॥ १३ ॥

(८) साध शब्द की निंदा का फल (पाप) चतुर्सुजान समझते हैं ॥

दादू झूठ न कहिये साच कूं, साच न कहिये झूठ ।
दादू साहिब मानैं नहीं, लागैं पाप अपूट ॥ १४ ॥
दादू झूठ दिपावैं साच कूं, भयानक भैभीत ।
साचा राता साच सौं, झूठ न आनै चीत ॥ १५ ॥
साचे कूं झूठा कहैं, झूठा साच समान ।
दादू अचिरज देषिया, यहु लोगौं का ज्ञान ॥ १६ ॥
॥ निंद्या ॥
दादू ज्यौं ज्यौं निंदे लोग बिचारा, त्यौं त्यौं छीजे रोग हमारा ॥ १७ ॥

॥ इति निंद्या कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ ३२ ॥

अथ निगुणां कौ अंग ॥ ३३ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
॥ सगुणा, निगुणा, कृतघ्नी ॥
दादू चंदन बावना, बसै बटाऊ आइ ।
सुषदाई सीतल किये, तीन्यूं ताप नसाइ ॥ २ ॥
काल कुहाड़ा हाथि ले, काटन लागा ढाइ ।
ऐसा यहु संसार है, डाल मूल ले जाइ ॥ ३ ॥

(२-३) चंदन के वृक्ष के तले कोई बटाऊ (पथिक) आ बैठा, वृक्ष की शीतलता से सुख पाया ॥ यह गुण चंदन में देखकर वह पुरुष फिर आया

॥ अङ्ग स्वभाव अपलट ॥

सतगुर चंदन बावना, लागे रहैं भवंग ।
दादू विष छाड़ै नहीं, कहा करै सतसंग ॥ ४ ॥
दादू कीड़ा नर्कका, राप्या चंदन मांहिं ।
उलटि अपूठा नर्कमें, चंदन भावै नांहिं ॥ ५ ॥
सतगुर साध सुजान है, सिपका गुण नहिं जाइ ।
दादू अमृत छाड़ि करि, विषै हलाहल पाइ ॥ ६ ॥
कोटि वरस लौं रापिये, वंसा चंदन पास ।
दादू गुण लीये रहे, कदे न लागै वास ॥ ७ ॥
कोटि वरस लौं रापिये, पत्थर पानी मांहिं ।
दादू आड़ा अंग है, भीतर भेदै नांहिं ॥ ८ ॥
कोटि वरस लौं रापिये, लोहा पारस संग ।
दादू रोम का अंतरा, पलटै नांहीं अंग ॥ ९ ॥
कोटि वरसलौं रापिये, जीव ब्रह्म संगि दोइ ।
दादू मांहैं वासना, कदे न मेला होइ ॥ १० ॥

॥ सगुणा, निगुणा, कृतघ्नी ॥

मूसा जलता देपि करि, दादू हंस दयाल ।

और पेड़ की सेवा करने के बदले उस को काट गिराया। दयालजी कहते हैं कि ऐसा कृतघ्नी यह संसार है ॥ यथा—

यथा गजपतिः श्रांतः छायार्थी वृक्षमाश्रितः ।
विश्रम्य तं द्रुमं हंति, तथा नीचः स्वमाश्रयम् ॥

(५) नर्क = मैला, सड़ा गोबरादि ॥

मान सरोवर ले चल्या, पंषां काटे काल ॥ ११ ॥,
दीसे माणस प्रत्यष काल, । (२५—६५)
ज्यों करि त्यों करि दादू टाल ॥ १२ ॥ गयङ्ग ॥
सब जीव भुवंगम कूप में, साधू काढ़े आइ ।
दादू विषहरि विष भरे, फिर ताही कों षाइ ॥ १३ ॥
दादू दूध पिलाइये, विषहर विष करि लेइ ।
गुणका औगुण करि लिया, ताही कों दुष देइ ॥ १४ ॥

॥ अथ स्वभाव अपलट ॥

बिनहीं पावक जलि मुवा, जवासा जल मांहिं ।
दादू सूके सींचतां, तो जल कों दूषण नांहिं ॥ १५ ॥

॥ सगुणा, निगुणा, कृतघ्नी ॥

सुफल बिरष परमार्थी, सुष देवे फल फूल ।
दादू ऊपर बैसि करि, निगुणां काटे मूल ॥ १६ ॥
दादू सगुणां गुण करे, निगुणां मानें नांहिं ।
निगुणां मरि निरफल गया, सगुणां साहिब मांहिं ॥१७॥
निगुणां गुण माने नहीं, कोटि करे जे कोइ ।

---

(११) दुर्जनस्य स्वभावोऽयं, पर कार्य विनाशकः ।
हस्ते च किं समायाति, मूषकस्य वस्त्र भक्षणात् ॥
(१३) यह संसार रूपी कूप भुवंग (सर्प) रूपी जीवों से भरा है ॥
दुर्जनानां भुजङ्गानामङ्गनानां च भूभुजाम् ।
विश्वास कृतानामपि, प्रायो विश्रब्धव्यं न सर्वदा ॥
(१६) पत्र पुष्पफलच्छाया, मूलवल्कलदारुभिः ।
धन्या महीरुहा येभ्यो, निराशा यांति नार्थिनः ॥

दादू सब कुछ सौंपिये, सो फिर बैरी होइ ॥ १८ ॥
दादू सगुणां लीजिये, निगुणां दीजे डारि ।
सगुणां सन्मुख राखिये, निगुणां नेह निवारि ॥ १९ ॥
सगुणां गुण केते करे, निगुणां न माने एक ।
दादू साधू सब कहैं, निगुणां नर्क अनेक ॥ २० ॥
सगुणां गुण केते करे, निगुणां नाखे ढाहि ।
दादू साधू सब कहैं, निगुणां निरफल जाइ ॥ २१ ॥
सगुणां गुण केते करे, निगुणां न मानें कोइ ।
दादू साधू सब कहैं, भला कहां थैं होइ ॥ २२ ॥
सगुणां गुण केते करे, निगुणां न मानें नीच ।
दादू साधू सब कहैं, निगुणां के सिर मीच ॥ २३ ॥
साहिब जी सब गुण करे, सतगुर के घटि होइ ।
दादू काढ़े काल मुखि, निगुणां न माने कोइ ॥ २४ ॥
साहिब जी सब गुण करे, सतगुर मांहें आइ ।
दादू राखे जीव दे, निगुणां मेटे जाइ ॥ २५ ॥
साहिब जी सब गुण करे, सतगुर का दे संग ।
दादू परलै राखिले, निगुणां न पलटै अंग ॥ २६ ॥
साहिब जी सब गुण करे, सतगुर आड़ा देइ ।
दादू तारे देखतां, निगुणां गुण नहिं लेइ ॥ २७ ॥
सतगुर दीया राम धन, रहे सुबुधि बनाइ ।
मनसा वाचा कर्मणा, बिलसे बितड़े पाइ ॥ २८ ॥

(२६) पुस्तक नं० ३-४ में "न पलटै" की जगह "पलटै" है ॥

कीया कृत मेटै नहीं, गुण हीं मांहिं समाइ ।
दादू बधै अनंत धन, कबहूं कदे न जाइ ॥ २६ ॥

॥ इति निगुणां को अंग संपूर्ण समाप्त ॥ ३३ ॥

अथ बिनती को अंग ॥ ३४ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

॥ करुणा ॥

दादू बहुत बुरा किया, तुम्हें न करना रोष ।
साहिब समाई का धनी, बंदे कों सब दोष ॥ २ ॥

दादू बुरा बुरा सब हम किया, सो मुष कह्या न जाइ ।
निर्मल मेरा सांइयां, ताकौं दोष न लाइ ॥ ३ ॥

सांई सेवा चोर में, अपराधी बंदा ।
दादू दूजा को नहीं, मुझ सरीषा गंदा ॥ ४ ॥

तिल तिल का अपराधी तेरा, रती रती का चोर ।
पल पल का में गुनहीं तेरा, बकसहु औगुण मोर ॥५॥

मह अपराधी एक में, सारे इहि संसार ।

---

(२६) दृष्टांत-विद्या लई नृप भील पैं, फिरि गर्ष्यो गुरभाव ।
गई नहीं नृप के रही, पैं प्रति चढ़्यौ भाव ॥

औगुण मेरे अति घणे, अंत न आवै पार ॥ ६ ॥
बे मरजादा मिति नहीं, ऐसे किये अपार ।
मैं अपराधी बापजी, मेरे तुमही एक अधार ॥ ७ ॥
दोष अनेक कलंक सब, बहुत बुरा मुझ मांहिं ।
मैं कीये अपराध सब, तुम थैं छाना नांहिं ॥ ८ ॥
गुनहगार अपराधी तेरा, भाजि कहां हम जांहिं ।
दादू देष्या सोधि सब, तुम बिन कहिं न समांहिं ॥ ९ ॥
आदि अंत लौं आय करि, सुकृत कछू ना कीन्ह ।
माया मोह मद मंछरा, स्वाद सबै चित दीन्ह ॥ १० ॥

॥ बिनती ॥

काम क्रोध संसै सदा, कबहूं नांव न लीन ।
पाषंड प्रपंच पाप में, दादू ऐसैं षीन ॥ ११ ॥
दादू बहु बंधन सौं बंधिया, एक बिचारा जीव ।
अपने बल छूटै नहीं, छोड़नहारा पीव ॥ १२ ॥
दादू बंदीवान है, तू बंदि छोड़ दीवान ।
अब जिनि राषौ बंदि मैं, मीरां मेहरबान ॥ १३ ॥
दादू अंतरि कालिमां, हिरदै बहुत बिकार ।
परगट पूरा दूरि कर, दादू करै पुकार ॥ १४ ॥

---

(६) दृष्टांत–पाप पुण्य का चौंतरा, नृपति किये पुर बाय ।
सब दुनिया पुण्य के चढ़ी, दूजे संत बिराज ॥
दुनिया अपने को पुण्यवान ही दिखाती है, केवल संतजन अपने को परमेश्वर के अपराधी समझते हैं ॥

(१४) परगट पूरा दूरिकर = अंतर के सब विकारों को प्रगट कर, छिपे न रख ॥

सब कुछ ब्यापै रामजी, कुछ छूटा नांहीं ।
तुम्ह थैं कहा छिपाइये, सब देखौ मांहीं ॥ १५ ॥
सबल साल मन में रहैं, राम बिसरि क्यौं जाइ ।
यहु दुष दादू क्यौं सहै, सांई करौ सहाइ ॥ १६ ॥
राषणहारा राष तूं, यहु मन मेरा राषि ।
तुम बिन दूजा को नहीं, साधू बोलैं साषि ॥ १७ ॥
माया विषै विकार थैं, मेरा मन भागै ।
सोई कीजै सांइयां, तूं मीठा लागै ॥ १८ ॥
सांई दीजै सो रती, तूं मीठा लागै ।
दूजा षारा होइ सब, सूता जीव जागै ॥ १९ ॥
जे साहिब कूं भावै नहीं, सो हम थैं जिनि होइ । (६–२)
सतगुर लाजै आपणा, साध न मानै कोइ ॥२०॥ गघङ ॥
ज्यौं आपै देखै आप कौं, सो नैना दे मुझ ।
मीरां मेरा मेहर कर, दादू देखै तुझ ॥ २१ ॥

॥ करुणा ॥

दादू पछितावा रहा, सकै न ठाहर लाइ ।
अरथि न आया राम के, यहु तन यौंही जाइ ॥ २२ ॥
कहतां सुणतां दिन गये, ह्वै कछू न आवा । (१३–१०७)
दादू हरि की भगति बिन, प्राणी पछितावा ॥ २३ ॥ खगघङ ॥
सो कुछ हम थैं ना भया, जापरि रीझै राम । (१०–२६)

(२१) सब कुछ ब्यापै रामजी = हे रामजी ! काम क्रोधादि सब मुझ में चेते रहे हैं ॥

(२२) सकै न ठाहर लाइ = एकाग्रचित्त होकर राम नाम में हम न लग सके ॥

दादू इस संसार मैं, हम आये बेकाम ॥ २४ ॥ खगघङ ॥

॥ विनती ॥

दादू कहै–दिन दिन नौतम भगति दे, दिन दिन नौतम नांव।
दिन दिन नौतम नेह दे, मैं बलिहारी जांव ॥ २५ ॥

सांई सत संतोष दे, भाव भगति बिसवास । (१६–५७)
सिदक सबूरी साच दे, मांगै दादूदास ॥ २६ ॥ खगघङ ॥

सांई संसै दूरि कर, करि संक्या का नास ।
भानि भरम दुविध्या दुष दारुण, समता सहज प्रकास ॥ २७ ॥

॥ दया विनती ॥

नांहीं परगट ह्वै रह्या, है सो रह्या लुकाइ ।
संइयां पड़दा दूरि कर, तूं ह्वै परगट आइ ॥ २८ ॥

दादू माया परगट ह्वै रही, यौं जे होता राम ।
अरस परस मिलि षेलते, सब जिव सबही ठाम ॥ २९ ॥

दया करै तब अंगि लगावै, भगति अपंडित देवै ।
दादू दर्सन आप अकेला, दूजा हरि सब लेवै ॥ ३० ॥

दादू साध सिषावैं आत्मा, सेवा दिढ़ करि लेहु ।
पारब्रह्म सौं बीनती, "दया करि दर्सन देहु" ॥ ३१ ॥

साहिब साध दयाल हैं, हमहीं अपराधी ।

---

(२८) नांहीं = संसार जो वास्तव में है नहीं सो प्रगट हो रहा है। है जो परमात्मा सो लुक रहा है। हे सांई! अविद्यारूपी पड़दा दूरि कर और तू आप प्रगट होकर दर्शन दे॥

(३०) दूजा हरि सब लेवै = दूसरा जो प्रपंच संसारी वैभव है सो सब ले लेवै, संसारी पदार्थों की हमको चाह नहीं। देखो १६ वीं विनती॥

दादू जीव अभागिया, अविद्या साधी ॥ ३२ ॥
सब जीव तोरैं राम सौं, पै राम न तोरै ।
दादू काचे ताग ज्यों, टूटे त्यौं जोरै ॥ ३३ ॥

॥ सजीवन ॥

फूटा फेरि संवारि करि, ले पहुचावै ओर ।
ऐसा कोई ना मिलै, दादू गई बहोर ॥ ३४ ॥
ऐसा कोई ना मिलै, तन फेरि संवारै ।
बूढे थैं बाला करै, पै काल निवारै ॥ ३५ ॥

॥ परचै करुणा बीनती ॥

गलै विलै करि बीनती, एकमेक अरदास ।
अरस परस करुणां करै, तब दरवै दादूदास ॥ ३६ ॥
सांई तेरे डर डरूं, सदा रहूं भै भीत ।
अजा सिंह ज्यों भै घणां, दादू लीया जीत ॥ ३७ ॥

॥ पोष प्रतिपाल रक्षक ॥

दादू पलक मांहिं प्रगटै सही, जे जन करै पुकार ।
दीन दुषी तब देषि करि, अति आतुर तिहिंबार ॥३८॥
आगै पीछै संगि रहै, आप उठाये भार ।
साध दुषी, तब हरि दुषी, ऐसा सिरजनहार ॥ ३९ ॥
सेवग की रष्या करै, सेवग की प्रतिपाल ।

(३४) फूटा = मन । ओर = परमेश्वर । बहोर = समय ॥

(३६) गलै विलै = परमात्मा में लयलीन होकर, "एकमेक" = सब प्रपंच से वृत्ति को मोड़कर एकाग्रचित से अरस परस = प्रत्यक्ष परमात्मा के सन्मुख करुणा पूर्वक विनती करै, तब दयालजी कहते हैं दास भीजै, अर्थात् ब्रम्ह रस से मगन हो ॥

सेवग की वाहर चढ़े, दादू दीन दयाल ॥ ४० ॥

॥ बिनती सागर तरण ॥

दादू काया नाव समंद में, औघट बूड़े आइ ।
यहि औसर एक अगाध बिन, दादू कौन सहाइ ॥ ४१ ॥

यहु तन मेरा भौजला, क्यों करि लंघे तीर ।
पेवट बिन कैसें तिरे, दादू गहर गंभीर ॥ ४२ ॥

प्यंड परोहन सिंध जल, भौसागर संसार ।
राम बिनां सूझै नहीं, दादू पेवनहार ॥ ४३ ॥

यहु घट बोहित धार में, दरिया वार न पार ।
भैभीत भयानक देषि करि, दादू करी पुकार ॥ ४४ ॥

कलिजुग घोर अंधार है, तिस का वार न पार ।
दादू तुम बिन क्यों तिरै, सम्रथ सिरजनहार ॥ ४५ ॥

काया के बसि जीव है, कसि कसि बंध्या मांहिं ।
दादू आत्मराम बिन, क्योंही छूटे नांहिं ॥ ४६ ॥

दादू प्राणी बंध्या पंच सूं, क्यूं हीं छूटै नांहिं ।
नीधणि आया मारिये, यहु जिव काया मांहिं ॥ ४७ ॥

दादू कहै—तुम बिन धणी न धोरी जीव का, यौं हीं आवै जाइ ।
जे तूं सांई सत्ति है, तौ वेगा प्रगटिहु आइ ॥ ४८ ॥

नीधणि आया मारिये, धणी न धोरी कोइ ।

---

(४५) अंधार = अंधकार ॥

(४७) पंच विषय वा पंच इंद्रियां, नीधणि = स्वामीहीन ॥

(४८) धणी धोरी = मालिक और निबाहने वाला ॥

दादू सो क्यूं मारिये, साहिब सिर परि होइ ॥ ४९ ॥

॥ दया विनती ॥

राम विमुष जुगि जुगि दुषी, लष चौरासी जीव ।
जामे मरे जगि आवटै, राषणहारा पीव ॥ ५० ॥

॥ पोष, प्रतिपाल, रष्यक ॥

समर्थ सिरजनहार है, जे कुछ करै सो होइ ।
दादू सेवग राषिले, काल न लागै कोइ ॥ ५१ ॥

॥ विनती ॥

सांई साचा नांव दे, काल झाल मिटि जाइ ।
दादू निर्भै ह्वै रहै, कबहूं काल न पाइ ॥ ५२ ॥

कोई नहिं करतार बिन, प्राण उधारणहार ।
जियरा दुषिया राम बिन, दादू इहि संसार ॥ ५३ ॥

जिन की रष्या तूं करै, ते उबरे, करतार !
जे तैं छाड़े हाथ थैं, ते डूबे संसार ॥ ५४ ॥

राषणहारा एक तूं, मारणहार अनेक ।
दादू के दूजा नहीं, तूं आपै ही देष ॥ ५५ ॥

दादू जग ज्वाला जमरूप है, साहिब राषणह .।
तुम बिचि अंतर जिनि पड़ै, तायैं करूं पुकार ॥ ५६ ॥

जहं तहं विषै बिकार थैं, तुम हीं राषणहार ।
तन मन तुम्ह कौं सौंपिया, साचा सिरजनहार ॥५७॥

॥ दया विनती ॥

दादू कहै—गरक रसातल जात है, तुम बिन सब संसार ।
कर गहि कर्ता काढ़ि ले, दे अवलंबन अधार ॥ ५८ ॥

दादू दों लागी जग परजले, घटि घटि सब संसार ।
हम थें कछू न होत है, तुम बरसि बुझावणहार ॥५६॥ ङ॥
दादू आत्म जीव अनाथ सब, करतार उबारे ।
राम निहोरा कीजिये, जिनि काहू मारे ॥ ६० ॥
अर्स जिमीं औजूद में, तहां तपै अफताब ।
सब जग जलता देषि करि, दादु पुकारे साध ॥ ६१ ॥
सकल भुवन सब आतमा, निर्विष करि हरि लेइ ।
पड़दा है सो दूरि करि, कुसमल रहण न देइ ॥ ६२ ॥
तन मन निर्मल आतमा, सब काहू की होइ ।
दादू विषै बिकार की, बात न बूझै कोइ ॥ ६३ ॥

॥ विनती ॥

समर्थ धोरी ! कंध धरि, रथ ले ओर निवाहि ।
मार्ग मांहिं न मेलिये, पीछैं बिड़द लजाहि ॥ ६४ ॥
दादू गगन गिरे तब को धरे, धरती धर छंडे ॥
जे तुम छाड़हु राम रथ, कंधा को मंडै ॥ ६५ ॥
दादू ज्यों वे बरत गगन थें टूटे, कहां धरणि कहं ठाम ।(७—३१)
लागी सुरति अंग थें छूटे, सो कन जीवै राम ॥६६॥ खगघङ॥
अंतरजामी एक तूं, आतम के आधार ।
जे तुम्ह छाडहु हाथ थें, तौ कौण संबांहणहार ॥ ६७॥

---

(६०) दृष्टांत—गुर दादू आंबेर तें, उठन साषि कहि एह ।
पुनः फरीदजी झाम में, कही लगावो नेह ॥
(६४) हे समर्थ धोरी ! तू मेरे शरीर रूपी रथ को कंधपर धर कर पार कर । राह में न छोड़, क्योंकि पीछे तेरा ही यश लज्जित होगा ॥

तेरा सेवग तुम्ह लगैं, तुम्ह हीं माथैं भार।
दादू डूबत रामजी, वेगि उतारो पार ॥ ६८ ॥
सत छूटा, सूरातन गया, वल पौरिस भागा जाइ ।
कोई धीरज ना धरै, काल पहूंता आइ ॥ ६६ ॥
संगी थाके संग के, मेरा कुछ न वसाइ ।
भाव भगति धन लूटिये, दादू दुषी पुदाइ ॥ ७० ॥

॥ परचय करुणा विनती ॥

दादू जियरे ज़क नहीं, विश्राम न पावै ।
आत्म पाणी लूंण ज्यौं, अैसें होइ न आवै ॥ ७१ ॥

॥ दया विनती ॥

दादू तेरी पूषी पूष है, सब नीका लागै ।
सुंदर सोभा काढि ले, सब कोई भागै ॥ ७२ ॥

॥ विनती ॥

तुम्ह हो तैसी कीजिये, तो छूटैंगे जीव ।
हम हैं अैसी जिनि करौ, मैं सदिकै जाऊं पीव ॥७३ ॥
अनाथूं का आसिरा, निरधारा आधार ।
निर्धन का धन राम है, दादू सिरजनहार ॥ ७४ ॥
साहिब दर दादू पड़ा, निसदिन करै पुकार ।
मीरां मेरा मिहर कर, साहिब दे दीदार ॥ ७५ ॥
दादू प्यासा प्रेमका, साहिब राम पिलाइ ।
परगट प्याला देहु भरि, मृतक लेहु जिलाइ ॥ ७६ ॥
अल्लह आली नूर का, भरि भरि प्याला देहु ।
हमकूं प्रेम पिलाइ करि, मतिवाला करि लेहु ॥ ७७ ॥

तुम्हकूं हम से बहुत हैं, हमकूं तुम से नांहिं ।
दादू कूं जिनि परहरै, तूं रहु नैनहुं मांहिं ॥ ७८ ॥
तुम्ह थैं तबहीं होइ सब, दरस परस दरहाल ।
हम थैं कबहूं न होइगा, जे बीतहिं जुग काल ॥ ७६ ।
तुम्ह हीं थैं तुम्ह कूं मिलै, एक पलक में आइ ।
हम थैं कबहुं न होइगा, कोटि कलप जे जांइ ॥ ८० ।

॥ छिन बिछोह ॥

साहिब सूं मिलि पेलते, होता प्रेम सनेह ।
दादू प्रेम सनेह बिन, परी दुहेली देह ॥ ८१ ॥
साहिब सौं मिलि पेलते, होता प्रेम सनेह ।
परगट दरसन देषते, दादू सुषिया देह ॥ ८२ ॥

॥ करुणा ॥

तुम्ह कूं भावै और कुछ, हम कुछ कीया और।
मिहर करौ तौ छूटिये, नहीं तौ नांहीं ठौर ॥ ८३ ॥
मुझ भावै सो मैं किया, तुझ भावै सो नांहिं ।
दादू गुनहगार है, मैं देष्या मन मांहिं ॥ ८४ ॥
षुसी तुम्हारी त्यूं करौ, हम तौ मानी हारि ।
भावै बंदा बकसिये, भावै गहि करि मारि ॥ ८५ ॥
दादू जे साहिब लेषा लीया, तौ सीस काटि सूली दीया ।

(७६) मूल पुस्तकों में "बीतहिं" की जगह "बीचहि" है ॥

(८०) तुम्ह हीं थैं तुम्ह कूं मिलै=तुम्हारी ही कृपा से तुम से हम मिल सकते हैं, देखो बेली के अंग की ९ वीं साखी ॥

मिहर मया करि फिल कीया, तौ जीये जीये करि जीया॥८६॥

॥ इति विनती कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ ३४ ॥

अथ सांपीभूत कौ अङ्ग ॥ ३५ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

॥ भरम विधूसन ॥

सब देषणहारा जगत का, अंतरि पूरे सापि ।
दादू स्यावति सो सही, दूजा और न रापि ॥ २ ॥
मांहीं थैं मुझ कौं कहै, अंतरजामी आप ।
दादू दूजा धंध है, साचा मेरा जाप ॥ ३ ॥

॥ करता सापीभूत ॥

करता है सो करैगा, दादू सापीभूत ।
कौतिगहारा ह्वै रह्या, अणकरता औधूत ॥ ४ ॥
आप अकेला सब करै, घट मैं लहरि उठाइ । (२१–२५)

---

(८६) दृष्टांत—बरस छतीस हजार लौं, करी बंदगी सार ।
अदल कियां उलटी पड़ी, फजल कियां छुटकार ॥

(२) अंतरि पूरै सापि=मनुष्य के अन्तःकरण में परमेश्वर साक्षी देता है । सोई सही प्रमाण है ॥

दादू तिरदे जीव् के, यूं न्यारा ह्वै जाइ ॥ ५ ॥ खगघङ ॥
आप अकेला सब करै, औरूं के सिरि देइ । (२१–२४)
दादू सोभादास कूं, अपणा नांव् न लेइ ॥ ६ ॥ खगघङ ॥
दादू राजस करि उतपति करै, सातग करि प्रतिपाल ।
तामस करि परलै करै, निर्गुण कौतिगहार ॥ ७ ॥
दादू ब्रह्म जीव् हरि आतमा, पेलैं गोपी कान्ह ।
सकल निरंतरि भरि रह्या, साषीभूत सुजाण ॥ ८ ॥

॥ स्वकीय मित्र-शत्रुता ॥

दादू जामन मरणा सानि करि, यहु प्यंड उपाया ।
सांई दीया जीव् कूं, ले जग मैं आया ॥ ६ ॥
विप अमृत सब पावक पाणी, सतगुर समझाया ।
मनसा बाचा कर्मणा, सोई फल पाया ॥ १० ॥
दादू जाणै बूझै जीव् सब, गुण औगुण कीजे ।
जानि बूझि पावकि पड़े, दई दोस न दीजे ॥ ११ ॥
मन हीं मांहै ह्वै मरै, जीवै मनहीं मांहिं । (२५–६२)
साहिब साषीभूत है, दादू दूसण नांहिं ॥ १२ ॥ खघङ ॥
बुरा भला सिर जीव् के, होवै इस ही मांहिं ।
दादू कर्ता करि रह्या, सो सिर दीजै नांहिं ॥ १३ ॥

॥ साध साषीभूत ॥

कर्ता ह्वै करि कुछ करै, उस मांहिं बंधावै ।

---

(८) ब्रम्ह=शुद्ध चेतन सकल निरंतर व्यापक । हरि=मायोपहित सृष्टि कर्ता सर्वज्ञ ईश्वर । आत्मा=अंतःकरणोपहित कूटस्थ साक्षी चेतन । जीव=साभास अंतःकरण सुख दुख का अभिमानी ॥

दादू उस कौं पूंछिये, उतर नहिं आवै ॥ १४ ॥
सेवा सुकृत सब गया, मैं मेरा मन मांहिं । (१५–५७)
दादू आपा जब लगै, साहिब मानै नांहिं ॥ १५ ॥ खगघङ ॥
दादू केई उतारैं आरती, केइ सेवा करि जांहिं ।
केई आइ पूजा करैं, केई पुलावैं पांहिं ॥ १६ ॥
केई सेवग ह्वै रहे, केइ साधू संगति मांहिं ।
केई आइ दर्सन करैं, हम थैं होता नांहिं ॥ १७ ॥
नां हम करैं करावैं आरती, नां हम पियैं पिलावैं नीर ।
करै करावै सांइयां, दादू सकल सरीर ॥ १८ ॥
करै करावै सांइयां, जिन दीया औजूद ।
दादू बंदा बीचि है, सोभा कूं मौजूद ॥ १९ ॥
देवै लेवै सब करै, जिन सिरजे सब लोइ ।
दादू बंदा महल मैं, सोभा करै सब कोइ ॥ २० ॥

॥ करता साषीभूत ॥

दादू जुवा षेलै जाण राइ, ताकौं लषै न कोइ ।
सब जग बैठा जीति करि, काहू लिप्त न होइ ॥ २१ ॥

इति साषीभूत कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ ३५ ॥

---

(१४) पारष के अंग की २१ वीं साखी में दयालजी ने कहा है कि कर्मों के बस जीव है, सो जीव कर्म के बंधन में तभी आता है जब कर्तापने का अभिमान रख के कर्म करता है। ज्ञानी ऐसा अभिमान नहीं रखता, इसलिये कर्म से बंधता नहीं, यह बात आगे २१ वीं साखी में स्पष्ट कही है ॥

(२१) जुवा ॥ शतरंज वा चौसर की बाजी जिसमें हार जीत रहती

अथ बेली कौ अंग ॥ ३६ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम, नमस्कार गुर देवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
दादू अमृत रूपी नांव ले, आतम तत्तहिं पोपे ।
सहजैं सहज समाधिमें, धरणी जल सोपे ॥ २ ॥
पसरे तीन्यूं लोक में, लिपति नहीं धोपे ।
सो फल लागे सहज में, सुंदर सब लोकै ॥ ३ ॥
दादू बेली आत्मा, सहज फूल फल होइ ।
सहजि सहजि सतगुर कहै, बूझै विरला कोइ ॥ ४ ॥
जे साहिब सींचै नहीं, तौ बेली कुमिलाइ ।
दादू सींचै सांइयां, तौ बेली बधती ज़ाइ ॥ ५ ॥

बातों की होती है; इसी तरह का संपूर्ण जगत ब्योहार है, वास्तव में कोई लाभ हानि है नहीं, किंतु जहां जिसने जैसा नफा नुकसान मन में मान रक्खा है तहां उसको उसी भाव से फल मिलता है। जाण राइ (ज्ञानी) संपूर्ण ब्योहारों को केवल खेलमात्र मानता है, इसलिये संपूर्ण जगत उसने जीत लिया है और किसी से वह लिप्त नहीं है ॥ उस के ऐसे भाव को कोई दूसरा नहीं जानता, यह स्व संवेद्य बात है ॥

(२) जैसे धरती धीरे २ जल सोकती है, तैसे सहजैं सहज समाधि में अपने जीव को अमृतरूपी अनाहद से पोपण करैं ॥

(३) अमीरस से पोपणकरी बुद्धिरूपी बेली तीनों लोकों में पसरै और कहीं लिप्त न हो ॥

(४) आत्मा की प्राप्ति में परमात्मा की कृपा अवश्य होनी चाहिये, यथा— यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैप आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् । मुंडके ५६ ॥

हरि तरवर तत आत्मा, वेली करि विसतार ।
दादू लागै अमर फल, कोइ साधू सींचणहार ॥ ६ ॥
दादू सूका रूंपड़ा, काहे न हरिया होइ ।
आपै सींचे अमीरस, सूफल फलिया सोइ ॥ ७ ॥
कदे न सूकै रूंपड़ा, जे अमृत सींच्या आप ।
दादू हरिया सो फलै, कछू न व्यापै ताप ॥ ८ ॥
जे घट रोपे रामजी, सींचे अमी अघाइ ।
दादू लागै अमर फल, कबहूं सूकि न जाइ ॥ ९ ॥
हरि जल बरपै बाहिरा, सूके काया पेत । (१५–१०७)
दादू हरिया होइगा, सींचनहार सुचेत ॥ १० ॥ खगघङ ॥
दादू अमर वेलि है आत्मा, पार समंदां मांहिं ।
सूकै पारे नीरसौं, अमर फल लागै नांहिं ॥ ११ ॥
दादू वहु गुणवंती वेलि है, ऊगी कालर मांहिं ।
सींचे पारे नीरसौं, तातैं निपजै नांहिं ॥ १२ ॥
यहु गुणवंती वेलि है, मीठी धरती वाहि ।
मीठा पांणीं सींचिये, दादू अमर फल पाइ ॥ १३ ॥
अमृत वेली वाहिये, अमृत का फल होइ ।
अमृत का फल पाइ करि, मुवा न सुणिया कोइ ॥ १४ ॥
दादू विपकी वेली वाहिये, विपही का फल होइ ।

(६) हरि रुपी तरवर पर बुद्धिरुपी बेली को फलावै, तो उस बेल में अमर फल (मोक्ष फल) लगै, यदि साधू बेली को सींचता रहे ॥

(७) सूफल = सुफल ॥

(११) पार समंदां मांहिं" खारी समुद्र में ॥

विषही का फल पाइ करि, अमर नहीं कलि कोइ ॥१५॥
सतगुर संगति नीपजै, साहिब सींचणहार ।
प्रांण विरष पीवै सदा, दादू फलै अपार ॥ १६ ॥
दया धर्म का रूंषड़ा, सतसौं बधता जाइ ।
संतोष सौं फूलै फलै, दादु अमर फल पाइ ॥ १७ ॥

॥ इति बेली कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ ३६ ॥

अथ अबिहड़ कौ अङ्ग ॥ ३७ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
दादू संगी सोई कीजिये, जे कलि अजरावर होइ ।
नां वहु मरै न बीछुटै, नां दुष व्यापै कोइ ॥ २ ॥
दादू संगी सोई कीजिये, जे आस्थिर इहि संसार ।
नां वहु पिरै न हम षपैं, ऐसा लेहु बिचार ॥ ३ ॥
दादू संगी सोई कीजिये, सुष दुष का साथी ।
दादू जीवण मरण का, सो सदा संगाती ॥ ४ ॥
दादू संगी सोई कीजिये, जे कबहूं पलटि न जाइ ।
आदि अंति बिहड़ै नहीं, तासन यहु मन लाइ ॥ ५ ॥

(१५) इस साखी के पीछे किसी २ पुस्तक में परचा के अंग की १२२ से १२६ तक साखियां लिखी हैं ॥

दादू माया बिहड़े देवतां, काया संगि न जाइ । (१२-१५)
कर्तम बिहड़े बावरे, अजरावर ल्यौ लाइ ॥ ६ ॥ घङ॥

दादू अबिहड़ आप है, अमर उपावण हार ।
अबिनासी आपै रहै, बिनसै सब संसार ॥ ७ ॥

दादू अबिहड़ आप है, साचा सिरजन हार ।
आदि अंति बिहड़े नहीं, बिनसै सब आकार ॥ ८ ॥

दादू अबिहड़ आप है, अबिचल रह्या समाइ ।
निहचल रमिता राम है, जो दीसै सो जाइ ॥ ९ ॥

दादू अबिहड़ आप है, कबहूं बिहड़े नांहिं ।
घटै बधै नहिं एकरस, सब उपजि खपै उस मांहिं ॥१०॥

अबिहड़ अंग बिहड़े नहीं, अपलट पलटि न जाइ ।
दादू अघट एक रस, सब में रह्या समाइ ॥ ११॥

कबहुं न बिहड़े सो भला, साधू दिढ़ मत होइ । (१५-८६)
दादू हीरा एक रस, बांधि गांठड़ी सोइ॥ १२॥ खगघङ॥

॥ अंत समै की साषी ॥

जेते गुण व्यापैं जीव कौं, तेते तैं तजे रे मन ।
साहेब अपणे कारणें, भलो निबाह्यो पण ॥१३॥ कगङ ॥

इति श्री अबिहड़ को अंग संपूर्ण समास ॥ ३७ ॥

इति श्रीस्वामी दादूदयाल की साषी संपूर्ण समास ॥

---

(१३) सिवाय पु० नं० २ के और पुस्तकों में यह साखी शब्दों के अंत में आई है । पु० नं० १, २, ३ में " जीव कौं " और " भलो निबाह्यो पण " बाक्य हैं नहीं ॥ पु० नं० ४ में यह साखी पूरी लिखी है॥

श्रीरामजी सत्य ॥

श्री स्वामी दादूदयालजी की अनभै वाणी

द्वितीय भाग सबद ॥

॥ राग गौड़ी ॥ १ ॥

॥ शब्द १ ॥ सुमिरन सूरातन, नाम निश्चय ॥

रांम नांम नहिं छांड़ों भाई, प्रांण तजों निकटि जिव़ जाई ॥ टेक ॥
रती रती करि डारे मोहि, सांई संग न छांड़ों तोहि ॥ १ ॥
भावे ले सिर करव़त दे, जीव़न मूरी न छांड़ों ते ॥ २ ॥
पाव़क में ले डारे मोहि, जरे सरीर न छांड़ों तोहि ॥ ३ ॥
इब दादू ऐसी बनि आई, मिलों गोपाल निसान बजाई ॥४॥

॥ शब्द २ ॥ अन्य उपदेस ॥

रांम नांम जिनि छांडे कोई, रांम कहत जन निर्मल होई ॥ टेक ॥
रांम कहत सुप संपति सार, रांम नांम तिरि लंघे पार ॥ १ ॥
रांम कहत सुधि बुधि मति पाई, रांम नांम जिनि छांड़हु भाई ॥२॥
रांम कहत जन निर्मल होइ, रांम नांम कहि कुसमल धोइ ॥३॥
रांम कहत को को नहिं तारे, यहु तत दादू प्रांण हमारे ॥४॥

---

(१) निकटि जिव़ जाई=रामजी के निकट मेरा जीव़ जायगा । जीवन मूरी=जीवन मूल=राम नाम ॥

॥ शब्द ३ ॥ सुमिरण उपदेस ॥ (क)

मेरे मन भैया रांम कहो रे, रांम नांम मोहिं सहजि सुनावै।
उन हीं चरण मन कीन रहो रे ॥ टेक ॥
रांम नांम ले संत सुहावै, कोई कहै सब सीस सहो रे।
वाही सौं मन जोरे रापौ, नीकै रासि लिये निबहो रे ॥ १ ॥
कहत सुनत तेरो कछू न जावै, पाप निछेदन सोइ लहो रे।
दादू रे जन हरि गुण गावो, कालहि जालहि फेरि दहो रे॥२॥

॥ शब्द ४ ॥ विरह ॥

कौण बिधि पाइये रे, मीत हमारा सोइ ॥ टेक ॥
पास पीव परदेस है रे, जब लग प्रगटै नांहिं।
बिन देषे दुप पाइये, यहु सालै मन मांहिं ॥ १ ॥
जब लग नैंन न देषिये, परगट मिलै न आइ।
एक सेज संगहि रहै, यहु दुप सह्या न जाइ ॥ २ ॥
तब लग नेड़े दूरि है रे, जब लग मिलै न मोहि।
नैंन निकट नहिं देषिये, संगि रहे क्या होइ ॥ ३ ॥
कहा करौं कैसे मिलै रे, तलफै मेरा जीव।
दादू आतुर विरहनी, कारण अपने पीव ॥ ४ ॥

शब्द ५ ॥ विरह विलाप ॥

जियरा क्यौं रहै रे, तुम्हारे दर्सन बिन बेहाल ॥ टेक ॥
परदा अंतरि करि रहे, हम जीवैं किहिं आधार।
सदा संगाती प्रीतमा, अब कै लेहु उबारि ॥ १ ॥
गोपि गुसांईं ह्वै रहे, इब काहे न परगट होइ।

(३) कीन=किये, लगाये। पाप निछेदन=पापों को नाश करनेवाला॥

रांम सनेही संगिया, दूजा नांहीं कोइ ॥ २ ॥
अंतरजामी छिपि रहे, हम क्यों जीवें दूरि ।
तुम बिन व्याकुल केसवा, नैंन रहे जल पूरि ॥ ३ ॥
आप अपरछन व्है रहे, हम क्यों रैनि बिहाइ ।
दादू दर्सन कारणे, तलफि २ जिव जाइ ॥ ४ ॥

॥ शब्द ६ ॥ बिरह हैरान ॥

अजहूं न निकसें प्रांण कठोर, दर्सन बिना बहुत दिन बीते ।
सुंदर प्रीतम मोर । टेक ॥
चारि पहर चारयौं जुग बीते, रैनि गंवाई भोर ।
अवधि गई अजहूं नहिं आये, कतहूं रहे चित चोर ॥ १ ॥
कब हूं नैंन निरषि नहिं देषे, मारग चितवत तोर ।
दादू असैं आतुर बिरहणि, जैसें चंद चकोर ॥ २ ॥

॥ शब्द ७ ॥ सुंदरी सिंगार ॥

सोधन पीवजी साजि संवारी, इब बेगि मिलो तन जाइ बनवारी। टेक।
साजि सिंगार कीया मन मांहीं, अजहूं पीव पतीजे नांहीं ॥१॥
पीव मिलन कों अहिनिस जागी, अजहूं मेरी पलक न लागी ॥२॥
जतन २ करि पंथ निहारौं, पिव भावे त्यों आप संवारौं ॥ ३ ॥
अब सुष दीजे जांउ बलिहारी, कहै दादू सुणि बिपति हमारी॥४॥

॥ शब्द ८ ॥ बिरहचिंता ॥

सोदिन कबहूं आवैगा, दादूड़ा पीव पावैगा ॥ टेक ॥
क्यूं हीं अपने अंगि लगावैगा, तब सब दुष मेरा जावैगा ॥ १ ॥
पीव अपने बैन सुनावैगा, तब आनंद अंगि न मावैगा ॥ २ ॥
पीव मेरी प्यास मिटावैगा, तब आपहि प्रेम पिलावैगा ॥ ३ ॥

दे अपना दर्स दिपावैगा, तब दादू मंगल गावैगा ॥ ४ ॥

॥ शब्द ६ ॥ विरहमीति ॥

तैं मन मोह्यो मोर रे, रहि न सकौं हौं रांमजी ॥ टेक ॥
तोरे नांइ चित लाइया रे, अवरानि भया उदास ।
सांई ये समझाइया, हौं संग न छांड़ौं पास रे ॥ १ ॥
जाणौं तिलहि न बिछूटौं रे, जिनि पछितावा होइ ।
गुण तेरे रसना जपौं, सुणसी सांई सोइ रे ॥ २ ॥
भोरैं जन्म गंवाइया रे, चीन्हां नहीं सो सार ।
अज हूं यह अचेत है, अवर नहीं आधार रे ॥ ३ ॥
पीव की प्रीति तौ पाइये रे, जो सिर होवै भाग ।
यो तो अनत न जाइसी, रहसी चरणहुं लाग रे ॥ ४ ॥
अनतैं मन निवारिया रे, मोंहिं एकै सेती काज ।
अनत गये दुप ऊपजैं, मोंहि एकहिं सेती राज रे ॥ ५ ॥
सांई सौं सहजैं रमौं रे, और नहीं आंन देव ।
तहां मन बिलंबिया, जहां अलप अभेव रे ॥ ६ ॥
चरण कवल चित लाइया रे, भोरैं हीं ले भाव ।
दादू जन अचेत है, सहजैं हीं तूं आव रे ॥ ७ ॥

॥ शब्द १० ॥ विरह विलाप ॥

बिरहनि कौं सिंगार न भावै, है कोइ ऐसा राम मिलावै ॥टेक॥
बिसरे अंजन मंजन चीरा, विरह विथा यहु व्यापै पीरा ॥ १ ॥
नव सत थाके सकल सिंगारा, है कोइ पीड़ मिटावण हारा ॥२॥

(१०-२) नव सत=१६ सिंगार ॥

देह ग्रेह नहीं सुधि सरीरा, निस दिन चितवत चात्रिग नीरा ॥३॥
दादू ताहि न भावे आंन, रांम बिनां भई मृतक समांन ॥ ४ ॥

॥ शब्द ११ ॥ करुणा विनती ॥

इब तौ मोहि लागी वाइ. उन निहचल चित लियो चुराइ ॥ टेक ॥
आंन न रुचे और नहिं भावे, अगम अगोचर तहं मन जाइ।
रूप न रेख वरण कहौं कैसा, तिन चरणौं चित रह्या समाइ ॥१॥
तिन चरणौं चित सहजि समांनां, सो रस भींनां तहं मन धाइ।
अब तौ ऐसी बनि आई, विष तजे अरु अमृत पाइ ॥ २ ॥
कहा करौं मेरा वस नांहीं, और न मेरे अंगि सुहाइ।
पल एक दादू देषन पावे, तौ जन्म जन्म की त्रिषा बुझाइ ॥३॥

॥ शब्द १२ ॥ करुणा विनती ॥

तूं जिनि छाड़े केसवा, मेरे ओर निबाहनहार हो ॥ टेक ॥
अवगुण मेरे देषि करि, तूं नां कर मैला मन।
दीनांनाथ दयाल है, अपराधी सेवग जन हो ॥ १ ॥
हम अपराधी जनम के, नष सिष भरे विकार।
मेटि हमारे अवगुणां, तूं गरवा सिरजनहार हो ॥ २ ॥
मैं जन बहुत बिगारिया, अब तुमहीं लेहु संवारि।
समर्थ मेरा सांईयां, तूं आपे आप उधारि हो ॥ ३ ॥
तूं न बिसारी केसवा, मैं जन भूला तोहि।
दादू को ओर निवाहि ले, अब जिनि छाड़े मोहि हो ॥ ४ ॥

॥ शब्द १३ ॥ केवल विनती ॥

रांम संभालिये रे, विषम दुहेली बार ॥ टेक ॥

(१२-४) ओर=किनारे, पार ॥

मंझि समंदां नावरी रे, बूड़े पेवट बाज ।
काढ़नहारा को नहीं, एक रांम बिन आज ॥ १ ॥
पार न पहुँचे रांम बिन, भेरा भव जल मांहिं ।
तारणहारा एक तूं, दूजा कोई नांहिं ॥ २ ॥
पार परोहन तो चले, तुम्ह पेवहु सिरजनहार ।
भवसागर में डूबि है, तुम्ह बिन प्रांण अधार ॥ ३ ॥
औघट दरिया क्यों तिरै, बोहिथ बैसणहार ।
दादू पेवट रांम बिन, कौंण उतारे पार ॥ ४ ॥

॥ शब्द १४ ॥

पार नहिं पाइये रे, रांम बिना को निर्वाहण हार ॥ टेक ॥
तुम्ह बिन तारण को नहीं, दूभर यहु संसार ।
पैरति थाके केसवा, सूझै वार न पार ॥ १ ॥
विषम भयानक भवजला, तुम्ह बिन भारी होइ ।
तूं हरि तारण केसवा, दूजा नांहीं कोइ ॥ २ ॥
तुम्ह बिन पेवट को नहीं, अतिर तिरयो नहिं जाइ ।
औघट भेरा डूबि है, नांहीं आंन उपाइ ॥ ३ ॥
यहु घट औघट विषम है, डूबत मांहिं सरीर ।
दादू काइर रांम बिन, मन नहिं बांधे धीर ॥ ४ ॥

॥ शब्द १५ ॥

क्यूं हम जीवें दास गुसांईं, जे तुम छाड़हु समर्थ सांईं ॥ टेक ॥

(१५-२) पुस्तक नं० १ में "निन्यारे" की जगह "निनावरे" है, पुस्तक नं० २ में "निनयारे", पुस्तक नं० ३ और ५ में "निनारे" । इसका तात्पर्य न्यारे है ॥

जे तुम जन कौं मनहिं बिसारा, तौ दूसर कौंण संभालनहारा ॥१॥
जे तुम परहरि रहो निन्यारे, तौ सेवग जाइ कवन के द्वारे ॥२॥
जे जन सेवग बहुत बिगारै, तौ साहिब गरवा दोस निवारै ॥३॥
समर्थ सांई साहिब मेरा, दादू दास दीन है तेरा ॥ ४ ॥

॥ शब्द १६ ॥ करुणा ॥

क्यूं करि मिले मोकौं रांम गुसांई, यहु बिषिया मेरे वसि नांहीं ॥टेक॥
यहु मन मेरा दह दिसि धावै, नियरे रांम न देषन पावै ॥१॥
जिभ्या स्वाद सबै रस लागे, इंद्री भोग बिषै कौं जागे ॥२॥
श्रवनहुं साच कदे नहिं भावे, नैंन रूप तहं देषि लुभावै ॥३॥
कांम क्रोध कदे नहिं छीजै, लालचि लागि बिषै रस पीजे ॥४॥
दादू देषि मिले क्यों सांई, बिषै बिकार वसैं मन मांहीं ॥५॥

॥ शब्द १७ ॥ प्रचय बिनती ॥

जो रे भाई रांम दया नहिं करते, नवका नांव पेवट हरि आपै,
यौं विन क्यों निसतरते ॥ टेक ॥
करणीं कठिन होत नहिं मोपैं, क्यों कर ये दिन भरते।
लालचि लागि परत पावक में, आपहि आपैं जरते ॥ १ ॥
स्वादहि संग बिषै नहिं छूटे, मन निहचल नहिं धरते।
षाय हलाहल सुष के तांई, आपैं ही पचि मरते ॥ २ ॥
मैं कांमी कपटी क्रोध काया में, कूप परत नहिं डरते।
करवत कांम सीसधरि अपनैं, आपहि आप बिहरते ॥ ३ ॥
हरि अपनां अंग आप नहिं छाडे, अपनी आप विचरते।
पिता क्यूं पूत कूं मारे, दादू यूं जन तिरते ॥ ४ ॥

(१६-१) नियरे=नेरे ॥

॥ शब्द १८ ॥ विरह बिलाप बिनती ॥

तौ लग जिनि मारैं तूं मोहि, जौ लग मैं देषौं नहिं तोहि ॥ टेक ॥
इब के बिछुरे मिलन कैसैं होइ, इहि बिधि बहुरि न चीन्हें कोइ॥१॥
दीन दयाल दया करि जोइ, सब सुष आनंद तुम्हथैं होइ ॥२॥
जन्म जन्म के बंधन षोइ, देषन दादू अहिनिसि रोइ ॥ ३ ॥

॥ शब्द १९ ॥ सपरम बिनती ॥

संग न छाड़ौं मेरा पावन पीव, मैं बलि तेरे जीवनि जीव॥ टेक॥
संगि तुम्हारे सब सुष होइ, चरण कवल मुष देषौं तोहि॥१॥
अनेक जतन करि पाया सोइ, देषौं नैंनहुं तौ सुष होइ ॥२॥
सरणि तुम्हारी अंतरि बास, चरण कवल तहं देहु निवास ॥३॥
अब दादू मन अनत न जाइ, अंतरि बेधि रह्यौ ल्यौ लाइ ॥४॥

॥ शब्द २० ॥ परचै बिनती (गुजराती भाषा) ॥

नहिं मेलूं रांम, नहिं मेलूं, मे शोधि लीधो नहिं मेलूं,
चित्त तूं मूं बांधूं नहिं मेलूं ॥ टेक ॥
हूं तारे काजे तालावेली, हवे केम मने जाशे मेली ॥ १ ॥

(शब्द २०) मेलूं=छोड़ूं । शोधि लीधो = खोजलिया । तालाबेली = बेकल । हवे = अब । केम = किस तरह । जाशे = जायगा । चरण समानो = दीर्घ काल को । केवी परे = किस विधि । काढ़ौं = बिताऊं । राखिश = राखूंगा । दुहिले पाम्यौ = कठिनाई से पाया ॥

"हूं तारे कामे तालावेली," मैं तेरे लिये तड़फड़ा रहा हूं ।
"साहसि तूं न मन मों गाढ़ो, चरण समानो केवी परे काढ़ौं" यहां दयालजी अपने आप को कहते हैं कि "तू न तो साहसी है और न मन कर के दृढ़ है, सो परमेश्वर की जुदाई के दीर्घ काल को कैसे काटेगा"?

साहसि तूं न मनसौं गाढ़ौ, चरण समानो केवी पेरे काढ़ौ ॥२॥
राषिश हृदे, तूं मारो स्वामी, में दुहिले पाम्यों अंतरजामी॥३॥
हवे न मेलूं, तूं स्वामी मारो, दादू सन्मुष सेवक तारो ॥४॥

॥ शब्द २१ ॥ परचै करुणा विनती ॥

रांम, सुनहु न विपति हमारी हो, तेरी मूरति की बलिहारी हो॥टेक॥
में जु चरण चित चाहनां, तुम सेवग साधारनां ॥ १ ॥
तेरे दिन प्रति चरण दिषावनां, करि दया अंतरि आवनां॥२॥
जन दादू विपति सुनावनां, तुम गोविंद तपति बुझावनां ॥३॥

॥ शब्द २२ ॥ परचै विनती-प्रश्न ॥

कौण भांति भल मांनैं गुसांई, तुम भावै सो मैं जांनत नांहीं॥टेक॥
कै भल मांनैं नाचैं गायें. कै भल मांनैं लोक रिझायें ॥ १ ॥
कै भल मांनैं तीरथ न्हायें, कै भल मांनैं मूंड मुड़ायें ॥ २ ॥
कै भल मांनैं सब घर त्यागी, कै भल मांनैं भये वैरागी ॥ ३ ॥
कै भल मांनैं जटा बधायें, कै भल मांनैं भसम लगायें ॥ ४ ॥
कै भल मांनैं वन वन डोलें, कै भल मांनैं मुषहि न बोलें॥ ५ ॥
कै भल मांनैं जप तप कीयें. कै भल मांनैं करवत लीयें॥ ६॥
कै भल मांनैं ब्रह्म गियानीं, कै भल मांनैं अधिक धियानीं॥ ७॥
जे तुम्ह भावै सो तुम्ह पै आहि, दादू न जांणें कहि समझाइ॥८॥

॥ साषी उत्तर ॥

दादू जे तूं समझै तो कहौं, साचा एक अलेप । १४-६ ॥
डाल पांन तजि मूल गहि, क्या दिषलावै भेष ॥ १ ॥

(शब्द २२-८) "तुम्ह पै आहि" = तुम ही को आता है, तुम ही जानते हो ॥

दादू सचु बिन सांईं ना मिले, भावै भेष बनाइ ॥ (१४-४०)
भावै करवत उरध मुषि, भावै तीरथ जाइ ॥ २ ॥

॥ शब्द २३ ॥ परचै बिनती ॥

अहो गुण तोर, अवगुण मोर, गुसांईं, तुम्ह कृत कीन्हां।
सो मैं जांनत नांहीं ॥ टेक ॥
तुम्ह उपगार किये हरि केते, सो हम बिसरि गये।
आप उपाइ अगिनि मुषि राषे, तहां प्रतिपाल भये हो गुसांईं॥१॥
नष सिष साजि किये हो सजीवनि, उदरि आधार दिये।
अन्नपांन जहं जाइ भसम ह्वै, तहं तें राषि लिये हो गुसांईं ॥२॥
दिन दिन जांनि जतन करि पोषे, सदा समीप रहे।
अगम अपार किये गुन केते, कबहूं नांहिं कहे हो गुसांईं॥३॥
कबहूं नांहिं न तुम्ह तन चितवत, माया मोह परे।
दादू तुम्ह तजि जाइ गुसांईं, बिषिया मांहिं जरे हो गुसांईं॥४॥

॥ शब्द २४ ॥ उपदेश चितावणी ॥

कैसे जीविये रे, सांईं संग न पास, चंचल मन निहचल नहीं,
निस दिन फिरै उदास ॥ टेक ॥
नेह नहीं रे रांम का, प्रीति नहीं परकास।
साहिब का सुमिरण नहीं, करे मिलन की आस ॥ १ ॥
जिस देपै तूं फूलिया रे, पांणीं प्यंड बधांणां मास।
सो भी जलि बलि जाइगा, झूठा भोग बिलास ॥ २ ॥

(शब्द २४-३) तौ जीवीजै जीवणां सुमिरै सासैं सास=जो सांसे सांस (सदा) परमेश्वर का सुमिरण करता रहे, तो जीवना जीवने योग्य है ॥

तौ जीवीजे जीवणां, सुमिरे सासैं सास ।
दादू परगट पिव मिले, तौ अंतरि होइ उजास ॥ ३ ॥

॥ शब्द २५ ॥ हित उपदेस ॥

जियरा मेरे सुमिरि सार, कांम क्रोध मद तजि बिकार ॥टेक॥
तूं जिनि भूले मन गंवार, सिर भार न लीजै, मांनि हार॥ १ ॥
सुणि समझायौ वार वार, अजहूं न चेते, हो हुसियार॥२ ॥
करि तैसें भव तिरिये पार, दादू इब थैं यही विचार ॥ ३ ॥

॥ शब्द २६ ॥ भय चितावणी ॥

जियरा चेति रे, जिनि जारे, हेजें हरिसौं प्रीति न कीन्ही ।
जनम अमोलिक हारे ॥ टेक ॥
बेर बेर समझायो रे जियरा, अचेत न होइ गंवारे ।
यहु तन है कागद की गुड़िया, कछु एक चेत बिचारे ॥ १ ॥
तिल तिल तुझ कौं हाणि होत है, जे पल राम बिसारे ।
भौ भारी दादू के जिय मैं, कहु कैसें करि डारे ॥ २ ॥

॥ शब्द २६½ ॥ कालघड़ ॥

जियरा काहे रे मूढ डोले । वनवासी लाला पुकारे ।
तुंहीं तुंहीं करि बोले ॥ टेक ॥
साथ सवारी ले न गयोरे, चालण लागौ बोलै ।
तव जाइ जियरा जांणैगौ रे, बांधे ही कोइ पोलै ॥ १ ॥
तिल तिल मांहें चेत चलीरे, पंथ हमारा तोलै ।
गहिला दादू कछू न जांणै, राषि ले मेरे मोलै ॥ २ ॥

(२६½) यह शब्द साली पुस्तक नं० ३ में है ॥

॥ शब्द २७ ॥ अमवल वैराग ॥

ता सुष कौं कहौ का कीजै, जाथें पल पल यहु तन छीजै॥ टेक॥
आसण कुंजर सिरि छत्र धरीजै, ताथें फिरि फिरि दुष सहीजै ॥ १॥
सेज संवारि सुंदरि संगि रमीजै, पाइ हलाहल, भर्मि मरीजै॥ २॥
यहु विधि भोजन मांनि रुचि लीजै, स्वाद संकुटि भरमि पासि परीजै ३
ये ताजि दादू प्रांण पतीजै, सब सुष रसनां रांम रसीजै॥ ४॥

॥ शब्द २८ ॥ उपदेस ॥

मन निर्मल तन निर्मल भाई, आंन उपाइ विकार न जाई॥ टेक॥
जो मन कोयला तौ तन कारा, कोटि करै नहिं जाइ विकारा॥ १॥
जो मन विसहर तौ तन भुवंगा, करै उपाइ विषै फुनि संगा ॥२॥
मन मैला तन उज्जल नांहीं, बहुत पचिहारे विकार न जांहीं॥ ३॥
मन निर्मल तन निर्मल होई, दादू साच विचारै कोई ॥ ४ ॥

॥ शब्द २९ ॥ उपदेस चितावणी ॥

मैं मैं करत सबै जग जावै, अजहूं अंध न चेतै रे ।
यहु दुनिया सब देषि दिवानी, भूलि गये हैं केते रे ॥ टेक ॥
मैं मेरे मैं भूलि रहे रे, साजन सोइ विसारा ।
आया हीरा हाथि अमोलिक, जन्म जुवा ज्यूं हारा ॥ १ ॥
लालच लोभैं लागि रहे रे, जांनत मेरी मेरा ।
आपहि आप विचारत नांहीं, तूं काकौं को तेरा ॥ २ ॥
आवत है सब जाता दीसै, इन मैं तेरा नांहीं ।
इन सौं लागि जन्म जिनि षोवै, सोधि देष सचु मांहीं ॥ ३ ॥
निहचल सौं मन मानैं मेरा, सांई सौं बनि आई ।
दादू एक तुम्हारा साजन, जिन यहु भुरकी लाई ॥ ४ ॥

॥ शब्द ३० ॥ निर्वेद उपदेस (ज्ञान विना सब फीका) ॥

का जिवनां का मरणां रे भाई, जो तैं रांम न रमसि अघाई ॥टेक॥
का सुप संपति छत्रपति राजा, वनखंडि जाइ वसे किहि काजा ॥१॥
का विद्या गुन पाठ पुरांनां, का मूरिष जो तैं रांम न जांनां॥२॥
का आसन करि अहनिसि जागे, का फिर सोवत रांम न लागे॥३॥
का मुकता का बंधे होई, दादू रांम न जांनां सोई ॥ ४ ॥

॥ शब्द ३१ ॥ मन प्रमोध ॥

मनरे, रांम विनां तन छीजे, जब यहु जाइ मिले माटी मैं।
तब कहु कैसें कीजे ॥ टेक ॥
पारस परसि कंचन करि लीजै, सहज सुरति सुपदाई।
माया बेलि, विषै फल लागे, तापरि भूलि न भाई ॥ १ ॥
जब लग प्रांण प्यंड है नीका, तब लग ताहि जिनि भूलै।
यहु संसार सेंवल के सुप ज्यूं, तापर तूं जिनि फूलै ॥ २ ॥
अवसर येह जानि जग जीवन, समझि देषि सचु पावै।
अंग अनेक आंन मति भूलै, दादू जिनि डहकावै ॥ ३ ॥

॥ शब्द ३२ ॥ मृगोक्त उपदेस ॥

मोह्यो मृग देषि वन अंधा, सूझत नहीं काल के फंधा ॥टेक॥
फूल्यौ फिरत सकल वन मांहीं, सिर सांधे सर सूझत नांहीं॥१॥
उदमादि मातौ वन के ठाट, छाडि चल्यौ सब बारहबाट ॥ २॥
फंध्यो न जानै वन के चाइ, दादू स्वादि बंधानौ आइ ॥ ३॥

(३०) जो तैं राम न रमसि अघाई = जो तू राम से पेटभर के न रमा (खेला, भजन किया) । अर्थात् अपने आत्म स्वरूप को पूर्ण रूप से साक्षात्कार कर के दीर्घ कालतक धारण न किया ।

॥ शब्द ३३ ॥ मन प्रति उपदेस ॥

काहे रे मन रांम विसारे, मनिया जन्म जाय जियहारे ॥टेक॥
मात पिता को बंध न भाई, सब ही सुपिना कहा सगाई ॥१॥
तन धन जोबन झूठा जांणीं, रांम हृदै धरि सारंगप्रांणीं ॥२॥
चंचल चित वित झूठी माया, काहे न चेतै सो दिन आया ॥३॥
दादू तन मन झूठा कहिये, रांमचरण गहि काहे न रहिये ॥४॥

॥ शब्द ३४ ॥ मनष देह माहात्म ॥

ऐसा जनम अमोलिक भाई, जामैं आइ मिलै रांम राई ॥टेक॥
जामैं प्राण प्रेम रस पीवै, सदा सुहाग सेज सुष जीवै ॥ १ ॥
आत्म आइ रांम सौं राती, अषिल अमर धन पावै थाती ॥२॥
परगट परसन दरसन पावै, परम पुरिष मिलि मांहिं समावै॥३।
ऐसा जन्म नहीं नर आवै, सो क्यूं दादू रतन गंवावै ॥ ४ ॥

॥ शब्द ३५ ॥ परचै सतसग ॥

सतसंगति मगन पाइये, गुर प्रसादैं रांम गाइये ॥ टेक ॥
आकास धरन धरीजे, धरनी आकास कीजे,
सुनि मांहैं निरषि लीजे ॥ १ ॥
निरषि मुकताहल मांहैं साइर आयौ,
अपने पीया हौं ध्यावत षोजत पायौ ॥ २ ॥
सोच साइर अगोचर लहिये, देव देहुरे मांहैं कवन कहिये ॥३॥
हरि कौ हितारथ ऐसौ लषै न कोई, दादू जे पीवै पावै अमर होई॥४॥

---

(३५) यह शब्द पुस्तक नं० १ में ही यहां है। नं ३ में शब्द ७४ के पीछे आया है। और उसमें अंत का पद इस भांति है:—
"दादू जे पीय पावै सु अम्र होई" ॥

॥ शब्द ३६ ॥ उपदेस चितावणी ॥

कौण जनम कहं जाता है, अरे भाई रांम छाडि कहं राता है ॥टेक॥
मैं मैं मेरी इनसौं लागि, स्वाद पतंग न सूझै आगि ॥ १ ॥
विषिया सौं रत गर्व गुमांन, कुंजर कांम बंधे अभिमांन ॥२॥
लोभ मोह मद माया फंध, ज्यौं जल मीन न चेतै अंध ॥३॥
दादू यहु तन यूंहीं जाइ, रांम विमुष मरि गये बिलाइ ॥४॥

॥ शब्द ३७ ॥

मन मूरिषा तैं क्या कीया, कुछ पीव कारणि बैराग न लीया।
रे तैं जप तप साधी क्या दीया ॥ टेक ॥
रे तैं करवत कासी कदि सह्या, रे तूं गंगा मांहैं नां बह्या।
रे तैं बिरहनि ज्यौं दुष नां सह्या ॥ १ ॥
रे तूं पालै पर्वत नां गल्या, रे तैं आपही आपा नां दह्या।
रे तैं पीव पुकारी कदि कह्या ॥ २ ॥
होइ प्यासे हरि जल नां पीया, रे तूं वजर, न फाटौ रे हीया
ध्रिग जीवन दादू ये जीया ॥ ३ ॥

॥ शब्द ३८ ॥

क्या कीजे मनिषा जन्म कौं, रांम न जपहि गंवारा।
माया के मदि मातौ बहै, भूलि रह्या संसारा ॥ टेक ॥
हिरदै रांम न आवई, आवै विषै विकारा रे।
हरि मारग सूझै नहीं, कूप परत नहिं वारा रे ॥ १ ॥
आपा अग्नि जु आप मैं, तायैं अहिनिसि जरै सरीरा रे।
भाव भगति भावै नहीं, पीवै न हरि जल नीरा रे ॥ २ ॥
मैं मेरी सब सूझई, सूझै माया जालो रे।

रांम नांम सूझै नहीं, अंध न सूझै कालो रे ॥ ३ ॥
ऐसैं हीं जनम गंवाइया, जित आया तित जाइ रे ।
रांम रसाइण नां पिया, जन दादू हेत लगाय रे ॥ ४ ॥

॥ शब्द ३९ ॥ परचै वैराग ॥

इनमैं क्या लीजे क्या दीजे, जनम अमोलिक छीजे ॥ टेक॥
सोवत सुपिनां होई, जागे थें नहिं कोई ।
मृगतृष्णां जल जैसा, चेति देपि जगु ऐसा ॥ १ ॥
बाजी भरम दिषावा, बाजीगर डहकावा ।
दादू संगी तेरा, कोई नहीं किस केरा ॥ २ ॥

॥ शब्द ४० ॥ चितावणी उपदेस ॥

पालिक जागे जियरा सोवे, क्यौं करि मेला होवे ॥ टेक ॥
सेज एक नहिं मेला, तायें प्रेम न पेला ॥ १ ॥
सांई संग न पाया, सोवत जन्म गंवाया ॥ २ ॥
गाफिल नींद न कीजे, आव घटै तन छीजे ॥ ३ ॥
दादू जीव अयांनां, झूठे भरमि भुलांनां ॥ ४ ॥

॥ राग जंगलो गौड़ी ॥

॥ शब्द ४१ ॥ पहरा (पंजाबी भाषा) ॥

पहले पहर रैंणि दे, वणिजारिआ. तूं आया इहि संसार वे ।
मायादा रस पीवण लागा, विसरथा सिरजनहार वे ॥
सिरजनहार. विसारा. किया पसारा, मात पिता कुल नारि वे ।

" रता नाले " = रता रहयाँ नाले ॥

झूठी माया, आप बंधाया, चेते नहीं गंवार वे ॥
गंवार न चेते, अवगुण केते, बंध्या सब परिवार वे ।
दादू दास कहै वणिजारा, तूं आया इहि संसार वे ॥ १ ॥
दूजे पहरे रैणि दे, वणिजारिया, तूं रत्ता तरुणी नाल वे ।
माया मोह फिरै मतवाला, रांम न सक्या संभालि वे ॥
रांम न संभाले, रत्ता नाले, अंध न सूझै काल वे ।
हरि नहिं ध्याया, जनम गंवाया, दह दिसि फूटा ताल वे ॥
दह दिसि फूटा, नीर निखूटा, लेखा डेवण साल वे ।
दादू दास कहै वणिजारा, तूं रत्ता तरुणी नाल वे ॥ २ ॥
तीजे पहरे रैणि दे, वणिजारिया, तैं बहुत उठाया भार वे ।
जो मनि भाया सो करि आया, नां कुछ किया विचार वे ॥
विचार न कीया, नांव न लीया, क्यों करि लंघै पार वे ।
पार न पावै फिरि पछितावै, डूबण लग्गा धार वे ॥
डूबण लग्गा भेरा भग्गा, हाथि न आया सार वे ।
दादू दास कहै वणिजारा, तैं बहुत उठाया भार वे ॥ ३ ॥
चौथे पहरे रैणि दे, वणिजारिया, तूं पक्का हूवा पीर वे ।
जोबन गया, जुरा वियापी, नांहीं सुधि सरीर वे ॥
सुधि ना पाई, रैनि गंवाई, नैनों आया नीर वे ।
भवजल भेरा डूबण लग्गा, कोई न बंधै धीर वे ।
कोई धीर न बंधै, जम के फंधे, क्यों करि लंघै तीर वे ।
दादू दास कहै वणिजारा, तूं पक्का हूवा पीर वे ॥ ४ ॥

(४१-३) भेरा भग्गा=नाव टूटी = शरीर पतन होने को आया अथवा कार्य बिगड़ने लगा ॥

॥ राग गौड़ी ॥

शब्द ४२ ॥ काल चितावणी ॥

काहे रे नर करहु डफांण, अंतिकालि घर गोर मसांण ॥ टेक ॥
पहले बलवंत गये बिलाइ, ब्रह्मा आदि महेसुर जाइ ॥ १ ॥
आगें होते मोटे मीर, गये छाडि पैकंबर पीर ॥ २ ॥
काची देह कहा गर्बानां, जे उपज्या सो सबै बिलांनां ॥ ३ ॥
दादू अमर उपांवनहार, आपहि आप रहै करतार ॥ ४ ॥

शब्द ४३ ॥ उपदेस ॥

इत घरि चोर न मूसै कोई, अंतरि है जे जांनैं सोई ॥ टेक ॥
जागहु रे जन तत न जाई, जागत है सो रह्या समाई ॥१॥
जतन जतन करि राषहु सार, तस्कर उपजैं कौन बिचार ॥२ ॥
इब करि दूजा जांणैं जे, तौ साहिब सरणांगति ले ॥ ३ ॥

शब्द ४४ ॥ उपदेश चितावणी ॥

मेरी मेरी करत जग षीनां, देषत ही चालि जावै ।
कांम क्रोध तृष्णां तन जालै, तार्थें पार न पावै ॥ टेक ॥
मूरिष ममिता जनम गंवावै, भूलि रहे इहि बाजी ।
बाजीगर कौं जांनत नांहीं, जनम गंवावै बादी ॥ १ ॥
परपंच पंच करै बहुतेरा, काल कुटंब के तांई ।
बिष के स्वादि सबै ये लागे, तार्थें चीन्हत नांहीं ॥ २ ॥

---

(४३) पहली पंक्ति का तात्पर्य यह है कि अंतर (हृदय में) जो परमेश्वर है तिसको जो जानता है उसके घर (शरीर) में कामादिक चोर कोई हानि नहीं कर सकते ॥ मूसै = चुरावैं, "इबकरि" = इस प्रकार ॥

येता जिय में जांनत नांहीं, आइ कहां चलि जावै।
आगें पीछें समझै नांहीं, मूरिष यूं डहकावै ॥ ३ ॥
ये सब भरम भानि भल पावै, सोधि लेहु सो सांई।
सोई एक तुम्हारा साजन, दादू दूसर नांहीं ॥ ४ ॥

॥ शब्द ४५ ॥

गर्व न कीजिये रे, गर्वे होई विनांस।
गर्वे गोविंद नां मिलै, गर्वे नरक निवास ॥ टेक ॥
गर्वे रसातालि जाइये, गर्वे घोर अंधार।
गर्वे भौजल डूबिये, गर्वे वार न पार ॥ १ ॥
गर्वे पार न पाइये, गर्वे जमपुरि जाइ।
गर्वे को छूटे नहीं, गर्वे बंधे आइ ॥ २ ॥
गर्वे भाव न ऊपजे, गर्वे भगति न होइ।
गर्वे पिव क्यों पाइये, गर्व करै जिनि कोइ ॥ ३ ॥
गर्वे बहुत विनांस है, गर्वे बहुत विकार।
दादू गर्व न कीजिये, सनमुष सिरजनहार ॥ ४ ॥

॥ शब्द ४६ ॥ हित उपदेश ॥

हुसियार रहो, मन, मारैगा, सांई सतगुर तारैगा ॥ टेक ॥
माया का सुष भावै, मूरिष मन बौरावै रे ॥ १ ॥
झूठ साच करि जांनां, इन्द्री स्वादि भुलांनां रे ॥ २ ॥
दुष कों सुष करि मांनैं, काल झाल नहिं जांनैं रे ॥ ३ ॥
दादू कहि समझावै, यहु अवसर बहुरि न पावै रे ॥ ४ ॥

॥ शब्द ४७ ॥ वेसास ॥

साहिब जी सत मेरा रे, लोग झपें वहु तेरा रे ॥ टेक ॥

जीव जन्म जब पाया रे, मस्तकि लेप लिखाया रे ॥ १ ॥
घटै बधै कुछ नांहीं, कर्म लिख्या उस मांहीं रे ॥ २ ॥
बिधाता बिधि कीन्हां, सिराजि सबनि कों दीन्हां रे ॥ ३ ॥
समर्थ सिरजनहारा, सो तेरे निकटि गंवारा रे ॥ ४ ॥
सकल लोक फिरि आवै, तो दादू दीया पावै रे ॥ ५ ॥

॥ शब्द ४८ ॥

पूरि रह्या परमेसुर मेरा, अणमांग्या देवै बहुतेरा ॥ टेक ॥
सिरजनहार सहज मैं देइ, तौ काहे धाइ मांगि जन लेइ ॥१॥
बिसंभर सब जग कों पूरे, उदर काजि नर काहे झूरे ॥ २ ॥
पूरिक पूरा है गोपाल, सब की चींत करै दरहाल ॥ ३ ॥
समर्थ सोई है जगनाथ, दादू देषु रहै संग साथ ॥ ४ ॥

॥ शब्द ४६ ॥ नाम विस्वास ॥

रांम धन पात न षूटै रे, अपरंपार पार नहिं आवै, आथि न टूटै रे।टेक
तस्कर लेइ न पावक जालै, प्रेम न छूटै रे।
चहुं दिसि पसरयौ बिन रषवाले, चोर न लूटै रे ॥ १ ॥
हरि हीरा है रांम रसाइण, सरस न सूकै रे।
दादू और आथि बहुतेरी, उस नर कूटै रे ॥ २ ॥

शब्द ५० ॥ तत्त उपदेस ॥

तूंहै तूंहै तूंहै तेरा, मैं नहिं मैं नहिं मैं नहिं मेरा ॥ टेक ॥

---

(४६) "दादू और आथि बहुतेरी" ॥ दयालजी कहते हैं कि रामधन के सिवाय जो और धन है उसके पीछे नर नरह २ की मार कूट करते हैं; रामधन को चुराने झगड़ने वाला कोई नहीं है ॥

(५०-३) "मैं मैं मेरा तिन सिरि भार" = जो जन जगत में आपन-

तूं है तेरा जगत उपाया, मैं मैं मेरा धंधै लाया ॥ १ ॥
तूं है तेरा पेल पसारा, मैं मैं मेरा कहै गंवारा ॥ २ ॥
तूं है तेरा सब संसारा, मैं मैं मेरा तिन सिरि भारा ॥ ३ ॥
तूं है तेरा काल न पाइ, मैं मैं मेरा मरि मरि जाइ ॥ ४ ॥
तूं है तेरा रह्या समाइ, मैं मैं मेरा गया बिलाइ ॥ ५ ॥
तूं है तेरा तुमहीं मांहिं, मैं मैं मेरा मैं कुछ नांहिं ॥ ६ ॥
तूं है तेरा तूं हीं होइ, मैं मैं मेरा मिल्या न कोइ ॥ ७ ॥
तूं है तेरा लंघे पार, दादू पाया ग्यांन विचार ॥ ८ ॥

॥ शब्द ५१ ॥ संजीवनि ॥

रांम विमुष जग मरि मरि जाइ, जीवें संत रहे ल्यौ लाइ। टेक॥
लीन भये जे आतमरांमां, सदा सजीवनि कीये नांमां ॥ १ ॥
अमृत रांम रसाइन पीया, ता थैं अमर कबीरा कीया ॥ २ ॥
रांम रांम कहि रांम समांनां, जन रैदास मिले भगवांनां॥३॥
आदि अंति केते कलि जागे, अमर भये अविनासी लागे ॥४॥
रांम रसाइन दादू माते, अविचल भये रांम रंगि राते॥ ५ ॥

॥ शब्द ५२ ॥

निकटि निरंजन लागि रहे, तब हम जीवत मुकत भये। टेक॥
मरि करि मुकति जहां जग जाइ, तहां न मेरा मन पति आइ॥१॥
आगैं जन्म लहैं औतारा, तहां न मांनैं मना हमारा ॥ २॥
तन छूटे गति जो पद होइ, मृतक जीव मिलै सब कोइ ॥३॥
जीवत जन्म सुफल करि जांनां, दादू रांम मिले मन मांनां ॥ ४॥

पीका अभिनिवेश (गुमान) रखते हैं उन के ही शिर पर जगत का भार (सुख दुःख) पड़ता है ॥

शब्द ५३ ॥ हैरान मरन ॥

कादिर कुदरति लषी न जाइ, कहां थें उपजे कहां समाइ ॥टेक॥
कहां थें कीन्ह पवन अरु पांनीं, धरनि गगन गति जाइ न जांनीं ॥१॥
कहां थें काया प्रांण प्रकासा, कहां पंच मिलि एक निवासा ॥२॥
कहां थें एक अनेक दिषावा, कहां थें सकल एक ह्वै आवा ॥३॥
दादू कुदरति बहुत हैरांनं, कहां थें राषि रहे रहिमांनां ॥ ४ ॥

॥ साषी उत्तर की ॥

रहै नियारा सब करै, काहू लिप्त न होइ ।
आदि अंति भानै घड़ै, असा समरथ सोई । (२१-२६)
सुरम नहीं सब कुछ करै, यों कलधरी बनाइ ॥
कौनिगहारा ह्वै रह्या, सब कुछ होता जाइ । (२१-३१)
दादू सबदैं बंध्या सब रहै, सबदैं ही सब जाइ ।
सबदैं हीं सब ऊपजे, सबदैं सबै समाइ ॥ (२२-२)

शब्द ५४ ॥ सरूपगति हैरान ॥

असा रांम हमारै आवै, वार पार कोइ अंत न पावै ॥ टेक ॥
हलका भारी कह्या न जाइ, मोल माप नहिं रह्या समाइ ॥१॥
कीमत लेषा नहिं परिमांण, सब पचि हारे साध सुजांण ॥२॥
आगो पीछो परिमित नांहीं, केते पारिष आवहिं जांहीं ॥ ३ ॥
आदि अंत मधि कहै न कोइ, दादू देषे अचिरज होइ ॥४॥

॥ शब्द ५५ ॥ प्रश्न ॥

कौंण सबद कौंण परषणहार, कौंण सुरति कहु कौंण बिचार ॥टेक॥
कौंण सुज्ञाता कौंण गियांन, कौंण उन्मनी कौंण धियांन ॥१॥
कौंण सहज कहु कौंण समाध, कौंण भगति कहु कौंण अराध ॥२॥

कौंण जाप कहु कौंण अभ्यास, कौंण प्रेम कहु कौंण पियास ॥३॥
सेवा कौंण कहौ गुरदेव, दादू पूछै अलप अभेव ॥ ४ ॥

॥ साषी उत्तर की ॥

आपा मेटै हरि भजै, तन मन तजै विकार ।
निर्वैरी सब जीवसौं, दादू यहु मत सार (२९–२)
आपा गर्व गुमान तजि, मद मंछर हंकार ।
गहै गरीबी बंदगी, सेवा सिरजनहार (२३–५)

॥ शब्द ४६ ॥ प्रश्न ॥

मैं नहिं जांनौं सिरजनहार, ज्यूं है त्यूंहि कहौ करतार ॥टेक॥
मस्तक कहां कहां कर पाइ, अविगत नाथ कहो समझाइ ॥१॥
कहं मुष नैंनां श्रवणां सांई, जांनराइ सब कहौ गुसांई ॥२॥
पेट पीठि कहां है काया, पड़दा पोलि कहौ गुरराया ॥ ३ ॥

(२९–२) इस साखी में दयालजी "सार मत" बतलाते हैं, इससे सब रिद्धि सिद्धि परमानंद जीवन्मुक्ति प्राप्त हो सकती हैं ॥

आपा=खुदी । जिस अहंकार से मनुष्य अपने आप को औरों से अलग मानता है उस अभिमान को मन से त्यागना चाहिये और सर्व सृष्टि में परम सत्ता (परमेश्वर) को ही देखना चाहिये, उसी परम ज्योति में लय लगी रहनी चाहिये, जगत व्यौहार करते समय भी ध्यान वहीं रहना चाहिये ।

तन के विकार कुमार्ग की ओर गमनागमन, महारादि अनिष्ट क्रियायें, तैसे शारीरिक रोगादि हैं । इनमें तन को शुद्ध रखना जरूर है, रोगों से बचने और छूटने के उपाय युक्त अहार विहार और शुद्ध संकल्प हैं ।

मन के विकार राग द्वेष काम क्रोध लोभ मोह भय ईर्षा चित्त की अशांति, अज्ञानादि संपूर्ण द्वैत कल्पना हैं, इनसे मन और बुद्धि को शुद्ध रखना आवश्यक है, तैसे ही सर्व जीवमात्र से निर्वैरता रखनी उचित है ॥

ज्यों है त्यों कहि अंतरजांमीं, दादू पूछै सतगुर स्वांमीं ॥ ४॥

॥ सापी उत्तर की ॥

दादू सबै दिसा सो सारिषा, सबै दिसा मुप बैंन ।
सबै दिसा श्रवणहुं सुणैं, सबै दिसा कर नैंन॥(४–२१४)
सबै दिसा पग सीस हैं, सबै दिसा मन चैन ।
सबै दिसा सन्मुप रहै, सबै दिसा अंग अैन॥ (४–२१५)

॥ शब्द ५७ ॥ प्रश्न ॥

अलप देव गुर देहु बताइ, कहां रहौ त्रिभुवन पति राइ ॥टेक॥
धरती गगन बसहु कविलास, तिहूं लोक में कहां निवास॥१॥
जल थल पावक पवनां पूरि, चंद सूर निकट कै दूरि ॥ २ ॥
मंदिर कौंण कौंण घरबार, आसण कौंण कहौ करतार ॥३॥
अलप देव गति लषी न जाइ, दादू पूछै कहि समझाइ ॥४॥

॥ सापी उत्तर की ॥

दादू मुझ ही मांहैं मैं रहूं, मैं मेरा घरबार ।
मुझ ही मांहैं मैं बसूं, आप कहै करतार ॥ (४–२१०)
दादू मैं ही मेरा अरस मैं, मैं ही मेरा थान ।
मैं ही मेरी ठौर मैं, आप कहै रहिमान ॥ (४–२११)
दादू मैं ही मेरे आसिरै, मैं मेरै आधार ।
मेरे तकिये मैं रहूं, कहै सिरजनहार ॥ (४–२१२)
दादू मैं ही मेरी जाति मैं, मैं ही मेरा अंग ।
मैं ही मेरा जीव मैं, आप कहै परसंग ॥ (४–२१३)

॥ शब्द ५८ ॥ रस ॥

रांम रस मीठा रे, पीवै साध सुजांण ।

सदा रस पीवै प्रेम सौं, सो अविनासी प्रांण ॥ टेक ॥
इहि रसि मुनि लागे सबै, ब्रह्मा विश्व महेस ।
सुरनर साधू संत जन, सो रस पीवै सेस ॥ १ ॥
सिध साधिक जोगी जती, सती सबै सुषदेव ।
पीवत अंत न आवई, ऐसा अलष अभेव ॥ २ ॥
इहि रसि राते नांमदेव, पीपा अरु रैदास ।
पिवत कबीरा ना थक्या, अजहूं प्रेम पियास ॥ ३ ॥
यहु रस मीठा जिन पिया, सो रस ही मांहिं समाइ ।
मीठे मीठा मिलि रह्या, दादू अनत न जाइ ॥ ४ ॥

॥ शब्द ५६ ॥

मन मतिवाला मधु पीवै, पीवै वारंवारो रे ।
हरि रसि रातो रांम के, सदा रहै इकतारो रे ॥ टेक ॥
भाव भगति भाठी भई, काया कसणी सारो रे ।
पोता मेरे प्रेम का, सदा अपंडित धारो रे ॥ १ ॥
ब्रह्म अगनि जोबन जरै, चेतन चितहि उजासो रे ।
सुमति कलाली सारवै, कोइ पीवै विरला दासो रे ॥ २ ॥
प्रीति पियाले पीव हीं, छिन २ वारंवारो रे ।
आपा भन सब सोंपिया, तब रस पाया सारो रे ॥ ३ ॥
आपा पर नहिं जांणिया, भूलो माया जालो रे ।
दादू हरि रस जे पिवै. ताकौं कदे न लागै कालो रे, ॥ ४ ॥

(५६) भाठी = भट्टी रस खेंचने की । "कायाकसणी" = काया की कसौटी रूपी तप में सार निकालो । "पोता" = लीपना पोतना । कलाली = आगर (दारू) ॥

॥ शब्द ६० ॥

रस के रसिया लीन भये, सकल शिरोमणि तहां गये ॥ टेक ॥
रांम रसाइण अमृत माते, अविचल भये नरकि नहिं जाते ॥१॥
रांम रसाइण भरि भरि पीवै, सदा सजीवन जुगि जुगि जीवै ॥२॥
रांम रसाइण त्रिभुवन सार, रांम रसिक सब उतरे पार ॥३॥
दादू अमली बहुरि न आये, सुष सागर ता मांहिं समाये ॥४॥

॥ शब्द ६१ ॥ भेष ॥

भेष न रीझै मेरा निज भर्तार, तार्थे कीजे प्रीति बिचार ॥ टेक ॥
दुराचारनी रचि भेष बनावै, सील साच नहिं पिव कौं भावै ॥१॥
कंत न भावै करे सिंगार, डिंभपणैं रीझै संसार ॥ २ ॥
जो पैं पतिव्रता ह्वै है नारी, सो धन भावै पियहिं पियारी ॥३॥
पीव पहिचांनैं आंन नहिं कोई, दादू सोई सुहागनि होई ॥४॥

॥ शब्द ६२ ॥

सब हम नारी एक भरतार, सब कोई तनि करे सिंगार ॥ टेक ॥
घरि घरि अपने सेज संवारै, कंत पियारे पंथ निहारै ॥ १ ॥
आरति अपनी पीव कौं धावै, मिलै नाह कब अंगि लगावै ॥ २ ॥
अति आतुर ये पोजत डोलैं, बानि परी बिवोगनि बोलैं ॥ ३ ॥
सब हम नारी दादू दीन, दे सुहाग काहू संग लीन ॥ ४ ॥

॥ शब्द ६३ ॥ आतमार्थी भेष ॥

सोई सुहागनि साच सिंगार, तन मन लाइ भजै भरतार ॥ टेक ॥
भाव भगति प्रेम ल्यौ लावै, नारी सोई सार सुष पावै ॥१॥
सहज संतोष सील सब आया, तब नारी नाह अमोलिक पाया ॥२॥
तन मन जोबन सौंपि सब दीन्हां,

तब कंत रिझाइ आप बसि कीन्हां ॥ ३ ॥
दादू बहुरि वियोग न होई, पिव सौं प्रीति सुहागनि सोई ॥४॥

शब्द ६४ ॥ समता ॥

तब हम एक भये रे भाई, मोहन मिलि साची मति आई ॥टेक॥
पारस परसि भये सुषदाई, तब दुतिया दुर्मति दूरि गंवाई ॥१॥
मलियागिरि मरम मिलि पाया, तब बंस बरन कुल भर्म गंवाया॥२॥
हरि जल नीर निकटि जब आया,
तब बूंद बूंद मिलि सहजि समाया ॥ ३ ॥
नांनां भेद भर्म सब भागा, तब दादू एक रंगै रंग लागा॥ ४॥

॥ शब्द ६५ ॥

अलह रांम छूटा भ्रम मोरा, हिंदू तुरक भेद कुछ नांहीं,
देषौं दर्सन तोरा ॥ टेक ॥
सोई प्रांण प्यंड पुनि सोई, सोई लोही मासा ।
सोई नैंन नासिका सोई, सहजैं कीन्ह तमासा ॥ १ ॥
श्रवणौं सबद बाजता सुणियें, जिभ्या मीठा लागै ।
सोई भूष सबन कौं व्यापै, एक जुगति सोइ जागै ॥ २ ॥
सोई संधि बंध पुनि सोई, सोइ सुष सोई पीरा ।
सोई हस्त पांव पुनि सोई, सोई एक सरीरा ॥ ३ ॥
यहु सब षेल पालिक हरि तेरा, तैंहि एक कर लीनां ।
दादू जुगति जांनि करि ऐसी, तब यहु प्रांन पतीनां ॥ ४ ॥

॥ शब्द ६६ ॥

भाइ रे ऐसा पंथ हमारा, द्वै पष रहित पंथ गहि पूरा.
अवरण एक अधारा ॥ टेक ॥

वाद विवाद काहू सौं नांहीं, मांहिं जगत थें न्यारा ।
समदृष्टी सुभाइ सहज में, आपहि आप विचारा ॥ १ ॥
मैं तैं मेरी यहु मति नांहीं, निर्वैरी निरकारा ।
पूरण सबै देषि आपा पर, निरालंब निर्धारा ॥ २ ॥
काहू के संगि मोह न ममिता, संगी सिरजनहारा ।
मनहीं मनसौं समझि सयांनां, आनंद एक अपारा ॥ ३ ॥
कांम कल्पनां कदे न कीजै, पूरण ब्रह्म पियारा ।
इहि पंथि पहुंचि पार गहि दादू, सो तत सहजि संभारा ॥ ४॥

॥ शब्द ६७ ॥ परचै हैरान ॥

अैसो पेल वन्यौ मेरी माई, कैसैं कहौं कछु जान्यौ न जाई ॥टेक॥
सुरनर मुनिजन अचिरज आई, रांमचरण कोइ भेद न पाई ॥१॥
मंदिर माहैं सुरति समाई, कोऊ है सो देहु दिपाई ॥ २ ॥
मनहिं विचार करहु ल्यौ लाई, दिवा समानां कहं जोति छिपाई॥३॥
देहि निरांति सुंनि ल्यौ लाई, तहं कौंण रमै कौंण सूता रे भाई॥४॥
दादू न जांणैं ये चतुराई, सोइ गुर मेरा जिन सुधि पाइ ॥५॥

॥ शब्द ६८ ॥ प्रश्न ॥

भाई रे घरही में घर पाया, सहजि समाइ रह्यो ता मांहीं,
सतगुर पोज वताया ॥ टेक ॥
ता घर काजि सबै फिर आया, आपै आप लपाया ।
पोलि कपाट महल के दीन्हैं, थिर अस्थांन दिखाया ॥ १ ॥

(६७) मंदिर=हृदय वा त्रिकुटी । दीवा=मन । जोति=मनसा । निरांति=भीतर । सुंनि=शांतपद । रमै=ब्रम्हसाक्षात्कार में मग्न । सूता = ब्रम्ह से विमुख ॥
(६८) घर=शरीर तिसमें आतमरूपी आश्रय पाया ॥

भय औ भेद, भर्म सब भागा, साच सोइ मन लागा।
प्यंड परे जहां जिव् जावै, तामैं सहजि समाया ॥ २ ॥
निहचल सदा चलै नहिं कबहूं, देष्या सब मैं सोई।
ताही सौं मेरा मन लागा, और न दूजा कोई ॥ ३ ॥
आदि अनंत सोई घर पाया, इव मन अनत न जाई।
दादू एक रंगे रंग लागा, तामैं रह्या समाई ॥ ४ ॥

॥ शब्द ६९ ॥ मानसी तीर्थ ॥

इत है नीर नहांवन जोग, अनतहि भ्रमि भूला रे लोग ॥ टेक ॥
तिहि तटि न्हांयें निर्मल होइ, वस्त अगोचर लषै रे सोइ ॥ १ ॥
सुघट घाट अरु तिरिवौ तीर, बैठे तहां जगत गुरपीर ॥ २ ॥
दादू न जांणैं तिन का भेव्, आप लषावै अंतरि देव् ॥ ३ ॥

॥ शब्द ७० ॥

ऐसा ग्यांन कथौ मन ग्यांनी,
इहि घरि होइ सहजि सुष जांनीं ॥ टेक ॥
गंग जमुन तहं नीर नहाइ, सुषमन नारी रंग लगाइ ॥ १ ॥
आप तेज तन रह्यो समाइ, मैं बलि ताकी देषौं अघाइ ॥ २ ॥
वास निरंतर सो समझाइ, बिन नैंनहुं देष तहं जाइ ॥ ३ ॥

(७०) गंगा जमुना का मेल त्रिवेणी पर होता है। त्रिवेणी नाम त्रिकुटी का भी है, अथवा ईड़ा पिंगला दोनों नाड़ियों के मेल से सुषमना नाड़ी चलती है, उसी में योगीराज ध्यान जमाते हैं। त्रिकुटी अस्थान और सुषमना नाड़ी के प्रवाह में स्नानरूपी ध्यान करैं तब ब्रम्ह तेज का विस्तार काया के अन्दर बाह्य नेत्रों के बिना ही देखने में आवे। इस अगम अपार आधार में सहज आनन्द की प्राप्ति है। देखो शब्द ७१-७२ ॥

दादू रे यहु अगम अपार, सो धन मेरे अधर अधार ॥ ४ ॥

॥ शब्द ७१ ॥ परचै सत्संग ॥

इय तो ऐसी बानि आई, रांम चरण बिन रह्यो न जाई ॥टेक॥
सांई कौं मिलिबे के कारनि, त्रिकुटी संगम नीर नहाई।
चरण कवल की तहं ल्यौ लागे, जतन जतन करि प्रीति बनाई॥१॥
जे रस भीनां छावरि जावे, सुंदरि सहजैं संग समाई।
अनहद बाजे बाजन लागे, जिभ्याहीणें कीरति गाई॥ २ ॥
कहा कहौं कुछ बरणि न जाई, अविगति अंतरि जोति जगाई।
दादू उन को मरम न जानैं, आप सुरंगे बेन बजाई ॥३॥

॥ शब्द ७२ ॥

नीके रांम कहत है बपरा, घर मांहैं घर निर्मल रापे,
पंचों धोवै काया कपरा ॥ टेक ॥
सहज समर्पण सुमिरण सेवा, तिरवेणीं तट संजम सपरा।
सुंदरि सन्मुष जागण लागी, तहं मोहन मेरा मन पकरा॥१॥
बिन रसनां मोहन गुन गावे, नांनां वांणीं अनभै अपरा।
दादू अनहद ऐसैं कहिये, भगति तत्त यहु मारग सकरा॥२॥

॥ शब्द ७३ मनसा गायत्री ॥

अवधू काम धेन गहि रापी, बसि कीन्हीं तब अंमृत सरवे,
आगें चारि न नांपी ॥ टेक ॥

---

(७१) रमिभीना–राम रस में माता । छावरि = निछावरि, कुरबान ॥ सुरंगे बैन = अनहद बाजे ॥

(७३) कामधेन = मनो राज्य, कामना । चारि = चारा, भोग ॥ पाद्य = हानिकारक मन और इंद्रियों की कामना ॥

पोषंतां पहली उठि गरजे, पीछैं हाथि न आवै ।
भूषी भखें दूध नित दूर्णां, यूं या धेंन दुहावै ॥ १ ॥
ज्यूं ज्यूं षींण पड़े त्यूं दूझै, मुकता मेल्यां मारै ।
घाटा रोकि घेरि घरि आंणैं, बांधी कारिज सारै ॥ २ ॥
सहजैं बांधी कदे न छूटे, कर्म बंधन छुटि जाई ।
काटे कर्म सहज सों बांधे, सहजें रहे समाई ॥ ३ ॥
छिन छिन मांहिं मनोरथ पूरै, दिन दिन होइ अनंदा ।
दादू सोई देषतां पावै, कलि अजरावर कंदा ॥ ४ ॥

॥ शब्द ७४ ॥ परचै ॥

जब घटि परगट रांम मिले, आत्म मंगल चार चहूं दिसि,
जनम सुफल करि जीति चले ॥ टेक ॥
भगति मुकति अभै करि राषे, सकल सिरोमणि आप किये ।
निर्गुण रांम निरंजन आपे, अजरावर उर लाइ लिये ॥ १ ॥
अपनें अंग संग करि राषे, निर्भै नांव निसांन बजावा ।
अविगत नाथ अमर अविनासी, परम पुरिष निज सो पावा ॥२॥
सोई बड़ भागी सदा सुहागी, परगट प्रीतम संगि भये ।
दादू भाग बड़े बरबरि करि, सो अजरावर जीति गये ॥ ३ ॥

॥ शब्द ७५ ॥ पराभक्ति प्रार्थना ॥

रमैया यहु दुष सालै मोहि, सेज सुहाग न प्रीति प्रेम रस,
दरसन नांहीं तोहि ॥ टेक ॥
अंग प्रसंग एक रस नांहीं, सदा समीप न पावै ।
ज्यों रस में रस बहुरि न निकसै, ऐसें होइ न आवै ॥ १ ॥

(७४) बरबरि करि = बराबरि समता करि ॥

आरमलीन नहीं निसिवासुरि, भगति अपंडित सेवा ।
सनमुष सदा परसपर नांहीं, ता थैं दुष मोहि देवा ॥ २ ॥
मगन गलित महारसि माता, तूं है तब लग पीजै ।
दादू जब लग अंत न आवै, तब लग देषण दीजै ॥ ३ ॥

॥ शब्द ७६ ॥ लांबी (अधीरता, अस्थिरता) ॥

गुर मुषि पाइये रे ऐसा ग्यांन विचार,
समझि समझि समझ्या नहीं, लागा रंग अपार ॥ टेक ॥
जांणि जांणि जांण्यां नहीं, ऐसी उपजै आइ ।
बूझि बूझि बूझ्या नहीं, ढोरी लाग्या जाइ ॥ १ ॥
ले ले ले लीया नहीं, हौंस रही मन मांहिं ।
राषि राषि राष्या नहीं, मैं रस पीया नांहिं ॥ २ ॥
पाय पाय पाया नहीं, तेजैं तेज समाइ ।
करि करि कुछ कीया नहीं, आतम अंगि लगाइ ॥ ३ ॥
पेलि पेलि पेल्या नहीं, सनमुष सिरजनहार ।
देषि देषि देष्या नहीं, दादू सेवग सार ॥ ४ ॥

शब्द ७७ ॥ गुर आधीन ग्नान ॥

बाबा गुर मुषि ग्यांनां रे, गुर मुषि ध्यांनां रे ॥ टेक ॥
गुर मुषि दाता, गुर मुषि राता, गुर मुषि गवनां रे ।
गुर मुषि भवनां, गुर मुषि छवनां, गुर मुषि रवनां रे ॥ १ ॥

---

(७७) गवनां = गमन । भवनां = घर, आश्रय । छवनां = छप्पर, स्थिति । रवनां = रमण । गहिबा = ग्रहण । रहिबा = स्थिति, आचरण । न्यारा = जगत बंधन से छूटना । सार = सार ज्ञान । तारा = तरना । पारा = पार होना ॥

गुर मुषि पूरा, गुर मुषि सूरा, गुर मुषि बांणीं रे।
गुर मुषि देणां, गुर मुषि लेणां, गुर मुषि जांणीं रे ॥ २ ॥
गुर मुषि गहिबा, गुर मुषि रहिबा, गुर मुषि न्यारा रे।
गुर मुषि सारा, गुर मुषि तारा, गुर मुषि पारा रे ॥ ३ ॥
गुर मुषि राया, गुर मुषि पाया, गुर मुषि मेला रे।
गुर मुषि तेजं, गुर मुषि सेजं, दादू पेला रे ॥ ४ ॥

शब्द ७८ ॥ निज अस्थान निरनय ॥

मैं मेरे में हेरा, मधि मांहें पीव नेरा ॥ टेक ॥
जहां अगम अनूप अवासा, तहं महापुरिष का वासा।
तहं जांनिंगा जन कोई, हरि मांहिं समांनां सोई ॥ १ ॥
अषंड जोति जहं जागे, तहं रांम नांम ल्यौ लागे।
तहं रांम रहे भरपूरा, हरि संग रहे नहिं दूरा ॥ २ ॥
तिरबेणी तटि तीरा, तहं अमर अमोलिक हीरा।
उस हीरे सौं मन लागा, तब भरम गया भौ भागा ॥ ३ ॥
दादू देष हरि पावा, हरि सहजें संगि लषावा।
पूरण परम निधांनां, निज निरषत हौं भगवांनां ॥ ४ ॥

शब्द ७६ ॥

मेरा मनि लागा सकल करा, हम निस दिन हिरदै सो धरा ॥टेक॥
हम हिरदे मांहें हेरा, पीव परगट पाया नेरा।
सो नेरे ही निज लीजे, तब सहजें अमृत पीजे ॥ १ ॥
जब मनहीं सौं मन लागा, तब जोति सरूपी जागा।
जब जोति सरूपी पाया, तब अंतरि मांहिं समाया ॥ २ ॥
जब चित्तहि चित्त समांनां, हम हरि बिन और न जांनां।

जांनां जीवनि सोई, इव हरि बिन और न कोई ॥ ३ ॥
जब आतम एकै वासा, पर आतम मांहिं प्रकासा ।
परकासा पीव पियारा, सो दादू मींत हमारा ॥ ४ ॥

॥ इति राग ॥ १ ॥

अथ राग माली गौड़ ॥ २ ॥

॥ शब्द ८० ॥ नांव महिमा ॥

गोविंदे नांउं तेरा, जीवन मेरा, तारण भौपारा ।
आगे इहि नांइ लागे, संतनि आधारा ॥ टेक ॥
करि विचार ततसार, पूरण धन पाया ।
अविल नांउं अगम ठांउं, भाग हमारे आया ॥ १ ॥
भगति मूल मुकति मूल, भौजल निसतरना ।
भरम करम भंजनां भै, कलि विषै सब हरनां ॥ २ ॥
सकल सिधि नवे निधि, पूरण सब कांमां ।
रांम रूप तत अनूप, दादू निज नांमां ॥ ३ ॥

॥ शब्द ८० ॥ करुणां ॥

गोविंदे कैसैं तिरिये, नाव नांहीं षेव नांहीं, रांम विमुष मरिये ॥टेक॥
ग्यांन नांहीं ध्यांन नांहीं, लै समाधि नांहीं ।
विरहा वैराग नांहीं, पंचौं गुण मांहीं ॥ १ ॥

प्रेम नांहीं प्रीति नांहीं, नांव नांहीं तेरा ।
भाव नांहीं, भगति नांहीं, काइर जीव मेरा ॥ २ ॥
घाट नांहीं, बाट नांहीं, कैसें पग धरिये ।
वार नांहीं पार नांहीं, दादू बहु डरिये ॥ ३ ॥

शब्द ८२ ॥ विरह ॥

पिव आव हमारे रे, मिलि प्रांण पियारे रे, बलिजांउं तुम्हारे रे॥टेक॥
सुनि सषी सयांनीं रे, मैं सेव न जांनीं रे, हौं भई दिवानीं रे॥१॥
सुनि सषी सहेली रे, क्यूं रहूं अकेली रे, हूं षरी दुहेली रे ॥२॥
हूं करौं पुकारा रे, सुनि सिरजनहारा रे, दादू दास तुम्हारा रे॥३॥

॥ पद ८३ ॥

वाल्हा सेज हमारी रे, तूं आव हूं वारी रे, हूं दासी तुम्हारी रे॥टेक॥
तेरा पंथ निहारौं रे, सुंदर सेज संवारौं रे,
जियरा तुम्हपरि वारौं रे ॥ १ ॥
तेरा अंगड़ा पेषौं रे, तेरा मुषड़ा देषौं रे, तब जीवन लेषौं रे ॥२॥
मिलि सुषड़ा दीजे रे, यहु लाहड़ा लीजे रे, तुम देषें जीजे रे॥३॥
तेरे प्रेमकी माती रे, तेरे रंगड़ें राती रे, दादू वारणें जाती रे॥४॥

॥ पद ८४ ॥

दरबार तुम्हारे दरदवंद, पीव पीव पुकारै ॥
दीदार दरूनें दीजिये, सुनि षसम हमारे ॥ टेक ॥
तनहां के तनि पीर है, सुनि तुही निवारै ।
करम करीमा कीजिये, मिलि पीव पियारे ॥ १ ॥
सूल सुलाकों सौ सहूं, तेग तनि मारै ।

मिलि सांई सुष दीजिये, तूंहीं तूं संभारै ॥ २ ॥
मैं सुहदा तन सोषता, विरहा दुष जारै ।
जिय तरसै दीदार कौं, दादू न बिसारै ॥ ३ ॥

॥ पद ८५ ॥

संइयां तूं है साहिब मेरा, मैं हूं बंदा तेरा ॥ टेक ॥
बंदा बरदा चेरा तेरा, हुकमीं मैं बीचारा ।
मीरां मेहरबान गुसांई, तूं सिरताज हमारा ॥ १ ॥
गुलांम तुम्हारा मुल्लां जादा, लौंडा घरका जाया ।
राज़िक रिज़क जीव तैं दीया, हुकम तुम्हारे आया ॥ २ ॥
सादील वै हाज़िर बंदा, हुकम तुम्हारे मांहीं ।
जबहिं बुलाया तबहीं आया, मैं मैं वासी नांहीं ॥ ३ ॥
षसम हमारा सिरजनहारा, साहिब समर्थ सांई ।
मीरां मेरा मेहर मया कर, दादू तुम्ह हीं तांई ॥ ४ ॥

॥ पद ८६ ॥ करुणा ॥

मुझ थीं कुछ न भया रे, यहु यूंहि गयारे, पछितावा रह्या रे ।टेक॥
मैं सील न दीया रे, भरि प्रेम न पीया रे, मैं क्या कीया रे ॥१॥
हौं रंग न राता रे, रस प्रेम न माता रे, नहिं गलित गाता रे॥२॥
मैं पीव न पाया रे, कीया मन का भाया रे, कुछ होइ न आया रे॥३॥
हूं रहूं उदासा रे, मुझ तेरी आसा रे, कहै दादू दासा रे ॥ ४ ॥

॥ पद ८७ ॥ बैराग उपदेस ॥

मेरा मेरा छाड़ि गंवारा, सिर पर तेरे सिरजनहारा ।

(८७) गइला = गया । मेरा कृत = अपना कर्तव्य । कृत की जगह मूल पुस्तकों में "कत" है ॥

अपणें जीव विचारत नांहीं, क्या ले गइला वंस तुम्हारा ॥ टेक ॥
तब मेरा कृत करता नांहीं, आवत है हकारा ।
काल चक्र सौं परी परी रे, विसरि गया घर वारा ॥ १ ॥
जाइ तहां का संजम कीजे, विकट पंथ गिरधारा ।
दादू रे तन अपनां नांहीं, तौ कैसें भया संसारा ॥ २ ॥

॥ पद ८८ ॥

दादू दास पुकारै रे, सिरि काल तुम्हारै रे,
सर सांधे मारै रे ॥ टेक ॥
जमकाल निवारी रे, मन मनसा मारी रे, यहु जनम न हारी रे॥१॥
सुप नींद न सोई रे, अपणां दुप रोई रे, मन मूल न पोई रे ॥२॥
सिरिभार न लीजी रे,जिसका तिसकूं दीजी रे,इव ढील न कीजी रे।
यहु औसर तेरा रे, पंथी जागि सबेरा रे, सब बाट बसेरा रे ॥ ४॥
सब तरवर छाया रे, धन जोवन माया रे, यहु काची काया रे॥५॥
इस भर्म न भूली रे, बाजी देपि न फूली रे, सुप सागर झूली रे ॥६॥
रस अमृत पीजी रे, बिप का नांउं न लीजी रे, कह्या सु कीजी रे॥७॥
सब आतम जांणीं रे, अपणां पीव पिछांणीं रे, यहु दादू वांणीं रे॥८॥

॥ पद ८९ ॥ भगति उपदेस ॥

पूजों पहिली गणपति राइ, पड़िहों पांवूं चरणों धाइ ।
आगें है करि तीर लगावे, सहजें अपने वैन सुनावे ॥ टेक ॥
कहूं कथा कुछ कही न जाइ, इक तिल में ले सबै समाइ॥१॥
गुणहु गहीर धीर तन देही, असा समथ सबै सुहाइ ॥ २ ॥
जिंसि दिसि देपों ओही है रे, आप रह्या गिरि तरवर छाइ।
दादू रे आगें क्या होवे, प्रीति पिया कर जोड़ि लगाइ ॥ ३ ॥

॥ पद ६० ॥ परचै ॥

नीकौ धन हरि करि मैं जान्यौं, मेरे अपई ओही।
आगैं पीछैं सोई है रे, और न दूजा कोई ॥ टेक ॥
कबहूं न छाड़ौं संग पिया कौ, हरि के दर्सन मोही।
भाग हमारे जो हौं पाऊं, सरनैं आयौ तोही ॥ १ ॥
आनंद भयो सपी जिय मेरे, चरण कवल कौं जोई।
दादू हरि कौ बावरौ, बहुरि बिओग न होई ॥ २ ॥

॥ पद ६१ ॥ हित उपदेस ॥

बाबा मर्दे मर्दां गोइ, ये दिल पाक करदम दोइ ॥ टेक ॥
तर्क दुनियां दूरि कर दिल, फ़र्ज़ फ़ारिग़ होइ।
पैवस्त परवरदिगार सौं, आकिलां सिर सोइ ॥ १ ॥
मनी मुरदः, हिर्स फ़ानी, नफ़्स रा पामाल।

(६१) बाबा मर्दों में मर्द उसको कहो, जिसने दुई को त्याग करके अपने दिल को पवित्र कर लिया है। दुनियावी बातों को दिल से छोड़, फ़र्ज़ (कर्म) से निश्चिन्त होकर, केवल परमात्मा में मिल रहे, ऐसा सिद्धान्त आक़िलों (बुद्धिमानों) का है। मनी (आपा) को मार हिर्स फ़ानी (ईर्षा नाशवान) को और नफ़्स (ख्वाहिश) को पैर से मसल डाल। बदी को एक तरफ फेंक दे, नेकी के नाम का विचार रख। ज़िन्दगानी मुरदः बाशद (जीवित मृतक होकर) क़ादिरकार (परमेश्वर) के कुंज (गुफा) में बैठ। ऐसा करने से तालिबों (मुमुक्षुओं) की कामना प्राप्त होगी और परमेश्वर पासवान (रक्षक) होगा।

मर्दों में मर्द सालिक (दर्वेश) हैं, वही आशिक़ों (मुमुक्षुओं) के सरदार और सुलतान हैं, क्योंकि परमेश्वर की हजूरी में वो होशियार हैं, यही उनका कर्तव्य (गेंद खेलने का मैदान) है॥

बदीरा बरतर्फ करदः, नाम नेकी ख्याल ॥ २ ॥
ज़िंदगानी मुरदः बाशद, कुंजे क़ादिरकार ।
तालिबां रा हक़ हासिल, पासबाने यार ॥ ३ ॥
मर्दे मर्दां सालिकां, सर आशिकां सुलतान ।
हज़ूरी होशियार दादू, इहै गो मैदान ॥ ४ ॥

॥ पद ६२ ॥

ये सब चिरित तुम्हारे मोहनां, मोहे सब ब्रह्मंड पंडा ।
मोहे पवन पांनीं परमेसुर, सब मुनि मोहे रवि चंदा ॥ टेक ॥
साइर सस मोहे धरणीधरा, अष्ट कुली पर्वत मेर मोहे ।
तीनि लोक मोहे जग जीवन, सकल भवन तेरी सेव सोहे ॥१॥
सिव बिरंच नारद मुनि मोहे, मोहे सुर सब सकल देवा ।
मोहे इंद्र फुनग फुनि मोहे, मुनि मोहे तेरी करत सेवा ॥२॥
अगम अगोच अपार अपरंपारा, को यहु तेरे चिरित न जांनें।
ये सोभा तुम्ह कौं सोहै सुंदर, बलि बलि जाऊं दादू न जांनें ॥३॥

॥ पद ६३ गुरज्ञान ॥

ऐसा रे गुरग्यांन लपाया, आवै जाइ सो दिष्टि न आया ॥टेक॥
मन थिर करौंगा, नाद भरौंगा, रांम रमौंगा, रसिमाता ॥१॥
अधर रहूंगा, करम दहूंगा, एक भजौंगा भगवंता ॥२॥
अलप लषौंगा अकथ कथौंगा, एकहि मथौंगा गोविंदा ॥ ३ ॥
अगह गहौंगा, अकह कहौंगा, अलह लहौंगा, षोजंता ॥ ४ ॥
अचर चरौंगा, अजर जरौंगा, अतिर तिरौंगा, आनंदा ॥ ५ ॥
यहु तन तारौं, विषे निवारौं, आप उबारौं सापंता ॥ ६ ॥

आऊं न जांऊं, उनमनि लांऊं, सहज समांऊं गुणवंता ॥ ७ ॥
नूर पिछाणौं, तेजहि जाणौं, दादू जोतिहि देपंता ॥ ८ ॥

॥ पद ६४ ॥ तत्त्व उपदेस ॥

बंदे हाज़िरां हजूर वे, अल्लह आली नूर वे ।
आशिकां रा सिदक़ स्यावति, तालिबां भरपूर वे ॥ टेक ॥
औजूद में मौजूद है, पाक परवरदिगार वे ।
देपि ले दीदार कौं, गैब गोता मारि वे ॥ १ ॥
मौजूद मालिक तख्त पालिक, आशिकां रा अैन वे ।
गुदर कर दिल मग़्ज़ भीतर, अजब है यहु सैंन वे ॥ २ ॥
अर्श ऊपरि आप बैठा, दोसत दांनां यार वे ।
पोजि करि दिल कब्ज करि ले, दरूंनैं दीदार वे ॥ ३ ॥
हुशियार हाज़िर चुस्त करदस, मीरां मेहरवान वे ।
देपि ले दरहाल दादू, आप है दीवांन वे ॥ ४ ॥

पद ६५ ॥ वस्तु निर्देस ॥

निर्मल तत, निर्मल तत निर्मल तत अैसा,
निर्गुण निज निधि निरंजन, जैसा है तैसा ॥ टेक ॥
उतपति आकार नांहीं, जीव नांहीं काया ।
काल नांहीं कर्म नांहीं, रहिता रांम राया ॥ १ ॥
सीत नांहीं घांम नांहीं, धूप नांहीं छाया ।
बाव नांहीं बरण नांहीं, मोह नांहीं माया ॥ २ ॥
धरणी आकास अगम, चंद सूर नांहीं ।

(६५-३) रजनी=अंधेरा पक्ष । निसि=उजेला पक्ष ॥

रजनी निसि दिवस नांहीं, पवनां नहिं जांहीं ॥ ३ ॥
कृत्यम घट कला नांहीं, सकल रहित सोई ।
दादू निज अगम निगम, दूजा नहिं कोई ॥ ४ ॥
॥ इति राग माली गौड़ समाप्त ॥ २ ॥

॥ अथ राग कल्याण ॥ ३ ॥

॥ पद ६६ ॥ उपदेस चितावणी ॥

मन मेरे कछु भी चेत गंवार, पीछें फिरि पछितावैगा रे ।
आवै न दूजी वारे ॥ टेक ॥
काहे रे मन भूलो फिरत है, काया सोचि विचारि ।
जिनि पंथों चलनां है तुझ कौं, सोई पंथ संवारि ॥ १ ॥
आगैं वाट विपम जो मन रे, जैसी पांडे कि धार ।
दादु दास तुं सांइं सौं सूत करि, कूड़े कांम निवार ॥ २ ॥

॥ पद ६७ ॥ परचे ॥

जग सौं कहा हमारा, जब देप्या नूर तुम्हारा ॥ टेक ॥
परम तेज घर मेरा, सुप सागर मांहिं वसेरा ॥ १ ॥
झिलिमिलि अति आनंदा, तहं पाया परमानंदा ॥ २ ॥
जोति अपार अनंता, पेलैं फाग वसंता ॥ ३ ॥
आदि अंति अस्थांनां, जन दादू सो पहिचांनां ॥ ४ ॥

॥ इति राग कल्याण समाप्त ॥ ३ ॥

॥ राग कनड़ौ ॥ ४ ॥

॥ पद ६८ ॥ बिरह बीनती ॥

दे दर्सन देषन तेरा, तो जिय जक पावै मेरा ॥ टेक ॥
पीव तूं मेरी वेदन जांनें, हूं कहा दुरांऊं छांनें,
मेरा तुम्ह देषें मन मांनें ॥ १ ॥
पीव करक कलेजे मांहीं, सो क्यों हीं निकसै नांहीं,
पीय पकरि हमारी बांहीं ॥ २ ॥
पीय रोम रोम दुष साले, इन पीरों पिंजर जाले ।
जीव जाता क्यों हीं षाले ॥ ३ ॥
पीय सेज अकेली मेरी, मुझ आरति मिलणे तेरी,
धन दादू वारी फेरी ॥ ४ ॥

॥ पद ६६ ॥

आव सलौंने देषन दे रे, बलि बलि जांउं बलिहारी तेरी ॥ टेक ॥
आव पिया तूं सेज हमारी, निस दिन देषौं बाट तुम्हारी ॥१॥
सब गुण तेरे अवगुण मेरे, पीव हमारी आहि न लेरे ॥ २ ॥
सब गुणवंता साहिब मेरा, लाड़ गहेला दादू केरा ॥ ३ ॥

॥ पद १०० ॥

आव पियारे मींत हमारे, निस दिन देषौं पाव तुम्हारे ॥टेक॥
सेज हमारी पीव संवारी, दासी तुम्हारी सो धन वारी ॥१॥

जे तुझ पांऊं अंगि लगांऊं, क्यों समझांऊं वारणें जांऊं ॥ २ ॥
पंथ निहारों वाट संवारों, दादू तारों तन मन वारों ॥ ३ ॥

॥ पद १०१ ॥ (पंजाबी भाषा) ॥

आवे सजणां आव, सिरपर धरि पाव,
जोनीं मेंडा ज्यंद असाडे, तूं रावेंदा रावबे, सजणां आव ॥टेक॥
इत्थां उत्थां जित्थां कित्थां, हूं जीवां तो नाल वे ।
मींयां मेंडा आव असाडे, तूं लालों सिर लालवे, सजणां आव॥१॥
तन भी डेवां मन भी डेवां, डेवां प्यंड परांण वे ।
सच्चा सांई, मिल इथांई, जिंद करां कुरबांण वे, सजणां आव॥२॥
तूं पाकों सिर पाक वे सजणां, तूं पूबों सिर पूब ।
दादू भावे सजणां आवें, तूं मिट्ठा महबूब वे, सजणां आव ॥ ३ ॥

॥ पद १०२ ॥ विनती ॥

दयाल अपने चरनानि मेरा चित लगावहु, नीकैं ही करी॥टेक॥
नप सिप सुरति सरीर, तूं नांव रहौं भरी ॥ १ ॥
मैं अजांण माति हींण, जम की पासि थें रहत हूं डरी ॥ २ ॥
सबे दोष दादू के दूरि करि, तुमहीं रहौं हरी ॥ ३ ॥

॥ पद १०३ ॥ तरक चितावणी ॥

मन माति हींण धरै, मूरिष मन कछू समझत नांहीं,
ऐसें जाइ जरै ॥ टेक ॥
नांव बिसारि अवर चिति राषै, कूडे काज करै ।
सेवा हरि की मनहूं न आंणें, मूरिष बहुरि मरै ॥ १ ॥
नांव संगम करि लीजे प्रांणीं, जमथें कहा डरै ।
दादू रे जे रांम संभारे, सागर तीर तिरै ॥ २ ॥

॥ पद १०४ ॥ संत सहाइ रिष्या ॥

पीव़ तें अपनें काज संवारे, कोई दुष्ट दीन कौं मारन,
सोई गहि तें मारे ॥ टेक ॥
मेर समान ताप तनि व्यापे, सहजैंही सो टारे।
संतन कौं सुषदाई माधो, विन पावक फंध जारे ॥ १ ॥
तुमथें होइ सबै विधि समर्थ, आगम सबै बिचारे।
संत उवारि दुष्ट दुष दीन्हां, अंध कूपमें डारे ॥ २ ॥
असा है सिरि पसम हमारे, तुम जीते पल हारे ॥ ३ ॥
दादू सौं असें निर्वाहिये, प्रेम प्रीति पिव़ प्यारे ॥ ४ ॥

॥ पद १०५ ॥ माया ॥

काहू तेरा मरम न जांनां रे, सब भये दीव़ांनां रे ॥ टेक ॥
माया के रस राते माते, जगत भुलांनां रे।
कोइ काहू का कह्या न मांनैं, भये अयांनां रे ॥ १ ॥
माया मोहे मुदित मगन, पांन पांनां रे।
विषिया रस अरसपरस, साच ठांनां रे ॥ २ ॥
आदि अंति जीव जंत, कीया पयानां रे।
दादू सब भरमि भूले, देषि दांनां रे ॥ ३ ॥

॥ पद १०६ ॥ अनिन्य सरन ॥

तूं हीं तूं गुरदेव हमारा, सब कुछ मेरे, नांव़ तुम्हारा ॥ टेक ॥
तुमहीं पूजा तुम हीं सेवा, तुम हीं पाती तुमहीं देवा ॥ १ ॥
जोग जग्य तूं साधन जापं, तुम्ह हीं मेरे आपै आपं ॥ २ ॥
तप तीरथ तूं व्रत सनांनां, तुम्ह हीं ग्यांनां तुम्ह हीं ध्यांनां ॥ ३ ॥

वेद भेद तूं पाठ पुरांनां, दादू के तुम प्यंड परांनां ॥ ४ ॥

॥ पद १०७ ॥

तूं हीं तूं आधार हमारे, सेवग सुत हम रांम तुम्हारे ॥टेक॥
माइ बाप तूं साहिब मेरा, भगति हीण मैं सेवग तेरा ॥१॥
मात पिता तूं बंधव भाई, तुम्ह हीं मेरे सजन सहाई ॥ २ ॥
तुम्ह हीं तातं तुम्ह हीं मातं, तुम्ह हीं जातं तुम्ह हीं न्यातं॥३॥
कुल कुटंब तूं सब परिवारा, दादू का तूं तारणहारा ॥ ४ ॥

॥ पद १०८ ॥ परचय विनती ॥

नूर नैंन भरि देषण दीजै, अमी महारस भरि भरि पीजै ॥टेक॥
अमृत धारा वार न पारा, निर्मल सारा तेज तुम्हारा ॥ १॥
अजर जरंता अमी झरंता, तार अनंता बहु गुणवंता ॥ २॥
झिलिमिलि सांईं जोति गुसांईं, दादू मांहीं नूर रहांईं ॥३॥

॥ पद १०९ ॥ परचय ॥

अैंन एक सो मीठा लागै, जोति सरूपी ठाढ़ा आगै ॥ टेक ॥
झिलिमिलि करणां, अजरा जरणां, नीझर झरणां, तहं मन धरणां
निज निरधारं, निर्मल सारं, तेज अपारं, प्रांण अधारं ॥ २ ॥
अगहा गहणां, अकहा कहणां, अलहा लहणां, तहं मिलि रहणां ३
निरसंध नूरं, सकल भरपूरं, सदा हजूरं दादू सूरं ॥ ४ ॥

॥ पद ११० ॥ निस्नेहता ॥

तौ काहे की परवाह हमारे, राते माते नांउं तुम्हारे ॥ टेक ॥
झिलिमिलि झिलिमिलि तेज तुम्हारा, परगट पेले प्रांण हमारा॥१॥
नूर तुम्हारा नैनों मांहीं, तन मन लागा छूटे नांहीं ॥ २ ॥

सुष का सागर वार न पारा, अमी महारस पीवणहारा ॥ ३ ॥
प्रेम मगन मतिवाला माता, रंगि तुम्हारे दादू राता ॥ ४ ॥

इति राग कनड़ो समाप्त ॥ ४ ॥

अथ राग अडाणों ॥ ५ ॥

॥ पद १११ ॥ गुर समर्थ महिमा ॥

भाई रे ऐसा सतगुर कहिये, भगति मुकति फल लहिये ॥टेक॥
अविचल अमर अविनासी, अठ सिधि नवनिधि दासी ॥१॥
ऐसा सतगुर राया, चारि पदारथ पाया ॥ २ ॥
अमी महारस माता, अमर अभै पद दाता ॥ ३ ॥
सतगुर त्रिभुवन तारे, दादू पार उतारे ॥ ४ ॥

॥ पद ११२ ॥ गुरमुष कसौटी ॥

भाई रे भांनि घड़े गुर मेरा, में सेवग उस केरा ॥ टेक ॥
कंचन करिले काया, घाड़ि घाड़ि घाट निपाया ॥ १ ॥
मुष दर्पण मांहिं दिपावे, पिव परगट आंनि मिलावे ॥ २ ॥
सतगुर साचा धोवे, तो बहुरि न मैला होवे ॥ ३ ॥
तन मन फेरि संवारे, दादू कर गहि तारे ॥ ४ ॥

॥ पद ११३ ॥ गुर उपदेस ॥

भाई रे तेन्हौं रूडो थाये. जे गुरमुष मारगि जाये ॥ टेक ॥

(११३) हे भाई ! उसका भला होता है जो गुरू के बताये रास्ते पर

कुसंगति परिहरिये, सत संगति अणसरिये ॥ १ ॥
कांम क्रोध नहिं आंणें, वांणीं ब्रह्म वपांणें ॥ २ ॥
विषिया थें मन वारै, ते आपणपौ तारै ॥ ३ ॥
विष मूकी अमृत लीधौ, दादू रुड़ौ कीधौ ॥ ४ ॥

॥ पद ११४ ॥ वीनती ॥

बाबा मन अपराधी मेरा, कह्या न मांनें तेरा ॥ टेक ॥
माया मोह् मदि माता, कनक कांमिणीं राता ॥ १ ॥
कांम क्रोध अहंकारा, भावै विषै विकारा ॥ २ ॥
काल मीच नहिं सूझै, आतमरांम न बूझै ॥ ३ ॥
समृथ सिरजनहारा, दादू करै पुकारा ॥ ४ ॥

॥ पद ११५ ॥ तरक चितावणी ॥

भाई रे यूं विनसै संसारा, कांम क्रोध अहंकारा ॥ टेक ॥
लोभ मोह मैं मेरा, मद मंछर बहुतेरा ॥ १ ॥
आपा पर अभिमांनां, केता गर्व गुमांनां ॥ २ ॥
तीनि तिमिर नहिं जांहीं, पंचौं के गुण मांहीं ॥ ३ ॥
आतमरांम न जांनां, दादू जगत दिवांनां ॥ ४ ॥

॥ पद ११६ ॥ ग्यान ॥

भाई रे तब क्या कथिसि गियांनां, जब दूसर नांहीं आंनां ॥टेक॥
जब तत्तहिं तत्त समांनां, जहं का तहं ले सांनां ॥ १ ॥

चलता है। बात चीन में ब्रम्ह ही को निरूपण करता है जो काम क्रोध नहीं लावा और विषयों से मन अलग रखता है, सो आपनपौं त्यागता है। हे मन ! दयालजी कहते हैं कि विष छोड़ कर जो अमृतरूपी ब्रम्ह को ग्रहण किया सो तू ने अच्छा किया ॥

जहं का तहां मिलावा, ज्यूं था त्यूं होइ आवा ॥ २ ॥
संधे संधि मिलाई, जहां तहां थिति पाई ॥ ३ ॥
सब अंग सब हीं ठांईं, दादू दूसर नांहीं ॥ ४ ॥

इति राग अडाणों समाप्त ॥ ५ ॥

अथ राग केदारो ॥ ६ ॥

॥ पद ११७ ॥ विनती (गुजराती भाषा) ॥

मारा नाथ जी, तारो नाम लेवाड़ रे, रांम रतन हृदया मों राखे।
मारा वाहला जी, विषया थी वारे ॥ टेक ॥
वाहला वाणी ने मन मांहे मारे, चिंतवन तारो चित्त राखे।
श्रवण नेत्र आ इंद्री ना गुण, मारा मांहेला मल ते नाखे ॥१॥
वाहला जीवाड़े तो राम रमाड़े, मनें जीव्यांनो फल ये आपे।
तारा नाम विना हूं ज्यां ज्यां बंध्यो, जन दादू ना बंधन कापे ॥ २ ॥

---

(११७) मेरे नाथजी, मुझ को अपना नाम लेने की बुद्धि दो । जिस कर के राम रत्न मैं हृदय में रक्खूं । मेरे प्यारे जी ! विषयों से मुझे बचाये रक्खो ॥ टेक ॥ प्यारे मेरी वाणी और मन में मेरा चित्त तेरा ही चिंतवन रक्खे । सुनना देखना तो इंद्रियों का गुण है, ते (तेरा चिंतवन) मेरे अंदर (मन) का मैल दूर करै ॥ १ ॥

प्यारे ! जो तू मुझे जिलाये तो राम मुझे खिलावे । मुझे जीने का फल यही दीजिये । तेरे नाम विना मैं जहां २ बांधा गया वहां दादू जैसे जन के (तेरा चिंतवन) बंधन काटै ॥ २ ॥

॥ पद ११८ ॥ विरह बिनती ॥

अरे मेरे सदा संगाती रे रांम, कारणि तेरे ॥ टेक ॥
कंथा पहिरौं भसम लगाऊं, बैरागनि ह्वै ढूंढौं, रे रांम ॥ १ ॥
गिरवर बासा रहूं उदासा, चढ़ि सिर मेर पुकारौं, रे रांम ॥ २ ॥
यहु तन जालौं यहु मन गालौं, करवत सीस चढ़ाऊं, रे रांम ॥ ३ ॥
सीस उतारौं तुम्ह परि वारौं, दादू बलि बलि जाइ, रे रांम ॥ ४ ॥

॥ पद ११६ ॥

अरे मेरा अमर उपावणहार रे पालिक, आशिक़ तेरा ॥ टेक ॥
तुम्हसौं राता तुम्हसौं माता, तुम्हसौं लागा रंग, रे पालिक ॥ १ ॥
तुम्हसौं पेला, तुम्हसौं मेला, तुम्हसौं प्रेम स्नेह, रे पालिक ॥ २ ॥
तुम्हसौं लेणा, तुम्हसौं देणा, तुम्हहीं सौं रत होइ, रे पालिक ॥ ३ ॥
पालिक मेरा, आशिक़ तेरा, दादू अनत न जाइ, रे पालिक ॥ ४ ॥

॥ पद १२० ॥ स्तुति ॥

अरे मेरे समर्थ साहिब रे अल्लः, नूर तुम्हारा ॥ टेक ॥
सब दिसि देवै, सब दिसि लेवै, सब दिसि वार न पार, रे अल्लः ॥ १ ॥
सब दिसि कर्ता, सब दिसि हरता, सब दिसि तारणहार, रे अल्लः ॥ २ ॥
सब दिसि वकता, सब दिसि सुरता, सब दिसि देपणहार, रे अल्लः ॥ ३ ॥
तूं है तैसा कहिये ऐसा, दादू आनंद होइ रे अल्लः ॥ ४ ॥

॥ पद १२१ ॥ विरह विलाप ॥

हाल असां जो लालड़े, तो के सब मालूम ड़े ॥ टेक ॥

---

(१२०) "रे अल्लः" की जगह मूल पुस्तकों में "रे अला" है ॥
(१२१-१) "मुंच पीला" की जगह "मुंच पीला" किसी २

मंझे पामां मंझि वराला, मंझे लगी भाहिड़े ।
मंझे मेड़ी मुच थईला, कें दरि करियां धाहड़े ॥ १ ॥
विरह कसाई मुंगरेला, मंझे वढे माइ हड़े ।
सीषीं करे कबाब जीला, इंयें दादू जे ह्याहड़े ॥ २ ॥

॥ पद १२२ ॥ विनती ॥

पीवजी सेती नेह नवेला, अति मीठा मोहि भावे रे ।
निसदिन देषौं बाट तुम्हारी, कब मेरे घरि आवे रे ॥ टेक ॥
आइ बनी है साहिब सेती, तिस बिन तिल क्यौं जावे रे ।
दासी कौं दर्सन हरि दीजे, अब क्यौं आप छिपावै रे ॥ १ ॥
तिल तिल देषों साहिब मेरा, त्यौं त्यौं आनंद अंगि न मावे रे ।
दादू ऊपर दया करी, कब नैनहुं नैन मिलावै रे ॥ २ ॥

॥ पद १२३ ॥ (गुजराती भाषा) ॥

पीव घरि आवे रे, वेदन मारी जाणीं रे ।
विरह संताप कोण पर कीजे, कहूं छूं दुष नी कहाणी रे ॥ टेक ॥

पुस्तक में है । इस पद का तात्पर्य यह दिया है कि मेरे मन में विरह की अग्नि लग रही है, क्योंकि तू मुझ से न्यारा प्रतीत होता है, किसके दरवाजे पर मैं पुकारूं ॥ १ ॥ विरह कसाई मेरा गला काटता है । लोहे की सीखों पर जैसे कबाब भूनते हैं वैसी मेरी हालत हो रही है ॥ २ ॥

(१२३) पिया मेरे घर आवें । मेरी विथा जान कर, विरह संताप मैं किस से प्रगट करूं ? दुःख की कहानी कहती हूं ॥

हे अंतर्जामी ! मेरे नाथ !! तुम बिन मैं मुरझा रही हूं, तेरी राह देखते २ थक गई, नैनों में पानी घट गया । दयालजी कहते हैं विरहनी तेरे बिना दीन दुखी हो रही है, जिसके साथ तू ताणी (खिंच) रहा है ॥

अंतरजामी नाथ मारो, तुज विण हूं सीदाणी रे ।
मंदिर मारे केम न आवे, रजनी जाइ विहाणी रे ॥ १ ॥
तारी वाट हूं जोइ थाकी, नेण निपूट्या पाणी रे ।
दादू तुज विण दीन दुषी रे, तूं साथी रह्यो छे ताणी रे ॥२॥

॥ पद १२४ ॥ विरह विनती ॥

कब मिलसी पीव़ मिह छाती, हूं औरां संग मिलाती ॥ टेक ॥
तिसज लागी तिसही केरी, जन्म जन्म नो साथी ॥
मीत हमारा आव़ पियारा, ताहरा रंग नी राती ॥ १ ॥
पीव विना मने नींद न आवे, गुण ताहरा लै गाती ।
दादू ऊपर दया मया करि, ताहरे वारणें जाती ॥ २ ॥

॥ पद १२५ ॥ विरह ॥

माहरा रे वाहला ने काजे; हृदये जोवा ने हूं ध्यान धरूं ।

---

(१२४) पिया घर पर कब मिलेंगे ? मुझे औरों से छाती मिलानी पड़ती है । उसी (पिया) की प्यास लग रही है, जो मेरा जन्म २ का साथी है ॥ प्यारे मित्र हमारे ! आवो । तुम्हारे रंग से मैं रंगी हूं ॥ १ ॥ पिया के बिना मुझे नींद नहीं आती, तुम्हारा गुण गाती हूं । दादू के ऊपर कृपा करो, तुम्हारे दरवाजे मैं जाती हूं ॥ २ ॥

(१२४-१) आव़ की जगह "पीव़" और रंग की जगह "संग" पुस्तक नं॰ १ में है ॥

(१२५) मेरे प्यारे के निमित्त, हृदय में देखने को मैं ध्यान धरती हूं । मेरा मन व्याकुल हो रहा है, किस को कहकर पर (दूर) करूं । प्यारा याद आता है, जल्दी उसे देखकर शांति पाऊं । मित्रजी के साथ होकर, परले किनारे पार तैर जाऊं ॥ १ ॥ पीव़ बिना दिन मुशकिल से कटते हैं । घड़ी २ करके बरसें कैसे बिताऊं ॥ हरि के गुण गाते हुए, हे दादूजन ! उस पूर्ण स्वामी हरि को वरूं ॥ २ ॥

आकुल थाये प्रांण माहरा, कोने कही पर करूं ॥ टेक ॥
संभार्यो आवे रे वाहला, वेहला एहों जोई ठरूं ॥
साथीजी साथे थइ ने, पेली तीरे पार तरूं ॥ १ ॥
पीव पाये दिन दुहेला जाये, घड़ी वरसां सौं केम भरूं ।
दादू रे जन हरि गुण गातां, पूरण स्वामी ते वरूं ॥ २ ॥

॥ पद १२६ ॥ विरह बिलाप ॥

मरिये मीत बिछोहे, जियरा जाइ अंदोहे ॥ टेक ॥
ज्यौं जल बिछुरें मींनां, तलफि तलफि जिव दीन्हां ।
यों हरि हम सौं कीन्हां ॥ १ ॥
चात्रिग मरै पियासा, निस दिन रहै उदासा ।
जीवैं किहि बेसासा ॥ २ ॥
जल बिन कवल कुमिलावै, प्यासा नीर न पावे ।
क्यौं करि त्रिषा बुझावै॥ ३ ॥
मिलि जिनि बिछुरौ कोई, बिछुरें बहु दुष होई ।
क्यों करि जीवै जन सोई ॥ ४ ॥
मरणां मीति सुहेला, बिछुरन परा दुहेला ।
दादू पीव सौं मेला ॥ ५ ॥

॥ पद १२७ ॥

पीव हौं, कहा करौं रे, पाइ परौं के प्रांण हरौं रे,
अब हौं मरणे नांहि डरौं रे ॥ टेक ॥
गालि मरौं के जालि मरौं रे, कै हौं करवत सीस धरौं रे ॥ १ ॥
पाइ मरौं के घाइ मरौं रे, कै हौं कतहूं जाइ मरौं रे ॥ २ ॥

(१२६-२) बेसासा=बिस्वास ॥

तलफि मरौं कै झूरि मरौं रे, कै हौं विरही रोइ मरौं रे ॥३॥
टेरि कह्या में मरण गह्या रे, दादू दुखिया दीन भया रे ॥४॥

॥ पद १२८ ॥ (गुजराती भाषा) ॥

वाहला हूं जाणूं जे रंग भरि रमिये, मारो नाथ निमिष नहिं मेलूं रे।
अंतरजामी नाह न आवे, ते दिन आव्यो छेलो रे ॥ टेक ॥
वाहला सेज अमारी एकलड़ी रे, तहं तुजने केम न पामूं रे।
आ दत्त अमारो पूरबलो रे, तेतो आव्यो सामो रे ॥ १ ॥
वाहला मारा हृदया भीतर केम न आवे, मने चरण बिलंब न दीजे रे
दादू तो अपराधी तारो, नाथ उधारी लीजे रे ॥ २ ॥

॥ पद १२९ ॥

तूं छे मारो रांम गुसांई, पालवे तारे बांधी रे।
तुज विना हूं आंतरे रड़ऊयो, कीधी कमाई लीधी रे ॥ टेक ॥
जीवुं जेटलां हरि विना रे, देहड़ी दुखे दाधी रे।

(१२८) प्यारे ! मैं चाहती हूं कि हम रंग भरे रमैं, अपने नाथ को मैं एक दम भी न छोड़ूं। अंतर्यामी पीव तो आया नहीं, वह आखिरी दिन आगया। प्यारे ! सेज हमारी अकेली है, वहां तुम को क्यों नहीं पाती ? यह दत्त (फल) हमारे पूर्वले कर्मों का है, सो अब सामने आया। प्यारे! हमारे हृदय में क्यों नहीं आते ? मुझे बहुत विलम्ब न लगाइये। दादू तो अपराधी है, हे नाथ ! आप ही उद्धार करो (छुड़ालो) ॥ २ ॥

(१२९) हे राम ! तूं मेरा गुसांई (ईश) है, अपना पल्ला (वस्त्र) तुझ से बांधा है। तेरे बिना मैं दूर २ भटका, की हुई कमाई पाई है। जितने काल हरि बिना जीऊं, देह दुःख से जलती है। इस जन्म में मैंने कुछ न जाना, माथे पर टक्कर खाई है ॥ १ ॥ छुटकारा मेरा कब होगा ? राम की आराधना मैं नहीं कर सका। दादू के ऊपर दया मया करो, मैं आपका अपराधी हूं ॥ २ ॥

अेरो अवतारे कांई न जाएयुं, माथे टक्कर पाधी रे ॥ १ ॥
छूटको मारो क्यारे थाशे, शक्यो न संम अराधी रे ।
दादू ऊपर दया मया कर, हूं तारो अपराधी रे ॥ २ ॥

॥ पद १३० ॥ विनती ॥

तूं हीं तूं तानि माहरे गुसांई, तूं विना तूं केने कहूं रे।
तूं त्यां तूं हीं थई रह्यो रे, शरण तम्हारे जाय रहूं रे ॥ टेक॥
तन मन मांहि जोइये त्यां तूं, तुज दीठां हूं सुप लहूं रे ।
तूं त्यां जेटली दूर रहूं रे, तेम तेम त्यां हूं दुप सहूं रे ॥ १ ॥
तुम बिन माहरो कोई नहीं रे, हूं तो ताहरा वग्ण वहूं रे ।
दादू रे जण हरि गुण गातां, में मेलूं माहरो में हूं रे ॥ २ ॥

॥ पद १३१ ॥ केवल बिनती ॥

हमारे तुम्ह हीं हो रपपाल,
तुम बिन और नहीं को मेरे, भौदुप मेटणहार ॥ टेक ॥
वैरी पंच निमप नहिं न्यारे, रोकि रहे जमकाल ।
हा जगदीस दास दुप पावै, स्वामी करहु संभाल ॥ १ ॥
तुम्ह बिन रांम दहैं ये दूंदर, दसौं दिसा सब साल ।
देपत दीन दुषी क्यों कीजे, तुम्ह हो दीन दयाल ॥ २ ॥

(१३०) तू हीं तूं मेरे तन में है, हे गुसांई ! तेरे विना "तूं" किसे कहूं, "तू तहां है तू तहां है" इस प्रकार से तू ही (सर्वत्र) हो रहा है। तुम्हारी शरण में मैं जा रहूं। तन मन में देखूं तहां तू (ही है) तुझे देख कर मैं सुख पाता हूं। "तू तहां है" इतना कहने मे जो फासला पड़ता है, उतना ही उतना मुझ को दुःख सहना पड़ता है ॥ १ ॥ तुझ बिना मेरा कोई नहीं है, मैं तेरे विना यहा जाता हूं, दयालजी कहते हैं कि यह हरि गुण गाते हुए मैं अपना आपनपा त्यागता हूं ॥ २ ॥

निर्भै नांउं हेत हरि दीजै, दर्सन परसन लाल।
दादू दीन लीन करि लीजै, मेटहु सब जंजाल ॥ ३ ॥

॥ पद १३२ ॥

ये मन माधो बरजि बरजि,
अति गति विपिया सौं रत, उठत जु गराजि गरजि ॥ टेक ॥
विषै विलास अधिक अति आतुर, विलसत संक न मांनैं।
षाइ हलाहल मगन माया में, विष अमृत करि जांनैं ॥ १ ॥
पंचन के संगि बहत चहूं दिसि, उलटि न कबहूं आवै।
जहं जहं काल ये जाइ तहं तहं, मृग जल ज्यौं मन धावै ॥ २ ॥
साध कहैं गुर ग्यांन न मांनैं, भाव भजन न तुम्हारा।
दादू के तुम्ह सजन सहाई, कछू न बसाइ हमारा ॥ ३ ॥

॥ पद १३३ ॥ मन उपदेस ॥

हां हमारे जियरा रांम गुण गाइ, एही बचन बिचारी मांन ॥ टेक ॥
केती कहूं मन कारणें, तूं छाड़ी रे अभिमांन।
कहि समझाऊं बेर बेर, तुझ अजहूं न आवै ग्यांन ॥ १ ॥
ऐसा संग कहां पाईये, गुण गावत आवै तांन।
चरणों सौं चित राषिये, निसदिन हरि कौ ध्यांन ॥ २ ॥
वै भी लेषा देहिंगे, आप कहावैं पांन।
जन दादू रे गुण गाईये, पूरण है निर्वांण ॥ ३ ॥

॥ पद १३४ ॥ काल चितावणी ॥

बटाऊ ! चलणां आज कि काल्हि,
समझि न देषै कहा सुप सोवै, रे मन रांम संभालि ॥ टेक ॥
जैसैं तरवर बिरप बसेरा, पंषी बैठे आइ।

ऐसैं यहु सब हाट पसारा, आप आप कौं जाइ ॥ १ ॥
कोइ नांहिं तेरा सजन संगाती, जिनि पोवै मन मूल ।
यहु संसार देषि जिनि भूलै, सब हीं सैंबल फूल ॥ २॥
तन नांहिं तेरा, धन नांहिं तेरा, कहा रह्यौ इहि लागि ।
दादू हरि बिन क्यौं सुष सोवै, काहे न देषै जागि ॥ ३ ॥

॥ पद १३५ ॥ तरक चितावणी ॥

जात कत मद कौ मातौ रे,
तन धन जोबन देषि गर्बानौ, माया रातौ रे ॥ टेक ॥
अपनो हि रूप नैंन भरि देषै, कांमनि कौ संग भावै रे ।
बारंबार बिषै रत मांनैं, मरिबौ चीति न आवै रे ॥ १ ॥
मैं बड़ आगैं और न आवै, करत केत अभिमांनां रे ।
मेरी मेरी करि करि भूल्यौ, मायामोह भुलांनां रे ॥ २ ॥
मैं मैं करत जनम सब पोयौ, काल सिरहांणै आयौ रे ।
दादू देषु मूढ नर प्रांणी, हरि बिन जनम गंवायौ रे॥ ३॥

॥ पद १३६ ॥ हित उपदेस ॥

जागत कौं कदे न मूसै कोई,
जागत जांनि जतन करि राषै, चोर न लागू होई ॥ टेक ॥
सोवत साह बस्त नहिं पावै, चोर मुसै घर घेरा ।
आसि पास पहरे को नांहीं, बस्तैं कीन्ह नबेरा ॥ १ ॥
पीछैं कहु क्या जागैं होई, बसत हाथ थैं जाई ।
बीती रैंनि बहुरि नहिं आवै, तब क्या करि है भाई ॥ २ ॥
पहले हीं पहरै जे जागै, बस्त कछू नहिं छीजै ।
दादू जुगति जांनि कर ऐसी, करनां है सो कीजै ॥ ३ ॥

॥ पद १३७ ॥ उपदेस ॥

सजनीं रजनीं घटती जाइ, पल पल छीजे अवधि दिन आवै।
अपनों लाल मनाइ ॥ टेक ॥
अति गति नींद कहा सुपि सोवै, यहु अवसर चलि जाइ।
यहु तन बिछुरैं बहुरि कहं पावै, पीछैं ही पछिताइ ॥ १ ॥
प्रांणपति जागे सुंदरि क्यों सोवै, उठि आतुर गहि पाइ ।
कोमल बचन करुणां करि आगैं, नष सिष रहु लपटाइ ॥ २॥
सषी सुहाग सेज सुप पावै, प्रीतम प्रेम बढाइ ।
दादू भाग बड़े पिव पावै, सकल सिरोमणि राइ ॥ ३ ॥

पद १३८ ॥ मरन उत्तर ॥

कोई जानैं रे मरम माधईये केरौ,
कैसें रहै करै का सजनीं प्रांण मेरौ ॥ टेक ॥
कौन बिनोद करत री सजनीं, कवनानि संग बसेरौ ?
संत साध गमि आये उनके, करत जु प्रेम घणेरौ ॥ १ ॥
कहां निवास बास कहं सजनीं, गवन तेरौ ?
घट घट मांहैं रहै निरंतर, ये दादू नेरौ ॥ २ ॥

॥ पद १३९ ॥ बिरह बिनती ॥

मन बैरागी रांमकौं, संगि रहै सुप होइ हो ॥ टेक ॥
हरि कारनि मन जोगिया, क्योंहि मिलै मुझ सोइ ।
निरषण का मोहि चाव है, क्यों हीं आप दिषावै मोहि हो ॥ १॥
हिरदै में हरि आव तूं, सुप देषों मन धोइ ।
तन मन में तूंहीं बसै, दया न आवै तोहि हो ॥ २ ॥
निरषण का मोहि चाव है, ए दुष मेरा षोइ ।

दादू तुम्हारा दास है, नैंन देषन कौं रोइ हो ॥ ३ ॥

॥ पद १४० ॥ अधीरज, उराहना ॥

धरणी धर बाह्या धूतो रे, अंग परस नहिं आपे रे।
कह्यो अमारो कांई न माने, मन भावे ते थापे रे ॥ टेक ॥
वाही वाही ने सर्वस लीधो, अबला कोइ न जाणे रे।
अलगो रहे येणी परि तेड़े, आपनड़े घर आणे रे ॥ १ ॥
रमी रमी ने राम रजावी, केन्हें अंत न दीधो रे।
गोप्य गुह्य ते कोइ न जाणे, एवो अचरज कीधो रे ॥ २ ॥
माता बालक रुदन करतां, वाही वाही ने राखे रे।
जेवो छे तेवो आपणपो, दादू ते नहिं दाषे रे ॥ ३ ॥

॥ पद १४१ ॥ समर्थाई ॥

सिरजन हार थैं सब होइ,
उत्पति परले करे आपे, दूसर नांहीं कोइ ॥ टेक ॥
आप होइ कुलाल करता, बूंद थैं सब लोइ।

---

(१४०) धरणीधर (ईश्वर) ने हम को बहकाया और ठगा है, न हम को अपना अंग स्पर्श देता है न हमारा कहा कुछ मानता है, उस के मन में जो आता है सो करता है ॥ बहकाय २ के हमारा सर्वस्व लिया है, हम अबला (निर्बलों) कों 'कोई" किंचित् भी नहीं समझता। आप तो अलग रहता है, और हम को इस (अपनी) तरफ बुलाता है, और अपने घर ले जाता है ॥ १ ॥ हम से क्रीड़ा कर २ के उसी राम ने हमें रिझाया है परंतु कुछ भेद नहीं दिया, वह आप गोप्य गुह्य किसी का जाना नहीं है; ऐसा आश्चर्य उसने किया है ॥ २ ॥ जैसे रोते हुये बालक को माता, फुसला २ के रखती है, तैसे उसने हम को भुला रक्खा है। (तौभी) जैसा वह है तैसा हमारा ही है, दादू उसके (छलों को) न प्रगट करेगा ॥ ३ ॥ देखो साखी १२-८२ ॥

आप करि अगोच बैठा, दुनी मनकों मोहि ॥ १ ॥
आपथैं उपाइ बाजी, निरषि देषै सोइ ।
बाजीगर कों यहु भेद आवै, सहजि सौंज समोइ ॥ २ ॥
जे कुछ कीया सु करे आपै, येह उपजै मोहि ।
दादू रे हरि नांउं सेती, मल कुसमल धोइ ॥ ३ ॥

॥ पद १४२ ॥ परचै ॥

देहुरे मंझे देव पायौ, वस्त अगोच लषायौ ॥ टेक ॥
अति अनूप जोति पति, सोई अंतरि आयौ ।
प्यंड ब्रह्मंड समि तुलि दिषायौ ॥ १ ॥
सदा प्रकास निवास निरंतर, सब घट मांहिं समायौ ।
नैंन निरषि नेरौ, हिरदै हेत लायौ ॥ २ ॥
पूरब भाग सुहाग सेज सुष, सो हरि लैन पठायौ ।
देव कौ दादू पार न पावै, अहो पैं उनहीं चितायौ ॥ ३ ॥

इति राग केदारौ समाप्त ॥ ६ ॥

अथ राग मारू ॥ ७ ॥

॥ पद १४३ ॥ उपदेस ॥

मनां भजि रांम नांम लीजै,
साध संगति सुमिरि सुमिरि, रसनां रस पीजै ॥ टेक ॥

(१४२–३) पूरब की जगह पूरण पु० नं० १ में है ॥

साधू जन सुमिरन करि, केते जपि जागे ।
अगम निगम अमर किये, काल कोइ न लागे ॥ १ ॥
नीच ऊंच चिंतन करि, सरणागति लीये ।
भगति मुकति अपनी गति, ऐसैं जन कीये ॥ २ ॥
केते तिरि तीर लागे, बंधन भव छूटे ।
कलि मल विष जुग जुग के, रांम नांम पूटे ॥ ३ ॥
भरम करम सब निवारि, जीवन जपि सोई ।
दादू दुष दूरि करण, दूजा नहिं कोई ॥ ४ ॥

॥ पद १४४ ॥

मनां जपि रांम नांम कहिये,
रांम नांम मन विश्रांम,संगी सो गहिये ॥ टेक ॥
जागि जागि सोवे कहा, काल कंध तेरें ।
बारंबार करि पुकार, आवत दिन नेरें ॥ १ ॥
सोवत सोवत जनम बीते, अजहूं न जीव जागे ।
रांम संभारि नींद निवारि, जनम जुरा लागे ॥ २ ॥
आस पास भर्म बंध्यो, नारी ग्रह मेरा ।
अंति काल छाडि चल्यो, कोई नहिं तेरा ॥ ३ ॥
तजि कांम क्रोध मोह माया, रांम रांम करणां ।
जब लग जीव प्रांण प्यंड, दादू गहि सरणां ॥ ४ ॥

॥ पद १४५ ॥ विरह ॥

क्यों विसरे मेरा पीव पियारा, जीव की जीवनि प्रांण हमारा। टेक।
क्यों करि जीवे मीन जल बिछुरें, तुम्ह विन प्रांण सनेही ।
च्यंतामणि जब कर थें छूटे, तब दुष पावे देही ॥ १ ॥

माता बालक दूध न देवै, सो कैसें करि पीवै ।
निर्धन का धन अनत भुलांनां, सो कैसें करि जीवै ॥ २ ॥
बरसहु रांम सदा सुष अमृत, नीझर निर्मल धारा ।
प्रेम पियाला भरि भरि दीजे, दादू दास तुम्हारा ॥ ३ ॥

॥ पद १४६ ॥ अत्यंत विरह (गुजराती) ॥

कोई कहो रे मारा नाथ ने, नारी नेण निहारे बाट रे ॥ टेक ॥
दीन दुषिया सुंदरी, करुणां वचन कहे रे ।
तुम बिन नाह विरहणि व्याकुल, केम करि नाथ रहे रे ॥ १ ॥
भूधर बिना भावे नहिं कोई, हरि बिन और न जाणे रे ।
देह गृह हूं तेने आपूं, जे कोइ गोविंद आणे रे ॥ २ ॥
जगपति ने जोवा ने काजे, आतुर थई रही रे ।
दादू ने देषाडो स्वामी, व्याकुल होइ गई रे ॥ ३ ॥

॥ पद १४७ ॥ विरह विलाप ॥

कबहूं ऐसा विरह उपावै रे, पीव बिन देषें जीव जावै रे ॥ टेक ॥
विपति हमारी सुनहु सहेली, पीव बिन चैंन न आवै रे ।
ज्यों जल मींन भीन तन तलफे, पीव बिन वज्र विहावै रे ॥ १ ॥
ऐसी प्रीति प्रेमकी लागे, ज्यूं पंषी पीव सुनावै रे ।
त्यूं मन मेरा रहै निसबासुरि, कोइ पीव कूं आंणि मिलावै रे ॥ २ ॥
तौ मन मेरा धीरज धरही, कोइ आगम आंणि जनावै रे ।

---

(१४६) नारी नेण=आप की स्त्री के नेत्र । नाह = पति । भूधर = ईश्वर । देह गृह = अपना देहरूपी घर मैं गोविंद (परमेश्वर) को अर्पण करूं, यदि कोई गोविंद को ले आवे ॥ २ ॥ जगपति (परमेश्वर) को देखने के निमित्त मैं बेकल हो रही हूं ॥

तौ सुपर्जीव दादू का पावे, पल पिवजी आप दिपावे रे ॥ ३ ॥

॥ पद १४८ ॥ (गुजराती) ॥

अमे विरहणिया रांम तुम्हाराड़िया,
तुम विन नाथ अनाथ, कांइ विसाराड़िया ॥ टेक ॥
अपने अंग अनल परजाले, नाथ निकट नहिं आवे रे।
दर्शन कारण विरहणि व्याकुल, और न कोई भावे रे ॥ १ ॥
आप अप्रछन अमने देपे, आपणपो न दिपाड़े रे।
प्रांणी पिंजर लेइ रह्यो रे, आड़ा अंतर पाड़े रे ॥ २ ॥
देव देव करि दर्शन मांगे, अंतर जामी आपे रे।
दादू विरहणि वन वन ढूंढे, ये दुप कांय न कापे रे ॥ ३ ॥

॥ पद १४९ ॥ विरह मस्न ॥

पंथीड़ा वूझे विरहणी कहिनें पीव की वात, कव घरि आवे
कव मिलौं, जोऊं दिन अरु राति, पंथीड़ा ॥ टेक ॥
कहां मेरा प्रीतम कहां वसे, कहां रहे करि वास।
कहं ढूंढों कहं पाइये, कहां रहे किस पास, पंथीड़ा ॥ १ ॥
कवन देस कहं जाइये, कीजे कौंन उपाय।
कौंण अंग कैसें रहे, कहा करे समझाइ, पंथीड़ा ॥ २ ॥
परम सनेही प्रांण का, सो कत देहु दिपाइ।
जीवनि मेरे जीव की, सो मुझ आनि मिलाइ, पंथीड़ा ॥ ३ ॥
नैंन न आवें नींदड़ी, निसदिन तलफत जाइ।
दादू आतुर विरहणी, क्यूं करि रैंनि विहाइ, पंथीड़ा ॥ ४ ॥

(१४८) तुम्हाराड़िया = तुम्हारी। कांय = क्यूं। विसाराड़िया = विसारडाली। अप्रछन = छुपेहुये। आड़ा = पड़दा। पाड़े = डाले। कोप = काटे ॥

॥ पद १५० ॥ समुच्चय उत्तर ॥

पंथीड़ा पंथ पिछांणीं रे पीव का, गहि बिरहे की वाट ।
जीवत मृतक ह्वै चलै, लंघै औघट घाट, पंथीड़ा ॥ टेक ॥
सतगुर सिरपरि राषिये, निर्मल ग्यांन विचार ।
प्रेम भगति करि प्रीति सौं, सनमुष सिरजनहार, पंथीड़ा ॥१॥
पर आत्म सौं आतमा, ज्यों जल जलहि समाइ ।
मन हीं सौं मन लाइये, लै के मारग जाइ, पंथीड़ा ॥ २ ॥
तालावेली ऊपजै, आतुर पीड़ पुकार ।
सुमिरि सनेही आपणां, निस दिन वारंवार, पंथीड़ा ॥ ३ ॥
देषि देषि पग राषिये, मारग पांडे धार ।
मनसा वाचा कर्मनां, दादू लंघै पार, पंथीड़ा ॥ ४ ॥

॥ पद १५१ ॥ अनुक्रम उत्तर ॥

साध कहैं उपदेस, बिरहणीं,
तन भूलै तब पाइये, निकटि भया परदेस, बिरहणीं ॥ टेक॥
तुमहीं माहैं ते वसैं, तहां रहे करि वास ।
तहं ढूंढ़ौं पिव पाइये, जीवनि जीव के पास, बिरहणीं ॥ १ ॥
परम देस तहं जाइये, आतम लीन उपाइ ।
एक अंग ऐसैं रहै, ज्यों जल जलहि समाइ, बिरहणीं ॥ २ ॥
सदा संगाती आपणां, कबहूं दूरि न जाइ ।
प्रांण सनेही पाइये, तन मन लेहु लगाइ, बिरहणीं ॥ ३ ॥
जागैं जगपति देषिये, परगट मिलि है आइ ।

(१५१—२) एक अंग = मिलाकर = एक रूप होकर = लय ब्रह्म ज्योति में मिलाकर ॥

दादू सनमुप ह्वै रहे, आनंद अंगि न माइ, विरहणीं ॥ ४ ॥

॥ पद १५२ ॥ विरह विनती ॥

गोविंदा गाइवा देरे आडड़ी आंन निवार, गोविंदा गाइवा दे,
अन दिन अंतरि आनंद कीजे, भगति प्रेम रस सार रे ॥ टेक ॥
अनभै आतम अभै एक रस, निरभै कांइ न कीजे रे।
अमी महारस अमृत आपे, अम्हे रसिक रस पीजे रे ॥ १ ॥
अविचल अमर अषै अविनासी, ते रस कांइ न दीजे रे।
आतम रांम अधार अम्हारो, जनम सुफल करि लीजे रे ॥ २ ॥
देव दयाल कृपाल दमोदर, प्रेम विना क्यूं रहिये रे।
दादू रंग भरि रांम रमाड़ो, भगत वछल तूं कहिये रे ॥ ३ ॥

॥ पद १५३ ॥ (गुजराती) ॥

गोविंदा जोइवा दे रे, जे वरजें ते वारि रे, गोविंदा जोइवा दे रे।
आदि पुरिष तूं अछय अम्हारो, कंत तुम्हारी नारि रे ॥ टेक ॥
अंगें संगें रंगें रमिये, देवा दूर न कीजे रे।
रस मांहैं रस इम थइ रहिये, ये सुप अमने दीजे रे।
सेजड़िये सुप रंग भरि रमिये, प्रेम भगति रस लीजे रे।
एकमेक रस केलि करंतां, अम्हे अवला इम जीजे रे ॥ २ ॥
समथ स्वामी अंतरजामी, वारवार कांइ वाहे रे।
आदें अंतें तेज तुम्हारो, दादू देषै गाये रे ॥ ३ ॥

(१५२) आडड़ी आंननिवार=आड़, परदे को आकर उठादे। अनदिन=अनिदिन। राम रमाड़ौ=हे राम। हमको खिलाओ आनंद दो। भगत वछल=भक्त वत्सल ॥

(१५३) जे वरजें ते वारि रे=जो विघ्न हों उनको तू टाल ॥

॥ पद १५४ ॥

तुम्ह सरसी रंग रमाड़,
आप अपरछन थई करी, मने मा भरमाड़ ॥ टेक ॥
मन भोलवे कांइ थई वेगलो, आपणपो देखाड़ ।
केम जीवूं हूं एकली, विरहणिया नार ॥ १ ॥
मने चाहिश मा अलगो थई, आत्मा उद्धार ।
दादू सूं रमिये सदा, येणे परें तार ॥ २ ॥

॥ पद १५५ ॥ काल चितावणी ॥

जागि रे किस नींदड़ी सूता,
रैणि बिहाई सब गई, दिन आइ पहूंता ॥ टेक ॥
सो क्यों सोवै नींदड़ी, जिस मरणां होवै रे ।
जौरा वैरी जागणां, जीव तूं क्यों सोवै रे ॥ १ ॥
जाके सिर परि जम पड़ा रे, सर सांधे मारै रे ।
सो क्यूं सोवै नींदड़ी, कहि क्यूं न पुकारै रे ॥ २ ॥
दिन प्रति निस काल झंपै, जीव न जागै रे ।
दादू सूता नींदड़ी, उस अंगि न लागै रे ॥ ३ ॥

॥ पद १५६ ॥

जागिरे सब रैणि बिहांणीं, जाइ जन्म अंजुली कौ पांणीं ॥टेक॥

---

(१५४) हे ईश्वर ! तुम्हारी सदृश रंग खिलाड़ी, आप छिपकर मुझ को न भ्रमावें । मुझको लुभा कर क्यूं जुदे हो गये हो, अपने दर्शन दो । मैं अकेली विरहणी नार कैसे जीवूं ॥ १ ॥ मुझे छोड़कर अलग मत हो जाइयो, हे आत्मोद्धार ! दादू से सदा रमते रहिये और उसको पार उतारिये ॥ २ ॥ देखो साखी १२-८२ ॥

घड़ी घड़ी घड़ियाल बजावै, जे दिन जाइ सो बहुरि न आवै ॥ १ ॥
सूरिज चंद कहैं समझाइ, दिन दिन आव घटती जाइ ॥२॥
सरवर पांणीं तरवर छाया, निस दिन काल गरासै काया ॥३॥
हंस बटाऊ प्रांण पयांनां दादू आतमरांम न जांनां ॥ ४ ॥

॥ पद १५७ ॥

आदि काल अंति काल, मधि काल भाई।
जन्म काल जुरा काल, काल संगि सदाई ॥ टेक ॥
जागत काल सोवत काल, काल झंपै आई।
काल चलत काल फिरत, कबहूं लें जाई ॥ १ ॥
आवत काल जात काल, काल कठिन पाई।
लेत काल देत काल, काल ग्रसै धाई ॥ २ ॥
कहत काल सुनत काल, करत काल सगाई।
कांम काल क्रोध काल, काल जाल छाई ॥ ३ ॥
काल आगें काल पीछैं, काल संगि समाई।
काल रहित रांम गहित, दादू ल्यौ लाई ॥ ४ ॥

॥ पद १५८ ॥ हित उपदेस ॥

तो कौं केता कह्या मन मेरे,
पिण इक मांहैं जाइ अने रे, प्रांण उधारी ले रे ॥ टेक ॥
आगैं है मन परी विमासणि, लेपा मांगै दे रे।
काहे सोवै नींद भरी रे, कृत विचारै तेरे ॥ १ ॥
ते परि कीजे मन विचारे, रांपै चरणहु नेरे।
रती एक जीवनि मोहि न सूझै, दादू चेति सवेरे ॥ २ ॥

॥ पद १५६ ॥

मन वाहला रे, कछू बिचारी पेल, पड़ेशे रे गढ़ भेल ॥ टेक॥
वहु भांतें दुप देइगा वाहला, ज्यों तिल मां लीजे तेल ।
करणी ताहरी सोधसी, होशी रे सिर हेल ॥ १ ॥
अवहीं थें करि लीजिये रे वाहला, सांई सेती मेल ।
दादू संग न छाडी पीव का, पाइ है गुण की वेल ॥ २ ॥

॥ पद १६० ॥

मन वावरे हो अनत जिनि जाइ,
तौ तूं जीवे अमी रस पीवे, अमर फल काहे न पाइ ॥ टेक ॥
रहु चरण सरण सुप पावे, देपहु नेंन अघाइ ।
भाग तेरे पीव नेरे, थीर थान वताइ ॥ १ ॥
संग तेरे रहै घेरे, सहजें अंगि समाइ ।
सरीर मांहें सोधि सांई, अनहद ध्यांन लगाइ ॥ २ ॥
पीव पासि आवे, सुप पावे, तन की तपति वुझाइ ।
दादू रे जहं नाद ऊपजै, पीव पासि दिपाइ ॥ ३ ॥

॥ पद १६१ ॥ भरम विधूसण ॥

निरंजन अंजन कीन्हां रे, सव आतम लीन्हां रे ॥ टेक ॥
अंजन माया अंजन काया, अंजन छाया रे ।

---

(१५६) हे प्यारे मन ! कुछ विचार कर खेलो, (नहीं तो) पड़ोगे गढ़ (कठिन) झमेलों में । वह झमेले बहुत प्रकार से दुःख देंगे, जैसे तिलों को कोल्हू में पीड़ते हैं । तुम्हारी करनी को हरि देखेगा तव तुम्हारे सिर बोझ पड़ेगा ॥१॥ (इस वास्ते) अभी से, हे प्यारे मन ! सांई से मेल करलो, अपने पति का संग न छांडिये, क्योंकि यह गुणवती काया वेली (मनुष्य जन्म) हाथ लगा है ॥

अंजन राते अंजन माते, अंजन पाया रे ॥ १ ॥
अंजन मेरा अंजन तेरा, अंजन मेला रे ।
अंजन लीया अंजन दीया, अंजन पेला रे ॥ २ ॥
अंजन देवा अंजन सेवा, अंजन पूजा रे ।
अंजन ग्यांना अंजन ध्यांना, अंजन दूजा रे ॥ ३ ॥
अंजन बकता अंजन सुरता, अंजन भावै रे ।
अंजन राम निरंजन कीन्हां, दादू गावै रे ॥ ४ ॥

॥ पद १६२ ॥ निज वचन महिमा ॥

अैंन वैंन चैंन होवै, सुणतां सुप लागै रे ।
तीन्यूं गुण त्रिविध तिमर, भरम करम भागै रे ॥ टेक ॥
होइ प्रकास अति उजास, परम तत्त सूझै ।
परम सार निर्विकार, विरला कोई बूझै ॥ १ ॥
परम थान सुप निधांन, परम सुंनि पेलै ।
सहज भाइ सुप समाइ, जीव ब्रह्म मेलै ॥ २ ॥
अगम निगम होइ सुगम, दूतर तिरि आवै ।
आदि पुरिप दरस परस, दादू सो पावै ॥ ३ ॥

॥ पद १६३ ॥ साध सांई हेरै ॥

कोई रांम का राता रे, कोई प्रेम का माता रे ॥ टेक ॥
कोई मन कौं मारै रे, कोई तन कौं तारै रे, कोई आप उबारै रे॥१॥
कोई जोग जुगंता रे, कोई मोप मुकता रे, कोई है भगवंता रे॥२॥
कोई सदगति सारा रे, कोई तारणहारा रे, कोई पीव का प्यारा रे॥
कोई पार को पाया रे, कोई मिलि करि आया रे, कोई मन का भाया रे

कोई है वड़भागी रे, कोई सेज सुहागी रे, कोई है अनुरागी रे॥५॥
कोई सव सुपदाता रे, कोई रूप विधाता रे; कोई अमृत पातारे॥
कोई नूर पिछांणें रे, कोई तेज कौं जांणें रे। कोई जोति वपांणें रे ७,
कोई साहिव जैसा रे, कोई सांई तैसा रे, कोई दादू अैसा रे॥८॥

॥ पद १६४ ॥ साध लक्षण ॥

सद्गति साधवा रे, सनमुप सिरजनहार।
भौ जल आप तिरैं ते तारैं, प्रांण उधारनहार ॥ टेक ॥
पूरण ब्रह्म रांम रंगि राते, निर्मल नांउं अधार।
सुप संतोप सदा सति संजम, मति गति वार न पार ॥ १ ॥
जुगि जुगि राते जुगि जुगि माते, जुगि जुगि संगति सार।
जुगि जुगि मेला जुगि जुगि जीवन, जुगि जुगि ग्यांन विचार२
सकल सिरोमणि सब सुपदाता, दुलभ इहि संसार।
दादू हंस रहैं सुप सागर, आये पर उपगार ॥ ३ ॥

॥ पद १६५ ॥ परचय उछाह मंगल ॥

अम्ह घरि पाहुणां ये, आव्या आतमरांम ॥ टेक ॥
चहुं दिसि मंगलचार, आनंद अति घणां ये।
वरत्या जैजैकार, विरध वधावणां ये ॥ १ ॥
कनक कलस रस मांहिं, सपी भरि ल्यावज्यो ये।
आनंद अंगि न माइ, अम्हारैं आविज्यो ये ॥ २ ॥
भावै भगति अपार, सेवा कीजिये ये।

(१६५) आव्या=आया। वरत्या=हुये। विरध=रिद्धि। वधावणां=वधाई। माइ=समाय। भणीं=तरफ। धणीं=मालिक॥

सनमुष सिरजनहार, सदा सुप लीजिये ये ॥ ३ ॥
धन्य अम्हारा भाग, आव्या अम्ह भणीं ये ।
दादू सेज सुहाग, तूं त्रिभवन धणीं ये ॥ ४ ॥

॥ पद १६६ ॥

गावहु मंगलचार, आज वधावणां ये ।
सुपनौं देप्यौ साच, पीव घरि आवणां ये ॥ टेक ॥
भाव कलस जल प्रेम का, सब सषियन के सीस ।
गावत चलीं वधावणां, जै जै जै जगदीस ॥ १ ॥
पदम कोटि रवि झिलमिले, अंगि अंगि तेज अनंत ।
विगसि वदन विरहनि मिली, घरि आये हरि कंत ॥ १ ।
सुंदरि सुरति सिंगार करि, सनमुष परसे पीव ।
मो मंदिर मोहन आविया, वारूं तन मन जीव ॥ ३ ॥
कवल निरंतर नर हरी, प्रगट भये भगवंत ।
जहं विरहनि गुण वीनवे, पेले फाग वसंत ॥ ४ ॥
वर आयो विरहनि मिली, अरस परस सब अंग ।
दादू सुंदरि सुप भया, जुगि जुगि यहु रस रंग ॥ ५ ॥

॥ इति राग मारू समाप्त ॥ ७ ॥

(१६६-४) वीनवे = गुजराती विनववुं = प्रशंसा करना ॥

अथ राग रांमकली ॥ ८ ॥

॥ पद १६७ ॥

सबदि समांनां जो रहे, गुरबाइक बीधा ।
उनहीं लागा येक सौं, सोई जन सीधा ॥ टेक ॥
ऐसी लागी मरमकी, तन मन सब भूला ।
जीवत मृतक ह्वै रहे, गहि आतम मूला ॥ १ ॥
चेतनि चितहिं न बीसरे, महारस मीठा ।
सबद निरंजन गहि रह्या, उनि साहिब दीठा ॥ २ ॥
एक सबद जन ऊधरे, सुनि सहजैं जागे ।
अंतरि राते येक सूं, श्रस न मुष लागे ॥ ३ ॥
सबदि समांनां सनमुष रहे, पर आतम आगे ।
दादू सीझै देषतां, अबिनासी लागे ॥ ४ ॥

॥ पद १६८ ॥ नांव महिमा ॥

अहो नर नीका है हरि नांम,
दूजा नहीं नांउं बिन नीका, कहिले केवल रांम ॥ टेक ॥
निर्मल सदा येक अबिनासी, अजर अकल रस ऐसा ।
दिढ़ गहि राषि मूल मन मांहीं, निरषि देषि निज कैसा ॥ १ ॥
यहु रस मीठा महा अमीरस, अमर अनूपं पीवे ।
राता रहे प्रेम सूं माता, ऐसें जुगि जुगि जीवे ॥ २ ॥

(१६७-३) श्रस न मुष = शिरस् (मस्तक) न मुख ॥

दूजा नहीं और को ऐसा, गुर अंजन करि सूझै ।
दादू मोटे भाग हमारे, दास बमेकी बूझै ॥ ३ ॥

॥ पद १६६ ॥ अत्यंत विरह ॥

कब आवैगा कब आवैगा,
पिव परगट आप दिखावैगा, मिठड़ा मुझकूं भावैगा ॥ टेक ॥
कंठड़ै लागि रहूं रे, नैनों में वाहि धरूं रे, पीव तुझ बिन झूंरि मरूं रे
पांऊं मस्तक मेरा रे, तन मन पीवजी तेरा रे, हौं राखौं नैनहुं नेरा रे
हियड़े हेत लगाऊं रे, अबके जे पीवे पाऊं रे, तौ बेर बेर बलि जाऊं रे
सेजड़ीयै पीव आवैरे, तब आनंद अंगि न मावै रे, दादू दरस दिखावै रे ॥ ४ ॥

॥ पद १७० ॥

पिरी तूं पांण पसाइड़े, मूं तनि लागी भाहिड़े ॥ टेक ॥
पांधी वींदो निकरीला, असां साण गल्हाइड़े ।
सांई सिकां सडकेला, गुझी गालि सुनाइड़े ॥ १ ॥
पसां पाक दीदार केला, सिक असां जी लाहिड़े ।
दादू मंझि कलूब मैला, तोड़े बीयां न काइड़े ॥ २ ॥

॥ पद १७१ ॥

को मेड़ी दो सजणां, सुहारी सुरति केला, लगे डीहु घणां ॥टेक॥
पीरीयां संदी गाल्हड़ीला, पांधीड़ा पूछां ।

(१७०) हे ईश्वर ! तू आप दिखांई दे । मेरे तन में लगी है आग । पंथी बंदा जाता है । हमारे साथ बात कर । हे ईश्वर ! चाह है तेरे उपदेश की । गुप्त बात सुनाय दे ॥ १ ॥ देखूँ पवित्र दर्शन तेरा, इच्छा हमारी पूर्ण कर । दादू को भीतर शरीर के मिल । तेरे बिना दूसरे की चाह नहीं है ।

(१७१) मेड़ी=मिलाये । सुहारी=शोभनीक । डीहु=दिन । संदी=साथ ।

कडी ईंदो मूंगरेला, डींदों बांह असां ॥ १ ॥
आहे सिक दीदार जीला, पिरी पुर पसां ।
इयं दादू जे ज्यंद येला, सजण सांण रहां ॥ २ ॥

॥ पद १७२ ॥ विनती ॥

हरिहां दिपावौ नैंनां, सुंदर मूरति मोहनां,
बोलि सुनावौ बैंनां ॥ टेक ॥
प्रगटि पुरातन पंडनां, महीमांन सुप मंडनां ॥ १ ॥
अविनांसी अपरंपरा, दीन दयाल, गगन धरा ॥ २ ॥
पारब्रह्म पर पूरणां, दरस देहु दुप दूरणां ॥ ३ ॥
करि कृपा करुणांमई, तब दादू देषै तुम दई ॥ ४ ॥

॥ पद १७३ ॥ निसप्रेहता ॥

रांम सुप सेवग जांनैं रे, दूजा दुप करि मांनैं रे ॥ टेक ॥
और अगिन की झाला, फंध रोपे हैं जमजाला ।

पांथीड़ा=पंथ । कडी=कब । डींदो=दोगे । बांह=हाथ । सिक=इच्छा । सांण=साथ ॥

(१७२) प्रगटि पुरातन पंडना, महीमांन सुप मंडना ॥ तात्पर्य—ज़ाहिर में मायारूप धारण करके अपने पुरातन (आदि शुद्ध निराकार) स्वरुप का खंडन करने वाले, हे जगदीश ! और महीमांन पृथ्वी के सुखों को मंडना=दृढ़ता देने वाले ॥

(१७३) "जमजाल" की जगह पुस्तक नं० १ में "जमकाल" है । "समकाल कठिन सर पेषै, ये सिंघरूप सब देषै"=परमात्मा के सिवाय जो कुछ "दूजा" प्रतीत होता है उस प्रपंच को जिज्ञासु काल के समान, तथा कठिन सर (बाण) के समान वा सिंह की सदृश प्राणघातक दुःखदाई समझै ॥

सम काल कठिन सर पेवे, ये सिंघरूप सव देवे ॥ १ ॥
विष सागर लहरि तरंगा, यहु ऐसा कूप भुवंगा ।
भै भीत भयांनक भारी, रिप करवत मीच विचारी ॥ २ ॥
यहु ऐसा रूप छलावा, ठग पासी हारा आवा ।
सव ऐसा देपि विचारे, ये प्रानघात वटपारे ॥ ३ ॥
ऐसा जन सेवग सोई, मनि और न भावे कोई ।
हरि प्रेम मगन रंगि राता, दादू रांम रमै रसिमाता ॥ ४ ॥

॥ पद १७४ ॥ साध महिमा ॥

आप निरंजन यौं कहे, कीरति करतार ।
मैं जन सेवग द्वै नहीं, एकै अंग सार ॥ टेक ॥
मम कारणि सव परहेर, आपा अभिमांन ।
सदा अपंडित उर धरे, वोले भगवांन ॥ १ ॥
अंतर पट जीवे नहीं, तवहीं मरि जाइ ।
विछुरे तलपै मींन ज्यूं, जीवे जल आइ ॥ २ ॥
पीर नीर ज्यूं मिलि रहे, जल जलहि समांन ।
आतम पांणीं लूण ज्यूं, दूजा नांहीं आंन ॥ ३ ॥
मैं जन सेवग द्वै नहीं, मेरा विश्राम ।
मेरा जन मुझ सारिपा, दादू कहे रांम ॥ ४ ॥

॥ पद १७५ ॥ परचय विनती ॥

सरनि तुम्हारी केसवा, मैं अनंत सुप पाया ।
भाग वड़े तूं भेटिया, हौं चरनौं आया ॥ टेक ॥

(१७४–२) अंतरपट=भगवान से पड़दा पड़ जाने पर ॥

मेरी तपति मिटी तुम्ह देषतां, सीतल भयो भारी ।
भव बंधन मुकता भया, जब मिल्या मुरारी ॥ १ ॥
भरम भेद सब भूलिया, चेतानि चित लाया ।
पारस सूं परचा भया, उनि सहजि लपाया ॥ २ ॥
मेरा चंचल चित निहचल भया, इब अनत न जाई ।
मगन भया सर बेधिया, रस पीया अघाई ॥
सनमुष ह्वै तैं सुष दीया, यहु दया तुम्हारी ।
दादू दरसन पावै ई, पीव प्राण अधारी ॥ ४ ॥

॥ पद १७६ ॥ परस्पर गोष्ठी, परचय बीनती ॥

गोविंद राषौ अपणीं वोट,
कांम क्रोध भये बटपारे, तकि मारैं उर चोट ॥ टेक ॥
वैरी पंच सबल संगि मेरे, मारग रोकि रहैं ।
काल अहेड़ी बधिक ह्वै लागे, ज्यूं जिव बाज गहे ॥ १ ॥
ग्यांन ध्यांन हिरदै हरि लीनां, संगही घेरि रहे ।
समझि न परई बाप रमईया, तुम्ह बिन सूल सहे ॥ २ ॥
सरणि तुम्हारी राषो गोविंद, इनसौं संग न दीजै ।
इनकै संगि बहुत दुष पाया, दादू कूं गहि लीजै ॥ ३ ॥

॥ पद १७७ ॥ भयमान बीनती ॥

रांम कृपा करि होहु दयाला, दरसन देहु करहु प्रतिपाला॥टेक॥
बालक दूध न देई माता, तौ वै क्यूं करि जिवै विधाता ॥१॥
गुण औगुण हरि कुछ न विचारै, अंतरि हेत प्रीति करि पालै॥२॥
अपणौं जांणि करै प्रतिपाला, नैंन निकट उरि धरै गोपाला ॥३॥
दादू कहै नहीं बस मेरा, तू माता मैं बालक तेरा ॥ ४ ॥

॥ १७८ ॥ बीनती ॥

भगति मांगूं बाप भगति मागौं, मूनैं ताहरा नांउं नौं प्रेम लागौं।
सिवपुर ब्रह्मपुर सर्व सौं कीजिये, अमर थावा नहीं लोक मांगौं टेक।
आपि अवलंबन ताहरा अंगनौं, भगति सजीवनी रंगि राचौं।
देहनें ग्रेह नौं वास वैकुंट तणौं, इंद्रआसण नहीं मुकति जाचौं ॥१॥
भगति वाहली परी, आपि अविचल हरी, निर्मलौ नांउं रसपांन भावे।
सिधि नें रिधि नें राज रूडौ नहीं, देवपद माहरै काजि न आवे ॥२॥
आत्मा अंतरि सदा निरंतरि, ताहरी वापजी भगति दीजै।
कहै दादू हिवें कोड़ी दत्त आपे, तुम्ह विना ते अम्हे नहीं लीजै ॥३॥

॥ पद १८० ॥

एह्वौ येक तूं रामजी नांउं रूडौ,
ताहरा नांउं विना बीजौ सवे ही कूडौ ॥ टेक ॥
तुंम्ह विनां अवर कोई कलिमां नहीं, सुमिरतां संत नें साद आपे
कर्म कीधां कोटि छोड़वे बाधौ, नांउं लेतां पिणतही ये कापै॥१॥

---

(१७८) सौं=शूं=क्या। थावा = होना। रूडौ = अच्छा। कोडी = क-रोड़ों। आपै = दे। लागूं = लगा है। आपि = दे। अवलंबन = मदद। त-णौं = का। हिवें = अब।

(१७९) यह अंक शब्दों की संख्या लगाते समय भूल से रह गया। शब्द नं॰ १७८ से आगे १८० ही है, बीच में कोई नहीं॥

(१८०) एव्हौ = ऐसा। रूडौ = अच्छा। बीजौ = दूसरा। कूडौ = झूठा। कलि = कालियुग। साद = स्वाद = आनंद। किये हुये कोटियों कर्मों के बंधनों को क्षण में ही तेरे नाम का सुमिरण छुड़ाता और काटता है, जब दुष्ट जन संतों को कठिन पीड़ा देते हैं, वाहरें (तब) वाहला (परमेश्वर) जल्द आकर सहायता देता है, कैसे साधु को ? जिस ने पाप की ढेरी को परे

संतनै सांकड़ो दुष्ट पीड़ा करै, वाहरैं वाहलौ वेगि आवै ।
पापनां पुंज पहूं करी लीधौं, भाजियां भै भर्म जोनि न आवै॥२॥
साधनैं दुहेलौं तहां तूं आकुलौं, माहरौं माहरौं करीनैं धाऍ ।
दुष्टनै मारिवा, संतनै तारिवा, प्रगट थावा तिहां आप जाए॥३॥
नाम लेतां पिए नाथ तें एकलें, कोटिनां कर्मनां छेद कीधां ।
कहे दादू हिवें तुम्ह विना को नहीं, साषि वोलें जे सरणि लीधां॥४॥

॥ पद १८१ ॥ परचय वीनती ॥

हरि नांम देहु निरंजन तेरा, हरि हरिषें जपै जिय मेरा ॥टेक॥
भाव भगति हेत हरि दीजै, प्रेम उमगि मन आवै ।
कोमल वचन दीनता दीजै, रांम रसाइण भावै ॥ १ ॥
विरह वैराग प्रीति मोहि दीजै, हिरदै साच सति भाषौं ।
चित चरणौं चिंतामणि दीजै, अंतरि डिढ़ करि राषौं ॥ २ ॥
सहज संतोष सील सत्र दीजै, मन निहचल तुम्ह लागै ।
चेतनि चिंतनि सदा निवासी, संगि तुम्हारे जागै ॥ ३ ॥
ग्यांन घ्यांन मोहन मोहि दीजै, सुरति सदा संगि तेरे ।
दीन दयाल दादू कौं दीजै, परम जोति घटि मेरे ॥ ४ ॥

कर दिया है और शरीर के भय भ्रम भंजन कर दिये हैं, ऐसे साधु को जहां दुहेलौं (दुःख) होता है वहां तू (परमेश्वर) व्याकुल होकर "मेरा मेरा" कह के सहायता को धावता है । दुष्ट को मारने संत को तारने और स्वयं प्रगट होने के लिये आप तहां जाता है ॥ ३ ॥ नाम लेने ही तूं अकेले, हे नाथ ! करोड़ों कर्मों का छेदन करता है । दयालजी कहते हैं अब तेरे बिना कोई नहीं है; इस बात की साखी वो संत देते हैं जिन्हों ने तेरी शरण ली है ॥४॥
(१८१—३) जागै की जगह लागै पु० नं० १ में है ॥

॥ पद १८२ ॥ आसीरवाद मंगल ॥

जै जै जै जगदीस तूं, तूं सम्रथ सांई ।
सकल भवन भानैं घड़े, दूजा को नांहीं ॥ टेक ॥
काल मींच करुणां करै, जम किंकर माया ।
महा जोध वलिवंत बली, भय कंपे राया ॥ १ ॥
जुरा मरण तुम्ह थैं डरे, मन कौं भै भारी ।
कांम दलन करुणां मई, तूं देव मुरारी ॥ २ ॥
सब कंपैं करतार थैं, भव बंधन पासा ।
अरि रिप भंजन भयगता, सब बिघन विनासा ॥ ३ ॥
सिर ऊपरि सांई पड़ा, सोई हम मांहीं ।
दादू सेवग रांम का, निर्भै न डराई ॥ ४ ॥

॥ पद १८३ ॥ हित उपदेस ॥

हरि के चरण पकरि मन मेरा, यहु अविनासी घर तेरा ॥टेक॥
जब चरण कवल रज पावै, तब काल व्याल बौरावै ।
तब त्रिविध ताप तनि नासै, तब सुष की रासि बिलासै ॥१॥
जब चरण कवल चित लागै, तब माथैं मींच न जागै ।
तब जनम जुरा सब षीनां, तब पद पांवन उर लीनां ॥ २ ॥
जब चरण कवल रस पीवै, तब माया न व्यापै जीवै ।
तब भरम करम भौ भाजे, तब तीन्यूं लोक बिराजे ॥ ३ ॥
जब चरण कवल रुचि तेरी, तब चारि पदारथ चेरी ।
तब दादू और न वांछै, जब मन लागै साचै ॥ ४ ॥

(१८२-३) अरि=बाह्य शत्रु । रिप=काम क्रोधादि अंतर के शत्रु ॥

॥ पद १८४ ॥ संत उपदेस ॥

संतो और कहौ क्या कहिये,
हम तुम्ह सीष इहै सतगुर की, निकटि रांम के रहिये ॥टेक॥
हम तुम्ह मांहिं वसै सो स्वामी, साचे सौं सचु लहिये।
दरसन परसन जुगि जुगि कीजे, काहे कौं दुष सहिये ॥१॥
हम तुम संगि निकट रहैं नेरें, हरि केवल कर गहिये।
चरण कवल छाड़ि करि औसे, अनत काहे कौं वहिये ॥ २ ॥
हम तुम्ह तारन तेज घन सुंदर, नीके सौं निरवहिये।
दादू देषु और दुष सबहीं, तामें तन क्यों दहिये ॥ ३ ॥

॥ पद १८५ ॥ मन मति उपदेस ॥

मन रे वहुरि न औसें होई,
पीछैं फिरि पछितावैगा रे, नींद भरे जिनि सोई ॥ टेक ॥
आगम सारैं संचु करीले, तौ सुष होवै तोही।
प्रीति करी पीव पाईये, चरणौं रापै मोही ॥ १ ॥
संसार सागर विषम अति भारी, जिनि रापै मन मोहि।
दादू रे जन रांम नांम सौं, कुसमल देही धोइ ॥ २ ॥

॥ पद १८६ ॥ काल चितावणी ॥

साथी सावधान ह्वै रहिये,
पलक मांहिं परमेसुर जांणें। कहा होइ कहा कहिये ॥ टेक ॥
वाया वाट घाट कुछ समझि न आवै, दूरि गवन हम जांनां।

(१८४) दृष्टांत—गलता तें जा आइया, सांभर स्वामी पास।
या पद तें उत्तर दियौ, चढ़ि गये होइ उदास ॥

(१८५—१) आगम सारैं संचु करीले = वेदसार जो "राम नाम निज सार" को संचय कर ले ॥

परदेसी पंथि चलै अकेला, औघट घाट पयांनां ॥ १ ॥
बाबा संग न साथी कोइ नहिं तेरा, यहु सब हाट पसारा।
तरवर पंषी सबै सिधाये, तेरा कौंण गंवारा ॥ २ ॥
बाबा सबै बटाऊ पंथि सिरानैं, अस्थिर नांहीं कोई ।
अंतिकाल को आगें पीछैं, बिछुरत बार न होई ॥ ३ ॥
बाबा काची काया कौंण भरोसा, रैंनि गई क्या सोवै ।
दादू सबल सुकृत लीजे, सावधान किन होवै ॥ ४ ॥

॥ पद १८७ ॥ तरक चितावणी ॥

मेरा मेरा काहे कों कीजे रे, जे कुछ संगि न आवै ।
अनत करी नैं धन धरीला रे, तेऊ तो रीता जावै ॥ टेक ॥
माया बंधन अंध न चेतै रे, मेर मांहिं लपटाया ।
ते जांणें हूं येह बिलासौं, अनत बिरोधें पाया ॥ १ ॥
आप सवारथ येह बिलूधा रे, आगम मरम न जांणें ।
जम कर माथैं बांण धरीला, ते तो मनि न आंणें ॥ २ ॥
मन बिचारि सारी ते लीजे, तिल मांहें तन पड़िवा ।
दादू रे तहं तन ताड़ीजे, जेणें मारग चढिवा ॥ ३ ॥

॥ पद १८८ ॥ विनती-हित उपदेस ॥

सनमुष भइला रे, तब दुष गइला रे, ते मेर प्रांण अधारी।
निराकार निरंजन देवा रे, लेवा तेह विचारी ॥ टेक ॥

(१८७) अनत = अनीति । मेर मांहि = मेर (आपनपों) में ॥ "ते जांणें हूं येह बिलासौं" = वह अंध जानता है कि मैं इस को भोगूंगा । बिलूधा = विलुब्ध = लालच में फँस कर । जम कर माथैं बांण धरीला = जम के हाथ में बाण तेरे मस्तक के लिये धरा हुआ है । तिल = तन । ताड़ीजे = चलाइये, रहनुमाई कीजिये ॥

अपरंपार परम निज सोई, अलपं तोरा विस्तारं ।
अंकुर बीजें सहजि समांनां रे, अैसा समर्थ सारं ॥ १ ॥
जे तैं कीन्हां किन्हि इक चीन्हां रे, भइला ते परिमांणं ।
अविगत तोरी विगति न जाणूं, में मूरिप अयानं ॥ २ ॥
सहजें तोरा ए मन मोरा, साधन सौं रंग आई ।
दादू तोरी गति नहिं जांनें, निरवाहौ कर लाई ॥ ३ ॥

॥ पद १८९ ॥ मन प्रति सूरातन ॥

हरि मारग मस्तक दीजिये, तव निकटि परम पद लीजिये ॥टेक॥
इस मारग मांहें मरणां, तिल पीछें पाव न धरणां ।
अब आगें होइ सु होई, पीछें सोच न करणां कोई ॥ १ ॥
ज्यूं सूरा रिण झूझै, आपा पर नहिं बूझै ।
सिरि साहिव काज संवारें, घण घांवां आपा डारें ॥ २ ॥
सती संत गहि साचा बोलैं, मन निहचल कदे न डोलै ।
वाकै सोच पोच जिय न आवै, जग देपत आप जलावै ॥ ३॥
इस सिरसौं साटा कीजै, तव अविनासी पद लीजै ।
ताका तव सिर स्यावति होवै, जव दादू आपा पोवै ॥ ४ ॥

॥ पद १९० ॥ कलिजुगी ॥

झूठा कलिजुग कह्या न जाइ, अमृत कौं विप कहैं वनाइ ॥टेक॥
धन कौं निर्धन निर्धन कौं धन, नीति अनीति पुकारे ।
निर्मल मैला मैला निर्मल, साध चोर करि मारें ॥ १ ॥
कंचन काच काच कौं कंचन, हीरा कंकर भाषे ।

(१९०-३) पत्थर की जगह मूल पुस्तकों में पथर है ॥

मांणिक मणियां मणियां मांणिक, साच झूठ करि नांपै ॥२॥
पारस पत्थर पत्थर पारस, कामधेन पसु गावै ।
चंदन काठ काठ कों चंदन, ऐसी बहुत बनावै ॥ ३ ॥
रस कों अणरस अणरस कों रस, मीठा खारा होई ।
दादू कलिजुग ऐसा बरतै, साचा बिरला कोई ॥ ४ ॥

॥ पद १६१ ॥ मनवंत भरोसा ॥

दादू मोहि भरोसा मोटा,
तारण तिरण सोई संगि मेरे, कहा करै कलि खोटा ॥ टेक ॥
दौं लागी दरिया थैं न्यारी, दरिया मंझि न जाई ।
मच्छ कच्छ रहैं जलि जेते, तिनकूं काल न खाई ॥ १ ॥
जब सूवै प्यंजर घर पाया, बाज रह्या बन मांहीं ।
जिनका समरथ राषणहारा, तिनकूं को डर नांहीं ॥ २ ॥
साचे झूठ न पूजै कबहूं, सति न लागै काई ।
दादू साचा सहजि समानां, फिरि वै झूठ बिलाई ॥ ३ ॥

॥ पद १६२ ॥ साच झूठ निर्नै ॥

सांई कौं साच पियारा,
साचै साच सुहावै देषौ, साचा सिरजनहारा ॥ टेक ॥
ज्यूं घण घावां सार घड़ीजै, झूठ सबै झाड़ि जाई ।
घण के घाऊं सार रहैगा, झूठ न मांहिं समाई ॥ १ ॥
कनक कसौटी अगनि मुषि दीजै, कंप सबै जलि जाई ।
यौं तौं कसणीं साच सहैगा, झूठ सहै नहिं भाई ॥ २ ॥

(१६१-१) मच्छ कच्छ की जगह मूल पुस्तकों में मछ कछ है ॥
(१६२-२) तसैं तच " " " तसै तत है ॥

ज्यूं घृत कूं ले ताता कीजे, ताइ ताइ तत कीन्हां ।
तत्तें तत्त रहैगा भाई, झूठ सबै जलि पीनां ॥ ३ ॥
यों तौ कसणीं साच सहैगा, साचा कसि कसि लेवै ।
दादू दरसन साचा पावै, झूठे दरस न देवै ॥ ४ ॥

॥ पद १६३ ॥ करणी विना कथनी ॥

वातें वादि जांहिंगी भइयें, तुम्ह जिनि जांनों वातनि पइये॥ टेक॥
जब लग अपनां आप न जांनें, तब लग कथनीं काची ।
आपा जांनि सांई कूं जांनें, तब कथनी सब साची ॥ १ ॥
करनीं बिनां कंत नहिं पावै, कहें सुनें का होई ।
जैसी कहै करै जे तैसी, पावैगा जन सोई ॥ २ ॥
वातनि हीं जे निर्मल होवै, तौ काहे कूं कसि लीजे ।
सोनां अगनि दहै दसबारा, तब यहु प्रांन पतीजे ॥ ३ ॥
यों हम जांनां मन पतियांनां, कर्नीं कठिन अपारा ।
दादू तनका आपा जारै, तौ तिरत न लागै बारा ॥ ४ ॥

॥ पद १६४ ॥

पंडित, रांम मिलै सो कीजै,
पढ़ि पढ़ि बेद पुरान वषानें, सोई तत कहि दीजै ॥ टेक ॥
आतम रोगी विषम वियाधी, सोई करि औषध सारा ।
परसत प्रांणीं होइ परम सुष, छूटै सब संसारा ॥ १ ॥
ए गुण इंद्री अग्नि अपारा, तासनि जलै सरीरा ।
तन मन सीतल होइ सदा सुष, सो जल नावो नीरा ॥ २ ॥

(१८४) दृष्टांत–जगजीवणजी बैल लादि, आये चरचा काज ।
गुर दादू यहु पद कह्यौ, सब तजि सिष सिरताज ॥

सोई मारग हमहिं बताओ, जेहि पंथि पहुंचें पारा ।
भूलि न परै उलटि नहिं आवै, सो कुछ करहु विचारा ॥ ३ ॥
गुर उपदेस देहु कर दीपक, तिमर मिटे सब सूझै ।
दादू सोई पंडित ग्याता, रांम मिलन की बूझै ॥ ४ ॥

॥ पद १६५ ॥

हरि रांम बिनां सब भर्मि गये, कोई जन तेरा साच गहै ॥टेक॥
पीवै नीर त्रिपा तानि भाजै, ग्यांन गुरू बिन कोइ न लहै ।
परगट पूरा समझि न आवै, तार्थे सो जल दूरि रहै ॥ १ ॥
हरिष सोक दोउ समि करि रापै, येक येक कै संगि न बहै ।
अनतहि जाइ तहां दुप पावै, आपहि आपा आप दहै ॥ २ ॥
आपा पर भरम सब छाड़ै, तीनि लोक परि ताहि धरै ।
सो जन सही साचकों परसै, अमर मिलै नहिं कबहुं मरै ॥३॥
पारब्रह्म सूं प्रीति निरंतर, रांम रसांइण भरि पीवै ।
सदा अनंद सुपी साचेसों, कहै दादू सो जन जीवै ॥ ४ ॥

॥ पद १६६ ॥ भरम विधूसण ॥

जग अंधा नैंन न सूझै, जिन सिरजे ताहि न बूझै ॥ टेक ॥
पाहण की पूजा करै, करि आतम घाता ।
निर्मल नैंन न आवई, दोजग दिसि जाता ॥ १ ॥
पूजैं देव दिहाड़ियां, महा माई मांनैं ।
परगट देव निरंजनां, ताकी सेव न जांनैं ।
भैरों भूत सब भ्रम के, पसु प्रांणीं धावैं ।
सिरजनहारा सबनि का, ताकूं नहिं पावैं ॥ ३ ॥

आप सुवारथ मेदनीं, का का नहिं करई ।
दादू साचे रांम बिन, मरि मरि दुष भरई ॥ ४ ॥

॥ पद १६७ ॥ आन उपासी बिसमय वादी भरम ॥

साचा रांम न जांणैं रे, सब झूठ बषांणें रे ॥ टेक ॥
झूठे देवा झूठी सेवा, झूठा करै पसारा ।
झूठी पूजा झूठी पाती, झूठा पूजणहारा ॥ १ ॥
झूठा पाक करै रे प्रांणीं, झूठा भोग लगावै ।
झूठा आडा पड़दा देवै, झूठा थाल बजावै ॥ २ ॥
झूठे बकता झूठे सुरता, झूठी कथा सुणावै ।
झूठा कलिजुग सब को मांनैं, झूठा भर्म दिढ़ावै ॥ ३ ॥
थावर जंगम जल थल महियल, घटि घटि तेज समांनां ।
दादू आतम रांम हमारा, आदि पुरिष पहिचांनां ॥ ४ ॥

॥ पद १६८ ॥ निज मार्ग निर्णय ॥

मैं पंथि येक अपार के, मनि और न भावै ।
सोई पंथ पावै पीव का, जिसैं आप लखावै ॥ टेक ॥
को पंथि हिंदू तुरक के, को काहू राता ।
को पंथि सोफी सेवड़े, को सिंन्यासी माता ॥ १ ॥
को पंथि जोगी जंगमा, को सकति पंथ ध्यावै ।
को पंथि कमड़े कापड़ी, को बहुत मनावै ॥ २ ॥
को पंथि काहू के चलै, मैं और न जांनों ।
दादू जिन जग सिरजिया, ताही कौं मांनों ॥ ३ ॥

(१६८—२) कमड़े कापड़ी=कमरी आदि कपड़ों के भेषधारी ॥

॥ पद १९९ ॥ साध मिलाप मंगल ॥

आज हमारे रांमजी, साध घरि आये ।
मंगलचार चहुं दिसि भये, आंनद बधाये ॥ टेक ॥
चौक पुरांऊं मोतियां, घसि चंदन लांऊं ।
पांच पदारथ पोइ कें, यहु माल चढांऊं ॥ १ ॥
तन मन धन करौं वारनें परदषनां दीजे ।
सीस हंमारा जीव ले, नौछावर कीजै ॥ २ ॥
भाव भगति करि प्रीति सौं, प्रेम रस पीजै ।
सेवा वंदन आरती, यहु लाहा लीजै ॥ ३ ॥
भाग हमारा हे सषी, सुष सागर पाया ।
दादू का दरसन किया, मिले त्रिभुवन राया ॥ ४ ॥

॥ पद २०० ॥ संत समागम प्रार्थना ॥

निरंजन नांउं के रसिमाते, कोई पूरे प्रांणीं राते ॥ टेक ॥
सदा सनेही रांम के, सोई जन साचे ।
तुम्ह विन और न जांनहीं, रंगि तेरे ही राचे ॥
आंन न भावै येक तूं, सति साधू सोई ।
प्रेम पियासे पीव के, असा जन कोई ॥ २ ॥
तुमहीं जीवनि उरि रहे, आनंद अनरागी ।
प्रेम मगन पिव प्रीतड़ी, लै तुम्ह सूं लागी ॥ ३ ॥
जे जन तेरे रंगि रंगे, दूजा रंग नांहीं ।
जनम सुफल करि लीजिये, दादू उन मांहीं ॥ ४ ॥

(१९९) देखो साध के अंग की १२१ वीं साखी, पृष्ठ २३२ ॥

॥ पद २०१ ॥ अत्यंत निर्मल उपदेस ॥

चलु रे मन जहां अमृत बनां, निर्मल नीके संत जनां॥ टेक॥
निर्गुण नांउं फल अगम अपार, संतन जीवनि प्रांण अधार॥१॥
सीतल छाया सुषी सरीर, चरण सरोवर निर्मल नीर ॥ २ ॥
सुफल सदा फल बारह मास, नांनां बांणीं धुनि परकास॥३॥
तहां वास बसि अमर अनेक, तहं चलि दादू इहै बबेक ॥४॥

॥ पद २०२ ॥

चलौ मन माहरा जहां म्यंत्र अम्हारा,
तहं जांमण मरण नहिं जांणियें नहिं जांणियें ॥ टेक ॥
मोहन माया मेरा न तेरा, आवा गमन नहीं जम फेरा।
प्यंड पड़े नहिं प्रांण न छूटे, काल न लागै आव न षूटे ॥१॥
अमर लोक तहं अषिल सरीरा, व्याधि विकार न व्यापै पीरा॥२॥
रांम राज कोइ भिड़े न भाजे, अस्थिर रहणां बैठा छाजे ॥३॥
अलष निरंजन और न कोई, म्यंत्र अम्हारा दादू सोई ॥४॥

॥ पद २०३ ॥ बेली ॥

बेली आनंद प्रेम समाइ,
सहजैं मगन रांम रस सींचै, दिन दिन बधती जाइ ॥ टेक ॥
सतगुर सहजें बाही बेली, सहजि मगन घर छाया।
सहजें सहजें कूंपल मेल्है, जांणौं अवधू राया ॥ १ ॥
आतम बेली सहजें फूले, सदा फूल फल होई।
काया बाड़ी सहजें निपजै, जांनें बिरला कोई ॥ २ ॥
मन हट बेली सूकण लागी, सहजें जुगि जुगि जीवै।
दादू बेलि अमर फल लागै, सहजि सदा रस पीवै ॥ ३ ॥

॥ पद २०४ ॥ सबद बाण ॥

संतो रांम बांण मोहि लागे,
मारत मिरग मरम तब पायौ, सब संगी मिलि जागे ॥टेक॥
चित चेतनि च्यंतामणि चीन्हे, उलटि अपूठा आया ।
मंदिर पैसि बहुरि नहिं निकसे, परम तत्त घर पाया ॥ १ ॥
आवै न जाइ जाइ नहिं आवै, तिहि रस मनवां माता ।
पांन करत परमानंद पायौ, थकित भयौ चलि जाता ॥ २ ॥
भयौ अपंग पंक नहिं लागै, निर्मल संगि सहाई ।
पूरण ब्रह्म अपिल अविनासी, तिहि तजि अनत न जाई ॥३॥
सो सर लागि प्रेम परकासा, प्रगटी प्रीतम बांणीं ।
दादू दीन दयालहि जांनें, सुषमें सुरति समांणीं ॥ ४ ॥

॥ पद २०५ ॥ निजथान निर्णय ॥

मधि नैंन निरषों सदा, सो सहज सरूप,
देषतही मन मोहिया, है सो तत्त अनूप ॥ टेक ॥
त्रिवेणी तटि पाइया, मूरति अविनासी ।
जुगि जुगि मेरा भांवता, सोई सुष रासी ॥ १ ॥
तारुणी तटि देषिहौं, तहां अस्थांनां ।
सेवग स्वांमीं संगि रहै, बैठे भगवांनां ॥ २ ॥
निर्भै थान सुहात सो, तहं सेवग स्वांमीं ।
अनेक जतन करि पाइया, मैं अंतरजांमीं ॥ ३ ॥
तेज तार परमिति नहीं, ऐसा उजियारा ।

(२०५) त्रिवेणी=त्रिकुटी, मध्य नैन, दोनों भौंहों के बीच मस्तक के अंदर, वहीं तारने वाली तारुणी समझनी चाहिये ॥

दादू पार न पाइये, सो सरूप संभारा ॥ ४ ॥

॥ पद २०६ ॥

निकटि निरंजन देषि हौं, छिन दूरि न जाई,
वाहरि भीतरि येकसा, सब रह्या समाई ॥ टेक ॥
सतगुर भेद लपाइया, तब पूरा पाया,
नैंननहीं निरषूं सदा, घरि सहजैं आया ॥ १ ॥
पूरेसौं पर्चा भया, पूरी मति जागी,
जीव जांनि जीवनि मिल्या, ऐसैं बड़भागी ॥ २ ॥
रोंम रोंम मैं रमि रह्या, सो जीवनि मेरा,
जीव पीव न्यारा नहीं, सब संगि बसेरा ॥ ३ ॥
सुंदर सो सहजैं रहै, घटि अंतर्जांमीं,
दादू सोई देषि हौं, सारौं संगि स्वांमीं ॥ ४ ॥

॥ पद २०७ ॥ परचय उपदेस ॥

सहज सहेलड़ी हे, तूं निर्मल नैंन निहारि ।
रूप अरूप निर्गुण अगुण मैं, त्रिभुवन देव मुरारि ॥ टेक ॥
वारंवार निरषि जगजीवन, इहि घरि हरि अविनासी ।
सुंदरि जाइ सेज सुष विलसै, पूरण परम निवासी ॥ १ ॥
सहजैं संगि परसि जगजीवन, आसणि अमर अकेला ।
सुंदरि जाइ सेज सुष सोवै, जीव ब्रह्म का मेला ॥ २ ॥
मिलि आनन्द प्रीति करि पावन, अगम निगम जहं राजा ।
जाइ तहां परसि पावन कौं, सुंदरि सारै काजा ॥ ३ ॥
मंगलचार चहूं दिसि रोपै, जब सुंदरि पिव पावै ।
परम जोति पूरे सौं मिलि करि, दादू रंग लगावै ॥ ४ ॥

॥ पद २०८ ॥ रस्त निर्देश ॥

तहं आपै आप निरंजना, तहं निसवासुरि नहिं संजमा ॥टेक॥
तहं धरती अंबर नांहीं, तहं धूप न दीसै छांहीं ।
तहं पवन न चालै पांनीं, तहं आपै एक विनांनीं ॥ १ ॥
तहं चंद न ऊगै सूरा, सुपि काल न बाजै तूरा ।
तहं सुप दुप का गमि नांहीं, औ तौ अगम अगोचर मांहीं ॥२॥
तहं काल काया नहिं लागै, तहं को सोवै को जागै ।
तहं पाप पुंनि नहिं कोई, तहं अलप निरंजन सोई ॥ ३ ॥
तहं सहजि रहै सो स्वांमीं। सब घटि अंतरजांमीं ।
सकल निरंतर वासा, रटि दादू संगम पासा ॥ ४॥

॥ पद २०९ ॥

अवधू बोलि निरंजन बांणीं, तहं एकै अनहद जांणीं ॥ टेक॥
तहं वसुधा का बल नांहीं, तहं गगन घांम नहिं छांहीं ।
तहं चंद सूर नहिं जाई, तहं कालकाया नहिं भाई ॥ १ ॥
तहं रैंणि दिवस नहिं छाया, तहं बाव वरण नहिं माया ।
तहं उदै अस्त नहिं होई, तहं मरै न जीवै कोई ॥ २ ॥
तहं नांहीं पाठ पुरांनां, तहं अगम निगम नहिं जांनां ।
तहं विद्या वाद नहिं ग्यांनां, नहिं तहां जोग अरु ध्यांनां ॥३॥
तहं निराकार निज ऐसा, जहं जांण्यां जाइ न जैसा ।
तहं सब गुण रहिता गहिये, तहं दादू अनहद कहिये ॥ ४ ॥

॥ पद २१० ॥ प्रसिद्ध माथ ॥

बाबा को ऐसा जन जोगी,

(२०८) संगम=त्रिवेणी=त्रिकुटी ॥

अंजन छाडि रहै निरंजन सहजि सदा रस भोगी । टेक ॥
छाया माया रहै विवर्जित, प्यंड ब्रह्मंड नियारे ।
चंद सूर थैं अगम अगोचर, सो गहि तत्त विचारे ॥ १ ॥
पाप पुंनि लिपै नहिं कवहूं, दोइ पप राहिता सोई ।
धरनि आकास ताहि थैं ऊपरि, तहां जाइ रत होई ॥ २ ॥
जीवण मरण न वांछै कवहूं, आवागंवन न फेरा ।
पांनीं पवन परस नहिं लागै, तिहि संगि करै वसेरा ॥ ३ ॥
गुण आकार जहां गमि नांहीं, आपैं आप अकेला ।
दादू जाइ तहां जन जोगी, परम पुरिष सौं मेला ॥ ४ ॥

॥ पद २११ ॥ परचय पराभक्ति ॥

जोगी जांनि जांनि जन जीवै,
विनहीं मनसा मनहि विचारै । विन रसनां रस पीवै ॥ टेक ॥
विनहीं लोचन निरपि नैंन विन, श्रवण रहित सुनि सोई ।
ऐसैं आतम रहै येकरस, तौ दूसर नांउं न होई ॥ १ ॥
विनहीं मारग चलै चरण विन, निहचल वैठा जाई ।
विनहीं काया मिलै परस्पर, ज्यौं जल जलहि समाई ॥ २ ॥
विनहीं ठाहर आसण पूरै, विन कर वैन वजावै ॥
विनहीं पांऊं नाचै निसादिन, विन जिभ्या गुण गावै ॥ ३ ॥
सब गुण राहिता सकल वियापी, विन इंद्री रस भोगी ।
दादू ऐसा गुरू हमारा, आप निरंजन जोगी ॥ ४ ॥

॥ पद २१२ ॥

इहै परम गुर जोगं, अमी महारस भोगं ॥ टेक ॥
मन पौना थिर साधं, अविगत नाथ अराधं, तहं सवद अनाहद नादं

पंच सपी परमोधं, अगम ग्यांन गुर बोधं, तहं नाथ निरंजन सोधं।३
सतगुर मांहिं बतावा, निराधार घर छावा, तहं जोति सरूपी पावा।
सहजें सदा प्रकासं, पूरण ब्रह्म विलासं, तहं सेवग दादू दासं॥४॥

॥ पद २१३ ॥ अनभई ॥

मूनें येह अचंभो थाये, कीड़ीये हस्ती विडारयो, तेन्हें बैठी पायेटेक
जांण हुतौ ते बैठौ हारे, अजांण तेन्हें ता वाहे।
पांगुलो उजावा लाग्यो, तेन्हें कर को साहे ॥ १ ॥
नान्हों हुतौ ते मोटो थायो, गगन मंडल नहिं माये।
मोटेरो विस्तार भर्णीजे, तेतौ केन्हे आये ॥ २ ॥
ते जाणें जे निरषी जोवे, पोजी नें वली माहें।
दादू तेन्हों मर्म न जांणें, जे जिभ्या विहूंणों गाये ॥ ३ ॥

इति राग रांमकली समाप्त ॥ ८ ॥

---

(२१३) मूनें (मुझे) यह अंचभा थाये (होता है) कि कीड़ी (चींटीरूपी मन्सा) ने हस्ती रूपी मन को मार गिराया और उस को बैठ कर खाती है। जाण (जानकार जो मन) था सो हार बैठा। अजाण जो मनोकामना थीं तिन्हीं ने मन को वाहे (ठग लिया)। पंगुल मनसा उजावा लाग्यौ (प्रबल होगई) तिस को कर (हाथ से) कौन रोके ॥१॥ नान्हौ (छोटी) थी जो मन्सा सो मोटो थायो (बड़ी होगई)। कि गगनमंडल में भी नहीं समाती है॥ इस मोटे (बड़े) विस्तार को भर्णीजे (रोकना चाहिये) जिस से वह मनसा कहीं न जाय ॥ २ ॥ इस बात को वह जानता है जो निरख (ध्यान) कर देखता है और मांहें (भीतर वृत्ति के अंदर) खोजता भी है। दयालजी कहते हैं तिस परमात्मा का मर्म (अज्ञानी जन) नहीं जानते, उसे बिना जिह्वा के ही गा सकते हैं अर्थात् केवल शुद्ध बुद्धि द्वारा देख सकते हैं ॥ ३ ॥

राग आसावरी ॥ ६ ॥

॥ पद २१४ ॥ उत्तम सुमिरण ॥

तूंहीं मेरे रसनां, तूंहीं मेरे बैनां, तूंहीं मेरे श्रवनां, तूंहीं मेरे नैनां॥टेक
तूंहीं मेरे आतम कवल मंझारी, तूंहीं मेरी मनसा तुम्ह परिवारी
तूंहीं मेरे मनहीं तूंहीं मेरे सासा, तूंहीं मेरे सुरतें प्रांण निवासा ॥ २ ॥
तूंहीं मेरे नषसिष सकल सरीरा, तूंहीं मेरे जियरे ज्यों जल नीरा॥३॥
तुम्ह बिन मेरे अब कोइ नांहीं, तूंहीं मेरी जीवन दादू मांहीं ॥४॥

॥ पद २१५ ॥ अनिन्य सराणि ॥

तुम्हारे नांइ लागि हरि जीवन मेरा,
मेरे साधन सकल नांव निज तेरा ॥ टेक ॥
दांन पुंनि तप तीरथ मेरे, केवल नांउं तुम्हारा ।
ये सब मेरे सेवा पूजा, ऐसा बरत हमारा ॥ १ ॥
ये सब मेरे बेद पुरांनां, सुचि संजम है सोई ।
ग्यांन ध्यांन येई सब मेरे, और न दूजा कोई ॥ २ ॥
कांम क्रोध काया बसि करणां, ये सब मेरे नांमां ।
मुकता गुपता परगट कहिये, मेरे केवल रांमां ॥ ३ ॥
तारण तिरण नांउं निज तेरा, तुम्ह हीं एक अधारा ।
दादू अंग येक रस लागा, नांउं गहे भौ पारा ॥ ४ ॥

॥ पद २१६ ॥

हरि केवल एक अधारा, सोइ तारण तिरण हमारा ॥ टेक ॥
नां मैं पंडित पढि गुणि जांनौं, नां कुछ ग्यांन विचारा ।
नां मैं अगमी जोतिग जांणौं, नां मुझ रूप सिंगारा ॥ १ ॥
नां तप मेरे इंद्री निग्रह, नां कुछ तीरथ फिरणां ।
देवल पूजा मेरे नांहीं, ध्यांन कछू नहिं धरणां ॥ २ ॥
जोग जुगति कछू नहिं मेरे, नां मैं साधन जांनौं ।
औषधि मूली मेरे नांहीं, नां मैं देस वषांनौं ॥ ३ ॥
मैं तौ और कछू नहिं जांनूं, कहौ और क्या कीजे ।
दादू येक गलित गोविंद सौं, इहि विधि प्रांण पतीजे ॥ ४ ॥

॥ पद २१७ ॥ परचै ॥

पीव घरि आवनौ ए, अहो मोहि भावनौ ते ॥ टेक ॥
मोहन नीकौ री हरी, देषौंगी अंषियां भरी ।
राषौं हौं उर धरी प्रीति परी, मोहन मेरो री माई ।
रहौं हौं चरणां धाई, आनंद बधाई, हरि के गुण गाई ॥ १ ॥
दादू रे चरण गहिये, जाई नें तिहां तौ रहिये ।
तन मन सुष लहिये, बीनती गहिये ॥ २ ॥

॥ पद २१८ ॥

हां माई ! मेरो रांम बैरागी, तजि जिनि जाइ ॥ टेक॥
रांम विनोद करत उर अंतरि, मिलिहौं बैरागनि धाइ ॥ १ ॥

(२१६-१) नां मुझ रूप सिंगारा = ना मुझे रूप शृङ्गार (भेषादि) आता है ॥
(३) नां मैं देस वषांनौं = ना मैं देश में विख्यात हूँ ॥

जोगनि ह्वै कर फिरौंगी वदेसा, रांम नांम ल्यौ लाइ ॥ २ ॥
दादू को स्वांमी है उदासी, रहिहौं नैंन दोइ लाइ ॥ ३ ॥

॥ पद २१६ ॥ उपदेस चितावणी ॥

रे मन गोविंद गाइ रे गाइ, जनम अविरथा जाइ रे जाइ ॥ टेक॥
औसा जनम न वारंवारा, तार्थें जपिले रांम पियारा ॥ १ ॥
यहु तन औसा वहुरि न पावै, तार्थें गोविंद काहे न गावै ॥२॥
वहुरि न पावै मनिषा देही, तार्थें करिले रांम सनेही ॥ ३ ॥
अबकै दादू किया निहाला, गाइ निरंजन दीन दयाला ॥ ४ ॥

॥ पद २२० ॥ काल चितावणी ॥

मनरे सोवत रैंनि विहांनीं, तैं अजहूं जात न जांनीं ॥ टेक ॥
वीती रैंनि वहुरि नहिं आवै, जीव जागि जिनि सोवै ।
चारथूं दिसा चोर घर लागे, जागि देष क्या होवै ॥ १ ॥
भोर भये पछितावन लागे, मांहिं महल कुछ नांहीं ।
जब जाइ काल काया कर लागै, तब सोधै घर मांहीं ॥ २ ॥
जागि जतन करि रापो सोई, तब तन तत्त न जाई ।
चेतानि पहरै चेतत नांहीं, कहि दादू समझाई ॥ ३ ॥

॥ पद २२१ ॥

देषत ही दिन आइ गये, पलटि केस सब सेत भये ॥ टेक ॥
आई जुरहा मीच अरु मरणां, आया काल अबै क्या करणां ॥१॥
श्रवणौं सुरति गई नैंन न सूझै, सुधि बुधि नांठी कह्या न बूझै ॥२॥
मुषतैं सबद विकल भइ वांणीं, जन्म गया सब रैंनि विहांणीं ॥३॥
प्रांण पुरिस पछितांवण लागा, दादू औसरि काहे न जागा ॥४॥

(२२०-३) चेतनि पहर = चेतन के समय में ॥

॥ पद २२२ ॥ उपदेस ॥

हरि विन हां हो कहुं सचु नांहीं, देषत जाइ विषै फल पांहीं ॥टेक॥
रस रसनां के मीन मन भीरा, जलथैं जाइ यौं दहै सरीरा ॥१॥
गजके ग्यांन मगन मादि माता, अंकुस डोरि गहे फंद गाता ॥२॥
मरकट मूठी मांहिं मन लागा, दुषकी रासि भ्रमैं भ्रम भागा ॥३॥
दादू देषु हरी सुष दाता, ताकूं छाड़ि कहां मन राता ॥ ४ ॥

॥ पद २२३ ॥

सांई विनां सतोष न पावै, भावै घर तजि वन वन धावै ॥ टेक ॥
भावै पढि गुनि वेद उचारै, आगम निगम सबै विचारै ॥ १ ॥
भावै नव षंड सब फिरि आवै, अजहूं आगैं काहे न जावै ॥ २ ॥
भावै सब तजि रहै अकेला, भाई बंध न काहूं मेला ॥ ३ ॥
दादू देषै सांई सोई, साच विनां संतोष न होई ॥ ४ ॥

॥ पद २२४ ॥ मन उपदेस चितावणी ॥

मन माया रातौ भूले,
मेरी मेरी करि करि बौरे । कहा मुगध नर फूले ॥ टेक ॥
माया कारणि मूल गंवावै, समझि देषि मन मेरा ।
अंति काल जब आइ पहूंता, कोई नहीं तब तेरा ॥ १ ॥
मेरी मेरी करि नर जांणैं, मन मेरी करि रहिया ।
तब यहु मेरी कामि न आवै, प्रांण पुरिस जब गहिया ॥ २ ॥
राव रंक सब राजा रांणां, सबहिन कौं बौरावै ।
छत्रपति भूपति तिनहूं के संगि, चलती बेर न आवै ॥ ३ ॥
चेति विचारि जांनि जिय अपनें, माया संगि न जाई ।
दादू हरि भज, समझि सयांनां, रहौ रांम ल्यौ लाई ॥ ४ ॥

॥ पद २२५ ॥ काल चितावणी ॥

रहसी येक उपावनहारा, और चलिसी सब संसारा ॥ टेक ॥
चलिसी गगन धरणि सब चलिसी, चलसी पवन अरु पांणीं।
चलसी चंद सूर पुनि चलिसी, चलसी सबै उपांनीं ॥ १ ॥
चलसी दिवस रैंणि भी चलसी, चलसी जुग जमवारा।
चलसी काल व्याल पुनि चलसी, चलसी सबै पसारा ॥ २ ॥
चलसी सरग नरक भी चलसी, चलसी भूचणहारा।
चलसी सुष दुष भी चलसी, चलसी कर्म विचारा ॥ ३ ॥
चलसी चंचल निहचल रहसी, चलसी जे कुछ कीन्हां।
दादू देषि रहै अविनासी, और सबै घट षीनां ॥ ४ ॥

॥ पद ॥ २२६ ॥

इहि कालि हम मरणें कूं आये, मरण मीत उन संगि पठाये ॥टेक॥
जबथैं यहु हम मरण विचारा, तबथैं आगम पंथ संवारा ॥१॥
मरण देषि हंम गर्व न कीन्हां, मरण पठाये सो हंम लीन्हां ॥२॥
मरणां मीठा लागै मोहि, इहि मरणें मीठा सुष होइ ॥ ३ ॥
मरणें पहिली मरै जे कोई, दादू सो अजरावर होई ॥ ४ ॥

॥ पद २२७ ॥

रे मन मरणें कहा डराई, आगैं पीछैं मरणां रे भाई ॥ टेक॥
जे कुछ आवै थिर न रहाई, देषत सबै चल्या जग जाई ॥१॥
पीर पैकंबर किया पयांनां, सेष मसाइक सबै समांनां ॥ २ ॥
ब्रह्मा विश्न महेस महाबलि, मोटे मुनि जन गये सबै चालि ॥३॥
निहचल सदा सोई मन लाइ, दादू हरिष रांम गुण गाइ ॥४॥

॥ पद २२८ ॥ वस्त निरदेस निर्णय ॥

ऐसा तत्त अनूपम भाई, मरै न जीवै काल न पाई ॥ टेक ॥
पावक जरै न मार्यो मरई, काट्यौ कटै न टार्यौ टरई ॥ १ ॥
अखिर खिरै न लागै काई, सीत घांम जल डूबि न जाई ॥ २ ॥
माटी मिलै न गगन बिलाई, अघट येक रस रह्या समाई ॥ ३ ॥
ऐसा तत्त अनूपं कहिये, सो गहि दादू काहे न रहिये ॥ ४ ॥

॥ पद २२९ ॥ मन उपदेस ॥

मन रे सेवि निरंजन राई, ताकौं सेवौ रे चित लाई ॥ टेक ॥
आदि अंतैं सोई उपावै, परलै ले छिपाई ॥
बिन थंभां जिन गगन रहाया, सो रह्या सबनि मैं समाई ॥ १ ॥
पाताल मांहैं जे आराधै, वासिग रे गुण गाई ।
सहँस मुष जिभ्या है ताकै, सोभी पार न पाई ॥ २ ॥
सुर नर जाकौ पार न पावैं, कोटि मुंनीं जन ध्याई ।
दादू रे तन ताकौ है रे, जाकूं सकल लोक आराही ॥ ३ ॥

॥ पद २३० ॥ जीव उपदेस ॥

निरंजन जोगी जांनि ले चेला, सकल वियापी रहै अकेला ॥ टेक ॥
षपर न झोली डंड अधारी, मढी न माया लेहु बिचारी ॥ १ ॥
सींगी मुद्रा बिभूति न कंथा, जटा जाप आसण नहिं पंथा ॥ २ ॥
तीरथ ब्रत न बन पड़िं बासा, मांगि न पाइ नहीं जागि आसा ॥ ३ ॥
अमर गुरू अविनासी जोगी, दादू चेला महारस भोगी ॥ ४ ॥

(२२९-२) वासिग = वासुकि नाग, "सर्पाणमस्मि वासुकिः" भगवद्गीता १०-२८ ॥

॥ पद २३१ ॥ उपदेस ॥

जोगिया वैरागी बाबा, रहै अकेला उनमनि लागा ॥ टेक ॥
आत्म जोगी धीरज कंथा, निह्चल आसण आगम पंथा ॥१॥
सहजें मुद्रा अलप अधारी, अनहद सींगी रहणि हमारी ॥२॥
काया वन षंड पांचों चेला, ग्यांन गुफा में रहै अकेला ॥३॥
दादू दरसन कारनि जागे, निरंजन नगरी भिष्या मांगे ॥४॥

॥ पद २३२ ॥ समता ज्ञान ॥

बाबा कहु दूजा क्यों कहिये, ताथें इहि संसै दुष सहिये ॥टेक॥
यहु मति ऐसी पसुवां जैसी, काहे चेतन नांहीं ।
अपनां अंग आप नहिं जांनैं, देषै दर्पण मांहीं ॥ १ ॥
इहि मति मींच मरण के तांई, कूप सिंघ तहं आया ।
डूबि मुवा मनि मरम न जांन्यां, देषि आपनी छाया ॥ २॥
मध के माते समझत नांहीं, मैंगल की मति आई ।
आपैं आप आप दुष दीया, देषि आपणीं झाई ॥ ३ ॥
मन समझै तौ दूजा नांहीं, बिन समझें दुष पावै ।
दादू ग्यांन गुरू का नांहीं, समझि कहां थें आवै ॥ ४ ॥

॥ पद २३३ ॥

बाबा नांहीं दूजा कोई,
    येक अनेक नांउं तुम्हारे, मोपैं और न होई ॥ टेक ॥
अलप इलाही एक तूं, तूंहीं रांम रहीम ।
तूंहीं मालिक मोहनां, केसौ नांउं करीम ॥ १ ॥
सांई सिरजनहार तूं, तूं पांवन तूं पाक ।
तूं काइम करतार तूं, तूं हरी हाजरी आप ॥ २ ॥

रमिता राज़िक येक तूं, तूं सारंग सुबहांन ।
क़ादिर करता येक तूं, तूं साहिब सुलतांन ॥ ३ ॥
अविगत अल्लः येक तूं, गनी गुसांई येक ।
अजब अनूपम आप है, दादू नांउं अनेक ॥ ४ ॥

॥ पद २३४ ॥ समर्थाई ॥

जीवत मारे मुये जिलाये, बोलत गुंगे गुंग बुलाये ॥ टेक ॥
जागत निस भरि सेई सुलाये, सोवत रैंनी सोई जगाये ॥१॥
सूझत नैंनहुं लोइ न लीये, अंध बिचारे ता मुपि दीये ॥ २ ॥
चलते भारी ते बिठलाये, अपंग बिचारे सोई चलाये ॥ ३ ॥
ऐसा अद्भुत हम कुछ पाया, दादू सतगुर कहि समझाया॥४॥

॥ पद २३५ ॥ प्रश्न ॥

क्यों करि यहु जग रच्यो गुसांई,
तेरे कौंन बिनोद बन्यौ मन मांहीं ॥ टेक ॥
कै तुम्ह आपा परगट करणां, कै यहु रचिले जीव उधरनां ॥ १ ॥
कै यहु तुम्हकौं सेवग जांनैं, कै यहु रचिले मन के मांनैं ॥२॥
कै यहु तुम्हकौं सेवग भावै, कै यहु रचिले पेल दिपावै ॥३॥
कै यहु तुम्हकौं पेल पियारा, कै यहु भावै कीन्ह पसारा ॥४॥
यहु सब दादू अकथ कहांनीं, कहि समझावौ सारंग प्रांनीं॥५॥

॥ साखी ज्वाब की ॥

दादू परमारथ कौं सब किया, आप सवारथ नांहिं ।
परमेसुर परमारथी, कै साधू कलि मांहिं । (१५—५०)
पालिक पेलै पेल करि, बूझै बिरला कोइ ।
ले करि सुपिया नां भया, देकरि सुपिया होइ । (२१–४१)

॥ पद २३६ ॥ समर्थाई ॥

हरे हरे सकल भुवन भरे, जुगि जुगि सब करे ।
जुगि जुगि सब धरे, अकल सकल जरे, हरे हरे ॥ टेक ॥
सकल भुवन छाजे, सकल भुवन राजे, सकल कहे ।
धरती अंबर गहै, चंद सूर सुधि लहै, पवन प्रगट वहै ॥ १ ॥
घट घट आप देवै, घट घट आप लेवै, मंडित माया ।
जहां तहां आप राया, जहां तहां आप छाया, अगम अगम पाया ॥
रस माँहें रस राता, रस माँहें रस माता, अमृत पीया ।
नूर माँहें नूर लीया, तेज माँहें तेज कीया, दादू दरस दीया ॥२॥

॥ पद २३७ ॥ परचै उपदेस ॥

पीव़ पीव़ आदि अंति पीव़,
परसि परसि अंग संग, पीव़ तहां जीव़ ॥ टेक ॥
मन पवन भवन गवन, प्रांण कवल मांहिं ।
निधि निवास विधि विलास, राति दिवस नांहिं ॥ १ ॥
सास वास आस पास, आत्म अंगि लगाइ ।
अैंन वैंन निरपि नैंन, गाइ गाइ रिझाइ ॥ २ ॥
आदि तेज अंति तेज, सहजैं सहजि आइ ।
आदि नूर अंति नूर, दादू बलि बलि जाइ ॥ ३ ॥

॥ पद २३८ ॥

नूर नूर अव्वल आपिर नूर,
दाइम काइम, काइम दाइम, हाजिर है भरपूर ॥ टेक ॥
असमांन नूर जिमीं नूर, पाक परवरदिगार ।
आब नूर, बाद नूर, पूब पूबां यार ॥ १ ॥

ज़ाहिर बातिन, हाज़िर नाज़िर, दांनां तूं दीवांन।
अजब अजाइब नूर दीदम, दादू है हैरांन ॥ २ ॥

॥ पद २३६ ॥ रस ॥

मैं अमली मतिवाला माता, प्रेम मगन मेरा मन राता ॥टेक॥
अमी महारस भरि भरि पीवै, मन मतिवाला जोगी जीवै ॥१॥
रहै निरंतर गगन मंझारी, प्रेम पियाला सहजि पुमारी ॥२॥
आसणि अवधू अमृतधारा, जुगि जुगि जीवै पीवनहारा ॥३॥
दादू अमली इहि रस माते, रांम रसाइन पीवत छाके ॥४॥

॥ पद २४० ॥

सुप दुप संसा दूरि किया, तब हम केवल रांम लिया ॥टेक॥
सुप दुप दोऊ भरम विचारा, इनसूं बंध्या है जग सारा ॥१॥
मेरी मेरा सुपके तांई, जाइ जनम नर चेतै नांहीं ॥२॥
सुपके तांई झूठा बोलै, बांधे बंधन कबहूं न पोलै ॥ ३ ॥
दादू सुप दुप संगि न जाई, प्रेम प्रीति पिय सौं ल्यौ लाई ॥४॥

॥ पद २४१ ॥ हैरान ॥

कासौं कहूं हो अगम हरि बाता,
गगन धरणी दिवस नहिं राता ॥ टेक ॥
संग न साथी गुरू न चेला, आसन पास यूं रहै अकेला ॥ १ ॥
बेद न भेद न करत बिचारा, अवरण बरण सबनि थैं न्यारा ॥२॥
प्रांण न प्यंड रूप नहिं रेषा, सोइ ततसार नैंन बिन देषा ॥३॥
जोग न भोग मोह नहिं माया, दादू देषु काल नहिं काया ॥४॥

॥ पद २४२ ॥ गुरज्ञान ॥

मेरा गुरू ऐसा ग्यांन बतावै, ।
काल न लागै संसा भागै, ज्यूं है त्यूं समझावै ॥ टेक ॥

अमर गुरू के आसणि रहिये, परम जोति तहं लहिये ।
परम तेज सो दिढ करि गहिये, गहिये लहिये रहिये ॥ १॥
मन पवनां गहि आतम पेला, सहज सुंनि घर मेला ।
अगम अगोचर आप अकेला, अकेला मेला पेला ॥ २ ॥
धरती अंबर चंद न सूरा, सकल निरंतर पूरा ।
सबद अनाहद वाजहि तूरा, तूरा पूरा सूरा ॥ ३ ॥
अविचल-अमर अभै पद दाता, तहां निरंजन राता ।
ग्यांन गुरू ले दादू माता, माता राता दाता ॥ ४ ॥

॥ पद २४१ ॥

मेरा गुरु आप अकेला षेलै,
आपै देवै आपै लेवै, आपै द्वै कर मेलै ॥ टेक ॥
आपैं आप उपावै माया, पंच तत्त करि काया ।
जीव जनम ले जग मैं आया, आया काया माया ॥ १ ॥
धरती अंबर महल उपाया, सब जग धंधै लाया ।
आपैं अलष निरंजन राया, राया लाया उपाया ॥ २ ॥
चंद सूर दोइ दीपक कीन्हां, राति दिवस करि लीन्हां ।
राजिक रिजक सबनि कूं दीन्हां, दीन्हां लीन्हां कीन्हां ॥ ३ ॥
परम गुरू सो प्रांण हमारा, सब सुष देवै सारा ।
दादू षेलै अनत अपारा, अपारा सारा हमारा ॥ ४ ॥

॥ पद २४७ ॥ हैरान ॥

थकित भयो मन कह्यो न जाई, सहजि समाधि रह्यो ल्यो लाई ॥टेक॥

(२४४-२) माइर (सागर) की तुलना बूंद नहीं कर सकता ।
(२४४-३) अनल पंषि आकास कूं, बहुत उड्या करि जोर ।

जे कुछ कहिये सोचि बिचारा, ग्यांन अगोचर अगम अपारा १
साइर बूंद कैसें करि तोलै, आप अबोल कहा कहि बोलै ।२।
अनल पंप परे पर दूरि, अैसें रांम रह्या भरपूरि ॥ ३ ॥
इब मन मेरा अैसें रे भाई, दादू कहिबा कहण न जाई ।४।

॥ पद २४५ ॥

अविगत की गति कोइ न लहै, सब अपनां उनमांन कहै टेक
केते ब्रह्मा वेद बिचारैं केते पंडित पाठ पढ़ैं ।
केते अनभै आतम पोजैं, केते सुर नर नांउं रटैं ॥ १ ॥
केते ईसुर आसणि बैठे, केते जोगी ध्यांन धरैं ।
केते मुनियर मन कूं मारैं, केते ग्यांनी ग्यांन करैं ॥ २ ॥
केते पीर केते पैकंबर, केते पढ़ैं कुरांनां ।
केते काज़ी केते मुल्लां, केते सेप सयांनां ॥ ३ ॥
केते पारिप अंत न पावैं, वार पार कछु नांहीं ।
दादू कीमति कोई न जांनैं, केते आवैं जांहीं ॥ ४ ॥

॥ पद २४६ ॥

ये हौं बूझि रही पिव जैसा, है तैसा कोइ न कहै रे ।
अगम अगाध अपार अगोचर, सुधि बुधि कोइ न लहै रे।टेक।
वार पार कोइ अंत न पावै, आदि अंति मधि नांहीं रे ।
परे सयांने भये दिवाने, कैसा कहां रहै रे ॥ १ ॥
ब्रह्मा विस्न महेसुर बूझै, केता कोई बतावै रे ।
सेप मसाइक पीर पैकंबर, है कोइ अगह गहै रे ॥ २ ॥

अंबर धरती सूर ससि बूझै, वाव बरण सब सोधै रे ।
दादू चकित है हैरांनां, को है करम दहै रे ॥ ३॥

इति राग आसावरी समाप्त ॥ ६ ॥

राग सिंधूड़ौ ॥ १० ॥

॥ पद २४७ ॥ परचै उपदेस ॥

हंस सरोवर तहां रमैं, सूभर हरि जल नीर ।
प्रांणीं आप पषालीये, निर्मल सदा होइ सरीर ॥ टेक ॥
मुकताहल मन मांनियां, चूगै हंस सुजांन ।
मधि निरंतर झूलिये, मधुर विमल रसपांन ॥ १ ॥
भवर कवल रस वासनां, रातौ रांम पीवंत ।
अरस परस आनंद करै, तहां मन सदा होइ जीवंत ॥ २ ॥
मींन मगन मांहैं रहै, मुदित सरोवर मांहिं ।
सुष सागर क्रीला करैं, पूरण परमिति नांहिं ॥ ३ ॥
निरभै तहां भै को नहीं, विलसै वारंवार ।
दादू दरसन कीजिये, सनमुष सिरजनहार ॥ ४ ॥

पद २४८ ॥

सुष सागर में झूलिबौ, कुसमल झड़ै हो अपार ।

(२४८) हरि रसि रातौ हौ दास=इस रस में राता दास होवै ॥

निर्मल प्रांणी होइबौ, मिलिबौ सिरजनहार ॥ टेक ॥
तिहि संजमि पांवन सदा, पंक न लागै प्रांण ।
कवल विगासै तिहिं तणौं, उपजै ब्रह्म गियांन ॥ १ ॥
अगम निगम तहं गमि करै, तत्तैं तत्त मिलांन ।
आसणि गुर के आइबौ, मुकतैं महलि समांन ॥ २ ॥
प्रांणीं परि पूजा करै, पूरे प्रेम बिलास ।
सहजैं सुंदर सेवियै, लागी लै कविलास ॥ ३ ॥
रैंणि दिवस दीसै नहीं, सहजैं पुंज प्रकास ।
दादू दरसन देषियै, इहि रसि रातौ हौ दास ॥ ४ ॥

॥ पद २४६ ॥

अविनासीं संगि आत्मां, रमैं हौ रैंणि दिव रांम ।
एक निरंतर ते भजैं, हरि हरि प्रांणीं नांम ॥ टेक ॥
सदा अषंडित उरि वसै, सो मन जांणीं लै ।
सकल निरंतर पूरि सब, आतम रातौ ते ॥ १ ॥
निराधार निज वेसणौं, जिहि तलि आसण पूरि ।
गुर सिष आनंद ऊपजे, सनमुष सदा हजूरि ॥ २ ॥
निहचल ते चालै नहीं, प्रांणीं ते परिमांण ।
साथी साथैं ते रहैं, जांणैं जांण सुजांण ॥ ३ ॥
ते निरगुण आगुण धरी, मांहैं कौतिगहार ।
देह अछत अलगौ रहै, दादू सेवि अपार ॥ ४ ॥

॥ पद २५० ॥

पारब्रह्म भजि प्रांणींगा, अविगत एक अपार ।
अविनासी गुर सेविये, सहजैं प्रांण अधार ॥ टेक ॥

ते पुर प्रांणीं तेहनौ, अविचल सदा रहंत ।
आदि पुरिस ते आपणों, पूरण परम अनंत ॥ १ ॥
अविगत आसण कीजिये, आपैं आप निधांन ।
निरालंब भजि तेहनौं, आनंद आतमरांम ॥ २ ॥
निरगुण निश्चल थिर रहै, निराकार निज सोइ ।
ते सति प्रांणीं सेविये, लै समाधि रत होइ ॥ ३ ॥
अमर आप रमिता रमैं, घटि घटि सिरजनहार ।
गुण अतीत भजि प्रांणींया, दादू येह विचार ॥ ४ ॥

॥ पद २५१ ॥ मृगतन ॥

क्यूं भाजै सेवग तेरा, असा सिरि साहिब मेरा ॥ टेक ॥
जाके धरती गगन आकासा, जाके चंद सूर कविलासा ।
जाके तेज पवन जल साजा, जाके पंचतत्त के वाजा ॥ १ ॥
जाके अठार भार वनमाला, गिरि पर्वत दीनदयाला ।
जाके साइर अनंत तरंगा, जाके चौरासी लष संगा ॥ २ ॥
जाके असे लोक अनंता, रचि राषे विधि बहु भंता ।
जाके असा षेल पसारा, सब देषै कौतिगहारा ॥ ३ ॥
जाके काल मीच डर नांहीं, सो वरति रह्या सब मांहीं ।
मनि भावै षेलै षेला, असा है आप अकेला ॥ ४ ॥
जाके ब्रह्मा ईसुर बंदा, सब मुनिजन लागे अंगा ।
जाके साध सिध सब मांहीं, परिपूरण परिमित नांहीं ॥ ५ ॥
सोइ भानै घड़ै संवारै, जुग केते कबहूं न हारै ।
असा हरि साहिब पूरा, सब जीवनि आतमसूरा ॥ ६ ॥

सो सबहिन की सुधि जांनैं, जो जैसा तैसी बांनैं।
सर्बंगी रांम सयांनां, हरि करै सो होइ निदांनां ॥ ७ ॥
जे हरिजन सेवग भागै, तौ असा साहिब लाजै।
अब मरण मांडि हरि आगै, तौ दादू बांण न लागै ॥ ८ ॥

॥ पद २५२ ॥

हरि भजतां किम भाजिये,
भाजैं भल नांहीं, भागैं भल क्यूं पाइये, पछितावै मांहीं ॥ टेक ॥
सूरो सो सहजैं भिड़े, साइर उर झेले,
रण रोकै भाजै नहीं, ते बांण न मेले ॥ १ ॥
सती सन साचा गहै, मरणैं न डराई,
प्रांण तजै जग देपतां, पीयड़ौ उरलाई ॥ २ ॥
प्रांण पतंगा यौं तजै, वो अंग न मोड़ै,
जोबन जारै जोति सूं नैंनां भल जोड़ै ॥ ३ ॥
सेवग सो स्वांमीं भजै, तन मन तजि आसा,
दादू दरसन ते लहै, सुप संगम पासा ॥ ४ ॥

॥ पद २५३ ॥ विलावणी ॥

सुणि तूं मना रे मूरिष मूंढ विचार,
आवै लहरि विहांवणीं, दमैं देह अपार ॥ टेक ॥
करिवौ है तिम कीजिये रे, सुमिरि सो आधार ॥ १ ॥

---

(२५२) किम=क्यों। "साइर" की जगह किसी २ पुस्तक में "सार" है। "बांण" की जगह पुस्तक नं० २, ३, ४ में "मांण" है॥
(२५३) "दमैं" की जगह पु० नं० १ में "दवैं" है॥

चरण बिहूणौं चालिवौ रे, संभारी ले सार ॥ २ ॥
दादू तेहज लीजिये रे, साचौ सिरजनहार ॥ ३ ॥

॥ पद २५४ ॥

रे मन साथी माहरा, तूं समझायो कै वारो रे।
रातौ रंग कसूंभ कै, तैं वीसार्यो आधारो रे॥ टेक॥
सुपिनां सुपकें कारणै, फिरि पछैं दुप होई रे।
दीपक दृष्टि पतंग ज्यूं, यूं भर्मि जलै जिनि कोई रे ॥ १ ॥
जिभ्या स्वारथि आपणैं, ज्यूं मींन मरै ताजि नीरो रे।
मांहैं जाल न जांणियौ, तांथैं उपनौं दुप सरीरो रे ॥ २ ॥
स्वादैंहीं संकुटि पर्यौ, देषत हीं नर अंधो रे।
मूरिष मूठी छाड़ि दे, होइ रह्यौ निरबंधो रे ॥ ३ ॥
मांनि सिपांवणि माहरी, तूं हरि भज मूल न हारी रे।
सुप सागर सोइ सेविये, जन दादू रांम सभारी रे ॥ ४ ॥

इति राग सिंधूड़ौ समाप्त ॥ १० ॥

अथ राग गूजरी (देवगंधार) ॥ ११ ॥

॥ पद २५५ ॥ अनिन्य सरण ॥

सरणि तुम्हारी आइ परे,
जहां तहां हम सब फिरि आये, राषि राषि हम दुषित परे ॥ टेक॥

(११) पुस्तक नं० २, ३, ४ में इस राग का नाम देवगंधार दिया है.

कसि कसि काया तप व्रत करि करि, भर्मत भर्मत हम भूले परे।
कहुं सीतल कहुं तपति दहे तन, कहुं हम करवत सीस धरे ॥ १॥
कहुं बन तीरथ फिरि फिरि थाके, कहुं गिरि पर्बत जाइ चढ़े।
कहूं सिषिर चढ़ि परे धरणि पर, कहुं हति आपा प्रांण हरे ॥ २॥
अंध भये हम निकटि न सूझै, तार्थें तुम्ह तजि जाइ जरे।
हाहा हरि अब दीन लीन करि, दादू बहु अपराध भरे ॥ ३॥

॥ पद २५६ ॥ पतिव्रत उपदेस ॥

बौरी तूं बार बार बौरांनीं,
सपी सुहाग न पावै ऐसैं। कैसैं भरमि भुलांनीं ॥ टेक ॥
चरनौं चेरी चित नहिं राष्यौ, पतिव्रत नांहिं न जांन्यौं।
सुंदरि सेज संगि नहिं जांनैं, पीव सूं मन नहिं मांन्यौं ॥ १॥
तन मन सबै सरीर न सौंप्यौ, सीस नाइ नहिं ठाढी।
इकरस प्रीति रही नहिं कबहूं, प्रेम उमंग नहिं बाढ़ी ॥ २॥
प्रीतम अपनौं परम सनेही, नैंन निरषि न अघांनीं।
निसबासुरि आंनि उर अंतरि, परम पुरुष नहिं जांनीं ॥३॥
पतिव्रत आगैं जिन जिन पाल्यौ, सुंदरि तिनि सब छाजै।
दादू पिव बिन और न जांनैं, ताहि सुहाग बिराजै ॥ ४॥

॥ पद २५७ ॥ उपदेस चितावणी ॥

मन मूरिषा! तैं यौंहीं जन्म गवायो, सांई केरी सेवा न कीन्हीं।

गूजरी पु० १ में ही है ॥ "राषि राषि" का अर्थ यहां रक्ष रक्ष है अर्थात् हे प्रभु! हमारी रक्षा कर ॥

(२५६-२, "सीस नाइ नांहिं" की जगह पुस्तक नं० २, ३, ५ में सीस नवाइ न" है ॥

इहि कलि काहे कूं आयौ ॥ टेक ॥
जिन वातन्य तेरौ छूटिक नांहीं, सोइ मन तेरैं भायौ ।
कांमीं है विषिया संगि लागौ, रोम रोम लपटायौ ॥ १ ॥
कुछ इक चेतिं बिचारी देषौ, कहा पाप जिय लायौ ।
दादू दास भजन करि लीजै, सुपिनैं जग डहकायौ ॥ २ ॥
इति राग गूजरी (देव गंधार) समास ॥ ११ ॥

अथ राग कल्हेरा ॥ १२ ॥

॥ पद २५८ ॥ वीनती ॥

वाल्हा हूं ताहरी तूं माहरौ नाथ,
तुम सूं पहली प्रीतड़ी, पूरिवलौ साथ ॥ टेक ॥
वाल्हा मैं तूं म्हारो ओलषियो रे, राषिस तूंनैं रिदा मंझारि ॥
हूं पामूं पीव आपणों रे, त्रिभुवन दाता देव मुरारि ॥ १ ॥
वाल्हा मन माहरौ मन मांहैं राषिस, आतम येक निरंजन देव ।
चित मांहैं चित सदा निरंतर, येणीं पेरें तुम्हारी सेव ॥ २ ॥
वाल्हा भाव भगति हरि भजन तुम्हारौ, प्रेमैं पूरि कवल बिगास
अभिअंतरि आनंद अविनासी, दादू नी एवें पूरवी आस॥३॥

॥ पद २५९ ॥

मारिवार कहूं रे गहिला, रांम नांम कांइ बिसारयौ रे ।

---

(२५८) ओलषियो = जाना हुआ । राषिस = रखूंगा ॥ पामूं = पाऊं । येणीं पेरें = इस रीति से । एवें = ऐसे । पूरवी = पूर्ण कर ॥
(२५९-१) सर्वत्र येणें की जगह मूल पुस्तकों में " पर्थाई येणें " है ।

जनम अमोलिक पामियौ, एह्वौ रतन कां हार्यौ रे, ॥ टेक ॥
विषिया वाह्यौ नें तहं धायौ, कीधूं नहिं मारूं वार्यूं रे ।
माया धन जोई नें भूल्यौ, सर्बथ येणें हारथूं रे ॥ १॥
गर्भवास देह हवे तो प्राणी, आश्रम तेह संभार्यौ रे।
दादू रे जन रांम भणींजे, नहिं तो जथा विधि हार्यौ रे ॥२॥
इति राग कल्हेरौ समाप्त ॥ १२ ॥

अथ राग परजियौ ॥ १३ ॥

॥ पद २६० ॥ परचय ॥

नूर रह्या भरपूर, अमी रस पीजिये,
रस माँहिं रस होइ, लाहा लीजिये ॥ टेक ॥
परगट तेज अनंत, पार नहिं पाईये ।
झिलिमिलि झिलिमिलि होइ, तहां मन लाईये ॥ १ ॥
सहजें सदा प्रकास, जोति जल पूरिया ।
तहां रहैं निजदास, सेवग सूरिया ॥ २॥

पामियौ=पायौ। एह्वौ=ऐसा। कां=कांय=क्यूं। कीधूं=कियां। मारूं=मेरा। वार्यूं=वर्जा, मना किया। जोई=देख कर। सर्बथ सर्वस्व। येणें=इस से ॥ भणींजै=स्मर्ण कीजै। जथा=वृथा=व्यर्थ । विधि=कर्तव्य । गर्भवास करके देहधारी प्राणी हुआ और इवे (अब) उत्तम आश्रम को पाकर, हे जन! तू राम का स्मर्ण कर, नहीं तो मनुष्य देह का फल खो बैठेगा॥

(२६०) टेक के दोनों पादों के अंत में "रे" पुस्तक नं० १ में है, अर्थात् "पीजिये रे"। "लीजिये रे" ॥

सुप सागर वार न पार, हमारा वास है ।
हंस रहें तामांहिं, दादू दास है ॥ ३ ॥

इति राग परजियो समास ॥ १३॥

अथ राग भांणमली ॥ १४ ॥

॥ पद २६१ ॥ विनती ॥

मारा वाल्हा रे ! तारे सरणि रहीश ।
विनंतड़ी वाल्हाने कहतां, अनंत सुप लहीश ॥ टेक ॥
स्वामी तणों हूं संग न मेलूं, वीनंतडी कहीश ।
हूं अवला तूं वलिवंत राजा, ताहरा वना वहीश ॥ १ ॥
संगि रहुं तां सब सुप पामूं, अंतरथें दहीश ।
दादू ऊपर दया करीने, आवो आंणीं वेश ॥ २ ॥

॥ पद २६२ ॥

चरण देपाड़ तो परमांण,
स्वामी माहरे नैणों निरपूं, मांगूं येज मांन ॥ टेक ॥
जोवुं तुझनें आशा मुझनें, लागूं येज ध्यांन ।
वाहला मारो मला रे सहिये, आवे केवल ग्यांन ॥ १ ॥

(२६१) तणों=का । मेलूं=छोड़ूं । वहीश = बहजाऊंगी । दहीश = जल जाऊंगी । वना = विना । अंतर = जुदाई । आवो आंणीं वेश = आवो इस तरफ ।
(२६२) देपाड़ = दिखा । नैणों = नैनों से । येज = यही । जोवुं = देखूं । मलो रे सहिये = मिला चाहिये । जणीं परें = जिस तरह से । आलो मांण दो ज्ञान । पीव तणी = पीव से संबंधित । हूं पर नाहिं जाणूं = मैं दूसरा नहीं जानती ॥ "झजाण" दयालजी की नम्रता दर्शाता है ॥

जेणी पेरें हूं देपूं तुझनें, मुझने आलों जांण ।
पीव तणीं हूं पर नहिं जाणूं, दादू रे अजांण ॥ २ ॥

॥ पद २६३ ॥

ते हरि मलूं मारो नाथ, जोवा ने मारो तन तपे ।
केवी पेरें पामूं साथ ॥ टेक ॥
ते कारणि हूं आकुळ व्याकुळ, ऊभी करूं विलाप ।
स्वामी मारो नैणें निरपूं, ते तणो मने ताप ॥ १ ॥
एक वार घर आवे वाहला, नव मेलूं कर हाथ ।
ये विनंती सांभळ स्वामी, दादू तारो दास ॥ २ ॥

॥ पद २६४ ॥

ते केम पामिये रे, दुर्लभ जे आधार ।
ते विना तारण को नहीं, केम उतरिये पार ॥ टेक ॥
केवी पेरें कीजे आपणो रे, तत्व ते छे सार ।
मन मनोरथ पूरे मारा, तननो ताप निवार ॥ १ ॥
संभारयाँ आवे रे वाहला, वेलाये अवार ।
विरहणी विलाप करे, तेम दादू मन विचार ॥ २ ॥

इति राग भांणमली समास ॥ १४ ॥

---

(२६३) प्रथम पंक्ति का अर्थ–उस हरि अपने नाथ से मैं मिलूं जिस के देखने को मेरा तन तप रहा है ॥ केवी, = किस । तेतणो = तिसका । नव मेलूं कर हाथ = हाथ से हाथ नहीं छोड़ूं । सांभळ = सुन।

(२६४) संभारयाँ–संभाल (चिंतन) से। वेलाये अवार–आगे पीछे, वक्त ये वक्त। तेम = वैसे । जैसे विरहणी विलाप करती है तैसे ही विचार दयाल जी करते हैं कि हमारे मन में है ॥

अथ राग सारंग ॥ १५ ॥

॥ पद २६५ ॥ गुरज्ञान ॥

हो ऐसा ग्यांन ध्यांन, गुर बिनां क्यों पावै ।
वारपार पारवार, दूतर तिरि आवै हो ॥ टेक ॥
भवन गवन गवन भवन, मनहीं मन लावै ।
रवन छवन छवन रवन, सतगुर समझावै हो ॥ १ ॥
पीर नीर नीर पीर, प्रेम भगति भावै ।
प्रांन कवल बिगसि बिगसि, गोविंद गुण गावै हो ॥ २ ॥
जोति जुगति बाट घाट, लै समाधि धावै ।
परम नूर परम तेज, दादू दिपलावै हो ॥ ४ ॥

॥ पद २६६ ॥ केवल विनती ॥

तौ निबहै जन सेवग तेरा. ऐसैं दया करि साहिब मेरा ।टेक ।
ज्यूं हम तोरैं त्यूं तूं जोरै, हम तोरैं पै तूं नहिं तोरै ॥ १ ॥
हम बिसरैं पै तूं न बिसारै, हम बिगरैं पै तूं न बिगारै ॥ २ ॥
हम भूलें तूं आंनि मिलावै, हम बिछुरैं तूं अंगि लगावै ॥ ३ ॥
तुम्ह भावै सो हम पै नांहीं, दादू दरसन देहु गुसांईं ॥ ४ ॥

---

(२६५) भवन गवन गवन भवन = वृत्ति का परमात्मा में मन द्वारा गमनागमन ॥ रवन = रमन (लय लीन), छवन = रवन का जोड़ा है, जैसे "रोटी ओटी" । पीर नीर = ब्रह्म का मशोधन रूप खोज ॥

॥ पद २६७ ॥ काल चितावणी ॥

माया संसार की सब झूठी, मात पिता सब ऊभे भाई ।
तिनहिं देपतां लूटी ॥ टेक ॥
जब लग जीव काया मैं था रे, पिण बैठी पिण ऊठी ।
हंस जुथा सो पेलि गया रे, तब थैं संगति छूटी ॥ १ ॥
ए दिन पूगे आव घटांनीं, तब निच्यंत होइ सूती ।
दादूदास कहै औसि काया, जैसि गगरिया फूटी ॥ २ ॥

॥ पद २६८ ॥ माया मध्य मुक्ति ॥

औसैं गृह मैं क्यूं न रहै, मनसा वाचा रांम कहै ॥ टेक ॥
संगति विगति नहीं मैं मेरा, हरिष सोक दोइ नांहीं ।
राग दोष रहित सुप दुप थैं, बैठा हरि पद मांहीं ॥ १ ॥
तन धन माया मोह न बांधै, बैरी मीत न कोई ।
आपा पर समि रहै निरंतर, निज जन सेवग सोई ॥ २ ॥
सरवर कवल रहै जल जैसैं, दधि मथि घृत करि लीन्हां ।
जैसैं वन मैं रहै बटाऊ, काहूं हेत न कीन्हां ॥ ३ ॥
भाव भगति रहै रसि माता, प्रेम मगन गुन गावै ।
जीवत मुकत होइ जन दादू, अमर अभै पद पावै ॥ ४ ॥

॥ पद २६९ ॥ परचै उपदेस ॥

चल रे मन तहां जाईये, चरण विन चलिवौ ।
श्रवण विन सुनिवौ, विन कर बैन बजाईये ॥ टेक ॥
तन नांहीं जहं, मन नांहीं तहं, प्रांण नहीं तहं आईये ।
सबद नहीं जहं, जीव नहीं तहं, विन रसनां मुप गाईये ॥ १ ॥
पवन पावक नहीं, धरणि अंबर नहीं, उभै नहीं तहं लाईये ।

चंद नहीं जहं, सूर नहीं तहं, परम जोति सुप पाईये ॥ २ ॥
तेज पुंज सो सुप का सागर, झिलि मिलि नूर नहाईये ।
तहं चालि दादू अगम अगोचर, ता में सहज समाईये ॥३॥

इति राग सारंग समाप्त ॥ १५ ॥

अथ राग टोडी ॥ १६ ॥

॥ पद ॥ २७० ॥ सुमिरन उपदेस ॥

सो तत सहजैं सुषमण कहणां,
साच पकड़ि मन जुगि जुगि रहणां ॥ टेक ॥
प्रेम प्रीति करि नींका रावै, वारंवार सहजि नर भावै ॥ १ ॥
सुषि हिरदै सो सहजि संभारै, तिहि तत रहणां कदे न विसारै २
अंतरि सोई नींकां जांणैं, निमष न विसरै ब्रह्म वषांणैं ॥३॥
सोई सुजांण सुधा रस पीवै, दादू देषु जुगि जुगि जीवै ॥४॥

॥ पद २७१ ॥ नांव महिमा ॥

नांउं रे नांउं रे, सकल सिरोमणि नांउं रे, मैं बलिहारी जांउं रे ॥टेक॥
दूतर तारे पार उतारै, नरक निवारै नांउं रे ॥ १ ॥
तारणहारा भौ जल पारा, निर्मल सारा नांउं रे ॥ २ ॥
नूर दिषावै तेज मिलावै, जोति जगावै नांउं रे ॥ ३ ॥
सब सुप दाता अमृत राता, दादू माता नांउं रे ॥ ४ ॥

॥ पद २७२ ॥ नांव विनती ॥

राइ रे राइ रे सकल भुवन पतिराइ रे,
अमृत देहु अघाइ रे राइ ॥ टेक ॥
परगट राता परगट माता, प्रगट नूर दिषाइ रे राइ ॥ १ ॥

अस्थिर ग्यांनां अस्थिर ध्यांनां, अस्थिर तेज मिलाइरे राइ ॥२॥
अविचल मेला अविचल पेला, अविचल जोति समाइरे राइ॥३॥
निहचल बैंनां निहचल नैंनां, दादू बलि बलि जाइरे राइ ॥४॥

॥ पद २७३॥ रसिक अवस्था ॥

हरिरस माते मगन भये, सुमिरि सुमिरि भये मतिवाले।
जांमण मरण सब भूलि गये ॥ टेक ॥
निर्मल भगति प्रेम रस पीवैं, आंन न दूजा भाव धरैं।
सहजैं सदा रांम रंगि राते, मुकति बैकुंठैं कहा करैं ॥ १ ॥
गाइ गाइ रस लीन भये हैं, कछू न मांगैं संतजनां।
और अनेक देहु दत आगैं, आंन न भावै राम विनां ॥ २ ॥
इकटग ध्यांन रहैं ल्यौ लागे, छाकि परे हरिरस पीवैं।
दादू मग्न रहैं रसिमाते, ऐसैं हरि के जन जीवैं ॥ ३ ॥

॥ पद २७४ ॥ केवल बिनती ॥

ते में कीधेला रांम जे तैं वारया ते, मारग मेल्ही अमारग
अणसरि अकरम करम हरे ॥ टेक ॥

(२७३-२) हे परमेश्वर! और अनेक पदार्थ आप देउ भी तो संतजनों को सिवाय रामरस के और कुछ अच्छा नहीं लगता है ॥

छाकि परे = अघाये हुए, त्रप्त ॥

(२७४) हे रामजी मैने वही किया जो आप ने मना किया। मार्ग छोड कुमार्ग लिये और अकर्म लेके कर्म छोडे ॥

(२) यह (कहने योग्य) न कहा, यह (सुनने योग्य) न सुना, नेत्रों से यह (देखने योग्य) न देखा। अमृत (राम रस) विषवत् कड़वा लगा, विषय भोग अति मीठे लगे ॥

पांचै माण = पंच पदार्थ शब्द स्पर्श रूप रस गंध ॥

साधू कौ संग छाड़ीने, असंगति अणसरियां ।
सुकृत मूकी अविद्या साधी, विषिया विस्तरियां ॥ १ ॥
आ न कह्युं आ न सांभल्युं, नेणें आ न दीठो ।
अमृत कड़वो विष इम लागो, पातां अति मीठो ॥ २ ॥
रांम रिदार्थी विसारी ने, माया मन दीधो ।
पांचे प्रांण गुरमुषि वरज्या, ते दादू कीधो ॥ ३ ॥

॥ पद २७५ ॥ विरह बीनती ॥

कहौ क्यूं जन जीवै सांइयां, दे चरण कवल आधार हो ।
डूबत है भो सागरा, कारी करौ करतार हो ॥ टेक ॥
मीन मरै बिन पांणींयां, तुम्ह बिन येह विचार हो ।
जल बिन कैसें जीवहीं, इव तौ किती इक वार हो ॥ १ ॥
ज्यूं परै पतंगा जोतिमां, देषि देषि निज सार हो ।
प्यासा बूंद न पावई, तव वानि वानि करै पुकार हो ॥ २ ॥
निस दिन पीर पुकारही, तनकी ताप निवारि हो ।
दादू विपति सुनांवही, करि लोचन सनमुष चारि हो ॥ ३ ॥

॥ पद २७६ ॥ केवल बीनती ॥

तूं साचा साहिब मेरा,
कर्म करीम कृपाल निहारौ, मैं जन बंदा तेरा ॥ टेक ॥

---

(२७५) कारी = कार्य ॥

(२७६) दीवान = सर्वज्ञ । दीदार मौज = दर्शन की खुशी । काइम = स्थिर । निहाला = आनंदित । पैदा पुदाइ पलक में देखत = ईश्वर की कृपा जगत में चमक रही है । मैं शिकस्तः दरगह तेरी = तेरे दरबार में मैं दीन (खड़ा) हूं । हरि हजूर तूं कहिये = तूं दुख हरने वाला मालिक है ॥

तुम्ह दीवान सबहिन की जांनौं, दीनां नाथ दयाला ।
दिषाइ दीदार मौज बंदे कौं, काइम करौ निहाला ॥ १ ॥
मालिक सबै मुलिक के सांईं, समर्थ सिरजनहारा ।
पैर पुदाइ पलक मैं पेलत, दे दीदार तुम्हारा ॥ १ ॥
मैं शिकस्तः दरगह तेरी, हरि हजूर तूं कहिये ।
दादू द्वारै दीन पुकारै, काहे न दर्सन लहिये ॥ ३ ॥

॥ पद २७७ ॥ उपदेस चिंतावणी ॥

कुछ चेति रे कहि क्या आया,
इनमैं बैठा फूलि कर, तैं देषी माया ॥ टेक ॥
तूं जिनि जांनैं तन धन मेरा, मूरिष देषि भुलाया ।
आज कालि चलि जावै देहीं, कैसी सुंदर काया ॥ १ ॥
रांम नांम निज लीजिये, मैं कहि समझाया ।
दादू हरिकी सेवा कीजे, सुंदर साज मिलाया ॥ २ ॥

॥ पद २७८ ॥

नेटि रे मांटी मैं मिलनां, मोड़ि मोड़ि देहीं काहे कौं चलनां॥टेक॥
काहे कौं अपनां मन डुलावै, यहु तन अपनां नीकां धरनां।
कोटि वरस तूं काहे न जीवै, विचारि देषि आगैं है मरनां ॥१॥
काहे न अपनी वाट सवारै, संजमि रहनां सुमिरण करणां।
गहिला दादू गर्व न कीजे, यहु संसार पंच दिन भरणां ॥ २ ॥

॥ पद २७६ ॥

जाइ रे तन जाइ रे, जनम सुफल करि लेहु रांम रमि ।
सुमिरि सुमिरि गुन गाइ रे ॥ टेक ॥
नर नाराइन सकल सिरोमणि, जनम अमोलिक आहि रे ।

सो तन जाइ जगत नहिं जांनें, सकहि त ठाहर लाइ रे ॥१॥
जुरा काल दिन जाइ गरासै, तासौं कुछ न बसाइ रे ।
छिन छिन छीजत जाइ मुगध नर, अंति काल दिन आइ रे ॥२॥
प्रेम भगति साध की संगति, नांउं निरंतर गाइ रे ।
जे सिरि भाग तौ सौंज सुफल करि, दादू विलंब न लाइ रे ॥३॥

॥ पद २८० ॥

काहे रे बकि मूल गवावै, रांमके नांइं भलैं सचु पावै ॥ टेक ॥
बाद बिवाद न कीजे लोई, बाद बिबाद न हरि रस होई ॥ १ ॥
मैं तैं मेरी मांनें नांहीं, मैं तैं मेटि मिलै हरि मांहीं ॥ २ ॥
हारि जीति सौं हरि रस जाई, समझि देपि मेरे मन भाई ॥३॥
मूल न छाडी दादू बौरे, जिनि भूलै तूं बकिवे औरे ॥ ४ ॥

॥ पद २८१ ॥

हुसियार हाकिम न्याव है, सांई के दीवांन ।
कुलि का हसेब ह्वेगा, समझि मूसलमांन ॥ टेक ॥
नीयत नेकी सालिकां, रास्तां ईमान ।
इषलास अंदरि आपणें, रपणां सुबहान ॥ १ ॥
हुक्म हाज़िर होह बाबा, मुसल्लम मिहरबान ।
अक्ल सेती आपनां, सोधि लेहु सुजांन ॥ २ ॥
हक़ सौं हजूरी हूंणां, देषणां करि ग्यांन ।

(२७६) कबीर यहु तन जात है, सकहि त ठाहर लाइ ।
के सेवा करि साध की, कै गुण गोबिंद का गाइ ॥
(२८०-१) दृष्टांत-पंडित बाद्यौ दयौ पाठ मैं, दूजो बोल्यौ डाटि ।
पाठ कंठ संचर पर्‌यौ, रसनां दाणी काटि ॥

दोस्त दांनां दीन का, मनणां फुरमान ॥ ३ ॥
गुस्सा हैवानी दूरि कर, छाड़ि दे अभिमांन ।
दुई दरोगां नांहिं पुशियां, दादू लेहु पिछांन ॥ ४ ॥

॥ पद २८२ ॥ साध प्रति उपदेस ॥

निर्वेर रहणां रांम नांम कहणां, कांम क्रोध में देह न दहणां ॥टेक॥
जेणें मारगि संसार जाइला, तेणें प्रांणीं आप बहाइला ॥ १ ॥
जे जे करणीं जगत करीला, सो करणीं संत दूरि धरीला ॥२॥
जेणें पंथें लोक राता, तेणें पंथें साध न जाता ॥ ३ ॥
रांम रांम दादू ऐसें कहिये, रांम रमत रांमहिं मिलि रहिये ॥४॥

॥ पद २८३ ॥ भेष विडंबन ॥

हम पाया, हम पाया रे भाई, भेष बनाइ ऐसी मनि आई ॥टेक॥
भीतर का यहु भेद न जांनें, कहै सुहागनि क्यूं मन मांनें ॥१॥
अंतरि पीव सों पर्चा नांहीं, भई सुहागनि लोगन मांहीं ॥ २ ॥
सांई सुपिनैं कबहुं न आवै, कहिवा ऐसें महलि बुलावै ॥ ३ ॥
इन बातनि मोहि अचिरज आवै, पटम कियें कैस पिव पावै ॥४॥
दादू सुहागनि ऐसें कोई, आपा मेटि रांम रत होई ॥ ५ ॥

॥ पद ॥ २८४ ॥ आत्म समता ॥

ऐसें बाबा रांम रमीजे, आतम सों अंतर नहिं कीजे ॥ टेक॥
जैसें आतम आपा लेखै, जीव जंत ऐसें करि पेखै ॥ १ ॥

---

(२८१) दृष्टांत—सांभरि हाकम सौं कह्यौ, पद यह दादू देव ।
मांनि वचन गहि नीति कौं, करी गुरू की सेव ॥
(२८३-२) दृष्टांत—कुंभ गाड़ि आसण तले, दीपक धरि ढकि मांहिं ।
लोकन कूं कहि राति कूं, ब्रह्म जोति दरसांहिं ॥

एक रांम अैसें करि जांनैं, आपा पर अंतर नहिं आंनैं ॥ २ ॥
सब घटि आतम एक बिचारै, रांम सनेही प्रांण हमारै ॥ ३ ॥
दादू साची रांम सगाई, अैसा भाव हमारे भाई ॥ ४ ॥

॥ पद २८५ ॥ नांव समता ॥

माधइयौ माधइयौ मीठौ री माइ, माहवौ माहवौ भेटियौ आइ टेक॥
कांन्हइयौ कांन्हइयौ करतां जाइ, केसवौ केसवौ केसवौ धाइ ॥१॥
भूधरौ भूधरौ भूधरौ भाइ, रांमयौ रांमयौ रह्यौ समाइ ॥ २ ॥
नरहरि नरहरि नरहरि राइ, गोविंदौ गोविंदौ दादू गाइ ॥३॥

॥ पद २८६ ॥ समता ॥

एकहीं एकैं भया अनंद, एकहीं एकैं भागे दंद ॥ टेक ॥
एकहीं एकैं एक समांन, एकहीं एकैं पद निर्बांन ॥ १ ॥
एकहीं एकैं त्रिभुवन सार, एकहीं एकैं अगम अपार ॥ २ ॥
एकहीं एकैं निर्भै होइ, एकहीं एकैं काल न कोइ ॥ ३ ॥
एकहीं एकैं घट परकास, एकहीं एकैं निरंजन वास ॥ ४ ॥
एकहीं एकैं आपहि आप, एकहीं एकैं माइ न बाप ॥ ५ ॥
एकहीं एकैं सहज सरूप, एकहीं एकैं भये अनूप ॥ ६ ॥
एकहीं एकैं अनत न जाइ, एकहीं एकैं रह्या समाइ ॥ ७ ॥
एकहीं एकैं भये लै लीन, एकहीं एकैं दादू दीन ॥ ८ ॥

॥ पद २८७ ॥ विनती ॥

आदि है आदि अनादि मेरा, संसार सागर भगति भेरा ।
आदि है अंति है अंति है आदि है, विड़द तेरा ॥ टेक ॥
काल है झाल है झाल है काल है, राखिले राखिले प्रांण घेरा ।
जीव का जनम का, जनम का जीव का, आपहीं आपले भांनि झेरा,
भर्म का कर्म का कर्म का भर्म का, आइबा जाइबा मेटि फेरा।

तारिले पारिले पारिले तारिले, जीवसों सीव है निकटि नेरा ॥२॥
आतमा रांम है, रांम है आतमा, जोति है जुगति सौं करो मेला।
तेज है सेज है, सेज है तेज है, एक रस दादू पेल पेला ॥३॥

॥ पद २८८ ॥ परचै ॥

सुंदर रांम राया, परम ग्यांन परम ध्यांन, परम प्रांण आया।टेक।
अकल सकल अति अनूप, छाया नहिं माया।
निराकार निराधार, वार पार न पाया ॥ १ ॥
गंभीर धीर निधि सरीर, निर्गुण निरकारा।
अविल अमर परम पुरिष, निर्मल निज सारा ॥ २ ॥
परम नूर परम तेज, परम जोति परकास।
परम पुंज परापरं, दादू निज दास ॥ ३ ॥

॥ पद २८९ ॥ परचै परा भक्ति ॥

अविल भाव अविल भगति, अविल नांव देवा।
अविल प्रेम अविल प्रीति, अविल सुरति सेवा ॥ टेक ॥
अविल अंग अविल संग, अविल रंग रांमां।
अविलारत अविलामत, अविलानिज नांमां ॥ १ ॥
अविल ग्यांन अविल ध्यांन, अविल आनंद कीजे।
अविला लै अविला मैं, अविला रस पीजै ॥ २ ॥
अविल मगन अविल मुदित, अविल गलित सांई।
अविल दरस अविल परस, दादू तुम मांहीं ॥ ३ ॥

इति राग टोडी समाप्त १६॥

(२८८ टेक) "प्रांण आया" की जगह "प्रांण पाया" पुस्तक नं०२ में है॥

अथ राग हुसेनी बंगालौ ॥ १७ ॥

॥ पद २६० ॥

है दाना, है दाना, दलदार मेरे कान्हां ।
तूंहीं मेरे जान जिगर यार मेरे षाना ॥ टेक ॥
तूंहीं मेरे मादर पिदर, आलम बेगाना ।
साहिब सिरताज मेरे, तूंहीं सुलताना ॥
दोस्त दिल तूंहीं मेरे, किस का षिल षाना ।
नूर चश्म ज़िंद मेरे, तूंही रहमाना ॥ २ ॥
एके असनाव मेरे, तूंहीं हमजाना ।
जानिबा अज़ीज़ मेरे, षूब षज़ाना ॥ ३ ॥
नेक नज़र मेहर मीरां, बंदा मैं तेरा ।
दादू दरबार तेरे, षूब साहिब मेरा ॥ ४ ॥

॥ पद २६१ ॥

तूं घरि आव सुलच्छिन पीव,
हिक तिल मुष दिषलावहु तेरा । क्या तरसावै जीव ॥ टेक ॥
निसदिन तेरा पंथ निहारौं, तूं घरि मेरे आवै ।
हिरदा भीतरि हेतसौं रे वाहला, तेरा मुष दिषलावै ॥ १ ॥
वारी फेरी बलि गई रे, सोभित सोई कपोल ।
दादू ऊपरि दया करीनैं, सुनाइ सुहामे बोल ॥ २ ॥

इतिराग हुसेनी बंगालौ समाप्त ॥ १७ ॥

(२६१) सुलच्छिन की जगह मूल पुस्तकों में " सुलषिन " है ॥

अथ राग नट नारांइण ॥ १८ ॥

॥ पद २६२ ॥ हित उपदेश ॥

ताकौं काहे न प्रांण संभाले, ।
कोटि अपराध कलप के लागे, मांहिं महूरत टाले ॥ टेक ॥
अनेक जनम के वंधन बाढ़े, विन पावक फंध जाले ।
असौ है मन नांव हरीकौ, कवहूं दुष न साले ॥ १ ॥
चिंतामणि जुगति सौं रापै, ज्यूं जननी सुत पाले ।
दादू देषु, दया करै ऐसी, जन कौं जाल न राले ॥ २ ॥

॥ पद २६३ ॥ विरह ॥

गोविंद कवहुं मिले पिव मेरा,
चरण कवल क्यूंहीं करि देषौं । रापौं नैंनहुं नेरा ॥ टेक ॥
निरषण का मोहि चाव घणेरा, कव मुष देषौं तेरा ।
प्रांण मिलन कौं भये उदासी, मिलि तूं मींत सवेरा ॥ १ ॥
व्याकुल ताथैं भई तन देंहीं, सिरपरि जम का हेरा ।
दादू रे जन रांम मिलनकूं, तपई तन वहुतेरा ॥ २ ॥

॥ पद २६४ ॥

कव देषौं नैंनहु रेष रती, प्रांण मिलन कौं भई मती ।
हरि सौं पेलों हरी गती, कव मिलि हैं मोही प्रांणपती ॥ टेक ॥
वल कीती क्यूं देषौंगी रे, मुझमांहैं अति वात अनेरी ।
सुणि साहिव येक वीनती मेरी, जनम जनम हूं दासी तेरी ॥१॥

(२६२) न राले=नहीं डालता है ॥
(२६४-१) रेषरती=किंचिन्मात्र रेषा (चिन्ह)। मांण=यह मांर्षी।

कहु दादू सो सुनसी सांई, हौं अबला बल मुझमें नांहीं।
करम करी घरि मेरे आई, तौ सोभा पिव तेरे तांई ॥ २ ॥

॥ पद २६५ ॥

नीके मोहन सौं प्रीति लाई,
तन मन प्राण देत बजाई, रंग रस के बनाई ॥ टेक ॥
येहीं जीयरे वैहीं पीवरे, छोर्‌यौ न जाई माई।
बाण भेद कें देत लगाई, देषत ही मुरझाई ॥ १ ॥
निर्मल नेह पिया सौं लागौ, रती न राषी काई।
दादू रे तिलमें तन जावै, संग न छाडौं माई ॥ २ ॥

॥ पद २६६ ॥ परमेश्वर महिमा ॥

तुम्ह बिन ऐसैं कौन करै,
गरीब निवाज़ गुसांई मेरौ, माथे मुकट धरै ॥ टेक ॥
नीच ऊच ले करै गुसांई, टार्‌यौ हूं न टरै।
हस्त कवल की छाया राषै, काहू थैं न डरै ॥ १ ॥
जाकी छोति जगत कौं लागै, तापरि तूंहीं ढरै।
अमर आप ले करै गुसांई, मार्‌यौ हूं न मरै ॥ २ ॥
नांमदेव कबीर जुलाहौ, जन रैदास तिरै।
दादू बेगि बार नहिं लागै, हरि सौं सबै सरै ॥ ३ ॥

मती=बुद्धि, संकल्प, निश्चय। हरी मती=हरिरूप होकर। बलहीनी=बल करके तौ आप (ईश्वर) से मिल नहीं सकती, क्योंकि मुझ में बहुतसी अनेरी (अन्य रीं=अन्य प्रकार की) बातें भरी हैं। करम=कृपा। 'तेरे तांई' की जगह पुस्तक नं० १ के सिवाय दूसरी पुस्तकों में "मेरे तांई है ॥
"हरि सौं पेखौं हरी मती" यह पाद पुस्तक नं० १ में नहीं है ॥

॥ पद २६७ ॥ मंगलाचरण ॥

नमो नमो हरि नमो नमो,
ताहि गुसांई नमो नमो, अकल निरंजन नमो नमो ।
सकल वियापी जिहि जग कीन्हां, नारांइण निज नमो नमो ॥टेक॥
जिन सिरजे जल सीस चरण कर, अविगत जीव दियो ।
श्रवण संवारि नैंन रसनां मुष, अैसौ चित्र कियो ॥ १ ॥
आप उपाइ किये जग जीवन, सुरनर संकर साजे ।
पीर पैकंबर सिध अरु साधिक, अपनैं नांइ निवाजे ॥ २ ॥
धरती अंबर चंद सूर जिन, पांणीं पवन किये ।
भांनण घड़न पलक में केते, सकल सवारि लिये ॥ ३ ॥
आप अपंडित पंडित नांहीं, सब समि पूरि रहे ।
दादू दीन ताहि नइ वंदति, अगम अगाध कहे ॥ ४ ॥

॥ पद २६८ ॥

हम थैं दूरि रही गति तेरी,
तुम हो तैसे तुमहीं जांनौं, कहा बपरी मति मेरी ॥ टेक ॥
मन थैं अगम दृष्टि अगोचर, मनसा की गमि नांहीं ।
सुरति समाइ बुधि बल थाके, बचन न पहुंचैं तांहीं ॥ १ ॥
जोग न ध्यांन ग्यांन गमि नांहीं, समझि समझि सब हारें ।
उनमनी रहत प्रांण घट सांधे, पार न गहत तुम्हारे ॥ २ ॥
पोजि परे गति जाइ न जांनीं, अगह गहन कैसें आवै ।
दादू अविगति देइ दया करि, भाग बड़े सो पावै ॥ ३ ॥

इति राग-नट नारांइण समाप्त ॥ १८ ॥

(२६७-१) अविगत = अद्भुत । २॥ अपनें नांइ निवाजे = अपनां सरण बनाये । ४ ॥ नइवंदति = सिर नवाय कर वंदना करता है॥

अथ राग सोरठ ॥ १६ ॥

॥ पद २६६ ॥ सुमिरण ॥

कोली साल न छाडै रे, सब घावर काढै रे ॥ टेक ॥
प्रेम प्राण लगाई धागै, तत्त तेल निज दीया ।
एक मना इस आरंभ लागा, ग्यांन राछ भरि लीया ॥ १ ॥
नांव नली भरि बुणकर लागा, अंतर गति रंग राता ।
तांणें बांणैं जीव जुलाहा, परम तत्त सौं माता ॥ २ ॥
सकल सिरोमणि बुनैं बिचारा, सान्हां सूत न तोड़ै ।
सदा सचेत रहै ल्यौ लागा, ज्यौं टूटै त्यौं जोड़ै ॥ ३ ॥
अैसैं तानि बुनि गहर गजीना, सांई के मन भावै ।
दादू कोली करता के संगि, बहुरि न इहि जुगि आवै ॥ ४ ॥

॥ पद ३०० ॥ विरह ॥

विरहणी वपु न संभारे, निस दिन तलफै रांम के कारण ।
अंतरि एक विचारे ॥ टेक ॥

(२६६) इस पद में कोली के कपड़ा बुनने का दृष्टांत दिया है तिस के दार्ष्टांत में योगी का ब्रह्मचिंतन रक्खा है। साल = कोली के बुनने का स्थान। कोली के धागे की जगह योगी की प्रेम सुरति (ध्यान) है। कोली के तेल की जगह योगी का तत्व ज्ञान है। एकमना = एकाग्रचित्त ॥ राछ नली कोली के औज़ार हैं। सान्हां सूत न तोड़ै = जैसे सांधा हुआ सूत जुलाहा नहीं तोड़ता तैसे लगाई हुई सुरति को योगी न तोड़ै ॥

आतुर भई मिलन के कारण, कहि कहि रांम पुकारे ।
सास उसास निमप नहिं बिसरे, जित तित पंथ निहारे ॥१॥
फिरै उदास चहूं दिसि चितवत, नैंन नीर भरि आवे ।
रांम वियोग विरह की जारी, और न कोई भावे ॥२॥
व्याकुल भई सरीर न समझे, विषम बांण हरि मारे ।
दादू दर्सन बिन क्यूं जीवे, रांम सनेही हमारे ॥ ३ ॥

॥ पद ३०१ ॥ उपदेस चितावणी ॥

मन रे रांम रटत क्यूं रहिये, यहु तत बार बार क्यूं न कहिये टेक
जब लग जिभ्या वांणीं, तौ लौं जपि ले सारंग प्रांणीं ।
जब पवनां चलि जावे, तब प्रांणीं पछितावे ॥ १ ॥
जब लग श्रवण सुणींजे, तौ लौं साध सबद सुणि लीजे ।
श्रवणौं सुरति जब जाई, ए तब का सुणि है भाई ॥ २ ॥
जब लग नैंनहुं पेपे, तौ लौं चरन कवल क्यूं न देपे ।
जब नैंनहुं कछू न सूझे, ये तब मूरिष क्या बूझे ॥ ३ ॥
जब लग तन मन नीका, तौ लौं जपिले जीवनि जीका ।
जब दादू जीव आवे, तब हरि के मनि भावे ॥ ४ ॥

॥ पद ३०२ ॥

मनरे तेरा कोन गंवारा, जपि जीवनि प्रांण अधारा ॥ टेक ॥
रे मात पिता कुल जाती, धन जोवन सजन संगाती ।
रे ग्रह द्वारा सुत भाई, हरि बिन सब झूठा है जाई ॥ १ ॥
रे तूं अंति अकेला जावे, काहू के संगि न आवे ।
रे तूं नां करि मेरी मेरा, हरि रांम बिनां को तेरा ॥ २ ॥
रे तूं चेत न देखे अंधा, यहु माया मोह सब धंधा ।

रे काल मीच सिरि जागै, हरि सुमिरण काहे न लागै ॥ ३॥
यहु औसर वहुरि न आवै, फिरि मनिषा जनम न पावै ।
अब दादू ढील न कीजै, हरि रांम भजन करि लीजै ॥ ४ ॥

॥ पद ३०३ ॥

मन रे देषत जनम गयो, ता थें काज न कोई भयो रे॥ टेक॥
मन इंद्री ग्यांन विचारा, ता थें जनम जुवा ज्यूं हारा ।
मन झूठ साच करि जांनैं, हरि साध कहे नहिं मांनैं ॥ १ ॥
मन रे वादि गहे चतुराई, ता थें सनमुषि वात वनाई ।
मन आप आप कों थापै, करता होइ वैठा आपै ॥ २ ॥
मन स्वादी वहुत वनावै, में जांन्यां विषै वतावै ।
मन मांगै सोई दीजै, हमहिं रांम दुषी क्यूं कीजै ॥ ३ ॥
मन सव हीं छाडि विकारा, प्रांणीं होह गुनन थैं न्यारा ।
निर्गुण निज गहि रहिये, दादू साध कहें ते कहिये ॥ ४ ॥

॥ पद ३०४ ॥

मन रे अंतिकाल दिन आया, ता थें यहु सव भया पराया ॥टेक॥
श्रवनौं सुनें न नैंनहुं सूझै, रसनां कह्या न जाई ।
सीस चरण कर कंपन लागे, सो दिन पहुंच्या आई ॥ १ ॥
काले धौले वरन पलटिया, तन मन का वल भागा ।
जोवन गया जुह्रा चलि आई, तव पछितांवन लागा ॥ २ ॥
आव घटै घटि छीजै काया, यहु तन भया पुरांनां ।
पांचों थाके कह्या न मांनैं, ताका मर्म न जांनां ॥ ३ ॥
हंस वटाऊ प्रांण पयांनां, समझि देषि मन मांहीं ।

दिन दिन काल गरासै जियरा, दादू चेतै नांहीं ॥ ४ ॥

॥ पद ३०५ ॥

मन रे तूं देषै सो नांहीं, है सो अगम अगोचर मांहीं ॥टेक॥
निस अंधियारी कछू न सूझै, संसै सरप दिषावा ।
ऐसैं अंध जगत नहिं जांनैं, जीव जेवड़ी पावा ॥ १ ॥
मृग जल देषि तहां मन धावै, दिन दिन झूठी आसा ।
जहं जहं जाइ तहां जल नांहीं, निहचै मरै पियासा ॥ २ ॥
भर्म विलास बहुत विधि कीन्हां, ज्यौं सुपिनैं सुष पावै ।
जागत झूठ तहां कुछ नांहीं, फिरि पीछें पछितावै ॥ ३ ॥
जब लग सूता तब लग देषै, जागत भर्म बिलांनां ।
दादू भ्रांति इहां कुछ नांहीं, है सो सोधि सयांनां ॥ ४ ॥

॥ पद ३०६ ॥

भाईरे बाजीगर नट षेला, ऐसैं आपैं रहै अकेला ॥ टेक ॥
यहु बाजी षेल पसारा, सब मोहे कौतिग हारा ।
यहु बाजी षेल दिषावा, बाजीगर किनहूं न पावा ॥ १ ॥
इहि बाजी जगत भुलांनां, बाजीगर किनहूं न जांनां ।
कुछ नांहीं सो पेषा, है सो किनहुं न देषा ॥ २ ॥
कुछ ऐसा चेटक कीन्हां, तन मन सब हरि लीन्हां ।
बाजीगर भुरकी बाही, काहूं पैं लषी न जाई ॥ ३ ॥
बाजीगर परकासा, यहु बाजी झूठ तमासा ॥
दादू पावा सोई, जो इहि बाजी लिपत न होई ॥ ४ ॥

॥ पद ३०७ ॥ ग्यान उपदेस ॥

साधो ऐसा एक बिचारा, यूं हरि गुर कहै हमारा ॥टेक॥

जागत सूते सोवत सूते, जब लग रांम न जांनां ।
जागत जागे सोवत जागे, जब रांम नांम मन मांनां ॥ १ ॥
देषत अंधे अंध भी अंधे, जब लग सति न सूझै ।
देषत देषै अंध भी देषै, जब रांम सनेही बूझै ॥ २ ॥
बोलत गूंगे गूंग भी गूंगे, जब लग सति न चीन्हां ।
बोलत बोले गूंग भी बोले, जब रांम नांम कहि दीन्हां ॥ ३ ॥
जीवत मूये मुये भी मूये, जब लग नहीं प्रकासा ।
जीवत जीये, मुये भी जीये, दादू रांम निवासा ॥ ४ ॥

॥ पद ३०८ ॥ नाव महिमा ॥

रांमजी नांउं बिना दुष भारी, तेरे साधनि कही बिचारी ॥टेक॥
केई जोग ध्यांन गहि रहिया, केई कुल के मारगि बहिया ।
केई सकल देव कौं धावैं, केई रिधि सिधि चहिं पावैं ॥ १ ॥
केई बेद पुरानौं माते, केई माया के संगि राते ।
केई देस दिसंतर डोलैं, केई ग्यांनी ह्वै बहु बोलैं ॥ २ ॥
केई काया कसैं अपारा, केई मरैं षड़ग की धारा ।
केई अनत जिवन की आसा, केई करैं गुफा मैं बासा ॥ ३ ॥
आदि अंति जे जागे, सो तौ रांम नांम ल्यौ लागे ।
इब दादू इहै बिचारा, हरि लागा प्रांण हमारा ॥ ४ ॥

॥पद ३०९ ॥ भरम बिधूंसन ॥

साधौ हरि सौं हेत हमारा, जिन यहु कीन्ह पसारा ॥ टेक ॥
जा कारणि ब्रत कीजै, तिल तिल यहु तन छीजै ।
सहजैं ही सो जांनां, हरि जांनत ही मन मांनां ॥ १ ॥
जा कारणि तप जइये, धूप सीत सिरि सहिये ।

सहजैं हीं सो आवा, हरि आवत हीं सचु पावा ॥ २ ॥
जा कारणि वहु फिरिये, करि तीरथ भ्रमि भ्रमि मरिये ।
सहजैं हीं सो चीन्हां, हरि चीन्हि सबै सुष लीन्हां ॥ ३ ॥
प्रेम भगति जिन जांनीं, सो काहे भरमैं प्रांनीं ।
हरि सहजैं हीं भल मांनैं, तातैं दादू और न जांनैं ॥ ४ ॥

॥ पद ३१० ॥ परचै विनती ॥

रांमजी जिनि भरमावै हम कौं, तातैं करौं वीनती तुम्ह कौं ॥ टेक ॥
चरण तुम्हारे सवही देषौं, तप तीरथ व्रत दांनां ।
गंग जमुन पासि पाइन के, तहां देहु अस्नांनां ॥ १ ॥
संग तुम्हारे सवही लागे, जोग जगि जे कीजे ।
साधन सकल एई सव मेरे, संग आपनौं दीजे ॥ २ ॥
पूजा पाती देवी देवल, सव देषौं तुम मांहीं ।
मोकौं ओट आपणीं दीजे, चरन कवल की छांहीं ॥ ३ ॥
ये अरदास दास की सुणिये, दूरि करौ भ्रम मेरा ।
दादू तुम्ह विन और न जांनैं, राषौ चरनौं नेरा ॥ ४ ॥

॥ पद ३११ ॥

सोई देव पूजौं, जे टांची नहिं घड़िया,
गरभवास नांहीं औतरिया ॥ टेक ॥
विन जल संजम सदा सोइ देवा, भाव भगति करौं हरि सेवा ॥१॥
पाती प्रांण हरिदेव चढ़ाऊं, सहज समाधि प्रेम ल्यौ लाऊं ॥२॥
इहि विधि सेवा सदा तहं होई, अलप निरंजन लषै न कोई ॥ ३ ॥
ये पूजा मेरे मनि मांनैं, जिहि विधि होइ सु दादू न जांनैं ॥४॥

॥ पद ॥ ३१२ ॥ परचै हैरान ॥

रांम राइ मोकौं अचिरज आवै, तेरा पार न कोई पावै ॥ टेक ॥
ब्रह्मादिक सनकादिक नारद, नेति नेति जे गावै ।
सरणि तुम्हारी रटैं निसबासुरि, तिन कौं तूं न लखावै ॥ १ ॥
संकर सेस सबै सुरमुनि जन, तिन कौं तूं न जनावै ।
तीनि लोक रटैं रसनां भरि, तिन कौं तूं न दिषावै ॥ २ ॥
अपनैं अंग की जुगति न जांनैं, सो मनि तेरे भावै ।
सेवा संजम करैं जप पूजा, सबद न तिन कौं सुनावै ॥ ३ ॥
दीन लीन रांम रंग राते, तिन कौं तूं संगि लावै ।
मैं अछोप हींन मति मेरी, दादू कौं दिषलावै ॥ ४ ॥

इति राग सोरठ समाप्त ॥ १९ ॥

अथ राग गुंड ॥ २० ॥

॥ पद ३१३ ॥ भक्ति निःकाम ॥

दर्सन दे दर्सन दे, हौं तौ तेरी मुकति न मांगौं ॥ टेक ॥
सिधि न मांगौं रिधि न मांगौं, तुम्हहीं मांगौं गोविंदा ॥ १ ॥
जोग न मांगौं भोग न मांगौं, तुम्हहीं मांगौं रांमजी ॥ २ ॥
घर नहिं मांगौं बन नहिं मांगौं, तुम्हहीं मांगौं देवजी ॥ ३ ॥
दादू तुम्ह बिन और न मांगौं, दर्सन मांगौं देहुजी ॥ ४ ॥

॥ पद ३१४ ॥ बिरह बीनती ॥

तूं आपैं हीं विचारि, तुझ बिन क्यूं रहों ।
मेरे और न दूजा कोइ, दुष किस कों कहों ॥ टेक ॥
मीत हमारा सोइ, आदें जे पीया ।
मुझै मिलावै कोइ, वै जीवनि जीया ॥ १ ॥
तेरे नैंन दिषाइ, जीऊं जिस आसि रे ।
सो धन जीवे क्यूं, नहीं जिस पासि रे ॥ २ ॥
पिंजर मांहें प्रांण, तुझ बिन जाइसी ।
जन दादू मांगे मांन, कब घरि आइसी ॥ ३

॥ पद ३१५ ॥

हूं जोइ रही रे वाट, तूं घरि आव ने ।
तारा दर्शन थी सुप होइ, ते तूं देषाड़ नै ॥ टेक
चरण जोवा ने पांत, ते तूं देषाड़ नै ।
तुझ विना जीव देइ, दुहेली कामनी ॥ १ ॥
नेणे निहारूं वाट, ऊभी चावनी ।
तूं अंतर थी ऊरो आव, देही जावनी ॥ २ ॥
तूं दया करी घरि आव, दासी गांवनी ।
जण दादू राम संभाल, वैन सुहावनी ॥ ३ ॥

॥ पद ३१६ ॥

पीव देषे बिन क्यूं रहों, जिय तलफै मेरा ।
सब सुष आनंद पाइये, मुष देषों तेरा ॥ टेक ॥

(३१५) देषाड़ = दिखाव । पांत = चाह । ऊभी = खड़ी । चावनी = इच्छावान ॥

पिव बिन कैसा जीवनां, मोहि चैन न आवै ।
निर्धन ज्यूं धन पाइये, जब दरस दिखावै ॥ १ ॥
तुम्ह बिन क्यूं धीरज धरौं, जौ लौं तोहि न पांऊं ।
सन्मुष ह्वै सुष दीजिये, बलिहारी जांऊं ॥ २ ॥
बिरह बियोग न सहि सकौं, काइर घट काचा ।
पांवन परसन पाइये, सुनि साहिब साचा ॥ ३ ॥
सुनि यूं मेरी बीनती, इब दरसन दीजै ।
दादू देषन पांवहीं, तैसें कुछ कीजै ॥ ४ ॥

॥ पद ३१७ ॥ प्रीति अपंडित ॥

इहि बिधि वेध्यो मोर मनां, ज्यूं लै भृंगी कीट तनां ॥ टेक ॥
चात्रिग रटतें रैनि बिहाइ, प्यंड परे पै बांनि न जाइ ॥ १ ॥
मरै मीन बिसरै नहिं पांनीं, प्रांण तजै उनि और न जांनीं ॥२॥
जलै सरीर न मोड़ै अंगा, जोति न छाड़ै पड़ै पतंगा ॥ ३ ॥
दादू इब थैं ऐसें होइ, प्यंड परे नहिं छाड़ौं तोहि ॥ ४ ॥

॥ पद ३१८ ॥ बिरह ॥

आवो रांम दया करि मेरे, बार बार बलिहारी तेरे ॥ टेक ॥
बिरहनि आतुर पंथ निहारे, रांम रांम कहि पीव पुकारे ॥ १ ॥
पंथी बूझै मारग जोवै, नैंन नीर जल भरि भरि रोवै ॥ २ ॥

---

(३१७) प्यंड परै = शरीर छूट जाय, पतन हो ॥

(३१८-४) वप बिसरै = स्वरूप बिसर जाय । मृतक मांही = बाह्य शरीर तो जीता है पर अंदर मन मृतक होगया, अर्थात् मन की विषय कामना शांत होगई ॥

निस दिन तलफै रहे उदास, आतम रांम तुम्हारे पास ॥३॥
वप विसरे तन की सुधि नांहीं, दादू विरहनि मृतक मांहीं ॥४॥

॥ पद ३१६ ॥ केवल विनती ॥

निरंजन क्यूं रहे, मोनि गहैं वैराग, केते जुग गये ॥ टेक ॥
जागैं जगपति राइ, हसि बोलै नहीं।
परगट घूंघट मांहिं, पट पोलै नहीं ॥ १ ॥
सदिके करौं संसार, सब जग वारणें।
छाड़ौं सब परिवार, तेरे कारणें ॥ २ ॥
वारौं प्यंड परांन, पांऊं सिर धरूं।
ज्यूं ज्यूं भावै रांम, सो सेवा करूं ॥ ३ ॥
दीनानांथ दयाल ! विलंब न कीजिये।
दादू बलि बलि जाइ, सेज सुप दीजिये ॥ ४ ॥

॥ पद ३२० ॥

निरंजन यूं रहै, काहूं लिपति न होइ,
जल थल थावर जंगमां, गुण नहिं लागै कोइ ॥ टेक ॥
धर अंबर लागै नहीं, नहिं लागै ससिहर सूर।
पांणीं पवन लागै नहीं, जहां तहां भरपूर ॥ १ ॥
निस बासुरि लागै नहीं, नहिं लागै सीतल घांम।
पुध्या त्रिषा लागै नहीं, घटि घटि आतमरांम ॥ २ ॥
माया मोह लागै नहीं, नहिं लागै काया जीव।
काल करम लागै नहीं, प्रगटै मेरा पीव ॥ ३ ॥
इकलस एकै नूर है, इकलस एकै तेज।
इकलस एकै जोति है, दादू पेलै सेज ॥ ४ ॥

॥ पद ३२१ ॥

जग जीवन प्रांण अधार, वाचा पालणां ।
हौं कहां पुकारौं जाइ, मेरे लालनां ॥ टेक ॥
मेरे वेदन अंगि अपार, सो दुष टालनां ।
सागर ये निस्तारि, गहरा अति घणां ॥ १ ॥
अंतर है सो टालि, कीजे आपणां ।
मेरे तुम्ह बिन और न कोइ, इहै विचारणां ॥ २ ॥
तायैं करौं पुकार, यहु तन चालणां ।
दादू कौं दर्सन देहु, जाइ दुष सालणां ॥ ३ ॥

॥ पद ३२२ ॥ मनकी नीकी बिनती ॥

मेरे तुम्हहीं राषणहार, दूजा को नहीं ।
ये चंचल चहुं दिसि जाइ, काल तहीं तहीं ॥ टेक ॥
मैं केते किये उपाइ, निहचल नां रहै ।
जहं बरजौं तहं जाइ, मदि मातौ बहै ॥ १ ॥
जहं जांणौं तहं जाइ, तुम्हथैं नां डरै ।
तासौं कहा बसाइ, भावै त्यूं करै ॥ २ ॥
सकल पुकारैं साध, मैं केता कह्या ।
गुर अंकुस मांनैं नांहिं, निरभै ह्वै रह्या ॥ ३ ॥
तुम्ह बिन और न कोइ, इस मन कौं गहै ।
तूं राषै राषणहार, दादू तौ रहै ॥ ४ ॥

॥ पद ३२३ ॥ संसारकी नीकी बिनती ॥

निरंजन काइर कंपै प्रांणिया, देषि यहु दरिया ।

(३२१) वाचा पालणां = प्रतिज्ञा पालक । मेरे लालनां = मेरे प्यारे ॥

वार पार सूझै नहीं, मन मेरा डरिया ॥ टेक ॥
अति अथाह ये भौ जला, आसंघ नहिं आवै।
देषि देषि डरपै घणां, प्रांणीं दुष पावै ॥ १ ॥
विस जल भरिया सागरा, सब थके सयांनां।
तुम्ह विन कहु कैसैं तिरौं, मैं मूढ़ अयांनां ॥ २ ॥
आगैंहीं डरपै घणां, मेरी का कहिये।
कर गहि काढ़ौ केसवा, पार तौ लहिये ॥ ३ ॥
एक भरोसा तौ रहै, जे तुम्ह होहु दयाला।
दादू कहु कैसैं तिरै, तूं तारि गोपाला ॥ ४ ॥

॥ ३२४ ॥ उपदेस समरथ ॥

समरथ मेरा साइयां, सकल अघ जारै।
सुषदाता मेरे प्रांण का, संकोच निवारै ॥ टेक ॥
त्रिविध ताप तन की हरै, चौथे जन राषै।
आप समागम सेवगा, साधू यूं भाषै ॥ १ ॥
आप करै प्रतिपालनां, दारन दुष टारै।
पंछया जन की पूरवै, सबै कारिज सारै ॥ २ ॥
करम कोटि भै भंजनां, सुष मंडन सोई।
मन मनोर्थ पूरणां, ऐसा और न कोई ॥ ३ ॥
ऐसा और न देषि हौं, सब पूरण कांमां।
दादू साध संगी किये, उनि आतम रांमां ॥ ४ ॥

॥ पद ३२५ ॥ मन की विनती ॥

तुम्ह विन रांम कवन कलि मांहीं, विषिया थैं कोइ वारै रे।

मुनियर मोटा मनवे बाह्या, येन्हां कोन मनोरथ मोरे रे ॥टेक॥
छिन एकें मनवों मर्कट माहरो, घर घरबारि नचावे रे।
छिन एकें मनवों चंचल माहरो, छिन एकें घरनां आवे रे ॥१॥
छिन एकें मनवों मीन अम्हारो, सचराचर मां घ्यायोरे।
छिन एकें मनवों उदमदि मातो, स्वादें लागो पायेरे ॥ २ ॥
छिन एकें मनवों जोति पतंगा, भ्रमि भ्रमि स्वादें दाझे रे।
छिन एकें मनवों लोभें लागो, आवा पर में बाझे रे ॥ ३ ॥
छिन एकें मनवों कुंजर माहरो, बन बन मांहि भ्रमाड़े रे।
छिन एकें मनवों कांमीं माहरो, विषिया रंग रमाड़े रे॥ ४ ॥
छिन एकें मनवोंम्रिव अम्हारो, नादें मोह्यो जाये रे।
छिन एकें मनवों माया रातो, छिन एकें अम्हनें बाहेरे ॥ ५ ॥
छिन एकें मनवों भवर अम्हारो, बासें कवल बंधाणोंरे।
छिन एकें मनवों चहु दिसि जावे, मनवां नें कोइ आंणेरे ॥ ६ ॥
तुम्ह बिन राखे कोंण विधाता, मुनियर साखी आंणेरे।
दादू मृतक छिनमां जीवे, मनवां चरित न जांणेरे ॥ ७ ॥

॥ पद ३२६ ॥ वेसर्व विनर्ती ॥

करणी पोच, सोच सुख करई, लोह की नाव कैसें भो जल तिरई टेक
दिपन जात, पछिन कैसें आवे, नैंन विन भूलि बाट कत पावे। १।
विष बन बेलि, अमृत फल चाहे, पाइ हलाहल, अमर उमाहे ॥२॥
अगनि गृह पेसि करि, सुख क्यूं सोवे,
जलिहि जाती क्यौं, सीत क्यूं होवे ॥ ३ ॥
पाप पाखंड कीये, पुनि क्यूं पाइये, ।

कूप पनि पड़िबा, गगन क्यूं जाइये ॥ ४ ॥
कहै दादू मोहि अचिरज भारी, हिरदै कपट क्यूं मिलै मुरारी॥५॥

॥ पद ३२७ ॥ परचै माहि ॥

मेरा मनके मन सों मन लागा, सबद के सबद सों नाद बागा ॥टेक॥
श्रवण के श्रवण सुणि सुष पाया, नैंनके नैंनसों निरषिराया॥ १ ॥
प्रांण के प्रांण सों पेलि प्रांणीं, मुषके मुषसों बोलि बांणीं ॥ २ ॥
जीवके जीवसों रंगि राता, चित्तके चित्तसों प्रेम माता ॥ ३ ॥
सीसके सीससों सीस मेरा, देषिरे दादू वा भाग तेरा ॥ ४ ॥

॥ पद ३२८ ॥ मनकौं उपदेस ॥

मेर सिषर चढि बोलि मन मोरा,
रांम जल बरिषै सुणि सबद तोरा ॥ टेक ॥
आरति आतुर पीव पुकारै, सोवत जागत पंथ निहारै ॥ १ ॥
निस बासुरि कहि अमृत बांणीं,
रांम नांम ल्यो लाइ ले प्रांणीं ॥ २ ॥
टेरि मन भाई जब लग जीवै, प्रीति करि गाढी प्रेम रस पीवै ॥३॥
दादू औसरि जे जन जागै, रांम घटा जल बरिषण लागै॥४॥

॥ पद ३२९ ॥ बैराग उपदेस ॥

नारी नेह न कीजिये, जे तुझ रांम पियारा ।
माया मोह न बंधिये, तजिये संसारा ॥ टेक ॥
बिषिया रंगि राचै नहीं, नहिं करै पसारा ।

---

(३२७) यह पद केनोपनिषद् के प्रथम खंड के चौथे मंत्र से लेकर ८ वें मंत्र तक का वाच्यार्थ है ॥

देह ग्रेह परिवारमें, सबथें रहै नियारा ॥ १ ॥
आपा पर उरझै नहीं, नांहीं मैं मेरा ।
मनसा वाचा कर्मनां, सांई सब तेरा ॥ २ ॥
मन इंद्री अस्थिर करै, कतहूं नहिं डोलै ।
जग विकार सब परिहरै, मिथ्या नहिं बोलै ॥ ३ ॥
रहै निरंतर रामसौं, अंतरि गति राता ।
गावै गुण गोविंद का, दादू रसि माता ॥ ४ ॥

॥ पद ३३० ॥ आज्ञाकारी ॥

तू राषै त्यूं हीं रहैं, तेई जन तेरा,
तुम्ह बिन और न जांनहीं, सो सेवग नेरा ॥ टेक ॥
अंबर आपैहीं धरचा, अजहूं उपगारी ।
धरती धारी आप थैं, सबहीं सुपकारी ॥ १ ॥
पवन पासि सब के चलै, जैसें तुम कीन्हां ।
पांनी परगट देषि हूं, सब सौं रहै भीनां ॥ २ ॥
चंद चिराकी चहु दिसा, सब सीतल जांनैं ।
सूरज भी सेवा करै, जैसें भल मांनैं ॥ ३ ॥
ये निज सेवग तेरड़े, सब आग्याकारी ।
मोकौं ऐसैं कीजिये,दादू बलिहारी ॥ ४ ॥

॥ पद ३३१ ॥ निंदक ॥

न्यंदक बाबा वीर हमारा, बिनहीं कौड़े वहै बिचारा ॥ टेक ॥

---

(३३१) सांभरि मैं गाली दई, गुर दादू कौं आइ ।
तब हीं सबद ये उचरचौ, षरी मिठाई पाइ ॥

कर्म कोटि के कुसमल काटै, काज संवारे विनहीं साटै ॥ १॥
आपण डूबे श्रौर कौं तारै. श्रैसा प्रीतम पार उतारै ॥ २ ॥
जुगि जुगि जीवौ नींदक मोरा, रांम देव तुम्ह करौं निहोरा ॥३॥
न्यंदक वपुरा पर उपगारी, दादू न्यंद्या करे हमारी ॥ ४ ॥

॥ पद ३३२ ॥ विरह वीनती ॥

देहुजी देहुजी, प्रेम पियाला देहुजी. देकरि वहुरि न लेहुजी ॥टेक॥
ज्यूं ज्यूं नूर न देषौं तेरा, त्यूं त्यूं जियरा तलफै मेरा ॥ १ ॥
श्रमी महारस नांव न आवै, त्यूं त्यूं प्रांण वहुत दुष पावै ॥ २ ॥
प्रेम भगति रस पावै नांहीं, त्यूं त्यूं साले मनहीं मांहीं ॥ ३ ॥
सेज सुहाग सदा सुष दीजै, दादू दुषिया विलंब न कीजै ॥४॥

॥ पद ३३३ ॥ परचै वीनती ॥

वरिषहु रांम अमृत धारा,
झिलिमिलि झिलिमिलि सींचनहारा ॥ टेक ॥
प्रांण वेलि निज नीर न पावै, जलहर विनां कवल कुमिलावै ॥१॥
सूके वेलि सकल बनराइ, रांमदेव जल वरिषहु आइ ॥ २ ॥
आत्म वेली मरै पियास, नीर न पावै दादू दास ॥ ३ ॥

॥ इति राग गुंड समाप्त ॥ २० ॥

अथ राग विलावल ॥ २१ ॥

॥ पद ३३४ ॥ परचै वीनती ॥

दया तुम्हारी दरसन पइये, जांनत हो तुम्ह अंतरजांमी।
जांनराइ तुम सौं कह कहिये ॥ टेक ॥

तुम्ह सों कहा चतुराई कीजे, कौंण कर्म करि तुम्ह पाये ।
का नहिं मिलें प्रांण बल आपणें, दया तुम्हारी तुम्ह आये ॥१॥
कहा हमारो आंनि तुम्ह आगें, कौंण कला करि बसि कीये ।
जातें कौंण बुधि बल पौरिष, रुचि अपनीं तें सरनि लीये ॥ २ ॥
तुम्हहीं आदि अंति पुनि तुम्हहीं, तुम्ह कर्ता त्रिय लोक मंझारि ।
कुछ नांहीं थें कहा होत है, दादू बलि पावै दीदार ॥ ३ ॥

॥ पद ३३५ ॥ बीनती ॥

मालिक मेहरबान करीम,
गुनहगार हररोज हरदम, पनह राषि रहीम ॥ टेक ॥
अव्वल आषर बंदा गनहीं, अमल बद बिसियार ।
ग़रक़ दुनिया सितार साहिब, दरदमंद पुकार ॥ १ ॥
फरामोस नेकी बदी, करदः बुराई बद फैल ।
बपोसिदः तूं अजीब आषिर, हुक्म हाज़िर सैल ॥ २ ॥
नाम नेक रहीम राज़िक, पाक परवरदिगार ।
गुनह फिल करि देहु दादू, तलब दर दीदार ॥ ३ ॥

॥ पद ३३६ ॥

कौंण आदमीं कमींण बिचारा, किसकूं पूजे गरीब पियारा ॥ टेक ॥
मैं जन एक अनेक पसारा, भौजल भरिया अधिक अपारा ॥१॥
एक होइ ता काह समझाऊं, अनेक अरुझे क्यूं सुरझाऊं ॥२॥

---

(३३५) पनह=रक्षा । अव्वल=आदि । आषिर=अंत । अमल=कर्म । बद=बुरे । बिसियार=बहुत । ग़रक़=डूबा हुआ । सितार=सत्तार=पड़दा रखनेवाला । फरामोश=विस्मरण । सैल=हाकिम । फिल=बख़्शिश=क्षमा ॥

में हौं निबल सबल ये सारे, क्यूं करि पूजौं बहुत पसारे ॥ ३ ॥
पीव पुकारौं समझत नांहीं, दादू देषु दसौं दिसि जांहीं ॥४॥

॥ पद ३३७ ॥ उपदेस चितावणी ॥

जागहु जियरा काहे सोवै, सेइ करीमां तौ सुष होवै ॥ टेक ॥
आर्थे जीवन सोतैं बिसारा, पंछिम जांनां पंथ न संवारा ।
मैं मेरी करि बहुत भुलांनां, अजहूं न चेतै दूरि पयांनां ॥१॥
सांई तेरी सेवा नांहीं, फिरि फिरि डूबै दरिया मांहीं ।
ओर न आवे, पार न पावा, झूठा जीवन बहुत भुलावा ॥ २ ॥
मूल न राष्या, लाह न लीया, कौड़ी बदलै हीरा दीया ।
फिर पछितांनां सबलु नांहीं, हारि चल्या क्यूं पावै सांई ॥ ३ ॥
इब सुष कारणि फिर दुष पावै, अजहूं न चेतै क्यूं डहिकावै ।
दादू कहै सीष सुणि मेरी, कहु करीम संभालि सवेरी ॥ ४ ॥

॥ पद ३३८ ॥

बार बार तन नहीं बावरे, काहे कौं बादि गवांवै रे ।
विनसंत बार कछू नहिं लागै, बहुरि कहां कौं पावै रे ॥ टेक ॥
तेरे भाग बड़े भाव धरि कीन्हां, क्यूं करि चित्र बनांवै रे ।
सो तूं लेइ बिषै मैं डारै, कंचन छार मिलावै रे ॥ १ ॥
तूं मति जांनैं बहुरि पाइये, अबकै जिनि डहिकावै रे ।
तीनि लोक की पूंजी तेरे, बनजि बेगि सो आवै रे ॥ २ ॥
जब लग घट में सास बास है, तब लग काहे न धावै रे ।

(३३७) पंछिम=पश्चिम=पीछे । दरिया = संसार । कौड़ी = तुच्छ संसार । हीरा = ब्रह्म ॥

दादू तन धरि नांउं न लीन्हां, सो प्रांणीं पछितावै रे ॥ ३ ॥

॥ पद ३३९ ॥

रांम बिसारयौ रे जगनाथ,
हीरा हारयौ देषतहीं रे, कौडी कीन्हीं हाथ ॥ टेक ॥
काच हुता कंचन करि जांनैं, भूल्यौ रे भ्रम पास।
साचे सौं पल परचा नांहीं, करि काचे की आस ॥ १ ॥
विष ताकौं अमृत करि जांनैं, सो संग न आवै साथ।
सैंबल के फूलनि परि फूल्यौ, चूकौ अबकी घात ॥ २ ॥
हरि भजि रे मन सहज पिछांनैं, ये सुनि साची बात।
दादू रे इव थैं करि लीजै, आव घटै दिन जात ॥ ३ ॥

॥ पद ३४० ॥ मन ॥

मन चंचल मेरौ कह्यौ न मांनैं, दसौं दिसा दौरावै रे।
आवत जात बार नहिं लागै, बहुत भांति बौरावै रे॥टेक॥
बेर बेर बरजत या मनकौं किंचित सीष न मांनैं रे।
ऐसैं निकसि जात या तन थैं, जैसैं जीव न जांनैं रे॥१॥
कोटिक जतन करत या मनकौं, निहचल निमष न होई रे।
चंचल चपल चहू दिसि भरमैं, कहा करै जन कोई रे॥२॥
सदा सोच रहत घट भीतरि, मन थिर कैसैं कीजै रे।
सहजैं सहज साध की संगति, दादू हरि भजि लीजै रे ॥ ३ ॥

॥ पद ३४१ ॥ माया ॥

इन कांमनि घर घाले रे, प्रीति लगाइ प्रांण सब सोषे।

---

(३४१) बानै = वर्न। साचै = सच्चा परमेश्वर। छाछ छिपा = छाछवत असार, निकम्मा, छींकी करने योग्य। निज पद = आत्मस्वरूप ॥

बिन पावक जिय जाले रे ॥ टेक ॥
अंगि लगाइ सार सब लेवै, इन थैं कोई न बाचै रे।
यहु संसार जीति सब लीया, मिलन न देइ साचै रे ॥ १ ॥
हेत लगाइ सबै धन लेवै, बाकी कछू न राखै रे।
मांषण मांहिं सोधि सब लेवै, छाछ छिया करि नाषै रे ॥२॥
जे जन जांनि जुगति सौं त्यागैं, तिन कौं निज पद परसै रे।
काल न पाइ मरैं नहिं कबहूं, दादू तिन कौं दरसै रे ॥ ३ ॥

॥ पद ३४२ ॥ बेसास ॥

जिनि सत छाडै बावरे, पूरिक है पूरा,
सिरजे की सब च्यंत है, देबे कौं सूरा ॥ टेक ॥
गर्भवास जिन राषिया, पावक थैं न्यारा।
जुगति जतन करि सींचियो, दे प्रांण अधारा ॥ १ ॥
कुंज कहां धरि संचरे, तहां को रषवारा।
हेम हरत जिन राषिया, सो षसम हमारा ॥ १ ॥
जल थल जीव जिते रहैं, सो सब कौं पूरे।
संपट सिला मैं देत है, काहे नर झूरे ॥ २ ॥
जिन यहु भार उठाइया, निर्बाहै सोई।
दादू छिन न बिसारिये, ताथैं जीवन होई ॥ ३ ॥

॥ पद ३४३ ॥

सोई रांम संभालि जियरा, प्रांण प्यंड जिन दीन्हां रे।

(३४२) सिरजे=सृष्टि। संचरै=संचय करै। संपट सिला=ऊपर तले मिली पत्थर की पट्टी ॥

अंबर आप उपांवन हारा, मांहि चित्र जिन कीन्हां रे ॥टेक॥
चंद सूर जिन किये चिराका, चरनौं बिनां चलावै रे ।
इक सीतल इक ताता डोलै, अनंत कला दिपलावै रे ॥ १ ॥
धरती धरनि वरनि बहु वांणीं, रचिले सत समंदा रे।
जल थल जीव संभालन हारा, पूरि रह्या सब संगा रे ॥ २ ॥
प्रगट पवन पांनीं जिन कीन्हां, वरिषावै बहु धारा रे ।
अठार भार बिरष बहु बिधि के, सब का सींचन हारा रे ॥३॥
पंच तत्त जिन किये पसारा, सब करि देषन लागा रे ।
निहचल रांम जपौ मेरे जियरा, दादू तांथैं जागा रे ॥ ४ ॥

॥ पद ३४४ ॥ परचै ॥

जब मैं रहते की रह जांनीं,
काल काया के निकटि न आवै, पावत है सुष प्रांणीं ॥टेक॥
सोग संताप नैंन नहिं देषैं, राग दोष नहिं आवै ।
जागत है जासौं रुचि मेरी, सुपिनें सोई दिषावै ॥ १ ॥
भरम करम मोह नहिं ममिता, वाद विवाद न जांनों ।
मोहन सौं मेरी बनि आई, रसनां सोई षपानों ॥ २ ॥
निस बासुरि मोहन तनि मेरे, चरन कवल मन मांनें ।
सोई निधि निरषि देषि सचु पाऊं, दादू और न जांनें ॥ ३ ॥

॥ पद ३४५ ॥

जब मैं साचे की सुधि पाई,
तब थैं अंगि और नहिं आवै, देषत हूं सुषदाई ॥ टेक ॥

(३४४) रहते की रह = सता वान (परब्रह्म) के मिलने की राह । दूसरी कड़ी में " बनि आई " की जगह पुस्तक में ० १ में बनिआवै है ॥

ता दिन थैं तनि ताप न व्यापै, सुप दुप संगि न जांऊं।
पावन पीव परसि पद लीन्हां, आनंद भरि गुन गांऊं।
सब सौं संग नहीं पुनि मेरे, अरस परस कुछ नांहीं।
एक अनंत सोई संगि मेरे, निरपत हैं निज मांहीं॥ २॥
तन मन मांहिं सोधि सो लीन्हां, निरपत हौं निज सारा।
सोई संग सबै सुपदाई, दादू भाग हमारा॥ ३॥

॥ पद ३४६ ॥ साच निदान ॥

हरि विन निहचल कहीं न देपौं, तीनि लोक फिरि सोधारे।
जे दीसै सो विनसि जाइगा, अैसा गुर परमोधारे॥ टेक॥
धरती गगन पवन अरू पानीं, चंद सूर थिर नांहीं रे।
रैंनि दिवस रहत नहिं दीसैं, एक रहै कलि मांहीं रे॥ १॥
पीर पैकंबर सेप मसाइक, शिव विरंच सब देवारे।
कलि आया सो कोइ न रहसी, रहसी अलप अभेवारे॥ २॥
सवालाप भेर गिरि पर्वत, समंद न रहसी थीरा रे।
नदी निवांन कछू नहिं दीसै, रहसी अकल सरीरा रे॥ ३॥
अविनासी ओ एक रहेगा, जिन यहु सब कुछ कीन्हां रे।
दादू जाता सब जग देषैं, एक रहत सो चीन्हां रे॥ ४॥

॥ पद ३४७ ॥ पतिव्रता ॥

मूल सींचि बधै ज्यूं बेला, सो तत तरवर रहै अकेला॥टेक॥
देवी देपत फिरै ज्यूं भूले, पाइ हलाहल विषै कौं फूले।
सुपकौं चाहै पड़ै गलि पासो, देपत हीरा हाथ थैं जासी॥१॥
केइ पूजा रचि ध्यांन लगावैं, देवल देपैं पवरि न पावैं।

तो तैं पाती जुगति न जांनीं, इहि भ्रमि भूलि रहे अभिमांनीं ॥२॥
तीर्थ व्रत न पूजैं आसा, बनखंडि जांहिं रहैं उदासा ।
यूं तप करि करि देह जलावैं, भरमत डोलैं जन्म गवावैं ॥३॥
सतगुर मिलै न संसा जाई, ये बंधन सब देइ छुड़ाई ।
तब दादू परम गति पावै, सो निज मूरति मांहिं लखावै ॥४॥

॥ पद ३४८ ॥ साध परीक्षा ॥

सोई साध सिरोमणी, गोविंद गुण गावै ।
रांम भजै बिषिया तजै, आपा न जनावै ॥ टेक ॥
मिथ्या मुखि बोलै नहीं, पर न्यंद्या नांहीं ।
औगुण छाड़ै गुण गहै, मन हरि पद मांहीं ॥ १ ॥
निर्बैरी सब आतमा, पर आतम जानैं ।
सुखदाई समिता गहै, आपा नहिं आनैं ॥ २ ॥
आपा पर अंतर नहीं, निर्मल निज सारा ।
सतबादी साचा कहै, लै लीन बिचारा ॥ ३ ॥
निर्भै भजि न्यारा रहै, काहूं लिपत न होई ।
दादू सब संसारमें, ऐसा जन कोई ॥ ४ ॥

॥ पद ३४९ ॥ परचै परीक्षा ।

रांम मिल्या यूं जांनियें, जाकों काल न ब्यापै ।
जुरा मरण ताकों नहीं, अरु मेटै आपै ॥ टेक ॥
सुख दुख कबहूं न ऊपजै, अरु सब जग सूझै ।
करम को बंधि नहीं, सब आगम बूझै ॥ १ ॥
जागत रहै सो जन रहै, अरु जुगि जुगि जागै ।

अंतरजांमी सौं रहै, कुछु काई न लागै ॥ २ ॥
कांम दहै सहजैं रहै, अरु, सुंन्य बिचारै।
दादू सो सबकी लेहै, अरु कबहूं न हारै ॥ ३ ॥

॥ पद ३५० ॥ समता ज्ञान ॥

इन बातनि मेरा मन मांनैं, दुतिया दोइ नहीं उर अंतरि।
येक येक करि पीवकौं जांनैं ॥ टेक ॥
पूरण ब्रह्म देषै सबहिन मैं, भ्रम न जीव काहू थैं आंनैं ।
होइ दयाल दीनता सबसौं, अरि पांचनि कौं करै किसानैं ॥१॥
आपा पर सम सब तत चीन्हैं, हरि भजै केवल जस गांनैं ।
दादू सोई सहजि घरि आंनैं, संकुट सेवै जीव के भांनैं ॥२॥

॥ पद ३५१ ॥ परचै ॥

ये मन मेरा पीवसौं, औरानि सौं नांहीं ।
पीव बिन पलहि न जीव सौं, येह उपजै मांहीं ॥ टेक ॥
देषि देषि सुप जीव सौं, तहां धूप न छांहीं ।
अजरावर मन बंधिया, ताथैं अनत न जांहीं ॥ १ ॥
तेज पुंज फल पाइया, तहां रस पांहीं ।
अमर बेलि अमृत झरै, पीव पीव अघांहीं ॥ २ ॥
प्रांणपती तहं पाइया, जहं उलटि समांहीं ।

---

(३४६) मेटै आपै=आपा, आपनपौ को त्याग दे । कर्म को बांधै नहीं= किसी कर्म से हर्ष शोक न हो, पश्चाताप व चिंता न हो ॥ सब आगम दूझै = सब में अगम ब्रह्म ही देखै ॥
(३५०-१) अरि पांचनि कौं करै किसानैं=शत्रु पंच इंद्रियों को किसानैं (दमन करैं) ॥

दादू पीव परचा भया, हियरे हित लाई ॥ ३ ॥

॥ पद ३५२ ॥

आजि परभाति मिले हरि लाल,
दिलकी बिथा पीड़ सब भागी, मिट्यौ जीव कौ साल ॥टेक॥
देषत नैंन संतोष भयो है, इहे तुम्हारो ष्याल ।
दादू जन सों हिलि मिलि रहिबो, तुम्ह हो दीन दयाल ॥१॥

॥ पद ३५३ ॥ निज स्थान निर्णय उपदेस ॥

अरस इलाही खुदा, ईथांइँ रहिमांन वे ।
मका बिचि मुसाफरीला, मदीनां मुलितांन वे ॥ टेक ॥
नबी नाल पैकंबरे, पीरौं हंदा थान वे ।
जन तहुं ले हिकर्ता, लाइ इयां भिस्त मुकान वे ॥ १ ॥
इयां आब जम जमा, इयांइँ सुबहान वे ।
तषत रबानी कंगुरेला, इयांइँ सुलितांन वे ॥ २ ॥
सच इयां अंदरि आव वे, इयांइँ ईमान वे ॥
दादू आप वंजाइ वेला, इयांइँ आसान वे ॥ ३ ॥

॥ पद ३५४ ॥

आसण रमिंदा रांमदा, हरि इयां अविगत आप वे ।
काया कासी वंजणां, हरि इयें पूजा जाप वे ॥ टेक ॥
महादेव मुनिदेव ते, सिधेंदा विश्राम वे ।

---

(३५३) इस पद में निजान को उपदेश दयालजी ने दिया था । इस का तात्पर्य यह है कि इथाँइ (इसी शरीर में) रहमान, नबी, पीर, पैगम्बर, मक्का, मदीनादि सब हैं, जैसा कि कायाबेली ग्रंथ (पद २५७-३६४) में आगे बताया है ॥

सगं सुवासण हुलणाँ, हरि इथैं आतमरांम वे ॥ १ ॥
अमीं सरोवर आतमा, इथांई आधार वे ।
अमर थान अविगत रहै, हरि इथैं सिरजनहार वे ॥ २ ॥
सब कुछ इथैं आवेवे, इथां परमानंद वे ।
दादू आपा दूरि करि, हरि ईथांई आनंद वे ॥ ३ ॥
॥ इति राग बिलावल समाप्त ॥ २१ ॥

अथ राग सूहौ ॥ २२ ॥

॥ पद ३५५ ॥ बिनती ॥

तुम्ह बिचि अंतर जिनि परै माधव, भावै तन धन लेहु ।
भावै सरग नरक रसातल, भावै करवत देहु ॥ टेक ॥
भावै बिपति देह दुष संकुट, भावै संपति सुष सरीर ।
भावै घर बन राव रंक करि, भावै सागर तीर माधवे ॥ १ ॥
भावै बंध मुकत करि माधव, भावै त्रिभवन सार ।
भावै सकल दोष धरि माधव, भावै सकल निवारि माधवे ॥२॥
भावै धरणि गगन धरि माधव, भावै सीतल सूर ।
दादू निकटि सदा संगि माधव, तूं जिनि होवै दूरि माधवे॥३॥

(३५४) इस पद में उपदेश नागर को दिया था । इस का भी तात्पर्य पिछले पद (३५१) का सा ही है ॥

॥ पद ३५६ ॥ परचै ॥

इब हम रांम सनेही पाया, औगम अनहद सौं चित लाया ॥टेक॥
तन मन आतम ताकौं दीन्हां, तब हरि हम अपनां करि लीन्हां ॥१॥
वांणीं विमल पंच परांनां, पहिली सीस मिले भगवांनां ॥ २ ॥
जीवत जनम सुफल करि लीनहां, पहली चेते तिन भल कीनहां ॥३॥
औसरि आपा ठौर लगावा, दादू जीवत ले पहुंचावा ॥ ४ ॥

अथ राग वसंत ॥ २३ ॥

॥ पद ३६५ ॥ भजन भेद ॥

निर्मल नांउं न लीया जाइ, जाके भाग वड़े सोई फल पाइ टेक
मन माया मोह मद माते, कर्म कठिन ता मांहिं परे।
विषै विकार मांनि मन मांहीं, सकल मनोरथ स्वाद परे ॥१॥
कांम क्रोध ये काल कलपनां, मैं मैं मेरी अति अहंकार।
तृष्णां तृपति न मांनैं कवहूं, सदा कुसंगी पंच विकार ॥ २॥
अनेक जोध रहैं रषवाले, दुर्लभ दूरि कालि अगम अपार।
जाके भाग बड़े सोई भल पावैं, दादू दाता सिरजनहार ॥३॥

(३५६–२) पहली सीस=पहले सर्वस्व अर्पण किया, तब भगवान मिले॥
(३५७–३६४) इन पदौं पर टीका विस्तार से दी गई है, सो इनको सब पदों के अंत में रक्खा है॥

॥ पद ३६६ ॥ विरह ॥

तूं घरि आवने माहरे रे, हूं जाउं वारणे ताहरे रे ॥ टेक॥
रैंनि दिवस मूनें निरषतां जाये,
वेलो थई घरि आवे वाहला आकुल थाये ॥ १ ॥
तिल तिल हूं तो तारी वाटड़ी जोऊं,
एने रे आंसूड़े वाहला मुषड़ो धोऊं ॥ २ ॥
ताहरी दया करी घर आवे रे वाहला,
दादू तो ताहरो छे रे मा कर टाला ॥ ३ ॥

॥ पद ३६७ ॥ करुणा वीनती ॥

मोहन दुष दीरघ तूं निवार, मोहि सतावे वारंवार ॥ टेक ॥
कांम कठिंन घट रहैं मांहिं, तार्थें ग्यांन ध्यांन दोउ उदै नांहिं,
गति मति मोहन विकल मोर, तार्थें चीति न आवै नांव तोर॥१॥
पांचौं दूंदर देह पूरि, तार्थें सहज सील सत रहैं दूरि।
सुधि बुधि मेरी गई भाज, तार्थें तुम विसरे महराज ॥ २ ॥
क्रोध न कबहूं तजे संग, तार्थें भाव भजन का होइ भंग।
समझि न काई मन मंझारि, तार्थें चरन विमुष भये श्री मुरारि॥३॥
अंतरजामी करि सहाइ, तेरो दीन दुषित भयो जनम जाइ।
त्राहि त्राहि प्रभु तूं दयाल, कहै दादू हरि करि संभाल ॥४॥

॥ पद ३६८ ॥ मनकी नीकी विनती ॥

मेरे मोहन मूरति राषि मोहि, निस वासुरि गुन रमौं तोहि॥टेक॥
मन मींन होइ ज्यूं स्वादि पाइ, लालचि लागौ जल थैं जाइ।

(३६६) वेलो थई=देर हुई। वाटड़ी जोऊं=राह देखूं। मा कर = मतकर॥

मन हस्ती मातौ अपार, कांम अंध गज लहे न सार ॥ १ ॥
मन पतंग पावग परै, अग्नि न देपे ज्यूं जरैं।
मन मृघा ज्यूं सुनै नाद, प्रांण तजै यूं जाइ वाद ॥ २ ॥
मन मधुकर जैसें लुबधि वास, कवल बंधावै होइ नास।
मनसा वाचा सरण तोर, दादू कौं रापौ गोबिंद मोर ॥ ३ ॥

॥ ३६९ ॥ उपदेस ॥

बहुरि न कीजे कपट कांम, हिरदै जपिये रांम नांम ॥ टेक ॥
हरि पांपें नहिं कहूं ठांम, पीव बिन पड़ भड़ गांव गांव।
तुम रापौ जियरा अपनी मांम, अनत जिनि जाय रहौ विश्राम ॥१॥
कपट कांम नहिं कीजे हांम, रहु चरन कवल कहु रांम नांम।
जब अंतरजामी रहै जांम, तब अपै पद जन दादू प्रांम ॥२॥

॥ पद ३७० ॥ परचै प्राप्ति ॥

तहं पेलौं निनहीं पीवसूं फाग, देषि सपीरी मेरे भाग ॥ टेक ॥
तहं दिन दिन अति आनंद होइ, प्रेम पिलावै आप सोइ।
संगियन सेती रमौं रास, तहं पूजा अरचा चरन पास ॥ १ ॥
तहं वचन अमोलिक सबहीं सार, तहं बरनै लीला अति अपार।
उमंगि देइ तब मेरे भाग, तिहि तरवर फल अमर लाग ॥२ ॥
अलप देव कोइ जांणैं भेव, तहं अलप देव की कीजे सेव।
दादू बलि बलि बारंबार, तहं आप निरंजन निराधार ॥ ३ ॥

---

(३६९) हरि पांप = हरि बिना, हरि से विमुष। पड़ भड़ = गड़ बड़। मांम = ममत्व, अपने आसरे। हांम = हिम्मत, जुरत। जांम = एक पहर। मांम = मिलैं, प्राप्त हो ॥

॥ पद ३७१ ॥ परचै रुप वर्णन ॥

मोहन माली सहजि समांनां, कोई जांणैं साध सुजांनां ॥टेक॥
काया वाड़ी मांहैं माली, तहां रास बनाया ।
सेवग सौं स्वामी पेलन कों, आप दया करि आया ॥ १ ॥
बाहरि भीतरि सर्व निरंतरि, सब में रह्या समाई ।
परगट गुपत गुप्त पुनि परगट, अविगत लष्या न जाई ॥२॥
ता मालीकी अकथ कहांणीं, कहत कही नहिं आवै ।
अगम अगोचर करत अनंदा, दादू ये जस गावै ॥ ३ ॥

॥ पद ३७२ ॥ परचै ॥

मन मोहन मेरे मन हीं मांहिं, कीजै सेवा अति तहां ॥टेक॥
तहं पायौ देव निरंजनां, परगट भयो हरि ये तनां ।
नैंन नहिं देषों अघाइ, प्रगट्यौ है हरि मेरे भाइ ॥ १ ॥
मोहि कर नैंनन की सैन देइ, प्रांण मूंसि हरि मोर लेइ ।
तब उपजै मोकौं इहैं बांनि, निज निरषत हौं सारंग प्रांनि ॥२॥
अंकुर आदैं प्रगट्यो सोइ, बैंन बान तार्थं लागे मोहि ।
सरणैं दादू रह्यौ जाइ, हरि चरण दिषावै आप आइ ॥ ३ ॥

॥ पद ३७३ ॥ थकित निश्चल ॥

मतिवाले पंचूं प्रेम पूरि, निमष न इत उत जाहिं दूरि ॥ टेक ॥
हरि रस माते दया दींन, रांम रमत ह्वै रहे लीन ।
उलटि अपूठे भये थीर, अमृत धारा पीवहिं नीर ॥ १ ॥
सहजि समाधी तजि विकार, अविनासी रस पीवहिं सार ।
थकित भये मिलि महल मांहिं, मनसा वाचा आंन नांहिं ॥२॥

मन मतिवाला रांम रंगि, मिलि आसणि बैठे एक संगि ।
अस्थिर दादू एक अंग, प्रांणनाथ तहं परमानंद ॥ ३ ॥

इति राग बसंत समाप्त ॥ २३ ॥

अथ राग भैरूं ॥ २४ ॥

॥ पद ३७४ ॥ गुर नांम महिमा माहात्म ॥

सतगुर चरणां मस्तक धरणां, रांम नांम कहि दूतर तिरणां ॥टेक॥
अठ सिधि नव निधि सहजें पावे, अमर अभै पद सुष में आवे॥१॥
भगति मुकति वैकुंठां जाइ, अमर लोक फल लेवे आइ ॥२॥
परम पदारथ मंगल चार, साहिब के सब भरे भंडार ॥ ३ ॥
नूर तेज है जोति अपार, दादू राता सिरजनहार ॥ ४ ॥

॥ पद ३७५ ॥ उत्तम ज्ञान सुमिरन ॥

तन हीं रांम मन हीं रांम, रांम रिदै रमि राषी ले ।
मनसा रांम सकल परिपूरण, सहज सदा रस चाषी ले॥ टेक॥
नैंनां रांम बैंनां रांम, रसनां रांम संभारी ले ।
श्रवणां रांम सन्मुष रांम, रमिता रांम विचारी ले ॥ १ ॥
सासें रांम सुरतें रांम, सबदें रांम समाई ले ।
अंतरि रांम निरंतरि रांम, आतमरांम ध्याई ले ॥ २ ॥
सबै रांम संगै रांम, रांम नांम ल्यौ लाई ले ।
बाहरि रांम भीतरि रांम, दादू गोविंद गाई ले ॥ ३ ॥

॥ पद ३७६ ॥ उत्तम सुमिरन ॥

ऐसी सुरति रांम ल्यौ लाइ, हरि हिरदै जिनि बीसरि जाइ ॥टेक॥
छिन छिन मात संभारै पूत, ब्यंद राखै जोगी औधूत ।
त्रिया करूप रूप कौं रहै, नटणीं निरषि बांस व्रत चढ़ै ॥ १ ॥
कछिब दृष्टी धरै धियांन, चात्रिग नीर प्रेम की बांन ।
कुंजी कुरलि संभालै सोइ, भ्रंगी ध्यांन कीट कौं होइ ॥ २ ॥
श्रवणौं सबद ज्यूं सुनै कुरंग, जोति पतंग न मोड़ै अंग ।
जल बिन मीन तलाफि ज्यौं मरै, दादू सेवग ऐसैं करै ॥ ३ ॥

॥ पद ३७७ ॥ सुमिरन फल ॥

निर्गुण रांम रहै ल्यौ लाइ, सहजैं सहज मिलै हरि जाइ ॥टेक॥
भौजल ब्याधि लिपै नहिं कबहूं, करम न कोई लागै आइ ।
तीन्यूं ताप जरै नहिं जियरा, सो पद परसै सहज सुभाइ ॥१॥
जनम जुरा जोनि नहिं आवै, माया मोह न लागै ताहि ।
पांचौं पीड़ प्रांण नहिं ब्यापै, सकल सोधि सब इहै उपाइ॥२॥
संकुट संसा नरक न नैंनहुं, ताकौं कबहूं काल न पाइ।
कंप न काई भै भ्रम भागै, सब बिधि ऐसी एक लगाइ ॥३॥
सहज समाधि गहौ जे डिढ़ करि, जासौं लागै सोई आइ।
भृंगी होइ कीटकी न्याँई, हरि जन दादू एक दिखाइ ॥ ४ ॥

॥ पद ३७८ ॥ आशीर्वाद ॥

धनि धनि तूं धनि धणीं, तुम्हसौं मेरी आइ बणीं ॥ टेक ॥

---

(३७६) ब्यंद = वीर्य । बांस व्रत = बांस पर वरत (रस्सी) । इस पद का आशय गुरुदेव के अंग की (१४२–४४) साखियों से मिलता है ॥
(३७७) कंप काई = अंतः करण के मल ॥

धनि धनि तूं तारे जगदीस, सुरनर मुनि जन सेवैं ईस ॥
धनि धनि तूं केवल रांम, सेस सहस मुष ले हरि नांम ॥ १ ॥
धनि धनि तूं सिरजनहार, तेरा कोई न पावै पार ।
धनि धनि तूं निरंजन देव, दादू तेरा लषै न भेव ॥ २ ॥

॥ पद ३७९ ॥ भयभीत भयानक ॥

का जांणों मोहि का ले करसी,
तनहिं ताप मोहि छिन न विसरसी ॥ टेक ॥
आगम मोपैं जान्यूं न जाइ, इहै विमांसण जियरे मांहिं ॥१॥
में नहिं जांनों क्या सिरि होइ, तार्थें जियरा डरपै रोइ ॥ २ ॥
काहू थें ले कछू करै, तार्थें मइया जीव डरै ॥ ३ ॥
दादू न जांणें कैसें कहै, तुम सरणागति आइ रहै ॥ ४ ॥

॥ पद ३८० ॥

का जाणौं रांम को गति मेरी, मैं विषयी मनसा नहिं फेरी ॥ टेक ॥
जे मन मांगै सोई दीन्हां, जाता देषि फेरि नहिं लीन्हां ॥१॥
देवा दुंदर अधिक पसारे, पांचौं पकरि पटकि नहिं मारे ॥ २ ॥
इन बातनि घट भरे विकारा, तृष्णां तेज मोह नहिं हारा ॥३॥
इनहिं लागि मैं सेव न जांणीं, कहै दादू सो कर्म कहांणीं ॥४॥

॥ पद ३८१ ॥

डरिये रे डरिये, तार्थें रांम नांम चित धरिये ॥ टेक ॥
जिन ये पंच पसारे रे, मारे रे ते मारे रे ॥ १ ॥
जिन ये पंच समेटे रे, भेटे रे ते भेटे रे ॥ २ ॥
काछिब ज्यूं करि लीये रे, जीये रे ते जीये रे ॥ ३ ॥

भृंगी कीट समांनां रे, घ्यांना रे यहु घ्यांना रे ॥ ४ ॥
अज्या सिंघ ज्यूं रहिये रे, दादू दरसन लहिये रे ॥ ५ ॥

॥ पद ३८२ ॥ हरि प्राप्ति दुर्लभ ॥

तहं मुझ कमीन की कौंण चलावै,
जाकौ अजहूं मुनि जन महल न पावै ॥ टेक ॥
सिव विरंच नारद जस गावैं, कौंन भांति करि निकटि बुलावैं ॥ १ ॥
देवा सकल तेतीसौं कोरि, रहे दरबार ठाढे कर जोरि ॥ २ ॥
सिध साधिक रहे ल्यौ लाइ, अजहूं मोटे महल न पाइ ॥ ३ ॥
सब थैं नीच मैं नांव न जांनां, कहे दादू क्यूं मिलै सयांनां ॥४॥

॥ पद ३८३ ॥ विनती करुणां ॥

तुम्ह बिन कहु क्यों जीवन मेरा, अजहूं न देष्या दरसन तेरा टेक
होह दयाल दीनके दाता, तुम पति पूरण सब विधि साचा ॥ १ ॥
जो तुम्ह करौ सोई तुम्ह छाजे, अपणे जन कौं काहे न निवाजे २
अंकरन करन अैसें अब कीजे, अपनौं जांनि करि दरसन दीजे ३
दादू कहै सुनहुं हरि सांई, दर्सन दीजे मिलौ गुसांई ॥ ४ ॥

॥ पद ३८४ ॥ उपदेस चितावणी ॥

कागारे करंक परि बोले, षाइ मास अरु लगहीं डोलै ॥ टेक॥
जा तन कौं रचि अधिक संवारा, सो तन ले माटी में डारा॥१॥
जा तन देषि अधिक नर फूले, सो तन छाडि चल्यारे भूले॥२॥
जा तन देषि मनमैं गर्वांनां, मिलि गया माटी तजि अभिमांनां॥
दादू तनकी कहा बड़ाई, निमष मांहिं माटी मिलि जाई ॥४॥

॥ पद ३८५ ॥ उपदेस ॥

जपि गोविंद बिसरि जिनि जाइ, जन्म सुफल करिये लै लाइ टेक

हरि सुमिरण स्यूं हेत लगाइ, भजन प्रेम जस गोविंद गाइ।
मनिषा देह मुकति का द्वारा, रांम सुमिरि जग सिरजन हारा॥१॥
जब लग विषम व्याधि नहिं आई, जब लग काल काया नहिं पाई
जब लग सब्द पलटि नहिं जाई, तब लग सेवा करि रांम राई॥
औसरि रांम कहसि नहिं लोई, जनम गया तब कहे न कोई।
जब लग जीवे तब लग सोई, पीछें फिरि पछितावा होई ॥३॥
सांई सेवा सेवग लागे, सोई पावे जे कोइ जागे ।
गुर मुषि तिमर भर्म सब भागे, बहुरि न उलटे मारगि लागे॥४॥
ऐसा औसर बहुरि न तेरा, देषि विचारि समझि जिय मेरा।
दादू हारि जीति जगि आया, बहुत भांति कहि कहि समझाया।

॥ पद ३८६ ॥

रांम नांम तत काहे न बोलै, रे मन मूढ अनत जिनि डोलै।टेक।
भूला भर्मत जन्म गमावै, यहु रस रसनां काहे न गावै ॥ १ ॥
क्या झषि औरै परत जंजालै,
वांणीं विमल हरि काहे न संभालै ॥ २ ॥
रांम विसारि जनम जिनि षोवै, जपिले जीवनि साफिल होवै।३।
सार सुधा सदा रस पीजै, दादू तन धरि लाहा लीजै ॥ ४ ॥

॥ पद ३८७ ॥ तत उपदेस ॥

आप आपण में षोजो रे भाई, वस्त अगोचर गुरू लषाई॥टेक॥
ज्यूं मही विलोयें माषण आवै, त्यूं मन मथियां तें तत पावै॥१।
काष्ट हुतासन रह्या समाई, त्यूं मन मांहिं निरंजन राई ॥ २ ॥
ज्यूं अवनी में नीर समांनां, त्यूं मन मांहें साच सयानां॥ ३ ॥

ज्यूं दर्पन के नहि लागे काई, त्यूं मूरति मांहें निरपि लषाई ।४।
सहजैं मन मथियां तैं तत पाया, दादू उनि तौ आप लषाया।।५।।

॥ पद ३८८ ॥ उपदेस ॥

मन मैला मनहीं स्यूं धोइ, उनमनि लागें निर्मल होइ ।।टेक।।
मनहीं उपजे विषे विकार, मनहीं निर्मल त्रिभुवन सार ॥ १ ॥
मनहीं दुविधा नांनां भेद, मन हीं समझै द्वै पष छेद ॥ २ ॥
मन हीं चंचल चहुं दिसि जाइ, मन ही निहचल रह्या समाइ ।।३।।
मनहीं उपजे अगनि सरीर, मनहीं सीतल निर्मल नीर ।।४।।
मन उपदेस मनहिं समझाइ, दादू यहु मन उनमन लाइ।।५।।

॥ पद ३८६ ॥ मन प्रति सूरातन ॥

रहु रे रहु मन मारौंगा, रती रती करि डारौंगा ॥ टेक ॥
पंड पंड करि नापौंगा, जहां रांम तह रापौंगा ॥ १ ॥
कह्या न मांनें मेरा, सिर भानौंगा तेरा ॥ २ ॥
घर मैं कदे न आवै, वाहरि कौं उठि धावै ॥ ३ ॥
आतम रांम न जांनें, मेरा कह्या न मांनें ॥ ४ ॥
दादू गुर मुषि पूरा, मन सौं झूझै सूरा ॥ ५ ॥

॥ पद ॥ ३६० नांव सूरातन ॥

निर्भै नांव निरंजन लीजै, इन लोगन का भय नहिं कीजै ।।टेक।।
सेवग सूर संक नहिं मांनें, रांणां राव रंक करि जांनें ।।१।।
नांव निसंक मगन मतिवाला, रांम रसाइन पिवे पियाला ।।२।।
सहजैं सदा रांम रंगि राता, पूरण ब्रह्म प्रेम रसि माता ।।३।।
हरि बलवन्त सकल सिरि गाजै, दादू सेवग कैसैं भाजै ।।४।।

॥ पद ३६१ ॥ समर्थाइ ॥

ऐसौ अलख अनंत अपारा, तीनि लोक जाकौ विस्तारा ॥टेक॥
निर्मल सदा सहजि घरि रहै, ताकौ पार न कोई लहै ।
निर्गुण निकटि सब रह्यो समाइ, निहचल सदा न आवै जाइ ॥१॥
अविनासी है अपरंपार, आदि अनंत रहै निरधार ।
पावन सदा निरंतर आप, कला अतीत लिपत नहिं पाप ॥ २ ॥
समर्थ सोई सकल भरपूरि, बाहरि भीतरि नेड़ा न दूरि ।
अकल आप कलै नहिं कोई, सब घट रह्यौ निरंजन होई ॥ ३ ॥
अबरण आपैं अजर अलेप, अगम अगाध रूप नहिं रेप ।
अविगत की गति लखी न जाइ, दादू दीन ताहि चित लाइ ॥४॥

॥ पद ३६२ ॥ समर्थलीला ॥

ऐसौ राजा सेऊं ताहि, और अनेक सब लागे जाहि ॥टेक॥
तीनि लोक ग्रह धरे रचाइ, चंद सूर दोउ दीपक लाइ ।
पवन बुहारै गृह अंगणां, छपन कोटि जल जाकै घरां ॥ १ ॥
रातै सेवा संकर देव, ब्रह्म कुलाल न जांनैं भेव ।
कीरति करणां चारयूं वेद, नेति नेति नवि जांणें भेद ॥ २ ॥
सकल देव पति सेवा करैं, मुनि अनेक एक चित धरैं ।
चित्र विचित्र लिखैं दरबार, धरमराइ ठाढ़े गुणसार ॥ ३ ॥
रिधि सिधि दासी आगैं रहैं, चारि पदारथ जी जी कहैं ।
सकल सिधि रहै लयौ लाइ, सब परिपूरण ऐसौ राइ ॥ ४ ॥
पलक पजीनां भरे भंडार, ता घरि बरतै सब संसार ।

(३६१) अकल = अपार जिसका मापने वाला कोई नहीं । कलै = मापै।

पूरि दिवांन सहजि सब दे, सदा निरंजन असो हे ॥ ५ ॥
नारद गायें गुण गोविंद, करे सारदा सब ही छंद ।
नटवर नांचें कला अनेक, आपन देवे चरित अलेप ॥ ६ ॥
सकल साध बाजें नीसांन, जै जै कार न मेटें आंन ।
मालिनि पहुप अठारह भार, आपण दाता सिरजनहार ॥७॥
असो राजा सोई आहि, चौदह भुवन में रह्यो समाइ ।
दादू ताकी सेवा करे, जिन यहु रचिले अधर धरे ॥ ८ ॥

॥ पद ३६३ ॥ जीवत मृतक ॥

जब यहु मैं मैं मेरी जाइ, तब देषत वेगि मिले रांम राइ ॥टेक॥
मैं मैं मेरी तबलग दूरि, मैं मैं मेटि मिले भरपूरि ॥ १ ॥
मैं मैं मेरी तब लग नांहिं, मैं मैं मेटि मिले मन मांहिं ॥२॥
मैं मैं मेरी न पावे कोइ, मैं मैं मेटि मिले जन सोइ ॥ ३ ॥
दादू मैं मैं मेरी मेटि, तब तूं जांणि रांम सौं भेटि ॥ ४ ॥

॥ ३६४ ॥ ज्ञान परचै ॥

नांहीं रे हम नांहीं रे, सति रांम सब मांही रे ॥ टेक ॥
नांहीं धरणि अकासा रे, नांहीं पवन प्रकासा रे ॥
नांहीं रवि ससि तारा रे, नाह पावक प्रजारा रे ॥ १ ॥
नांहीं पंच पसारा रे, नांहीं सब संसारा रे ।
नहिं काया जीव हमारा रे, नहिं बाजी कौतिगहारा रे ॥२॥
नांहीं तरवर छाया रे, नहिं पंषी नहिं माया रे ।
नांहीं गिरवर वासा रे, नांहीं समद निवासा रे ॥ ३ ॥

(३६२)। ६ ॥ चरित की जगह "चितर" पुस्तक नं० १ में है।

नांहीं जल थल षंडा रे, नांहीं सब ब्रह्मंडा रे।
नांहीं आदि अनंता रे, दादू रांम रहंता रे ॥ ४ ॥

॥ पद ३६५ ॥ मध्यमार्ग निरूपण ॥

अलह कहौ भावै रांम कहौ, डाल तजौ सब मूल गहौ ॥ टेक ॥
अलह रांम कहि कर्म दहौ, झूठ मारगि कहा बहौ ॥ १ ॥
साधू संगति तौ निबहौ, आइ परै सो सीसि सहौ ॥ २ ॥
काया कवल दिल लाइ रहौ, अलष अलह दीदार लहौ ॥३॥
सतगुर की सुणि सीप अहौ, दादू पहुंचै पार पहौ ॥ ४ ॥

॥ पद ३६६ ॥

हिंदू तुरक न जांणौं दोइ,
सांई सबनि का सोई है रे, और न दूजा देषौं कोइ ॥ टेक ॥
कीट पतंग सबै जोनिन में, जल थल संगि समांनां सोइ।
पीर पैकंबर देवा दांनव, मीर मलिक मुनिजन कौं मोहि ॥१॥
कर्ता है रे सोई चीन्हौं, जिनि वै क्रोध करै रे कोइ।
जैसैं आरसी मंजन कीजे, रांम रहीम देही तन धोइ ॥ २ ॥
सांई केरी सेवा कीजे, पायौ धन काहे कौं षोइ।
दादू रे जन हरि जपि लीजे, जनमि जनमि जे सुरिजन होइ ॥३॥

॥ पद ३६७ ॥

को स्वांमीं को सेष कहै, इस दुनियां का मर्म न कोई लहै ॥टेक॥
कोई रांम कोइ अलह सुनावै, पुनि अलह रांम का भेद न पावै ॥१॥
कोइ हिंदू कोई तुरक करि मांनें, पुनि हिंदू तुरक की षबरि न जांनें ॥२॥

(३६६-३) जपि की जगह पुस्तक नं० १ में "भजि" है ॥

यहु सब करणीं दूंन्यूं वेद, समझ परी तब पाया भेद ॥ ३ ॥
दादू देखै आतम एक, कहिबा सुनिबा अनंत अनेक ॥ ४ ॥

॥ पद २६८ ॥ निंधा ॥

न्यंदत है सब लोक बिचारा, हम कौं भावै रांम पियारा ॥टेक॥
निरसंसै निरदोष लगावै, तार्थे मोकौं अचिरज आवै ॥ १ ॥
दुबिधा द्वै पष रहिता जे, तासनि कहत गये रे ये ॥ २ ॥
निरबैरी निहकांमीं साध, ता सिरि देत बहु अपराध ॥ ३ ॥
लोहा कंचन एक समांन, तासनि कहत करत अभिमांन ॥४॥
न्यंद्या अस्तुति एकै तोलै, तास कहैं अपवादहि बोलै ॥ ५ ॥
दादू न्यंद्या ताकौं भावै, जाकै हिरदै रांम न आवै ॥ ६ ॥

॥ पद २६९ ॥ अनन्य सरणि ॥

माहरूं सूं जेहूं थारूं, ताहरूं छै तूंने थापूं ॥ टेक ॥
सर्व जीव ने तूं दातार, नें सिरज्या ने तूं प्रतिपाल ॥ १ ॥
तन धन ताहरो नैं दीधो, हूं ताहरो ने नैं कीधो ॥ २ ॥
सहुवें ताहरो साचों ये, मैं ने माहरो झूठो ते ॥ ३ ॥
दादू ने मनि श्रोर न आवै, तूं कर्ता ने तूंहिं जु भावै ॥ ४॥

(२६७-४) दून्यूं वेद = दोनों मत ॥

(२६९) मेरा क्या है जो मैं तुझ को दूं, तेरा ही सब कुछ है सो तुझे ही अर्पण करता हूं ॥ सर्व जीव हैं और तू दाता है तू ने ही सब रचे हैं और तू ही पालनेवाला है ॥ १ ॥ तन धन तेरा है और तेरा ही दिया है, मैं तेरा हूं और तेरा ही किया हुआ हूं ॥ २ ॥ सब सच ही पर तेरे हैं, मैं और मेरा झूठ है ॥ ३ ॥ दयालजी कहते हैं कि मेरे मन में कोई और नहीं आता है, तूही सब का कर्ता है और तूही मुझे पसंद है ॥ ४ ॥

॥ पद ४०० ॥ निहकाम साध ॥

असा औधू रांम पियारा, प्रांण प्यंड थें रहै निरारा ॥ टेक ॥
जब लग काया तब लग माया, रहै निरंतर औधू राया ॥ १ ॥
अठ सिधि भाई नौ निधि आई, निकटि न जाई रांम दुहाई॥२॥
अमर अभै पद बैकुंठ वास, छाया माया रहै उदास ॥ ३ ॥
सांई सेवग सब दिषलावै, दादू दूजा दिष्टि न आवै ॥ ४ ॥

॥ पद ४०१ ॥ सूरातन-कसौटी ॥

तूं साहिब मैं सेवग तेरा, भावै सिरि दे सूली मेरा ॥ टेक ॥
भावै करवत सिर परि सारि, भावै लेकर गरदन मारि ॥ १ ॥
भावै चहु दिसि अग्नि लगाइ, भावै काल दसौं दिसि षाइ॥२॥
भावै गिरवर गगन गिराइ, भावै दरिया मांहिं वाहि ॥ ३ ॥
भावै कनक कसौटी देहु, दादू सेवग कसि कसि लेहु ॥ ४ ।

॥ पद ४०२ ॥ साध ॥

कांम क्रोध नहिं आवै मेरे, तार्थे गोविंद पाया नेरे ॥ टेक ॥
भर्म कर्म जालि सब दीन्हां, रमिता रांम सबनिमैं चीन्हां ॥१॥
दुबेधा दुरमति दूरि गवाई, रांम रमति साची मनि आई॥२॥
नीच उच मधिम को नांहीं, देषों रांम सबनि के मांहीं ॥३॥
दादू साच सबनिमैं सोई, पेड पकरि जन निर्भै होई ॥ ४ ॥

॥ पद ४०३ ॥ हित उपदेस ॥

हाजिरां हजूर सांई, है हरि नेड़ा दूरि नांहीं ॥ टेक ॥
मनी मेटि महल मैं पावै, काहे षोजन दूरि जावै ॥१॥

(४०१-३) "भावै वाहि" की जगह किसी २ पुस्तक में "भावै बहाइ" है ॥

हिरस न होइ गुमा सब पाइ, तामैं संइयां दूरि न जाइ ॥२॥
दुइ दूरि दरोग न होइ. मालिक मन मैं देषै सोइ ॥ ३ ॥
अरि ये पंच सोधि सब मारै, तब दादू देषै निकटि विचारै४

॥ पद ४०४ ॥

रांम रमत है देषै न कोई, जो देषै सो पावन होई ॥टेक॥
बाहरि भीतरि नेड़ा न दूरि, स्वांमी सकल रह्या भरपूरि ॥१॥
जहं देषौं तहं दूसर नांहिं, सब घटि रांम समांनां मांहिं ॥२॥
जहां जांउ तहं सोई साथ, पूरि रह्या हरि त्रिभुवन नाथ ॥३॥
दादू हरि देषैं सुष होइ, निस दिन निरषन दीजै मोहि ॥४॥

॥ पद ४०५ ॥ अध्यात्म ॥

मन पवन ले उनमन रहै, अगम निगम मूल सो लहै ॥टेक।
पंच बाइ जे सहजि समावै, ससिहर के घरि आंणै सूर।
सीतल सदा मिलै सुषदाई, अनहद सबद बजावै तूर ॥१॥
बंक नालि सदा रस पीवै, तब यहु मनवां कहीं न जाइ।
बिगसै कवल प्रेम जब उपजै, ब्रह्म जीव की करै सहाइ ॥२॥
बैसि गुफा में जोति विचारै, तब तेहिं सूझै त्रिभुवन राइ।
अंतरि आप मिलै अविनासी, पद आनंद काल नहिं पाइ॥३॥
जांमण मरण जाइ भव भाजै, अवरण के घरि वरण समाइ।
दादू जाय मिलै जग जीवन, तब यहु आवागवन विलाइ॥४॥

॥ पद ४०६ ॥

जीवन मूरी मेरे आतमरांम, भाग बड़े पायौ निज ठांम॥टेक॥

(४०५ ससिहर के घरि आणै सूर, देखो ७–३२ ॥
(४०६–१) येतत उपजै=जिस योगी को यह पद (भावना) प्राप्त हो।

सबद अनाहद उपजै जहां, सुषमन रंग लगावै तहां ।
तहं रंग लागैं निर्मल होइ, यें तत उपजै जांनैं सोइ ॥ १ ॥
सरवर तहां हंसा रहै, करि स्नांन सबै सुष लहै ।
सुषदाई कौं नैंनहुं जोइ, त्यूं त्यूं मनि अति आनंद होइ ॥२॥
सो हंसा सरनागति जाइ, सुंदरि तहां पषालै पाइ ।
पीवै अम्रत नीझर नीर, बैठे तहां जगत गुर पीर ॥ ३ ॥
तहं भाव प्रेम की पूजा होइ, जा परि किरपा जांनैं सोइ ।
कृपा करि हरि देइ उमंग, तहं जन पायौ निर्भै संग ॥ ३ ॥
तब हंसा मनि आनंद होइ, वस्त अगोचर लषै रे सोइ ।
जाकौं हरि लषावै आप, ताहि न लेपैं पुन्य न पाप ॥ ४ ॥
तहं अनहद बाजे अद्भुत षेल, दीपक जलै बाति बिन तेल ।
अषंड जोति तहं भयौ प्रकास, फाग बसंत जो बारह मास ॥५॥
त्री अस्थांन निरंतरि निरधार, तहं प्रभु बैठे सम्रथ सार ।
नैंनहुं निरषौं तौ सुष होइ, ताहि पुरिस कौं लषै न कोइ ॥६॥
अैसा है हरि दीन दयाल, सेवग की जांनैं प्रतिपाल ।
चलु हंसा तहं चरण समांन, तहं दादू पहुचे परिवांन ॥ ७ ॥

॥ पद ४०७ ॥ आत्म पम्मात्म रास ॥

घटि घटि गोपी घटि घटि कांन्ह, घटि घटि रांम अमर अस्थांन टेक
गंगा जमनां अंतर वेद, सुरसती नीर वहै परसेद ॥ १ ॥

(४०६-२) सरवर=हृदय, बुद्धि । स्नांन=ध्यान रूपी डुबकी ॥
॥ ६) त्री अस्थान=त्रिकुटि तीर ॥
॥ ७)चरण=दीर्घ, बहुत । समांन=समानो=समय के लिये । परिवान=प्रवीन ।

कुंज केलि तहं परम विलास, सब संगी मिलि पेलें रास ॥२॥
तहं बिन बैनां बाजैं तूर, बिगसै कवल चंद अरु सूर ॥ ३ ॥
पूरण ब्रह्म परम परकास, तहं निज देषै दादू दास ॥
इति राग भैरूं समाप्त ॥ २४ ॥

॥ अथ राग ललित ॥ २५ ॥

॥ पद ४०८ ॥ पराभक्ति ॥

रांम तूं मोरा हूं तोरा, पाइन परत निहोरा ॥ टेक ॥
एकै संगैं वासा, तुम्ह ठाकुर हम दासा ॥ १ ॥
तन मन तुम्हकों देवा, तेज पुंज हम लेवा ॥ २ ॥
रस मांहैं रस होइबा, जोति सरूपी जोइबा ॥ ३ ॥
ब्रह्म जीव का मेला, दादू नूर अकेला ॥ ४ ॥

॥ पद ४०९ ॥ अनन्य सरणि ॥

मेरे ग्रिह आव हो गुर मेरा, मैं बालिक सेवग तेरा ॥टेक॥
मात पिता तूं अम्हचा स्वांमी, देव हमारे अंतरजामी ॥१॥
अम्हचा सजणी अम्हचा बंधू, प्रांण हमारे अम्हचा जिंदू ॥२॥
अम्हचा प्रीतम अम्हचा मेला, अम्हची जीवनि आप अकेला ॥३॥
अम्हचा साथी संग सनेही, रांम बिनां दुष दादू देही ॥ ४ ॥

(४०७-१) "परमेद" की जगह "परदेम" पुस्तक नं० १ में है। गोपी=आत्मा । कांन्ह, रांम=परमात्मा । गंगा जमनां स्याम मस्याम, पिंगला ईडा स्वर । बैन· बेद=हृदय गुफा,बुद्धि । सुरसती नीर=सुरति(ध्यान) की धारा। परमेद=प्रेम प्रवाह । कुंज=त्रिकुटी । संगी=बुद्धि चितादि । तूर = अनाहद । कवल = हृदय । चंद सूर = ईडापिंगला नाडियां ॥

॥ पद ४१० ॥ हित उपदेस ॥

वाहला माहरा ! प्रेम भगति रस पीजिये,
रमिये रमिता रांम, माहरा वाहला रे ।
हिरदा कवलमां राषिये, उत्तिम एहज ठांम, माहरा वाहला रे टेक
वाहला माहरा ! सतगुर सरणों अगसरे,
साध समागम थाइ, माहरा वाहला रे ।
वांणी ब्रह्म वषाणिये, आनंद में दिन जाइ, माहरा वाहला रे ॥१॥
वाहला माहरा ! आतम अनभै ऊपजे,
उपजे ब्रह्म गियान, माहरा वाहला रे ।
सुख सागर में झूलिये, साचो ये स्नान, माहरा वाहलारे ॥ २॥
वाहला माहरा ! भौ बंधन सब छूटिये,
कर्म न लागे कोइ, माहरा वाहला रे ।
जीवनि मुकति फल पामिये, अमर अभै पद होइ, माहरा वाहलारे
वाहला माहरा ! अठ सिधि नो निधि आंगणों,
परम पदारथ चार, माहरा वाहला रे ।
दादू जन देषै नहीं, रातो सिरजनहार, माहरा वाहला रे ॥४॥

॥ पद ४११ ॥ प्रीति अपंडित ॥

हमारो मन माई ! रांम नांम रंगितो,
पिव पिव करे पीव कों जानें । मगन रहे रसि मातो ॥ टेक ॥
सदा सील संतोष सु भावन, चरण कवल मन बाधों ।
हिरदा मांहिं जतन करि राषों, मांनों रंक धन लाधो ॥ १ ॥
प्रेम भगति प्रीति हरि जांनों, हरि सेवा सुषदाई ।

(४१०) यथार्थ=अनुसार चर्ल ॥

ग्यांन ध्यांन मोहन कौ मेरे, कंप न लागै काई ॥ २ ॥
संगि सदा हेत हरि लागौ, अंगि और नहिं आवै ।
दादू दीन दयाल दमोदर, सार सुधा रस भावै ॥ ३ ॥

॥ पद ४१२ ॥ साहिब सिफति॥

मेहरबान मेहरबान, आब बाद पाक आतिश, आदम नीशान टेक
सीस पांव हाथ कीये, नैंन कीये कांन ।
मुख कीया जीव दीया, राज़िक रहमान ॥ १ ॥
मादर पिदर परदः पोश, सांईं सुबहान ।
संग रहै दस्त गहै, साहिब सुलतान ॥ २ ॥
या करीम या रहीम, दाना तू दीवान ।
पाक नूर है हजूर, दादू है हैरान ॥ ३ ॥

अथ राग जैतश्री ॥ २६ ॥

॥ पद ४१३ ॥ अविट नांव बीनती ॥

तेरे नांउं की बलि जांऊं, जहां रहौं जिस ठांऊं ॥ टेक ॥
तेरे बैनोंकी बलिहारी, तेरे नैंनहुं ऊपरि वारी ।
तेरी मूरति की बलि कीती, वारि वारि हौं दीती ॥ १ ॥
सोभित नूर तुम्हारा, सुंदर जोति उजारा ।
मीठा प्रांण पियारा, तू है पीव हमारा ॥ २ ॥
तेज तुम्हारा कहिये, निर्मल काहे न लहिये ।
दादू बलि बलि तेरे, आव पिया तूं मेरे ॥ ३ ॥

॥ पद ४१४ ॥ विरह बीनती ॥

मेरे जीव कि जांणैं जांणराइ, तुम थैं सेवग कहा दुराइ ॥ टेक॥

जल बिन जैसें जाइ जिय तलफत, तुम्ह बिन तैसें हमहु बिहांइ ।
तन मन व्याकुल होइ बिरहनीं, दरस पियासी प्रांन जांइ ॥१॥
जैसें चित्त चकोर चंदमनि, ऐसें मोहन हमहि आहि ।
बिरह अगनि दहत दादू कौं, दर्सन परसन तना सिराइ ॥ २ ॥

अथ राग धनाश्री ॥ २७ ॥

॥ पद ४१५ ॥ अमिट अविनासी रंग ॥

रंग लागौ रे रांम कौ, सो रंग कदे न जाई रे,
हरि रंग मेरौ मन रंग्यौ, और न रंग सुहाई रे ॥ टेक ॥
अविनासी रंग ऊपनौं, रचि मचि लागौ चोलौ रे ।
सो रंग सदा सुहावणौं, ऐसौ रंग अमोलौ रे ॥ १ ॥
हरि रंग कदे न ऊतरै, दिन दिन होइ सुरंगौ रे ।
नित नवौं निरवांण है, कदे न ह्वैला भंगौ रे ॥ २ ॥
साचौ रंग सहजें मिल्यौ, सुंदर रंग अपारौ रे ।
भाग बिनां क्यूं पाइये, सब रंग मांहें सारौ रे ॥ ३ ॥
अबरण कौं का बरणिये, सो रंग सहज सरूपा रे ।
बलिहारी उस रंग की, जन दादू देषि अनूपा रे ॥ ४ ॥

॥ पद ४१६ ॥

लागि रह्यौ मन रांम सौं, अब अनतें नहिं जाये रे ।
अचला सौं थिर ह्वै रह्यौ, सकै न चीत डुलाये रे ॥ टेक ॥
ज्यूं फुनिग चंदनि रहै, परिमल रहै लुभाये रे ।
त्यूं मन मेरा रांम सौं, अबकी बेर अघाये रे ॥ १ ॥
भवर न छाड़ै बासकूं, कवलिहि रह्यौ बंधाये रे ।

त्यूं मन मेरा रांम सौं, बेधि रह्यौ चित लाये रे ॥ २ ॥
जल बिन मींन न जीवई, बिछुरत हीं मरि जाये रे ।
त्यूं मन मेरा रांम सौं, ऐसी प्रीति बनाये रे ॥ ३ ॥
ज्यूं चात्रिग जल कौं रटै, पिव पिव करत बिहाये रे ।
त्यूं मन मेरा रांम सौं, जन दादू हेत लगाये रे ॥ ४ ॥

॥ पद ४१७ ॥ बीनती ॥

मन मोहन हो! कठिन बिरह की पीर, सुंदर दरस दिपाइये ॥टेक॥
सुनहु न दीन दयाल, तव सुष बैंन सुनाइये ॥ १ ॥
करुणांमय कृपाल, सकल सिरोमणि आइये ॥ २ ॥
मम जीवनि प्रांण अधार, अबिनासी उर लाइये ॥ ३ ॥
इब हरि दरसन देहु, दादू प्रेम बढ़ाइये ॥ ४ ॥

॥ पद ४१८ ॥

कतहूं रहे हो बिदेस, हरि नहिं आये हो ।
जन्म सिरानौं जाइ, पीव नहिं पाये हो ॥ टेक ॥
बिपति हमारी जाइ, हरिसौं को कहै हो ।
तुम्ह बिन नाथ अनाथ, बिरहनि क्यूं रहै हो ॥ १ ॥
पीव के बिरह बियोग, तन की सुधि नहीं हो ।
तलफि तलफि जिव जाइ, मृतक ह्वै रही हो ॥ २ ॥
दुषित भई हम नारि, कब हरि आवै हो ।
तुम्ह बिन प्रांण अधार जीव दुष पावै हो ॥ ३ ॥
प्रगटहु दीन दयाल, बिलम न कीजिये हो ।
दादू दुषी बेहाल, दरसन दीजिये हो ॥ ४ ॥

॥ पद ४१६ ॥

सुरिजन मेरा वे ! कीहें पारि लहांउं,
जे सुरिजन घरि आवे वे, हिक कहाण कहांउं ॥ टेक ॥
तो वाझें मकों चैन न आवे, ये दुष कींह कहांउं ।
तो वाझें मकों निंदु न आवे, अषियां नीर भरांउं ॥ १ ॥
जे नूं मेकौं सुरिजन डेवे, सोहों सीस सहांउं ।
ये जन दादू सुरिजन आवे, दरगिह सेव करांउं ॥ २ ॥

॥ पद ४२० ॥

मोहन माधो कब मिले, सकल सिरोमणि राइ ।
तन मन व्याकुल होत है, दरस दिषावो आइ ॥ टेक ॥
नैंन रहे पंथ जोवतां, रोवत रैंणि विहाइ ।
बाल सनेही कब मिले, मोपें रह्या न जाइ ॥ १ ॥
छिन छिन अंगि अनल दहे, हरिजी कब मिलि हैं आइ ।
अंतरजांमीं जांणि करि, मेरे तन की तपति बुझाइ ॥ २ ॥
तुम्ह दाता सुष देत हो, हां हो सुणि दीन दयाल ।
चांहैं नैंन उतावले, हां हो कब देषौं लाल ॥ ३ ॥
चरन कवल कब देषिहौं, सन्मुष सिरजनहार ।
सांई संग सदा रहौं, हां हो तब भाग हमार ॥ ४ ॥
जीवनि मेरी जब मिले, हां हो तब हीं सुष होइ ।
तन मन में तूंही बसे, हां हो कब देषौं सोइ ॥ ५ ॥
तन मन की तूंहीं लषे, हां हो सुणि चतर सुजांन ।
तुम्ह देषे बिन क्यूं रहौं, हां हो मोहि लागे बांन ॥ ६ ॥

बिन देखें दुष पाइये, हां हो इब बिलंब न लाइ ।
दादू दरसन कारनें, हां हो सुष दीजे आइ ॥ ७ ॥

॥ पद ४२१ ॥ बैराग ॥

ये पूहि पये सब भोग बिलासन, नैंसहु वाको छत्र सिंघासन ॥टेक॥
जननहु रांम भिस्न नहिं भावे, लाल पलिंग क्या कीजे ।
भाहि लगे इहि सेज सुषासण, मकों देषण दीजे ॥ १ ॥
बैकुंठ मुकति सरग क्या कीजे, सकल भवन नहिं भावे ।
भठी पयें सब मंडप छाजे, जे घरि कंत न आवे ॥ २ ॥
लोक अनंत अभे क्या कीजे, में बिरही जन तेरा ।
दादू दरसन देषण दीजे, ये सुनि साहिब मेरा ॥ ३ ॥

॥ पद ४२२ ॥ इमान साबित (राग काफी) ॥

अल्लः आशिकां ईमान,
बहिश्त दोजष दीन दुनिया चेकारे रहमान ॥ टेक ॥
मीर मीरी पीर पीरी, फ़रिश्तः फ़रमान ।

(४२१) पूहि=कूपे में । पयँ=पड़ें । जनन=जन्नत=स्वर्ग । भाहि = अग्नि । भठी = भट्ठी ॥

(४२२) आशिकों का ईमान अल्लः है, हे रहमान ! स्वर्ग नर्क धर्म संसार कुछ काम के नहीं ॥ तैसे ही सरदार की मीरी, पीर का उपदेश, फरिश्ते का हुक्म लाना, पानी अग्नि स्वर्ग लोक भी कुछ नहीं, है सो तेरा ही दर्शन है ॥ १ ॥ दोनों जहानों में, सृष्टि में, धर्म के उपदेशों में, हाजियों की यात्रा में, काजियों के इनसाफ में, तू ही सुलतान है ॥ २ ॥ जहान के ज्ञान, हैरानों की वांछा, हे सचेत मित्रो ! ईश्वर की लीला अपार है ॥ ३ ॥ आदि अंत तू ही है जिस पर मेरे प्राण निसार हैं । आशिकों को प्रकाशवान तेरा दर्शन मिले, हे इश ॥ ४ ॥

आव आतिश अरश कुर्सी, दीदनी दीवान ॥ १ ॥
हरदो आलम पलक पाना, मोमिना इसलाम ।
हजां हाजी कज़ा काज़ी, पान तू सुलतान ॥ २ ॥
इल्म आलम मुल्क मालुम, हाजते हैरान ।
अजब यारां पवरदागं, सूरते सुबहान ॥ ३ ॥
अव्वल आखिर एक तूही, ज़िंद है कुरबान ।
आशिकां दीदार दादू, नूर का नीशान ॥ ४ ॥

॥ पद ४२३ ॥ विरह विनती (राग काफी) ॥

अल्लः तेरा ज़िकर फ़िकर करते हैं,
आशिकां मुश्ताक तेरे, तर्स तर्स मरते हैं ॥ टेक ॥
पलक पेश दिगर नेस, बैठे दिन भरते हैं ।
दायम दरबार तेरे, ग़ैर महल डरते हैं ॥ १ ॥
तन शहीद मन शहीद, रात दिवस लड़ते हैं ।
ग्यांन तेरा ध्यांन तेरा, इश्क आग जलते हैं ॥ २ ॥
जान तेरा ज़िंद तेरा, पावों सिर धरते हैं ।
दादू दीवान तेरा, ज़र ख़रीद घरके हैं ॥ ३ ॥

॥ पद ४२४ ॥

मुखि बोलि स्वांमीं, तूं अंतरजांमीं, तेरा सबद सुहावै रांमजी ।टेक।
धेंन चरांवन बेंन बजांवन, दरस दिखांवन कांमिनीं ॥ १ ॥

(४२३) पलक पेश दिगर नेस=सृष्टि अपनी दूसरा कुछ नहीं, इस प्रकार से हम ध्यान करते हैं । दायम=हमेशा । ग़ैर महल = ईश्वर अतिरिक्त अन्य इष्ट । शहीद = धर्म पर प्राण देने वाला । ज़र ख़रीद = चाकर, दास दामों से मोल लिया जन ॥

विरह उपांवन तपति बुझांवन, अंगि लगांवन भांमिनीं ॥२॥
संगि खिलांवन रास बनांवन, गोपी भांवन भूधरा ॥ ३ ॥
दादू तारन दुरित निवारण, संत सुधारण रांमजी ॥ ४ ॥

॥ पद ४२५ ॥ केवल बीनती ॥

हाथ दे हो रांमां, तुम पूरण सब कांमां,
हौं तो उरझि रह्यौ संसार ॥ टेक ॥
अंध कूप एह मैं पर्यौ, मेरी करहु संभाल ।
तुम बिन दूजा को नहीं, मेरे दीनांनाथ दयाल ॥ १ ॥
मारग को सूझै नहीं, दह दिसि माया जाल ।
काल पासि कसि बांधियौ, मेरे कोइ न छुड़ावनहार ॥ २ ॥
रांम बिनां छूटै नहीं, कीजै बहुत उपाइ ।
कोटि किया सुलझै नहीं, अधिक अलुझत जाइ ॥ ३ ॥
दीन दुखी तुम देषतां, भै दुष भंजन रांम ।
दादू कहै कर हाथ दे हो, तुम सब पूरण कांम ॥ ४ ॥

॥ पद ४२६ ॥ करुणा बीनती ॥

जिनि छाडै रांम जिन छाडै, हमहिं बिसारि जिनि छाडै,
जीव जात न लागै बार जिनि छाडै ॥ टेक ॥
माता क्यूं बालक तजै, सुत अपराधी होइ ।
कबहुं न छाड़ै जीवथैं, जिनि दुष पावै सोइ ॥ १ ॥
ठाकुर दीन दयाल है, सेवग सदा अचेत ।
गुण औगुण हरि नां गिणैं, अंतरि तासौं हेत ॥ २ ॥
अपराधी सुत सेवगा, तुम्ह हो दीन दयाल ।

हम थैं औगुण होत हैं, तुम्ह पूरण प्रतिपाल ॥ ३ ॥
जब मोहन प्रांणी चलै, तब देही किहि कांम ।
तुम्ह जांनत दादू का कहै, अब जिनि छाडै रांम ॥ ४ ॥

॥ पद ४२७ ॥

बिषम बार हरि अधार, करुणां बहु नांमीं ।
भगति भाइ बेगि आइ, भीड़ भंजन स्वांमीं ॥ टेक ॥
अंति अधार संत सधार, सुंदर सुखदाई ।
कांम क्रोध काल ग्रसत, प्रगटौ हरि आई ॥ १ ॥
पूरण प्रतिपाल कहिये, सुमिर्‌यौं थैं आवै ।
भर्म कर्म मोह लागे, काहे न छुड़ावै ॥ २ ॥
दींन दयाल होह कृपाल, अंतरजांमीं कहिये ।
एक जीव अनेक लागे, कैसैं दुख सहिये ॥ ३ ॥
पांवन पीव चरण सरण, जुगि जुगि तैं तारे ।
अनाथ नाथ दादू के, हरि जी हमारे ॥ ४ ॥

॥ पद ४२८ ॥ बीनती ॥

साजनियां नेह न तोरी रे,
जे हम तोरैं महा अपराधी, तौ तूं जोरी रे ॥ टेक ॥
प्रेम बिनां रस फीका लागै, मीठा मधुर न होई ।
सकल सिरोमणि सब थैं नीका, कड़वा लागै सांई ॥ १ ॥
जब लग प्रीति प्रेम रस नांहीं, त्रिषा बिनां जल ऐसा ।
सब थैं सुंदर एक अमीरस, होइ हलाहल जैसा ॥ २ ॥
सुंदरि सांई खरा पियारा, नेह नवा नित होवै ।
दादू मेरा तब मन मांनैं, सेज सदा सुख सोवै ॥ ३ ॥

॥ पद ४२९ ॥ कर्ता कीरति ॥

काइमां ! कीरति करौंली रे, तूं मोटौ दातार ।
सब तैं सिरजीला साहिबजी, तूं मोटौ कर्तार ॥ टेक ॥
चौदह भवन भानैं घड़ै, घड़त न लागै वार ।
थापै उथपै तूं धणीं, धनि धनि सिरजनहार ॥ १ ॥
धरती अंबर तैं धरया, पांणीं पवन अपार ।
चंद सूर दीपक रच्या, रैंणि दिवस विसतार ॥ २ ॥
ब्रह्मा संकर तैं किया, विश्न दिया अवतार ।
सुर नर साधू सिरजिया, करि ले जीव बिचार ॥ ३ ॥
आप निरंजन ह्वै रह्यौ, काइमां कौतिगहार ।
दादू निर्गुण गुण कहै, जांऊंली हौं बलिहार ॥ ४ ॥

॥ पद ४३० ॥ उपदेस चितावणी ॥

जियरा रांम भजन करि लीजै,
साहिब लेषा मांगैगा रे, ऊतर कैसैं दीजै ॥ टेक ॥
आगैं जाइ पछितावन लागो, पल पल यहु तन छीजै ।
तातैं जिय समझाइ कहूं रे, सुकृत अवथ कीजै ॥ १ ॥
रांम जपत जम काल न लागै, संगि रहैं जन जीजै ।
दादू दास भजन करि लीजै, हरिजी की रासि रमीजै ॥ २ ॥

॥ पद ४३१ काल चितावणी ॥

काल काया गढ़ भेलिसी, छीजै दसौं दुवारा रे ।
देषतड़ां ते लूटियें, होसी हाहाकारा रे ॥ टेक ॥
नाइक नगर न मेलसी, एकलड़ो ते जाई रे ।
संग न साथी कोई न आसी, तहं को जाणैं किम थाई रे ॥ १ ॥

(४२९) काइमां = इ अचल ॥

संतजन साधो माहरा भाईड़ा, कांई सूकृत लीजे मारा रे।
मारगि विषम चालिवो. कांई लीजे प्रांण अधारा रे ॥ २ ॥
जिम नीर निवांणां ठाहरै, तिम साजी बांधो पालो रे।
समरथ सोई सेविये, तो काया न लागै कालो रे ॥ ३ ॥
दादू थिर मन आंणिये, तो निहचल थिर थाये रे।
प्रांणीं ने पूरो मिलो, तो काया न मल्ही जाये रे ॥ ४ ॥

॥ पद ४३२ ॥ भर्भीत भयानक ॥

डरिये रे डरिये. परमेसुरथें डरिये रे,
लेखा लेवै भरि भरि देवै, ताथैं बुरा न करिये रे ॥ टेक ॥
साचा लीजी साचा दीजी. साचा सौदा कीजी रे।
साचा राषी झूठा नांषी. विष ना पीजी रे ॥ १ ॥
निर्मल गहिये, निर्मल रहिये, निर्मल कहिये रे।
निर्मल लीजी निर्मल दीजी. अनत न बहिये रे ॥ २ ॥
साहिब ठाया, मनिज न आया. जिनि डहकावे रे।
झूठ न भावे फेरि पठावे. कीया पावे रे ॥ ३ ॥
पंथ दुहेला जाइ अकेला. भार न लीजी रे।
दादू मेला होइ सुहेला. सो कुछ कीजी रे ॥ ४ ॥

॥ पद ४३३ ॥

डरिये रे डरिये. देषि देषि पग धरिये।
तारे तरिये मारे मरिये. ताथैं गर्व न करिये रे. डरिये ॥टेक॥
देवे लेवे समरथ दाता. सब कुछ छाजे रे।
तारे मारे गर्व निवारे. बैठा गाजे रे ॥ १ ॥

(४३१-१ ; नाइक नगर न मीलसी = शरीर का मालिक जीव ; चिदाभास) शरीर में न मिलेगा ॥ मीलसी की जगह मूल पुस्तक में "मेल्हसी" है ॥

राखै रहिये बाहैं वहिये, अनत न लहिये रे ।
भानैं घड़ै सँवारै आपै, अैसा कहिये रे ॥ २ ॥
निकटि बुलावै दूरि पठावै, सब बनि आवै रे ।
पाके काचे काचे पाके, ज्यूं मन भावै रे ॥ ३ ॥
पावक पांणीं पांणीं पावक, करि दिखलावै रे ।
लोहा कंचन कंचन लोहा, कहि समझावै रे ॥ ४ ॥
ससिहर सूर सूरथैं ससिहर, परगट पेलै रे ।
धरती अंबर अंबर धरती, दादू मेलै रे ॥ ५ ॥

॥ पद ४३४ ॥ हित उपदेस ॥

मनसा मन सबद सुरति, पांचौं थिर कीजे ।
एक अंग सदा संग, सहजैं रस पीजै ॥ टेक ॥
सकल रहित मूल गहित, आपा नहिं जांनैं ।
अंतर गति निर्मल रति, येकै मनि मांनैं ॥ १ ॥
हिरदै सुधि बिमल बुधि, पूरण परकासै ।
रसनां निज नांउं निरषि, अंतर गति बासै ॥ २ ॥
आतम मति पूरण गति, प्रेम भगति राता ।
मगन गलत अरस परस, दादू रसि माता ॥ ३ ॥

॥ पद ४३५ ॥ बीनती ॥

गोविंद के चरनौं हीं ल्यौ लाऊं,
जैसें चात्रिग बन में बोलै, पीव पीव करि ध्याऊं ॥ टेक ॥
सुरिजन मेरी सुनहु बीनतीं, मैं बलि तेरे जांऊं ।
बिपति हमारी तोहे सुनांऊं, दे दरसन क्यूं हीं पांऊं ॥ १ ॥
जात दुष सुष उपजत तिन कौं, तुम सरनागति आंऊं ।

दादू कौं दया करि दीजै, नांउं तुम्हारौ गाऊं ॥ २ ॥

॥ पद ४३६ ॥

ये प्रेम भगति विन रह्यौ न जाई. परगट दरसन देहु अघाई ।टेक।
तालाबेली तलफै मांहीं, तुम्ह विन रांम जियरे जक नांहीं॥१॥
निसबासुरि मन रहै उदासा, मैं जन व्याकुल सास उसासा॥२॥
एकमेक रस होइ न आवै, तार्थें प्रांण बहुत दुष पावै ॥ ३ ॥
अंग संग मिलि यहु सुष दीजै, दादू रांम रसांइन पीजै ॥४॥

॥ पद ४३७ ॥ परचै उपदेस ॥

तिस घरि जांनां वे, जहां वे अकल सरूप,
सो इब ध्याइये रे, सब देवनि का भूप ॥ टेक ॥
अकल सरूप पीव का, बान बरन न पाइये ।
अपंड मंडल मांहिं रहै, सोई प्रीतम गाइये ।
गावहु मन विचारा वे, मन विचारा सोई सार ।
प्रगट पीव ते पाइये,
सांई सेती संग साचा, जीवन तिस घरि जाइये ॥ १ ॥
अकल सरूप पीवका, कैसैं करि आलेषिये ।
सुन्य मंडल मांहिं साचा, नैंन भरि सो देषिये ।
देषौं लोचन सारवे, देषौं लोचन सार, सोई प्रगट होई ।
यह अचंभा पेषिये, दयावंत दयाल असौ, बरण अति बसेषिये २॥
अकल सरूप पीव का, प्रांण जीवका, सोई जन जे पावई ।
दयावंत दयाल असौ, सहजें आप लषावई ॥
लषै सुलषणहार वे, लषै सोई संग होई, अगम वैन सुनांवहीं।

सब दुप भागा रंग लागा, काहे न मंगल गावहीं ॥ ३ ॥
अकल सरूपी पीव का, कर कैसें करि आंणिये।
निरंतर निर्धार आपें, अंतरि सोई आंणिये ॥
जांणहुं मन विचारा वे, मनि विचारा सोइ सारा,
सुमिरि सोई वंषांनिये ।
श्री रंग सेती रंग लागा, दादू तौ सुष मांनिये ॥ ४ ॥

॥ पद ४३८ ॥

रांम तहां प्रगट रहे भरपूर, आतमा कवल तहां,
परम पुरिष तहां, झिलिमिलि झिलमिलि नूर ॥ टेक॥
चंद सूर मधि भाइ, तहां बसै राम राइ, गंग जमन के तीर।
त्रिवेणी संगम जहां, निर्मल विमल तहां, निरषि २ निज नीर।१।
आत्मा उलटि जहां, तेज पुंज रहे तहां, सहजि समाइ
अगम निगम अति। तहां बसै प्रांणपति,
परसि परसि निज आइ ॥ २ ॥
कोमल कुसम दल, निराकार जोति जल, वार पार
सुन्य सरोवर जहां, दादू हंसा रहे तहां, विलसि २ निज सार॥३॥

॥ पद ४३६ ॥

गोविंद पाया मनि भया, अमर कीये संग लीये।
अपे अभै दान दीये, छाया नहीं माया ॥ टेक ॥
अगम गगन अगम तूर, अगम चंद अगम सूर।
काल झाल रहे दूर, जीव नहीं काया, आदि अंति नहीं कोइ।
राति दिवस नहीं होइ, उदै अस्त नहीं दोइ, मनहीं मन लाया ॥
अमर गुरू अमर ग्यांन, अमर पुरिष अमर ध्यांन।
अमर ब्रह्म अमर थांन, सहजि सुन्य आया, अमर नूर अमर वास।

अमर तेज सुष निवास, अमर जोति दादू दास, सकल भुवन राय।

॥ पद ४४० ॥

रांम की राती भई माती, लोक वेद विधि निषेध,
भागे सब भ्रम भेद, अमृत रस पीवै ॥ टेक ॥
भागे सब काल झाल, छूटे सब जग जंजाल, बिसरे सब हालचाल
हरि की सुधि पाई, प्रांन पवन जहां जाइ, अगम निगम मिले आइ
प्रेम मगन रहे समाइ, बिलसै बपु नांहीं ॥ १ ॥
परम नूर परम तेज, परम पुंज परम सेज, परम जोति परम हेज।
सुंदरि सुष पावै, परम पुरिष परम रास। परम लाल सुष बिलास,
परम मंगल दादू दास, पीवसौं मिलि षेलै ॥ २॥

॥ आरती पद ४४१ ॥

इहि विधि आरती रांम कीजै, आतमा अंतरि वारणां लीजै ॥टेक॥
तन मन चंदन प्रेम की माला, अनहद घंटा दीन दयाला ॥१॥
ग्यांन का दीपक पवन की बाती, देव निरंजन पांचौं पाती ॥२॥
आनंद मंगल भाव की सेवा, मनसा मंदिर आतम देवा ॥३॥
भगति निरंतर मैं बलिहारी, दादू न जांनैं सेव तुम्हारी ॥४॥

॥ पद ४४२ ॥

आरती जग जीवन तेरी, तेरे चरन कवल परिवारी फेरी ॥टेक॥
चित चांवरे हेत हरि ढारे, दीपक ग्यांन जोति विचारे ॥ १॥
घंटा सबद अनाहद बाजै, आनंद आरती गगन गाजै ॥ २ ॥
धूप ध्यांन हरि सेती कीजै, पुहप प्रीति हरि भांवरि लीजै ॥३॥
सेवा सार आतम पूजा, देव निरंजन और न दूजा ॥ ४ ॥
भाव भगति सौं आरती कीजै, इहि विधि दादू जुगि जुगि जीजै ॥५॥

॥ पद ४४३ ॥

अविचल आरती देव तुम्हारी, जुगि जुगि जीवनि राम हमारी टेक
मरण मीच जम काल न लागै, आवागवन सकल भ्रम भागै ॥ १ ॥
जोनी जीव जनमि नहिं आवै, निर्भै नांउं अमर पद पावै॥२॥
कालि विष कुसमल बंधन कापै, पारि पहूंने थिर करि थापै॥३॥
अनेक उधारे तैं जन तारे, दादू आरती नरक निवारे॥४॥

॥ पद ४४४ ॥

निराकार तेरी आरती, बलि जाउं अनंत भवन के राइ टेक।
सुर नर सब सेवा करैं, ब्रह्मा विश्न महेस ।
देव तुम्हारा भेव न जानैं, पार न पावै सेस ॥ १ ॥
चंद सूर आरती करैं नमो निरंजन देव ।
धरनि पवन आकास अराधैं, सबै तुम्हारी सेव ॥ २ ॥
सकल भवन सेवा करैं, मुनियर सिध समाध ।
दीन लीन ह्वै रहे संत जन, अविगत के आराध ॥ ३ ॥
जै जै जीवनि राम हमारी, भगति करैं ल्यौ लाइ ।
निराकार की आरती कीजै, दादू बलि बलि जाइ ॥ ४ ॥

॥ पद ४४६ ॥

तेरी आरती ए, जुगि जुगि जै जै कार ॥ टेक ॥
जुगि जुगि आतमरांम, जुगि जुगि सेवा कीजिये ॥ १ ॥
जुगि जुगि लंघे पार, जुगि जुगि जगपति कौं मिले ॥ २ ॥
जुगि जुगि तारणहार, जुगि जुगि दरसन देषिये ॥ ३ ॥
जुगि जुगि मंगलचार, जुगि जुगि दादू गाइये ॥ ४ ॥

इति राग धनाश्री सम्पूर्ण ॥ २७ ॥

॥ श्रीरामजी ॥

अथ काया बेली ग्रंथ राग सूहौ अर्थ संयुक्त उपदेस
प्यंड ब्रम्हंड सोधन अंग ॥

॥ पद ३५७ ॥

साचा सतगुर रांम मिलावै ॥

सचा गुरदेव ब्रम्ह को मिलावै, सौं मिलै, यथा—
सबद सात ताला जड़या, अर्थ दरब ता मांहि।
रजब गुर कूंची बिनां, हस्त सु आवै नांहि ॥
थिर जंगम व्यापक सबै, निराकार निरधांम।
सो दरसावै दिलमई, ता गुर कूं परनांम ॥
झूठे अंधे गुर घणे, भटकैं घर घर बारि ॥ १-१२८ ॥

सब कुछ काया मांहि दिषावै ॥ ॥टेक॥

काया भंडार में सब निधि है, जो ब्रम्हंडे सोई प्यंडे, गुर ग्यांन सौं पावै ॥
सा० सकल करम ताला भए, जीव जड़या ता मांहि।
गुरु दृष्टि कूंची बिना, कबहूं षुलै नांहि ॥
त्रिगुण रहित कूंची गुरू, ताला त्रिगुण सरीर।
जन रजब जीव तौ षुलै, जे जोगि मिलै गुरपीर ॥

काया मांहें सिरजनहार ॥

दादू जल में गगन, गगन में जल है, फुनि वै गगन निरालं। १८। २ ॥
ज्यूं दर्पन में मुष देषिये, पांणीं में प्रतिब्यंब ॥ १८। ३ ॥
जीयें तेल तिलंनि में, जीयें गंध फुलंनि ॥ १८। ४ ॥
ईयें रषु रूइंनि में, जीयें रूह रगंनि ॥ १८। ६ ॥

आप आपण में षोजो रे भाई, बस्त अगोचर गुरू लषाई ॥ (पद ३=७)

तिल मध्ये यथा तैलं, काष्ट मध्ये हुताशनं ।
पयो मध्ये यथा घृतं, देह मध्ये तथा देवं ॥
कबीर ज्यूं नैंनूं में पूतली, त्यूं षालिक घट मांहि ।
मूरिष लोग न जांणहीं, बाहरि ढूंढण जांहि ॥

काया माँहें ओंकार ॥ १ ॥

ओंकार शब्द के अंतर्गत संपूर्ण सृष्टि है, तैसे ही अनाहद शब्द में शरीर के सब ब्यौहार होवे हैं। यही स्थूल शरीर का जीवन मूल है, इसी के आधीन प्राण गति है ॥

काया माँहें है आकास ॥

जैसे आकाश सब को अवकाश देता है, तैसे समताभाव से संत सब को आदर दे ॥

साहिबजी की आत्मा, दीजे सुष संतोष ।२६ । १४ ॥
आत्म रांम बिचारि करि, घटि घटि देव दयाल ॥ २६ । १६ ॥

बाहर जो इंद्रिय पसारा पसरना है, सो ध्यान धर कर संत अन्तर्मुख समावै और अनंत विद्या शब्द श्लोक ग्रंथों को अंतर धारण करै ॥

काया माँहें धरती पास ॥ २ ॥

जैसे धर्ती सब की घनस क्षमा करती है वैसे संत संपूर्ण त्राम कसौटियों को क्षमा करै और धैर्यवान हो—

सिर में दई रवाव की, क्रोध नहीं लवलेश ।
फिरि उलटी पूजा करी, गयी वे दरवेस ॥
कबीर पूंदणि तो धरती सहै, बढ सहै बनराइ ।
कुशब्द तो हरि जन सहै, दूजे सह्या न जाइ ॥

काया माँहें पवन प्रकास ॥

प्राण वायु काया को जीवित रखता है, बाहर जब पवन जोर से चलता है, तब वृक्ष गिरपड़ते हैं, धूल उड़ती है, धैर्य रहता नहीं, यहां सन्तों की

ज्ञान रूपी आंधी चले, तब वृक्ष रूपी मान बड़ाई का अभिमान छूट जाय, रजोगुण रूपी रेत उड़ जाय और सर्वत्र ज्ञान का प्रकाश फैले।

काया मांहैं नीर निवास ॥ ३ ॥

नीर की दृष्टि से जैसे जगत् हरा भरा होता है, सब को आनन्द देता है, तैसे संत के ज्ञानमय वाक्य सर्वत्र शांति और आनन्द फैलावें। और काया में नीर " अमी महारस भरि भरि पीजै " । पद १०८ ॥

काया मांहिं ससिहर सूर ॥

ससिहर = मन । सूर = पवन । अथवा दोनों नेत्र । बांवां नेत्र शशि, दाहिना नेत्र सूर्य । ब्रम्हांड में जैसे चंद्र सूर्य प्रकाशते हैं तैसे काया में दोनों नेत्र। वहां शीतल तप्त किरणें हैं । यहां शांत दृष्टि शशि की और क्रुद्ध दृष्टि सूर्य की है। वहां १६ कला चंद्रमा की और १२ कला सूर्य की हैं, तैसे ही काया में निम्न लिखित कला हैं—

मन चंद्रमा की १६ कला–शांति, निवृत्ति, क्षमा, उदारता, निर्मलता, निश्चलता, निर्भयता, निःशंकता, समता, निर्लोभता, निर्ममता, निरहंकारता, सहवीर्यता, ज्ञान, आनंद, निर्वाण।

सूर्य की १२ कला—चिंता, तरंग, डिंभ., माया, परिग्रह, प्रपंच, द्वैत, बुद्धि, काम, क्रोध, लोभ, दृष्टि।

काया मांहिं बाजैं तूर ॥ ४ ॥

तूर = अनाहद शब्द ।

काया मांहिं तीन्यूं देव ।

तीन गुण, राजस ब्रम्हा, सात्विक विष्णु, तामस महादेव। ब्रम्हा का वास नाभि में, विष्णु का हृदय में, महादेव का मस्तक रूपी कैलाश में।

काया मांहिं अलख अभेव ॥ ५ ॥

लक्ष रहित अविगत ब्रम्ह भी काया ही में है, जैसा सिरजनहार की टीका में लिखा आये हैं ॥

काया मांहैं चारयूं वेद ।

रुग रटणि जरणां जजुर, साम सहनता जांणि ।
अनभै अथर्वण प्यंड में, ए चारि वेद परवांणि ॥

अष्टांग योग में तिन के स्थान—नाभी ऋग, हृदय यजुर, कंठ साम, मुख अथर्वण ।

काया मांहैं पाया भेद ॥ ६ ॥

भेद ज्ञान काया रूपी उपाधी करके ही है ।

काया मांहैं चारे षांणीं ।

चार प्रकार से सब जीवों की उत्पत्ति होती है, सो चार खानियां यह हैं—

(१) जरायुज, मनुष्य, चौपाये ।
(२) अण्डज, पत्ती, सर्पादि ।
(४) उद्भिज, बनस्पति ।
(३) स्वेदज, जूं, लीख ।

काया में जरायुज रूपी नाड़ी हैं, अंडज रूपी नेत्र, उद्भिज रूपी रोमावली, स्वेदज रूपी इंद्रियां । प्रथम खानि आत्मा, द्वितीय खानि मन, तृतीय खानि प्रकृति, चतुर्थ खानि शरीर । पंचम निष्पत्ति खानि ज्ञान है ।

काया मांहैं चारे बांणीं ॥ ७ ॥

परा ब्रम्ह बाणी, परयन्ती देवतों की बाणी, मध्यमा पशु पत्तियों की बाणी, वैखरी मनुष्यों की बाणी । यह चार बाणी हैं, इन के रूप स्थान अवस्था देवता नीचे लिखे हैं—

	रूप	स्थान	अवस्था	देवता
पराबाणी	बीज	नाभी	तुरिया	सोहं
परयन्ती	अंकुर	हृदय	सुषुप्ति	ईश्वर
मध्यमा	पात	कंठ	स्वप्न	विष्णु
वैखरी	वृक्ष विस्तार	मुख	जाग्रत	ब्रम्हा

सा० पार ब्रह्म कह्या प्रांण सौं, प्रांण कह्या घट सोइ । २८ । १८ ॥

काया माँहिं उपजे आइ, काया माँहिं मरि मरि जाइ ॥ ८ ॥

अंतः करण में लहर तरंग रूपी वृत्तियों की उत्पत्ति और लय।

साखी-सब गुण सब ही जीव के, दादू व्यापें आइ। (११-४)

काया माँहिं जामें मरे।

मन के मनोर्थी गुण विकारों का उपजना और मिटना ही जीवन मरण है ॥

सा० जीव जनम जाँणें नहीं, पलक पलक में होइ। (११-५)

कबीर प्रांण प्यंड कूं तजि चले, मुवा कहैं सब कोइ।

जीव छतां जामें मरें, सूषिम लखै न कोइ ॥

काया माँहिं चौरासी फिरे ॥ ९ ॥

नाना प्रकार की मनो भावनाओं में मन का गमनागमन चौरासी फेर है, यथा—

दादू चौरासी लष जीव की, परकीरति घट माँहिं।

अनेक जनम दिन के करैं, कोई जाँणें नाँहिं। (११-२)

काया माँहिं ले अवतार, काया माँहिं बारंबार ॥ १० ॥

सा० दादू जेते गुण व्यापें जीव कों, तेते ही अवतार। (११-३)

काया माँहिं राति दिन, उदै अस्त इकतार ॥ ११ ॥

राति=अज्ञान वा स्वप्न, दिन=ज्ञान वा जाग्रदवस्था। उदै=द्वैतरूपी गुण तिन का ब्रह्माकार वृत्ति में एक रस होना अस्त ॥

दादू पाया परम गुर, कीया एकंकार ॥ १२ ॥

परम गुर परमेश्वर है, तिस को उसी की कृपा से पाया, तब सब द्वैत-भावनाओं का लय होकर एकंकार अद्वैत निष्ठा प्राप्त हुई ॥

सा० दादू पाँणीं लूँण ज्यूं, ऐसैं रहै समाइ। (१०-२६)

॥ पद ३५८ ॥

काया माँहिं खेल पसारा।

जो ब्रह्मंडे सोई प्यंडे, पृथिवी पर अनेक लीलायें हैं तैसे काया में अनेक तरंगें वासेरें हैं। पृथ्वी के राजा प्रजा स्थानी शरीर का राजा मन है और

प्रजा प्रकृति, जगत में धनवंत और कंगाल है, यहां स्वासोस्वास ब्रह्म में लय लगाये रहे सोई धनवान है और राम भजन के बिना जो स्वास ले सोई कंगाल है, जिस के हृदय में परमेश्वर का भाव है सोई उत्तम है, जिसका हृदय मलीन है सोई अधम है। जिस का मन निर्मल, निःशंक निर्भय, उदार अपने आत्मरूप से संतुष्ट है सोई राजा है, जिस का अंतःकरण तरह २ की कामनाओं से, राग द्वेष से, भय शोक से, ईर्षा घृणा से संदग्ध रहता है सोई अधम जीव है ॥

काया माँहैं प्राण अधारा ॥ १३ ॥

प्राणाधार परमेश्वर जो सब का प्रतिपालन करता है सो काया ही में है, सोई अपना आत्मा है, मरना जीना जीव का अपने ही आधीन है, जो अपने आप को दृढ निश्चय से अमर मानता है सो अमर है, जो अपने को देहरूप नाशवान् समझता है सोई मृत्यु पाता है। जो अपने आत्मा में दृढ निश्चय से सन्मार्ग में विचरता है उस का प्रतिपालन अंतर्जामी आप करता है—

सा० दादू है बलिहारी सुरत की, सब की करै संभाल। (१६-२५)

दादू राजिक रिज़क लिये खड़ा, देवै हाथों हाथ। (१६-२०)

दादू सांई सबनि कौं, सेवग है सुख दे। (१६-२२)

काया माँहैं अठारह भारा, काया माँहैं उपावनहारा ॥१४॥

अठारह नित्य बहुवचनान्त शब्द है, जैसे अष्टादश द्वीप, विद्या, पुराण, स्मृति, धान्य, महाभारत के पर्व, भगवद्गीता के १८ अध्याय इत्यादि ॥

१८ भार जगत् प्रपंच जैसे ब्रह्मांड में है तैसे केशलोमादि काया में है, तिन सब का रचनेवाला आत्मा ही है। जैसे मायोपहित समष्टि रूप ईश्वर ने सब ब्रह्मांड रचा है तैसे ही व्यष्टिरूप कायोपहित जीव अपने कर्मानुसार अपने भोग निमित्त प्रपंच रचकर हर्ष शोक मानता है ॥

पद। सिरजनहार थैं सब होइ।

बनपति परलै करै आप, दूसर नांहीं कोइ। टेक। पद १४१।

काया माँहैं सब बनराइ।

काया को बन विचार कर संत न्यारे हुये अथवा बनराइ श्रीरामजी

तिन को सब कायाओं में अवलोकन कर समता धारण की—

सा० दादू जिन प्रांणी करि जांणिया, घर बन देक समान । १६ ।८९॥
सब जग मांहैं एकला, देह निरंतर बास ॥ १६ । ३६ ॥
कबीर हरि का भावता, दूरहि तैं दीसंत ।
तनषी नाम न उनमन, जग रूठड़ा फिरंत ॥

पद । ऐसैं ग्रिह मैं क्यूं न रहै, मनसा वाचा रांम कहै ॥ पद २६८ ॥

काया मांहिं रहै घर छाड़ ॥ १५ ॥

घर हृदय तिसमें संत राम नाम लेते हुए स्थिर हो रहे ॥

सा० दादू जे मुग मांहैं बोलता, श्रवणहुं सुणता आइ । १० । १६ ॥
दादू चम्बक देषि करि, लोहा लागै आइ ॥ १० । १० ॥

काया मांहिं कंदलि वास ॥

कंदलि आत्म कवल में बास सोई पर्वत की कंदरा का बास है ॥

सा० दादू रांम नांम मैं पैसिकरि, रांम नांम ल्यौ लाइ ॥ २ । ७७ ॥

काया मांहिं है कविलास ॥ १६ ॥

कविलास=कैलाश, सोई काया में दशवांद्वार माना है ॥

काया मांहिं तरवर छाया, काया मांहिं पंषी माया ॥ १७ ॥

तरवर=ब्रम्ह तिस की छाया रूप सुख । पंखी जीव माया में मोहित ॥

काया मांहिं आदि अनंत, काया मांहिं है भगवंत ॥ १८ ॥

आदि ओंकार, अनंत पमाग, भगवंत परमेश्वर जिस का कभी भंग नहीं जो सदा अभंग है । सोई कूटस्थ अपना आत्मा है ॥

पद । ऐसा तन अनूपम भाई, मर्ग न जीवै काल न षाई ॥ पद २२८ ॥

काया मांहिं त्रिभवन राइ

तीन भुवन=स्वर्गमृत पाताल । राउ=रामजी सो संतों के हृदय में विराजमान हैं ।

सा० अठ सिधि नौ निधि नांउं मंझाि, कहै कबीर भज चरन मुरारि ।

काया मांहिं रहे समाइ ॥ १९ ॥

काया के भीतर अंतर्मुख वृत्ति करके ब्रम्ह में लीन हो रहे ॥

पद । रेमन जाइ जहां तोहि भावै, अब न तेरे कोइ अंकुस लावै ॥टेक॥
जहं जहं जाइ तहं तहं रांमां, हरि पद चीन्हि किया बिस्रामां ।
तन रंजित तब देपियत दोई, प्रगट्यो ग्यांन, जहां तहं सोई॥
लीन निरंतर, बपु बिसराया, कहै कबीर सु सागर पाया ॥

काया मांहैं चौदह भवन

भक्ति अंग में पंच ज्ञान इंद्रिय, पंच कर्मेंद्रिय और चतुष्टय अंतः करण, यह १४ भुवन कहाते हैं ॥

(१४) लोक मस्थान हैं, तिन के स्थान काया में अष्टांग योगानुसार यह हैं—

लोक	निवासी	काया स्थान
भूर	मनुष्य, पशु	नाभी
भुवः	भूत, पक्षी	उर
स्वः	देवता	हृदय
महर	ऋषि	छाती
जन	भक्त सहकामी	कंठ
तप	सूर सती सन्यासी	नासिका
सत्य	ज्ञानी संन्यासी	दशवां द्वार
अतल	महादेव	कोखी
वितल	बाणासुर	कमर
सुतल	मयनामा	सायल जंघा
रसातल	शेष	गोडे (घुटने)
तलातल	बलि	पिंडली
महातल	बासुकि नाग	गिरियां (टखने)
पाताल	कद्रू के पुत्र	पगथली ।

काया मांहिं आवागवन ॥ २० ॥

मन मनोर्थ जो जीव के उपजेत हैं सोई आवागवन हैं ॥

सा० अनेक रूप दिन के करै, यहु मन आवै जाइ। (११-६)

काया मांहिं सब ब्रम्हंड ॥

सुमेर में २१ स्वर्ग कहे हैं, अर्थात् चाम्रुरी भूत यम यक्ष किन्नर ब्रम्हरासस राक्षस काल चित्रगुप्तस्वर्ग योगणी गन्धर्प अर्यमा महास्वर्ग तपस्वर्ग जनस्वर्ग सतिस्वर्ग दविस्वर्ग सुरनरलोक देवास्वर्ग पयालीस्वर्ग विस्वकर्माखण्डस्वर्ग। यहां पृष्टि मध्य वयंग्रोदि २१ गांठें हैं सोई स्वर्ग कहे हैं। वन्दि पुराण में २१ स्वर्गों के नाम इस भांति से दिये हैं-

आनंद प्रमोध सौख्य निर्मल त्रिविष्टप नाकपृष्ट निर्वृति पौष्टिक सौभाग्य अप्सरस निरहंकार शांतिक निर्मल पुण्याय मंगल स्वेत मन्मथ उपसोहन शांति निर्मल निरहंकार॥

काया मांहिं हैं नवखंड। २१ ॥

जैसे पृथिवी के नवखण्ड कहे हैं तैसे काया में नव द्वार हैं ॥

अष्टांग योग में ६ चक्र इस भांति से दिये हैं—

नाम चक्र का	पंखड़ी	अक्षर	देवता	स्थान
१ आधार	४	४	गणेश	गुदा
२ स्वाधिष्ठान	८	८	ब्रह्मा	लिंग
३ मणिपूर	१०	१०	पवन	नाभी
४ निरंजन	८	८	मन	उदर
५ उपद	१२	१२	सूर्य	हृदय
६ विशुद्द	१६	१६	चंद्रमा	कंठ
७ वर्षासा	३२	३२	विष्णु	तालू
८ आज्ञा	२	२	महादेव	मस्तक
६ ब्रम्ह रंध्र	१०००	१०००	दसौंदिशा	दसवांद्वार

जम्बूद्वीप के नव खण्डों के नाम यह हैं —

(१) इलावृत (२) रम्यक (३) हिरण्यमय (४) कुरू (५) हरिवर्ष (६) किंपुरुष (७) भारतवर्ष (८) केतुमाल वर्ष (६) भद्राश्ववर्ष ॥

काया माँहैं लोक सब, दादू दिये दिखाइ ॥२२॥

मनसा वाचा कर्मनां, गुर बिन लख्या न जाइ ॥ २३ ॥

स्वर्ग मृत और पाताल, इन तीनों ही के अन्तर्गत १४ भुवन २१ ब्रह्माण्ड हैं । काया में स्वर्ग लोक दशवें द्वार स्थान है, मृत लोक उदर स्थान और पाताल लोक पगथले हैं

॥ पद ३५६ ॥

काया माँहैं सागर सात ॥

भक्ति अंग में सप्त धातु माने हैं सोई सात सागर हैं-

माता की धातु से लोहू मांस त्वचा नाड़ी ।

पिता ,, ,, वीर्य हाड़ गुदा ॥

सप्त द्वीप सप्त सागरों में इस भांति कहे हैं-

द्वीप-जम्बू प्लक्ष शाल्मलि कुश क्रौञ्च शाक पुष्कर ॥

सागर-लवण, ईख, सुरा, क्षीर, दधि, घृत, स्वाद ॥

काया में द्वीप और सागर जोगारंभ में यह कहे हैं-

द्वीप-श्रवण नेत्र नासिका मुख हस्त उदर पग ।

सागर स्थान क्रम से-सुरा दसवें द्वार, घृत श्रवण, ईख नेत्र, दधि नासिका, स्वाद मुख, क्षीर हृदय, खार (लवण) भ्रमरी स्थान ॥

कवित-प्रथमहिं जम्बू द्वीप खार सागर में सोहै ।

पलष ईख रस मध्य सालमलि सुरा सुमोहै ।

कुश है घीर समंद्र कुंच दधि मध्य रहा हीं ।

साक घृत चहुंफेर पुस्कर सुधा बसांहीं ।

नृपि जोजन बिस्तार लेहु गुण एक तें एक हैं ।

दीप मानि सागर सप्त हरि आग्या उरि धरि रहैं ।

सप्त दीप सप्त समुद्र काया में इस प्रकार से जानिये ॥

काया माँहिं अविगत नाथ ॥ २४ ॥

अविगत परमेश्वर जिस की गति कोइ नहीं जानता ।

पद—अविगत की गति कोइ न लहै ।
सब अपनां उनमांन कहै ॥ पद २४५ ॥

काया माँहिं नदिया नीर। काया माँहिं गहर गंभीर ।२५ ।

नदी कहो नव द्वार अथवा नाड़ियें, अथवा नवधा भक्ति, नीर रामनाम।
नदी आशा शुभ अशुभ तट, भरी मनोरथ नीर ।
तृष्णा अगिन तरंग जहं, भर्म भँवर गंभीर ॥

काया माँहिं सरवर पांणीं, काया माँहिं बसै बिनांणीं ॥ २६ ॥

सरवर आत्मा, सरोवर हृदय, पांणीं प्रेम । बिनांणीं बुद्धि जो शुभ अशुभ का निर्णय करती है, अथवा बिनांणीं कहो परमेश्वर ॥

रमैंणी—एक बिनांणीं रच्या बिनांन, सब अयांन जो आपै जांन ।
सत रज तम तैं कीनी माया, चारि षांणि बिस्तार उपाया ॥

काया माँहिं नीर निवांन । काया माँहिं हंस सुजांन। २७॥

नीर राम नाम, निवांन हृदय । अथवा नीर निर्मल ज्ञान निवांन नम्रता से नवना । हंस ब्रह्म में लयलीन योगी ।

सा० कबीर नवैं आप कौं, पर कौं नवै न कोइ ।
घालि तराजू तोलिये, नवै सु भारी होइ ॥
नवै सु ग्यानी गुर कृपा, नवै सु संत सुजांन ।
तुरसी वै जड़ क्यूं नवै, अभि योफल अभिमांन ॥
दादू सहज सरोवर आत्मा, हंसा करैं कलोल । (४-३१)
सुंनि सरोवर हंस मन, मोती आप अनंत । (४-६४)

काया माँहिं गंग तरंग, काया माँहिं जमना संग। २८॥

गंगा उठती वाणीं, पिंगला स्वर। प्रेम तरंग। जमना बैठती वाणी, इड़ा स्वर। राम नाम का संग।

सा० रजब गंगा ग्यांन की, कर्मन रेत रुकाइ ।
पाप पहाडू फोड़िकरि, मिली हरि समंद कूं जाइ ॥
सहज जोग सुष में रहे, दादू निर्गुण जाणि ।
गंगा उलटी फेरि करि, जमना मांहिं आणि । (७-३२)
गंग जमुन तहं नीर नहाइ, सुषमन नारी रंग लगाइ । (पद ७०)
गंगा जमनां अंतर वेद, सुरसती नीर बहै परसेद । (पद ४०७)

काया मांहिं है सुरसती, काया मांहिं द्वारा मती । २९ ॥

सरस्वती शुद्ध सुरति (लय), द्वारा मती दशवें द्वार पर आत्मरत बुद्धि ॥

काया मांहिं कासी थांन, काया मांहिं करै सनांन ॥ ३० ॥

कासी थांन आत्म कंवल में स्थिर वृत्ति । शुद्ध ब्रम्ह के नित्य चिंतन रूप स्नान से अंतः करण के मलों को धोवै ॥

सा० सरीर सरोवर रांमजल, मांहिं संजम सार । (२-६०)
रांम नांमं जलं कृत्वा स्नानं सदा जित । (२-६१)

काया मांहिं पूजा पाती ॥

भाव पूजा, पाती प्रीति ॥

सा० देव निरंजन पूजिए, पाती पंच चढ़ाइ । (४-२७६)
आतम मांहैं रांम है, पूजा ताकी होइ । (४-२६२)
कबीर देवल मांहिं देहुरी, तल जे है बिस्तार ।
मांहैं पानी मांहिं जल, मांहिं पूजन हार ॥
सो ई देव पूजों जे टांची नहिं घड़िया, गरभवास नहीं औतरिया ॥ पद ३११

काया मांहिं तीरथ जाती । ३१ ॥

तीर्थ भक्ति अंगमें त्रकुटी, मन पवन सुरति जो कोट हैं तिनका त्रकुटी ही तीर्थ है । शास्त्रों में केदार सागर गया प्रयाग वाणारसी यह पंच तीर्थ कहे हैं, सो काया में इस प्रकार से माने हैं—सिर केदार, कंठ गया, नाभी प्रयाग, उपस्थ सागर, सर्वव्यापीक वाणारसी ॥ जाती (यात्री) प्राण मनों के ॥

काया मांहिं मुनियर मेला, काया मांहिं आप अकेला ३२ ॥

मुनियर मन सहित इंद्रियों का एकाग्र होकर ब्रह्म में लीन होना सोई मेला है। आप ब्रह्म, अकेला पाप पुण्य से न्यारा, यथा—

चौ० दिनकर उदै दसौं दिसि धांवे, भले बुरे बहु कर्म कमावै।
पाप पुंनि मिलि पै नांहिं न्यारा, ऐसें अकल सकल तें न्यारा।
जोति उजालै रमै जुवारी, इक जीतै इक हारै भारी।
हरिष सोक मैं दोऊ बंधांनां, दीपक के कुछ हेत न हांनां।

काया मांहिं जपिये जाप ॥

अजपा अंतर्गनि जाप—

सा० अंतरिगति हरि हरि करै, तब मुष की हाजति नांहिं। (४-१७१)
मन पवन अरु सुरति सौं, आतम पकड़ै आप।
रजब लावै तत्त सौं, इहै अजपा जाप॥
सरीर सब्द अरु स्वास करि, हरि सुमिर्ण तिहुं ठांव।
मन रजब आतम अगम, अजपा इसका नांव॥
ब्रह्मंड प्यंड मन मांण तजि, सुष मैं सुरति समाइ।
रजब अजपा जाप यहु, निरदेर्षा निरताइ॥

काया मांहिं आपै आप ॥ ३३ ॥

आपै आप स्वयंभु, माया अंजन रहित निरंजन।

पद—तहं आपै आप निरंजनां, तहं निस बासुरि नहिं संजमा ॥ पद २०८॥

काया नग्र निधांन है,

काया शहर बड़ा गंभीर सब निधियों की खानि है, जो खोजै सो गुरु-ज्ञान से पावै भाव भक्ति प्रेम प्रीति शील संतोष दया धर्म क्षमा गरीबी निर्दोषता निर्वैरता लघुता निवृत्ति निर्भयता सहवीर्यता परिपूरणता परमानंद ॥

मांहि कौतिग होइ ॥ ३४ ॥

आतम परमात्म मेल सोई कौतिक है।

पद–पहुप प्रेम बरिषैं सदा, हरिजन खेलैं फाग।

दादु सतगुर संगि ले, भूलि पड़े जिनि कोइ ॥३५॥

सतगुर जो परमात्मा है तिसका स्मर्ण सदैव बनाये रक्खैं, उसको भूल कर तीर्थ भाषादि बाह्य साधनों में ही जीवन न गंवावैं ॥

॥ पद ३६० ॥

काया मांहि विषमी बाट।

ब्रह्म पंथ अति कठिन है—

सा०–माई मीत न पाइए, बानूं मित्या न कोइ।

रजब सौदा राम सौं, सिर बिन कदे न होइ ॥

दादू बिन पाइन का पंथ है क्यूंकरि पहुंचे मांण। (७–१०)

दादू विषम दुहेला जीव कूं, सतगुर थैं आसांन। (१–६२)

दादू पारब्रह्म पैंडा दिया, सहज सुरति लै सार। (७–१४)

जैसे बद्री केदार के पंथ में कहते हैं "हीके चढ़े सो विषमी बाट" तैसे ब्रह्म ध्यान में आपा अभिमान बड़ाई अहं बुद्धि माया मोहादि पहाड़ हैं—

सा० मनलंघि-आराम कौं, माया मेर उलंघि। (१२–६३)

लोभ मोह ही पर्वत की घाटियां हैं, वहां डोरीसे पार उलंघते हैं यहां- पंचइंद्रियों और मन को खैंचि कर ब्रह्म में लीन होते हैं, जैसे डोकों पर उतर ते समय अगल बगल दृष्टि नहीं जाने देते, तैसे ब्रह्म मार्ग में-

सा०–सांई सौंपि न डोलिए, तन मन मनसुषि राषि। ८। ६० ॥

दादू नैनं भरि नहि देषिए, सब माया का रूप। (१२–१३)

काया मांहि औघट घाट ॥ ३६ ॥

तन मन के विकारों को जीतना सोई औघट घाट है ॥

पद–राम संभालिए रे, विषम दुहेली बाट। (शब्द १३)

सा०–काया नाव समंद में, औघट बूडै मांहि। (३४–४१)

काया माँहें पटण गांउं ॥

पटण (पट्टन, नगर) प्रेम सहित पिंड । जैसे शहर में सब सौदा मिलता है तैसे प्रेमी पिंड में सब ज्ञान ध्यान भाव भक्ति रहती हैं ।

काया माँहें उत्तिम ठांउं । ३७॥

उत्तम ठांव हृदय कंवल तहं परमेश्वर के चरण हैं ॥

सा० तेज पुंज के चर्ण हैं, हाड़ चाम के नांहिं ।
तुरसी चेढ़ों चढ़िए, हृदा कवल के मांहिं ॥
जब देव निरंजन पूजिए, तब सब आया उस मांहिं (८ । ७५)
सब आया उस एक में डाल पांन फल फूल (८-७२)

काया माँहें मंडप छाजे, काया माँहें आप विराजे ॥ ३८ ॥

मंडप मनसा, मंदिर करण गोलकादि, श्रोत्र नेत्रादि के स्थान । आप परमेश्वर रोम रोम में विराजमान हैं ॥

काया माँहें महल अवास, काया माँहें निहचल वास ॥ ३९ ॥

महल पंच कोश, अर्थात् अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनंदमय । निहचल परमेश्वर तिस का अंतर्मुख ध्यान, सोई निहचल वास है ॥

काया माँहें राजद्वार, काया माँहें बोलणहार ॥ ४० ॥

ब्रह्मांड का राजा ईश्वर है, तिस का स्थान काया में हृदय अथवा दशवां द्वार है । बोलणहार प्राण का नेता ईश ॥

पद-रांम राज कोइ भिड़ै न भाजै ॥

काया माँहें भरे भंडार ॥

जिस का हृदय भाव भक्ति से पूर्ण है, जो अपने आत्मा ही को सर्व जगत का कर्ता धर्ता मानता है, जिस की दृष्टि में सर्व प्रपंच आत्मरूप ही है, उस के निमित्त संपूर्ण भंडार काया ही में हैं, बाह्य पदार्थों की न उस को कामना होती है ना उस के शारीरिक निर्वाह में कमी पड़ती है ॥

सा०-चारि पदारथ मुकति बापुरी, अठ सिधि नौ निधि चेरी (१२-६८)

काया माँहैं हीरा साल, काया माँहैं निपजें लाल । ४३ ॥

ब्रह्म परिचय रूप हीरा, साल खानि, सो ज्ञान की खानि हृदय गुफा (शुद्ध बुद्धि) है । लाल पंच इंद्रिय और मन ॥

सा० पंच संगी पिव् पिव् करैं, छठा जु सुमिरैं मंन ।
आई सुरति कबीर की, पाया रांम रतंन ॥

काया माँहैं मांणिक भरे, काया माँहैं ले ले धरे ॥ ४४ ॥

माणिक स्वास सो राम नाम से भरे थिर किये और माणिकवत आत्म-प्रकाश में अंतर्मुख वृत्ति को रोक बैठे ॥

काया माँहैं रतन अमोल, काया माँहैं मोल न तोल ॥ ४५ ॥

रत्नरूपी मन सो ब्रह्म में लीन होकर अमोल हुआ ।
सा० दादू पंच पदारथ मन रतन, पवना मांणिक होइ । (४-२६८)
अजब अनूपम हार है, सांई सरीषा सोइ । (४-२६६)
रतन पदारथ मांणिक मोती, हीरौं का दरिया । (१५-४२)
मिसरी माँहैं मेलि करि, मोलि बिकांनां बंस । (४-१८६)

राम बिनां किम कांम का, नहिं कौड़ी का जीव् । ४ । १६० ॥
भाव् भक्ति जत सत संतोष, ग्यांन ध्यांन धीरज धुंनि मोष ।
षिमा दया दासातन लीन, रतन सु रांम चौदह दीन ॥

चौदह रत्नों के नाम यह दिये हैं लक्ष्मी मणि कल्पवृक्ष कामधेनु अमृत विष संख धन्वन्तर चंद्र सुरा सप्तमुखा घोड़ा ऐरावत हाथी । कवित्त—

प्रथम लछमणि संष धनु जगदीस हि लीए ।
कांमधेन गज वृद्ध रंभ सुरपति कूं दीए ॥
सुधा सुरनि कूं दयौ, सुरा असुरनि कूं अरप्यौं ।
विष हिमकर दोउ सुतौ, ले संकरैं समरप्यौं ॥
चंद् धनंतर लोक में, सप्तमुष अस्व रवि कौं दियौ ।
चौदह रतन विभाग कौं, यह कवित्त कविजन कियौ ॥

लक्ष्मी भक्ति, मणि सांति, कल्पतरु ग्यांन विचारौ ।
कामधेन सतबुधि, बंन सुभ अमृत धारौ ॥
अहं बुधि विष जांणि, रंभ अनहद धुनि बाजै ।
धनंतर अष्टांग, चंद संतोष विराजै ॥
सुरा कांम, मन मत्तद्रपई, गज धीरज जानियेहु ।
तहां जुगति सु रंभा, सबद गुर, नरसिंघ घन कपि अंणि लेहु ॥

काया मांहिं कर्त्तार है, सो निधि जांणैं नांहिं ॥ ४६ ॥

कर्तार जगत का कर्ता सो काया ही में है । मनरूपी ब्रह्म ही अपनी स्फुरना से संपूर्ण प्रपंच रचता है सो काया के भीतर है । जैसे स्वप्नावस्था में मन बिना अन्य सामग्री के स्वप्न सृष्टि रचिकर स्वप्न सुख दुःख भोगता है, तैसे जाग्रत अवस्था में वही मन व्यावहारिक प्रपंच रचता है । संपूर्ण दृश्य मन के ही अंदर है ॥

सा० जहं मन नांहीं सो नहीं, जहं मन चेतन सो आहि । (१८-११)
मन ही माया ऊपजै, मन ही माया जाइ । (१०-१३३)

दादू गुरमुषि पाइये, सब कछु काया मांहिं ॥ ४७ ॥

गुरू की कृपा से गूढ़ रहस्यों का भेद मिलता है। काया में सब कुछ मिल सकता है, जो खोजै सो पावै ॥

॥ पद ३६१ ॥

काया मांहिं सब कुछ जांणि, काया मांहिं लेहु पिछांणि ॥ ४८ ॥

संपूर्ण जगत में एक सत्ता परमेश्वर की है, दूसरा लेश मात्र भी नहीं है। द्वैत प्रपंच सब मन करके कल्पित है, इस से सब कुछ काया में ही जानने योग्य है ॥

सा० मीन तुम्हारा तुम्ह कंनै, तुम्ह हीं लेहु पिछांणि ।
कबीर ज्यूं नैनां में पूतली, त्यूं षालिक घट मांहिं ।
मूरिष लोग न जांणहीं, बाहरि ढूंढण जांहिं ॥

पूजा की सौंज सब काया ही में दयालजी ने कही है सो सौंज विचार लो, देखो ४-२६८ ॥

काया माँहें बहु बिस्तार, काया माँहें अनंत अपार ॥ ४६ ॥

बिस्तार ब्रम्ह का। जिस के अंत वार पार शोभा यश कीर्ति कहने में नहीं आ सकते। सो संतों ने काया में प्रत्यक्ष परिचय किये ॥

सा० दादू पांणी माँहि पैसि करि, देषै दिष्टि उघारि। (४-८३)
देषि दिवाने व्है गए, दादू षरे सयांन। (६-२६)
केते पारिष पचि मुये, कीमति कही न जाइ। (६-४)

काया माँहें अगम अगाध।

अगम ब्रम्ह अगम ध्यान, जिस ब्रम्ह को देख कर संत हैरान हो रहे ॥

सा० रतन एक बहु पारिषू, सब मिलि करैं विचार। (६-२)
पद। ये हों बूझि रही पिव जैसा, है तैसा कोइ न कहै रे।
अगम अगाध अपार अगोचर, सुधि बुधि कोइ न लहै रे। पद २४६ ॥

काया माँहें निपजे साध ॥ ५० ॥

संत निपजै नाम के प्रताप और भाव से, यथा—

सा० साधू सकणां मांहिं मन, ज्यूं मके की ज्वारि।
जन रजब जोष्यूं गई, पंषी सकै न ष्यारि ॥
साधू सिरटा मकई, इम बोग तन धार।
ब्रम्ह भोमि रस पीजिये, मन कण निपजि अपार ॥
कण मोटो साऊ सिगे, चड़े रू मैं कुछ नांहिं।
साध मका की ज्वारि ज्यूं, बपमां निपजी मांहिं ॥

(सकणां=दानेदार। ज्वारि=दाना। ष्यारि=खिराय बिखराय। सिरटा=भुट्टा बोग वस्त्र। चड़ेरु=चिड़ियों का)

पद–सुधि भाई महिमां नाम तणी माइ' मायुर पामें जो मैं सुणी। टेक।
कोटि कोटि धार जो पढ़िए वेद, सब शास्त्र का लीजे भेद।
पुराण अठारह का मत जोट, राम-नाम समि तुलै न कोइ ॥
कोटि कोटि कूप पताचे वाद, कोटि कोटि कन्या दे परणाइ।

कोटि कोटि बार जो कीजै जागि, तुलै न नांइ सहस्र मैं भागि ॥
धर समुझी जो दीजै दान, कोटि कोटि तीर्थ करै सनांन ।
कोटि कोटि जप तप साधै पांन, तऊ न आवै नांव समांन ।
गज गनिका गोतम बध तिरी, नृमल नांउ एही है हरी ॥
पतित अजामेल सरणैं गयो, भाव कुभाव जिन हरि नांव लयो ।
ध्रुप नारद प्रहलाद अभ्यास, सुमिर्यो भूपति करि बिसवास ॥
तिन के हरि काटे बहु फंद, ते निहचल, चलैं रवि चंद ।
ह्रदै सति करि सुमिर्यो रांम, आंन धर्म सब तजि वे कांम ।
नपृत नांम देव हरि सर्णां, आवागवन मिटै ज्यूं मरणां ॥

काया मांहैं कह्या न जाइ,

ब्रम्ह मन वांणी का विषय नहीं है, इस से कथन करने में आवै नहीं ॥

पद । ऐसा रांम हमारै आवै, वार पार कोइ अंत न पावै ॥ टेक ५८ ॥
थकित भयौ मन कह्यौ न जाइ, सहज समाधि रह्यौ ल्यौ लाइ ॥ टेक ॥ २४४

सा० हेरत हेरत हे सषी, रह्या कबीर हिराइ ।
बूंद समांणीं समंद मैं, सो कत हेरी जाइ ॥

काया मांहैं रहै ल्यौ लाइ । ५१ ॥

संसार से निवृत्त होकर काया के भीतर ब्रह्म में लय लगा रहै ।

सा० दादू सब बातनि की एक है, दुनियां थैं दिल दूरि । (७-२५)
दादू सहज सुंनि मन राषिये, इन दून्यूं के मांहि । (७-६)
दादू लै लागी तब जांणिए, जे कबहूं छूटि न जाइ । (७-२)

काया मांहैं साधन सार ॥

सार ब्रह्म का नित्यदर्शन सुमिरण है ।

सा० प्रेम भगति दिन दिन बधै, सोई ग्यांन बिचार ।

काया मांहैं करै बिचार ॥ ५२ ॥

ब्रह्म का ध्यान चितवन रूप विचार सदा करै ।

सा०– सहज विचार सुष में रहै, दादू बड़ा बमेक ॥ (१८–३१)

काया मांहिं अमृत वांणी ॥

अमृत वचन आपा रहित राम नाम वांणी।

सा०–कबीर ऐसी वांनीं बोलिए मन का आपा षोइ।
अपनां तन सीतल करै, औरन कौं सुष देइ ॥

पद—जे बोलै तौ रांमहिं बोलि, ना तरि बदन कपाट न षोलि ॥ टेक ॥
जे बोलिए तौ कहिये रांम, आंन बकन सौं नांहीं कांम।
रांम नांम मेरै हृदै लेषि, रांम बिनां सब फोकट देषि।
नांम देव कहै मेरै एकै नांउं, रांम नांम की मैं बलिजांउं ॥

काया मांहै सारंगप्रांणीं। ५३ ॥

सारंग सर्व रंग हैं जिसमें। अंतर्मुख वृत्ति से योगी अद्भुत रंग काया के भीतर देखते हैं।

काया मांहैं षेलै प्रांण ॥

प्राणधारी जीव परमेश्वर से खेलै।

सा०– पुहप प्रेम बरिषै सदा, हरिजन षेलैं फाग। (४–११०)
दादू रंग भरि षेलौं पीव सौं, तहं बाजै बेन रसाल। (४–६)

काया मांहिं पद निरवाण। ५४ ॥

निरवाण पद परमेश्वर है जिसको कोइ बाण काल कर्म का लगै नहीं, वह सदा अविचल शांतस्वरूप है।

पद-- ऐसा तत्त अनूपम भाई, मरै न जीवै काल न पाई। पद २२८ ॥

काया मांहिं मूल गहि रहे।

सर्व का मूल मंत्र ब्रह्म जिसको संतों ने ग्रहण किया।

सा०–सब आया उस एक मैं, डाल पांन फल फूल। (८–७२)

काया मांहैं सब कुछ लहै। ५५ ॥

चिंतामणि मैं सब कुछ है।

सा० जिन में सब कुछ मो लिया, निरंजन का नांउं । (९-१३१)

काया मांहिं निज निर्धार, काया मांहिं अपरंपार ॥ ५६ ॥

निज स्वरूप जो अपार ब्रह्म है सो निराधार अपने ही थाप है किसी दूसरे के आसरे नहीं, यथा—

सा०-दादू मैं ही मेरे आसिरै, मैं मेरे आधार (४-२१२)

ऐसे अपने आत्म स्वरूप को काया के पर पदार्थों में से अधर को निर्धारण करले ।

कारन सूक्षम थूल देह अरु, पंच कोस इनहीं में जान ।
करि विवेक लखि आतम न्यारो, मुंज इषीका तें ज्यूं मान ॥
(विचारसागर पंचमस्तरंग)

धरिया की धीजां नहीं, ऐसा पाया नाका ।
निराकार आकार विवरजित, ताका सेवग राका ॥

काया मांहिं सेवा करै,

काया के अंदर परमेश्वर की सेवा करै ॥

सा०-मस्तकि मेरे पांव धरि, मंदिर मांहिं आव । (४—२७६)
तेज पुंज कौं विलसणां, मिलि खेलें इक ठांउं (४—२७४)
दादू भीतरि पैसि करि, घट के जड़े कपाट (४—२५६)
यहै गरीबी बंदगी, सेवा सिरजनहार । (३३—५)

काया मांहिं नीझर झरै ॥ ५७ ॥

नीझर ब्रह्म सीर (सोता) सदा झरै असंड ॥

सा०-घन बादल बिन बरषि है, नीझर नृमल धार । (४—११३)
ऐसा अचिरज देखिया, बिन बादल बरिषै मेह । (४—११४)

काया मांहिं बास करि, रहे निरंतर छाइ ॥ ५८ ॥

बास परमेश्वर के चरणों का ध्यान, निरंतरि अंतररहित ब्रह्म में लीन हो रहे ॥

दादू पाया आदि घर, सतगुर दिया दिषाइ ॥ ५६ ॥

आदि घर ब्रह्म स्थान सो सतगुर (परमेश्वर) की कृपा से पाया ॥

सा० दादू पहली घर किया, आदि हमारी ठौर । (२-६७)

॥ पद ३६२ ॥

काया माँहैं अनभै सार,

अनुभव सार साक्षात परमेश्वर का दर्शन ॥

सा० दादू जैसा ब्रह्म है, तैसी अनभै उपजी होइ । (२८-२०)

काया माँहैं करै विचार ॥ ६० ॥

परमेश्वर का चिंतवन रूप अखंड विचार सदैव करता रहे ॥

सा० दादू एक विचार सौं, सब थैं न्यारा होइ । (१८-१०)

सब तजि देषि विचारि करि, मेरा नांहीं कोइ । (४-१४१)

काया माँहैं उपजै ग्यांन,

ज्ञान परमेश्वर का ॥

सा०—आपै आप प्रकासिया, नृमल ग्यांन अनंत । (१७-६)

काया माँहैं लागै ध्यांन ॥ ६१ ॥

ध्यान अंतर्मुख वृत्ति द्वारा ब्रह्म में लय स्थिति ॥

सा०—मन इंद्री पसरै नहीं, अहनिसि एकै ध्यांन । (१८-३२)

काया माँहैं अमर अस्थांन,

अमर ब्रह्म सोई जीव की शांति और स्थिति का स्थान है, जिस को हृदय गुहा में अंतर्मुख वृत्ति द्वारा पा सकते हैं । अमर तत्त्व के निरंतर चिंतन से अमर पद मिलता है ॥

काया माँहैं आतमरांम ॥ ६२ ॥

आतमरांम परमेश्वर ॥

सा०—आत्म आसण रांम का, तहां बसै भगवांन । (४-१७६)
जहां रांम तहं संत जन, जहं साधू तहं रांम । (४—१=१)
जहं आतम तहं रांम है, सकल रह्या भरपूर । (७—२२)

काया मांहिं कला अनेक,

कला ब्रम्ह से आनंद कलोल ।

सा० सहज सरोवर आत्मा, हंसा करैं कलोल । (४-६१)

काया मांहिं करता एक ॥ ६३ ॥

हमारे कर्ता हर्ता एक परमेश्वर ही है ।

सा० दादू मेरे हृदै हरि बसै, दूजा नांही और । (=-२१)
दादू नारायन नैनां बसै, मन ही मोहन राइ । (=-२२)
कबीर रेष सिंदूर की, काजल दिया न जाइ ।
नैनौं रमइया रमि रह्या, दूजा कहां समाइ ॥

काया मांहिं लागे रंग,

रंग परमेश्वर की भक्ति ।

सा० जे जन हरि रंगि रंगे, सो रंग कदे न जाइ । (१५-४७)
दादू राता रांम का, अविनासी रंग मांहिं । (१५-४=)
साहिब की सो क्यूं मिटै, सुंदर सोभा रंग । १५-४६)

पद । रंग लागौ रे रांम कौ, सो रंग कदे न जाइ ।
हरि रंग मेरा मन रंगयो, और न रंग सुहाइ । (पद ४१५)

काया मांहिं सांई संग ॥ ६४ ॥

सांई परमेश्वर सदा जीव के संग है ॥

सा० मांए हमारा पीव सौं, यूं लागा सहिए । (४-३०३)

काया मांहिं सरवर तीर, काया मांहिं कोकिल कीर ॥ ६५ ॥

सरवर हृदय सोई तीर (तट) । कोकिल मनसा, कीर तोता रूपी मन ॥

काया मांहिं कछिव नैंन॥

कच्छप मन तिस के अंतर्मुख नैंन आत्म कंवल में ब्रम्ह ध्यान में स्थित।

काया मांहिं कुंजी बैंन॥ ६६ ॥

कुंजी सुरति, बैंन ब्रम्ह से विनती।

सा०—सुरति पुकारै सुंदरी, अगम अगोचर जाइ। (३०-७)

काया मांहिं कवल प्रकास, काया मांहिं मधुकर वास ॥ ६७ ॥

कवल प्रकास हृदय का प्रफुल्लित होना। मधुकर मन, सो ब्रह्मकी वास लेवै।

काया मांहिं नाद कुरंग ॥

नाद अनाहद शब्द, कुरंग शुद्ध अन्त करण

सा० अनहद है द्वै भांति कौ, सुनवो जुवो विचार।

जगनाथ असली हृदै, तत सुर भवनन द्वार।

काया मांहिं जोति पतंग॥ ६८ ॥

जोति ब्रह्मजोति, पतंग प्रकृति। पांच तत्वों की २५ प्रकृति इस भांति से कही हैं—

प्रथी प्रकीरति अस्थि मास तुचा नाड़ी केस।

आप प्रकीरति लाल अरु नीत, प्रस्वेद सुकल सनेवच जीति।

तेज प्रकीरति पुष्या प्यास, आलस निद्रा क्रोध अभ्यास।

वाइ प्रकीरति गात्रै ध्यावै, ग्यांन कथा अगोचरी पावै॥

अकास प्रकीरति माया मोह, लज्या करै राग अरु द्रोह।

पचीस प्रकीरति पांचू तत, भिंभि २ न्यारा यहु म्यंत॥

काया मांहिं चात्रिग मोर, काया मांहिं चंद चकोर ॥ ६९ ॥

चात्रिग (चातक) प्राण, मोर मन। चंद ज्ञान, चकोर चित्त॥

काया मांहिं प्रीति करि, काया मांहिं सनेह ॥७० ॥

सर्व ओर से मन को मोड़ कर परमेश्वर में प्रीति स्नेह॥

सा०—प्रीति जु मेरे पीव की, पैठी पिंजर मांहिं। (१-१३४)

काया माँहिं प्रेम रस ॥

प्रेम रस ब्रम्ह रस।

मैं अमली मतिवाला माता, प्रेम मगन मेरा मन राता ॥ टेक ॥

दादू गुर मुषि येह ॥ ७१ ॥

परमेश्वर का दर्शन भाव भक्ति प्रेम प्रीति काया का भेद, यह सब गुरू की कृपा से मिलते हैं ॥

सा०—दूरि देषि आराधते, करते आस उमेद।

म्यौपुर नेड़ा पाइया, जब छिद्या गुरमुषि भेद ॥

॥ पद ३६३ ॥

काया माँहिं तारणहार, काया माँहिं उतरे पार ॥ ७२ ॥

तारणहार परमेश्वर जिस पर कृपा करै सो तरै, काया के गुण बिकार जीति, संसारलाज कुल मरजादा तजि, जो भगवद् भजन करै सो पार उतरै।

सा०—दादू पोई आपणी, लज्या कुल की कार। (२३-३४)

काया माँहिं दूतर तारै, काया माँहिं आप उबारै ॥ ७३ ॥

दूतर संसार सागर, तिस के काम क्रोध लोभ मोह भयादि, इन से परमेश्वर तारै तौ जीव उबरै ॥

॥ पद १४ षपनांमी का। राग गौड़ी ॥

रांम उबारिया रे, ताकौं डर नांहि कोइ।

बहु बैरी पचि पचि गए, बाल न बंका होइ ॥ टेक ॥

प्रगट तीन्यू लोक में रे, साषि कहै सब साध।

जिन हरणांकुस मारियो उबारयो प्रहलाद ॥ १ ॥

है गै नरगैवर गुड्या, भारथ बहु बिस्तार।

अंडा अंतरि राषिया, टीटहड़ी का च्यारि ॥ २ ॥

जहं तहं भीड़ भगत कौं मार्या, तुम्ह बिन कोई नांहि।

पोषां पोई राषिया, लापा मोंहर मांहि ॥ ३ ॥

बाघा गऊ बिनासिया रे, नांमदेव पकड्या धार।

बाहरि आयौ बीठली, मुई जिवाई गाइ ॥ ४ ॥
बांध्या हाथ पाव परि बांध्या, चौकस कियौ सरीर ।
हाथी आगैं रालियौ, राख्यौ दास कबीर ॥ ५ ॥
अकबर मार बुलाइया, गुरदादू कौं आप ।
ग्यांन ध्यांन पूरा हुआ, रह्या नांव परताप ॥ ६ ॥
पावक सुनहां पारधी, फंद रोप्यौ ढूं लाइ ।
मृग नै मारग को नहीं, तब सुमिर्यौ रांमराइ ॥ ७ ॥
फंद जल्या सुनहां टल्या रे, पारधी मलै कर दूंण ।
गुण टूटां रष्या करी, तब मारण हारो कौंण ॥ ८ ॥
मंजारी सुत मेल्या रे, ऊपरि धरै अहाव ।
तिहि बासणि बपरां कहै, ताती लगी न बाव ॥ ९ ॥

पद-ओ रे भाई रांम दया नहिं करते ।
नौका नाव षेवट हरि आपै, यूं बिन क्यूं निसतरते । टेक ॥ पद १७ ॥

सा० चारि पहर मे जलिगई ।
होली अजहुं जरत है, जन गोपाल अग मांहि ।
प्रहलाद बच्यौ होली जरी, रही उर्भ रस रीति ।
रजब पेषि प्रबीनता, अग्नि न करी अनीति ॥
विषम बार हरि चढे, धाए आए धांम ।
जल मांहि जल रूप ह्वै, रजब रषे रांम ॥

काया मांहिं दूतर तिरे,

दूतर संसार सागर, तिस के माया ममत्व हरि के प्रताप से छूटे ॥

रमैणी-सिरजनहार नांव धूं तेरा, भौ सागर तरिवे कौं बेरा ।
जे यहु बेरा रांम न करता, तौ आप आप आवटि जग मरता ॥
रांम गुसांई मेहरि जु कीन्हीं, बेरा साजि संत कौं दीन्हीं ।
दुष षंडन मही मंडणां, भक्ति मुक्ति विश्रांम ॥
विधि करि बेरा साजिया, धर्यौ परथा रांम का नांउं ।

काया माँहिं होइ उधरे ॥ ७४ ॥

मनुष्य देह पाई, परमेश्वर में रत होकर पार हुये। मनुष्य देह मुक्ति क्षेत्र है ॥

काया माँहिं निपजे आइ, काया माँहिं रहे समाइ ॥ ७५ ॥

बाह्य दृश्यों से मन निवृत्त होकर जब अंतर्मुख वृत्ति हुई तब काया में निपजे (संसार के झगड़ों से छूटे) और आत्मानंद में मग्न हो बैठे ॥

काया माँहिं षुले कपाट, काया माँहिं निरंजन हाट ॥ ७६ ॥

कर्म कपाट (बंधन) दूर हुये। माया (अंजन) रहित निरंजन हाट रूपी परम तत्व, सो हृदय गुहा में शुद्ध बुद्धि द्वारा पाया।

सा० पांच तत के पांच हैं, आठ तत के आठ (४-५१)

गंम नांम की वणिजण बैठे, ताँथें मांड्या हाट (१३-१७६)

काया माँहिं है दीदार, काया माँहिं देषणहार ॥ ७७ ॥

दीदार ब्रह्म का, तिस को देखने वाला प्राणी।

सा० दादू देषि देषि सुमिरण करे, देषि देषि लै लीन (४-१५०)

दादू बिगसि बिगसि दरसन करे, पुलकि पुलकि रस पांन। (४-१४६)

काया माँहिं राम रंगि राते, काया माँहिं प्रेम रस माते ॥ ७८ ॥

राम रंग आत्म रंग, जिस को देख कर और सब दृश्य फीके लगते हैं, सो अद्भुत रंग अंतर्मुख ध्यान में दिखाइ देता है, उस की शोभा लिखने में नहीं आती। इंद्र धनुष के रंग, हीरा लाल जवाहिरों की चमकें, बिजली का प्रकाश, यह सब उस के नीचे हैं। ऐसे राम रंग को काया में पाकर संत आत्मा में रत होजाते हैं और उसका प्रेमरस पीकर आनंद में मग्न रहते हैं ॥

सा०—दादू माता प्रेम का, रस में रह्या समाइ। (४-३१५)

पीया तेता सुष भया, बाकी बहु बैराग। (४-३१६)

काया माँहिं अविचल भये, काया माँहिं निहचल रहे। ७९ ॥

अबिचल स्थिर हुये, चिंता मिटी निश्चिंत हुये। मन मनसा शांत हुई ॥

सा०—हरि च्यंतामणि च्यंततां, च्यंता चित की जाइ । (४-२६)

जब अंतरि उरभया एक सूं, तब थाके सकल उपाइ । (१०-१७)

दादू कउवा बोहिथ बैसि करि, मंभि समंदां जाइ । (१०—१८)

काया मांहें जीवै जीव,

जीवता वह जीव है जो अपने आत्मा की संभाल रखता है ॥

जीवत जीये, मुये भी जीये, दादू रांम निवासा ॥ पद ३०७ ॥

सा०—कबीर सुमिरण सार है, और सकल जंजाल ।

आदि अंति सब सोधिया, दूजा देषौं काल ॥

काया मांहें पाया पीव ॥ ८० ॥

पीव परमेश्वर

पद—ये मन मेरा पीव सूं, औरनि सूं नांहीं ।

पिव बिन पलहि न जीव सूं, येह उपजै मांहीं ॥ पद ३२१ ॥

काया मांहें सदा अनंद, काया मांहें परमानंद ॥ ८१ ॥

सच्चिदानंद ब्रह्म से भिन्न कोई वस्तु है नहीं, एक आनन्द रूप ब्रह्म ही सर्वत्र है। सतगुर की कृपा जिस पर हो सो संपूर्ण भ्रम रूपी दुःखों से छूट कर केवल आनंद को ही अनुभव करे, नित्य आनन्द के उत्साह में जय जयकार परमानन्द में प्रफुल्लित रहे ।

सा०—जब निराधार मन रह गया, आतम के आनन्द । (१६—२१)

काया मांहें कुसल है,

कुशल क्षेम हुए जब द्वंद्व से मन रहित हुआ ।

सा०-इक राजी आनन्द है, नग्री निहचल बास । (१२—३४)

सो हम देष्या आइ ॥ ८२ ॥

सो ब्रह्म देखा जब बाह्य विषयों से वृत्ति समेट कर अंतर्ध्यान हुए ॥

सा०—दादू अर्ध्यूं पसरा के पिरी, भरे उलर्थूं मंभ । (७—१६)

दादू गुरमुषि पाइए,

शील संतोष परमेश्वर का दर्शन काया का भेद नेम ज्ञान ध्यान सब गुरु से मिलते हैं यथा—

पद—ऐ ऐसा ग्यांन ध्यांन गुर बिनां क्यूं पावै।
वार पार पारवार दुतर तिरि आवै हो॥ पद २६५ ॥

साध कहैं समझाइ ॥ ८३ ॥

पूर्वोक्त प्रकार से संत जन समझा कर कहते हैं॥

॥ पद ३६४ ॥

काया मांहैं देख्या नूर,

सा०—दादू अलष अल्लाह का, कहु कैसा है नूर। (४-१०३)
नूर नूर अव्वलि आषिर नूर॥ पद २३८॥
नूर रह्या भरपूर, अमीरस पीजिये॥ पद २६०॥

काया मांहैं रह्या भरपूर ॥ ८४ ॥

ब्रह्म की काया में नखशिख रोम रोम में भरपूर पाया।
सा०-जहं आतम तहं राम है, सकल रह्या भरपूर। (४-१८)

काया मांहैं पाया तेज,

ब्रह्म तेज जो हीरों के जड़ाव से भी चमकीला है सो संतों ने ब्रह्म परिचय में साक्षात देखा।

सा० ज्यूं रवि एक प्रकास है, ऐसैं सकल भर पूर। (४-८६)
दादू हीरे हीरे तेज के, सो निरषे त्रिय लोइ। (४-६७)
नैंनहुं वाला निरषि करि, दादू घालै हाथ। (४-१६)
नैंनहुं बिन सूझै नहीं, भूला कतहूं जाइ। (४-३७)

काया मांहैं सुंदर सेज ॥ ८५ ॥

सुंदर शोभनीय परमेश्वर, सेज हृदय, अथवा निर्मल भाव सोई सुंदर सेज है॥

काया मांहैं पुंजप्रकास, काया मांहैं सदा उजास ॥ ८६ ॥

पुंज अति भारी प्रकाश ब्रह्म का काया में देखा। सो उजास नित्य अविनाशी है, जिस के प्रभाव से सब प्रकाश प्रतीत होते हैं॥

काया माँहें झिलिमिलि सारा,

झिलमिलाट ब्रम्ह जोति का सार रूप देखा ॥

सा०-दादू नैंनूं आगैं देषिए, आतम अंतरि सोइ । (४-६६)

काया माँहें सब थैं न्यारा ॥ ८७ ॥

देह गुणों से ब्रह्म न्यारा है ॥

सा०-रहै निराला सब करै, काहू लिपत न होइ । (२१-३०)

करम नहीं सब कुछ करै, यूं कलि धरी बनाइ । (२१-२१)

काया माँहें जोति अनंत,

अनंत जिस का अंत नहीं ऐसी अपार जोति ॥

काया माँहें सदा वसंत ॥ ८८ ॥

सदा आनंद उत्साह ब्रम्ह का सुख ॥

सा०-दादू रंग भरि षेलौं पीव सौं, तहं बारह मास बसंत । (४-६)

काया माँहें पेले फाग,

फाग ब्रम्ह से प्रीति ॥

जोति अपार अनंता, षेलैं फाग बसंता ॥ पद ६७ ॥

अषंड जोति तहं भयौ प्रकास, फाग बसंत जो बारह मास ॥पद ४०६॥

काया माँहें सब बन बाग ॥ ८९ ॥

बन रोम रोम, बाग ब्रह्म से बनाव ।

काया माँहें पेले रास, काया माँहें बिविध बिलास ॥ ९० ॥

रास आतमविलास, विविध नाना प्रकार के विलास सुख, बहुविधि भाव जैसे संत हंस, मोती दर्शन, संत मीन, नीर रामनाम, संत भंवर, ब्रह्म कमल, इस प्रकार के विविध विलास काया में माने हैं ॥

सा०—नांनां बिधि पिया राम रस, केती भांति अनेक । (४-३३९)

काया माँहें बाजें बाजे, काया माँहें नाद धुनि साजे ॥ ९१ ॥

बाजे अखंड ध्वनि, रोम रोम में "तूंही तूंही" सदा । नाद धुनि साजे अनाहद शब्द में ध्यान लगा ॥

सा०-रोम रोम लै लाइ पुनि, मैं सदा अपंद । (२६—१४)

काया माँहिं सेज सुहाग, काया माँहिं मोटे भाग ॥ ६२ ॥

सेज हृदय, सुहाग दर्शन का सुख । मोटे भाग बड़े भाग मे परमेश्वर मिला, साँझ सुफल हुई ॥

मेरा मन के मनमां मन लागा ॥ पद ३२६ ॥

काया माँहिं मंगल चार,

चतुष्टय अंतः करण आनंदित हुये ॥

सा०-अगस परस मिलि षेलिए, तब सुष आनंद होइ । (४-२७५)

काया माँहिं जैं जैं कार ॥ ६३ ॥

जय जय ब्रह्म राम सदा आनंद ॥

काया माँहिं अगम अगाध,

काया की साँज अगम अगाध है, भाव भक्ति अगम अगाध है, तैसे ही ब्रह्म जोति अगम अगाध है ॥

काया माँहिं बाजैं तूर ॥ ६४ ॥

तूर अनाहद शब्द अखंड ॥

दादू परगट पीव मिल्या, गुर मुषि रहे समाइ ॥ ६५ ॥

पीव परमेश्वर सो कृपा कर प्रत्यक्ष मिला, जिस की प्राप्ति से सर्व शोक मोह दुःख दर्द शारीरिक मानसिक विकार निवृत्त हुये, ऐसा आनंदमय पद गुरू वाक्यों में शुद्ध भक्ति ध्यान और योग से पाया, तिस में निश्चिंत मग्न और लयलीन हो बैठे ॥

॥ इति श्री कायावेली ग्रंथ सम्पूर्ण समाप्त ॥

इति श्री स्वामी दादूदयालजी की कित संपूर्ण समाप्त ॥

अंग समस्त ३७ । साषी समस्त २६५८ । राग समस्त २७ ।

सबद समस्त ४४५ ॥

श्री स्वामी दादूदयाल की वाणी की विषय अनुक्रमणिका ॥

कठिन शब्दों का कोष (भावार्थ)

फ़ारसी, फ़ा० ॥ सिंधी, सिं० ॥ गुजराती, गु० ॥ पंजाबी, पं० ॥ मराठी, म० ॥ जयपुरी, जै० ॥

जो अंक किसी २ शब्द के पीछे लगे हैं सो उस अंग और साखी का नम्बर अथवा पद का नम्बर बताते हैं, जिस में वह शब्द बाणी में मिलता है। प्रत्येक शब्द के पते आरंभ से नहीं रक्खे गये इस कारण से यह हवाले सर्वत्र नहीं लगे हैं।

अ

अंथे. गु० इस से।
ऐन, फ़ा० साक्षात्, केवल, ठीक वही
अंग, स्वरूप, आकार, विषय, विभाग।
अंगि न माइ, जै० अंग में न समाय, अति हर्षित होय।
अंचतां, जै० पीते ही।
अंचवै, जै० पीवै।
अंजन, माया। (शब्द १६१)
अंत, जै० अन्य, अंतरे पर, दूर।
अंतर, फ़र्क़, भेद, अंदर, भीतर, अंतरा, फ़ासला।
अंतरवेद, देश विशेष. हृदय गुफा। (शब्द ४०७)
अंदेह, जै० सन्देह।
अंबर, आकाश।
अकल, अकाल, अमर, कला से रहित (शब्द ४३७)
अकह, जिसको कह न सकें।
अकारथ, व्यर्थ।
अगह, जो ग्रहण न हो सके।
अगाध, अपार, अनंत।
अगोच, अगोचर, मन वाणी से रहित, अदृश्य, अलक्ष।
अछोप अशौच। पद ३१२।
अजब, फ़ा० अद्भुत।
अज्या. जै० बकरा।
अजर, जरा से रहित. अमीरस
अजगवर, अमर।
अजहूं, जै० अब भी।
अज़ीज़, फ़ा० प्यारा।
अठे, जै० आठों. अष्ट।
अणकीया, जै० बिना किया।
अणवंछित, जै० बिन मांगा।
अतीत, जुदा, गुणों से परे, गुणातीत
अथग, अथाह।
अधर, निराधार, बिना सहारे।

अधौड़ी, कच्चा चमड़ा।
अनत, बै अन्यत्र; दूसरी जगह।
अनमई, विपरीति भाव (शब्द २११)
अनमै, अनुभव, विवेक, प्रत्यक्ष ज्ञान, ब्रह्मज्ञान (४—२०५) (८—२०८)
अनल, पक्षी विशेष जिस में ७ हाथियों को उड़ाले जाने की शक्ति मानते हैं। (१४—१८)
अनिनि, अनन्य, अद्वैत, एक।
अनुदिन, नित्यप्रति, प्रतिदिन, रोज २।
अनेरे, दूर।
अपरछन, छिपा।
अपरम्पग, अपरम्पार, वार पार रहित।
अपवाद, निंदा, बुराई, विद्यमान दोषों का कथन।
अपूठे, जै० पीछे।
अबदाल, फा० एक प्रकार की मिट्टी, करामात, चमत्कार।
अबिर्था, व्यर्थ।
अबिहड़, जै० अभेद, जिससे अलग न हो, जो बिछुड़े नहीं।
अबुझ, जै० अज्ञानी, बे समझ।
अभेद, जिस का मर्म न मिलै, भेद रहित
अभेव, जिस का स्वभाव न जाना जाय।
अम्हचा, म० हमारा, अपना।
अमरकंद, मोक्ष।
अमरापुरी, देवलोक, स्वर्ग।
अमल, फा० कर्म, जै० नशा, अफीम
अमली, नशेबाज़।
अमी, अमृत।
अया, जै० ऐसी। १८-२२।
अयान, जै० अज्ञान, अज्ञानी।
अरचा, पूजा, सेवा, आराधना।
अरदास, जै० बिनती, प्रार्थना।
अरवाह, फा० जीवात्मा, रूहें।
अर्श, फा० आसमान से ऊपर सब से उत्तम स्थान।
अरसपरस, परस्पर, आपस में, आमने सामने।
अरूझना, जै० उलझना।
अलष, अलख, जो किसी का विषय न हो जो लखा न जाय।
अलह, परमात्मा जो लखा न जाय,
अलेष, जो किसी का विषय न हो।
अवनार, गु० जन्म, यह देह।
अवधूत, निर्लेप, मन वासना त्यागी।
अवलम्बन, आसरा, आश्रय, आस।
अवाज, फा० शब्द
अवाह, कुम्हार का आवा।
अविगत, अपार, अगोचर, अलह, अगम अप्राप्य।
अषई, जै० आशा, सर्वस्व, सम्पूर्ण, (शब्द १०)।
अषय, अक्षय, अविनाशी।
अष्यर, अषिर, जै० अक्षर, हर्फ़।
अषिल, समस्त, सारा, सब

अर्पित, एकमय, अमित्त, सम्पूर्ण, अमर।
अघूट, जै० अनंत, अटूट।
अस्त, जै० अस्थि हड्डी।
अस्नाव, फ़ा० आशनां, प्यारी।
अहि, दिन, अहिनिशि।
अहेड़ी. जै० व्याध, शिकारी।

आ।

आंगण, जै० सहन, मैदान।
आंधी, जै० अंधी, नेत्रहीन, ग्राम विशेष।
आंसूड़े, गु० आंसू।
आगम, वेद, रामनाम, ग्रन्थ(शब्द३५६)
आचारी, आचारवान।
आड़ा, जै० आड़ में, बीच में, परदेकी तरह।
आतुर, अधीर, जल्दबाज़, दुखी।
आथि, जै० थैली, अर्थ।
आदिअनादि, उत्पत्ति रहित।
आन, आज्ञा, अन्य, दूसरा।
आपे, गु० दे, देवे।
आयुध, आवध, शस्त्र, हथियार।
आरंभ, नया काम, शुरू, लगा।
आरथि, रणभूमि।
आरति, दीप दर्शावन, पूजा, चाह।
आवटकूटा, जन्म मरणादि १३-३८, १३-१४५।
आपयहार, पं० कहने वाला।
आसंघ, जै०, हिम्मत, श्राह १६-१७

इ।

इक, जै० एक।
इकलस, जै० लगातार, एकरस।
इत्थां. पं० यहां, (शब्द १०१)
इथां, सिं० इस जगह, यहां।
इबादत, फा० पूजा।
इमान, फा० धर्म, विश्वास, निश्चय।
इमाम, फा० नमाज़ियों में मुखिया।
इलाही, फ़ा० ईश्वर।
इश्क, फ़ा० प्रेम, भक्ति।
इख़लास, फ़ा० मित्रता, दोस्ती।
इह, जै० यह।

ई।

ईयें, जै० ऐसे (१८-५)

उ।

उजल, जै० स्वच्छ, उज्वल।
उजाल, उजेला, प्रकाश।
उजास, जै० उजियाला, प्रकाश, ज्ञान।
उणहार, आकार, सदृश, डौल, रूप, गुण।
उत्थों, पं० ऊपर से।
उत्थां, पं० वहां (शब्द १०१)।
उतावला, जै० जल्दी।
उदक, जल।
उदमद, उन्मत्त, मस्त।
उदिम, जै० उद्यम, रोज़गार।
उदोत, प्रकाश।
उधरनहार, बचाने वाला।

उधारि, गु० छुड़ाय, बचाय।
उधारो, उद्धार कर।
उनमत, उनमुन, लयलीन, शांत, विषय विरक्तता, चुपचाप।
उनहार, जै० डौल, रूप, गुण, आकार, सदृश।
उपगार, उपकार, भलाई।
उपज, जै० उत्पत्ति।
उपजणि, जै० उत्पन्न होना, उपजना
उपने, जै० उपजै।
उपांपौ जै० सृष्टि, उत्पत्ति।
उपाय, जै० उत्पन्न करके।
उबारना, उद्धार करना।
उमंग, उत्साह, लहर, तरंग।
उर, हृदय।
उरझाय, उलझाय, फंसकर।
उरवार, उरला, समीप का किनारा।
उरिण, कर्ज़ से रहित।
उरे, पं० इस ओर, नज़दीक।
उरै, जै० समीप।
उलथी, उलटिकर।

ऊ।

ऊंधे, जै० उलटे, नीचे मुख।
ऊणां, जै० किंचित्, खाली।
ऊभरना, मुक्तहोना, उद्धरना।
ऊनवै, गु० गर्मी से उमसे (१२-१६)
ऊपली, जै० ऊपरली, ऊपर की, दिखावटी।
ऊबरना, उबरना, बचना, छूटना, जीते रहना, उद्धरना।
ऊभा, जै० खड़ा।
ऊरा, कम, अपूरा।

ए

एकंकार, एकरूप।
एकजवार, जै० एकबार।
एकमेक, एकरस।
एणां, गु० इस से।
एता, जै० इतना।
एव्हा, गु० इस प्रकार।
एहों, गु० इन को

ऐ।

ऐन, मत्यक्ष, तद्रूप।

ओ

ओट, आसरा, छाया।
ओडी, सिं० तह।
ओर, किनारा, ओर छोर।

औ

औघट, कठिन।
औजूद, फा० शरीर, वजूद।
औधूत, निर्लेप, मन वासनात्यागी।
औलिया, फा० सिद्ध, पहुंचे महात्मा।
औसांग, अवसर।

क

कंगुरेला, कंगूरे दार।
कंगूरा, बुर्ज की चोटी।
कंथा, गुदड़ी, फकीरी कपड़ा।
कंदरनि, गुफा में।

कंध, जै० कंधा, दीवार।
कंप, सोने का मैल।
कछव, जै० कछुआ, कच्छप।
कज़ा, फ़ा० मौत।
कड़वा, जै० सड़वा, चलने की तैयारी।
कण, जै० दाना, बीज।
कणूका, जै० कणां, छोटा टुकड़ा, दाना।
कत, जै० कहां।
कतरंजन, कुत्सितरंजन, झूठा सुख देने वाला। १२-४६।
कतेब, जै० किताब, पुस्तक।
कथणी, जै० बात चीत।
कद, जै० कब।
कदे, जै० कभी।
कनक, सोना।
कने, जै० समीप, पास।
कपाट किवाड़।
कपोल, गाल।
कपड़े कापड़ी, कफनी आदि कपड़ों के भेख धारी। पद १६८
कम्म, पं० सिं० काम, कार्य,।
करंक, सूखी खाल, चमड़ी। ३-१३६
करक, साल, पीड़ा।
करणी, जै० कर्म, कर्तूत।
करणीगर, जै० सिरजनहार, ईश्वर।
कर्तुम, बनाहुआ, जीव।
करद, पं० जै० छुरी।
करवत, आरा।
करह, जै० ऊंट।
करामात, चमत्कार, सिद्धि।
करीम, फ़ा० दयालु, ईश्वर।
कलमा, फ़ा० मुसलमानों का महावाक्य।
कलश, घड़ा।
कला, माया।
कलाप, दुख।
कलाल, सुरा बेचनेवाला।
कलाली जै० दारू, शराब, आसव।
कलूब, सिं० हृदय, (शब्द ६०)।
कविलास, जै० कैलाश।
कस, जै० किसको।
कसणी जै० कसौटी परीक्षा।
कसमल, पाप।
कसीस, जै० ज़ोर से।
कसुंम, जै० कुसुम।
कसौटी, परीक्षा, दुःख, आजमाइश।
कांइ, जै० क्या।
कांजी, जै० सूक्त, राइ मट्ठा आदि मिला कर बसाई हुई खटाई, रायता। (१५ ६७)
काछ्या, जै० कमर कसी, बनाया।
काछि, जै० कमर बांध के।
काज़ी, फ़ा० न्यायाधीश।
काट, जै० लोहे का मैल, काई।
काठ, लकड़ी।
काणि, जै० खोट, कसर १५-१०२।
कांणी, जै० एक मांस रहित, छिद्र वाली वस्तु।

कादिरकार फा० परमेश्वर (शब्द ९२)
काये गु० काहे ।
काफ, मूठ ।
कामणिगारी, गु० यंत्र मंत्र करने वाली, मोहने वाली स्त्री ।
कार, जै० काम, कार्य, लीक, मर्यादा ।
कारवाँ, मुसाफ़िर, पथिक, यात्री ।
कारिज, जै० कार्य, काम ।
कारी, रक्षा ।
कालर, जै० ऊसर, बंजर, खार भूमि ।
कालीधार बूहै, जै० सर्व प्रकार से नाश हो जावे ।
कासन, जै० किससे, किसको ।
कित्या, पं० कहां ।
किरका, जै० लेश, किंचित ।
कीट, लकड़ी का कीड़ा ।
कीडी, पं० जै० चींटी ।
कीला, क्रीड़ा, खेल ।
कुंज, पक्षी विशेष—कहते हैं कि यह हिमालय पर अंडे देकर दक्षिण देश में जा रहती है, सुरति से अपने बच्चों को पालती है । यदि वह आप मर जाय, तो बच्चे पलैं नहीं, यदि बच्चे मर जांय तो वह पक्षी भी मृत्यु को प्राप्त होता है (शब्द ३७६)॥
कुंज, फा० कोना (शब्द २१) ।
कुंजर, हाथी ।
कुनंद, फा० वे करते हैं ।
कुफ़र, फा० झूठ ।
कुरंग, हिरन ।
कुरबांन, देव के आगे चढ़ावा ।
कुरलना, रोना ।
कुल, जाति ।
कुली, कुलीन जातिवाले (शब्द १२) ।
कूं, जै० को ।
कूकर, कुत्ता, श्वान ।
कूड, प०, झूठ ।
कूड़ा, पं०, झूठा ।
कूल, किनारा, तट, तीर ।
कूडो, गु० झूठ ।
कृतम, कर्म, बनाया हुआ, कपटी, किया हुआ ।
कृतम कर्त्ता, जै० मूर्ति अथवा अन्य बनाई वस्तु में कर्त्ता पने (ईश्वरत्व) का अध्यास ।
कृत्यम, कर्म, कर्तूत ।
केई, जै० बहुत से, कई ।
केतक, जै० कितने, कोई ।
केते, जै० कितने ।
केने, गु० किसको ।
केम, गु० किस तरह ।
केवी गु० किस तरह ।
केसरी, जै० सिंह ।
कै, जै० वा, या, के, अथवा ।
को, जै० का, कोई ।

कोतिल, जै० घोड़े के सवार के साथ दूसरा खाली घोड़ा। १७–२५
कोरा, नवा, टटका।
कोली, कोरी, कपड़ा बुननेवाला। पद २११
कौं, जै० को।
कौड़ा, पं० कड़वा।
कौतिग, जै० कौतुक, तमाशा, परिहास
कौतिगहार, कौतुकहारा, तमाश बीन
क्योर, गु० कब।
क्यूहीं, जै० किस विधि।

ग

गइला, गु० गया।
गंगा, दहनी नाड़ी, पिंगला स्वर, देखो पृष्ठ ५९६।
गंध, बास, बू।
गगन, आकाश।
गजीना, गर्जी, कनड़ा।
गड़, गु० गाढ़ा, कठिन।
गमि, पहुंच, प्रवेश, प्राप्ति।
ग़र्क, फ़ा० डूबना।
गरथ, गु० अर्थ, धन, रोकड़।
गरवा, जै० महान, भारी, श्रेष्ठ।
गरास, जै० ग्रास, निवाला।
गर्ब्यो, जै० गर्व किया।
गल, जै० गला, गर्दन।
गल, पं० बात।
गलित, जै० रत, लयलीन।
गली, रास्ता।
गलियार, गरियार, मक्कार, ढीला, सुस्त।
गळै विलै, जै० मलकर एक होजाना, मिलना, मेटना, ४—१६।
गवन, गमन, आना जाना।
गहगही, जै० ग्रहण, पकड़।
गहण, ग्रहण, १२–५६।
गहन, गूढ़।
गहना, ग्रहण करना।
गहर, गाढ़ी।
गहिला, जै० पागल, भोला, मूर्ख। २१-४७
गांजी, जै० घी, घृत (४–१५१)
ग़ाफ़िल, फ़ा० अचेत, बेहोश।
गार, जै० मिट्टी।
गारड़ी, जै० विष उतारने वाला, गारूडी।
गारवा, जै० गर्व करना।
गालौं, जै० गलाऊं।
गाहन, मथन, शोधन, गोता लगाना।
गियांनी, ज्ञानी।
गिरास, ग्रास, मुख का कौर। २४–५
गिरासना, खाना।
गिलना, ग्रास करना, निगलना। १२–५६
गुज़ारना, फ़ा० अर्ज़ करना।

गुन, जै० गुण, गूढ़, गुप्त।
गुडी, गुड्डी, पतंग।
गुदर, गुज़र, प्रवेश (शब्द २४)
गुनहीं, जै० गुनहगार, अपराधी।
गुमराह, फ़ा० रास्ता भूला हुआ, बेईमान।
गुरुवी, जै० बड़ाई, बड़प्पन।
गुरुवाइक, जै० गुरू वाक्य।
गुसल, फ़ा० स्नान।
गैब, फ़ा०अचानक,अनजान,गुप्त। १–२
गैला, जै० पागल, मूर्ख, भोला।
गो, फ़ा० गेंद।
गोता, फ़ा० डुबकी।
गोप, छिपा कर।
गोर, फ़ा० क़बर। २३–५५
गोहन, नज़दीकी, सम्बन्धी।
गोशमाल, फ़ा० कान कसौटी, निरोध।
गोश्त ख़ुरदन, फ़ा० मांसाहार।

घ

घट, शरीर, घड़ा, जीव।
घन, जै० हथौड़ा।
घनेरी, जै० बहुत, अधिक।
घण्, जै० बहुत।
घरी, घड़ी, समय, घर में।
घाट, किनारा, सांचा, डौल।
घाय, जै० चोट।

घायां, जै० हथौड़े की चोट से।
घावर, (शब्द २११)

च

चंच, जै० चोंच।
चकचाल, जै० अनादर, हुलना।
चरचना, चंदन लगाना।
चरख, गु० दीर्घकाल (जैसे चिरंजीव)
चरणतना = दीर्घकाल (पद१०)
चरख विलंब (पद १२८)
चरण लगाव (पद ४०६)
चल्या, जै० चला।
चवे, जै० चुवे, झरे।
चहुँटै, जै० चिपके, लगे।
चा, म० का।
चालना, जै० चलना।
चाह, जै० इच्छा, चाह।
चाहनी, गु० इच्छावान।
चिंतामणी, एक मणि जो सब
मांगा पदार्थ देती है, ब्रह्म।
चितावणी, जै० चेताने वाली, सावधान
करने वाली।
चिराकी, चांदनी, जोति।
चिलका, जै० चमकारा।
चिहन, जै० दिखावा, चैन १२–७४।
चिहर, जै० अद्भुत, चमकीली।
१२–८२
चुगना, जै० चुनना जैसे चोंच से।
चे, फ़ा० क्या।

चेतना, स्मृति, ध्यान, स्फुरना।
चौड़े, जै० खुले, मैदान में।

छ

छांटा, जै० बूंद, छींटा, विट्टी।
छांवरि, जै० निछावर, कुरबान।
छाके, जै० छके, अघाये, त्रप्त।
छाजन, वस्त्र, कपड़े।
छाजना, शोभना।
छाना, जै० छिपा, दबा, ढका।
छाने, जै० छिपकर।
छिटकना, जै० छूटना, बिखरना।
छिटकाना, जै० फेंकना, छिड़कना, डालना, त्यागना।
छिनाछिन, छिन्न भिन्न, टुकड़े टुकड़े, (३-४०)।
छीजना, जै० क्षय होना, घटना।
छीलर, जै० तलैया, पोखर, उथली झील।
छूटणा, जै० छोड़ना।
छूटि, जै० सिवाय।
छूटिक, गु० छुटकारा, बचाव।
छेली, जै० बकरी। ४-३४७।
छेलो, गु० आखिरी, अंतिम।
छेव, जै० अंत।
छो, सिं० क्या, (४-२२)।
छोटको, गु० छुटकारा, मुक्ति।
छोति, जै० छूति, अपवित्रता।

ज

जंगम, भेषधारी साधू, चलनहार सृष्टि।

जक, जै० चैन, आराम, शांति। ३-४७
जगाना, बोध करना, ज्ञान देना।
जगिरहे, जै० जगिरहे, जग में रहे।
जठर, पेट, उदर।
जबराईल, फा० फ़रिश्ता, गण।
जमजौरा, काल का रस्सा (२६-१२)
जमना, बांया स्वास, ईड़ा नाड़ी, देखो पृष्ठ ५५६।
जमात, फ़ा० मंडली, सभा, गिरोह। ४-२२१।
जरणां, गु० रसता, मन में धारण करना, पचाना, शांति, क्षमा, सहन करना। ५-३३
जरवूं, गु० पचना, हज़म होना मिलजाना।
जरै, धारण करै, गुप्त रक्खै, पचाले, सहारै। ५-२१।
जलदल, जै० ठाकुरजी का चरणामृत। १९-२९
जलहर, जै० जलमयी, तरावट (पद ३१३)।
जलहरि, मछली, मीन।
जलाव्यंब, जलाकाश। ४-८३।
जलका रूप जो पानी के भीतर नेत्र खोलने से दीखता है।
जवासा, घास विशेष।
जांनां, फ़ा० प्यारी।
जाचंद, जै० जन्म बंध। १२-४३
जाचना, जै० याचना, मांगना।

जाजरा, जै० कमजोर, फटा, तड़का ।
जाणराइ, जै० जानने वाला, जनैया ।
जाता, सिं० ज्ञात, जाना हुआ ३१—७
ज़ाती, फ़ा० जो अपने आप हो, कुदरती ।
जान, जै० जवान, बलवान ।
जाम, गु० पहर ।
जामण, जै० जन्मना ।
जामै, जै० जन्मै, उगै ।
जारै, पचावै, धारण करै, गुप्त रक्खै, पचाले, सहारै । ५-१२
जाशे, गु० जायगा ।
जिंद, पं० जान, (पद १०१)
जियें, जै० जिस तरह, जैसे ।
जित्थां, पं० जहां । पद १०१ ।
जिनि, नहीं, न, मत ।
जियरे, जै० मनमें, चित्त में । ३-४७
जीवन मूरी, सजीवन जड़ी, राम नाम,
जीव्यांनो, गु० जीने का ।
जीवाड़, गु० जिवाये ।
जुगत, जै० चतुराई, युक्ति ।
जे, जै० जो, यदि. अगर ।
जेटला, गु० जितना ।
जेथें, जै० जिस से, जिस तरह ।
जेरौ, सिं० उजियारा, प्रकाश ।
जोइ, गु० देख ।
जोई, गु० देखकर
जोगना, जोड़ना, मिलना, लगाना ।
जोतिग, जै० ज्योतिष ।
जोवबुं, गु० देखना ।
जौरा, रस्सा । २६-१२ ।
ज्यां, गु० जहां ।

झ

झंपना, जै० झांकना । २५-७०
झंग, सिं० झगड़ा ।
झंपना, सिं० झपटना ।
झंपै, सिं० झांकै, देखै ।
झरणां, जै० निकाल देने वाला, बहा-देने वाला । ५-१७
झांई, जै० छांही ।
झाल, जै० अग्नि की ज्वाला, लपट ।
झिलिमिलि, चमक ।
झुकेड़े, जै० झोटे, झूलने ।
झुरना, नीचे सरकना, सूखना ।
झूझना, जूझना, घायल होना, समर में मरना । २४-५३, ६४ ।

ट

टग, टगाटगी, एकतार, एकरूप, एकटुक, टिक टिकी । स्थपलीन । ४-२३ ।
टाला, बहाना ।
टीका, तिलक ।
टुक, थोड़ा ।

टूका, जै० टुकड़ा रोटी का। ११-२७
टेव, आदत, बान।
टोटा, घाटा।

ठ

ठरूं, गु० शांति पाऊं, ठहरूं।
ठांवड़ा, जै० बर्तन, शरीर।
ठाम, जै० ठांव, ठिकाना।
ठाली, जै० खाली।
ठाहर, जै० ठिकाना, जगह, बदन। स्थान।
ठूंगाना, जै० निगलना, खाना।
ठेल्ना, जै० ठोकर मारना।

ड

डग, फलांग।
डगरा, रास्ता, चलन।
डफाण, जै० दंभ, तूफान। २५-७१
डहकावै, जै० बिगाड़ै, बहकावै।
डांव, जै० दांव, मौका।
डांवाडोल, ठिकाने नहीं, चलता फिरता
डाकना, जै० कूदना।
डुपैडे, सिं० दुख।
डूंडा, जै० डूंगा, छोटी नौका।
डेना, सिं० देना।
डोरी, रस्सी।

ढ

ढाली, जै० डाली।
ढिग, जै० पास, समीप। १२-८३,
ढीट, कठोर, निर्लज्ज।
ढौरी, चींग चाह, (१२-८३, शब्द७६)

त

तख्त रवाणी, सिं० परमेश्वर का सिंहासन।
तणों, गु० का (शब्द १७८)।
तत, तत्व, सार।
तनहा, फा० अकेला।
तपि, गर्मी।
तरवर, वृक्ष, पेड़, पौदा।
तसबी, फा० माला। ४-२३०।
ताज, फा० सिरका भूषण, मुकुट।
ताजणां, जै० चाबुक। १-१३६।
ताजी, जै० घोड़ा।
ताजीर, फा० सजा, दंड, ताड़ना।
ताता, जै० गरम, तप्त।
ताड़ीजे, गु० धमकाइये।
ताणी, गु० ताणवुं, खींचना।
तार, गु० उतार।
तारा, गु० तेरा।
तारिक, तरक करने वाला, छोड़ानेवाला, तारने वाला। ३-६५।
तारो, गु० तेरा।
तालावेली, गु० तड़फड़ाना, तलफ विलाप, (३-४८-५१)।
तालिब, फा० मुमुक्षु, इच्छावान।
ताहरा, गु० तेरा।
ताहरो, गु० तेरा।

तिण, जै० त्रिण, घास, फूस, तुच्छ पदार्थ।
तिमिर, अंधेरा, अज्ञान।
तिरना, जै० तैरना।
तिल, क्षण, (शब्द १८७)।
तिसज, गु० प्यास।
तीर, किनारा, समीप।
तुमी, म० तुम्हीं, तुम।
तूर, तुरही।
ते, सो।
तेग, फा० तलवार।
तेजपुंज, तेजसमूह।
तेम, गु० तिसतरह
तोर, तेरा।
त्यां, गु० तहां।

थ

थइने, गु० होकर।
थल, स्थल, भूमि।
थाकना, जै० थकजाना, हारजाना।
थाती जै० स्थाती, स्थिती, रहन।
थान, स्थान।
थाये, गु० होता है।
थावर, स्थावर, अचल, शनिवार।
थाशे, गु० होगा।
थिर, स्थिर।
थीं, जै० से।
थैं, जै० से।

द

दई, देव, ईश्वर।
दंद, जै० दंद फंद, झगड़े, द्वंद्व, सुख दुःख आदि।
दईदोट, जै० गेंद फेंकना। १२–६२
दत्त, दान, दियागया।
दमामा, जै० नगारा।
दरवै, द्रवै, प्रसन्न हो।
दरहाल, फा० इस समय।
दरीबा, स्थान, दरबा कबूतरों का।
दरूने, अंदर, भीतर।
दरोग, फा० झूठ।
दल, पत्ता, फूल की पंखड़ी।
दष्या, जै० दीक्षा, गुरु का उपदेश। गुरमंत्र। १–३।
दहण, जै० जलन, दाह।
दा, पं० का।
दाग, शरीर को जलाना, अंतेष्टि क्रिया।
दाझे, जै० जलावे, दग्ध करे।
दादनी, फा० बखशिश, इनाम।
दाधी, गु० जलती, तप्त।
दायम, फा० हमेशा, सदा।
दारू, जै० औषध।
दालिदी, दालिद्री, कंगाल।
दाषे, गु० दिखाये (१२–९२)।
दासातन, जै० दासत्व, दासभाव।
दिट्टा, पं० देखा। ६–२१।
दिढ, दृढ़, मजबूत, पक्का।

दिनकर, सूर्य ।
दिया, दीपक, ज्ञान, दान । १-३७।
दिल, फ़ा० मन, हृदय ।
दिल्दार, फ़ा० यार, इष्ट, मित्र ।
दिन्न, दिन, २-१३६,
दिसंतर, जै० दूरदेश, परदेश ।
दिहाड़ियां, पं० दिन ।
दिहाड़े, पं० दिन ।
दीठों, गु० देखकर ।
दीदार, फ़ा० दर्शन ।
दीन, फ़ा० मत, धर्म ।
दीया, दीपक, ज्ञान, दान । १-३८।
दीवा, दीपक, ज्ञान । १-३५।
दीवान, फ़ा०, परमात्मा ।
दुई, फ़ा०, द्वैत ।
दुंदर, द्वंद्व, द्वैतभाव, मेरा तेरा ।
दुंद, जै० अग्नि, जंगल की आगि,
१३-५१ ।
दुनिया, फ़ा०, लोक, संसार ।
दुनी, फ़ा० दुनियां, संसार ।
दुराऊं, छिपाऊं ।
दुविध्या, जै० दुःख, संदेह ।
दुहागी, जै० दुहागनी, जिसको स्वामी ने त्याग दिया हो, सुहाग रहित, इष्टांत-जगत दुहागी राम बिन(१४-७१)।
दुहुंवां, जै० दोनों ।
दुहेला, जै०, कठिन, भारी, बोझीला ।
दूंदर, जै० अंधेरा, धुंध, अज्ञान। १७-२०
दूझना, जै० दूध देना । १-१२१।
दूभर, जै० कठिन ।
देवरा, जै० मंदिर ।
देवल, गु० देवालय, मंदिर ।
देखाड़, गु० दिखाव ।
देह, फ़ा० गांव, देहात ।
देहड़ी, गु० देह ।
देहुरा, मंदिर । १६-५३ ।
दोजग, फ़ा० दोज़ख़, नर्क ।
दोष, द्वेष, वैरभाव ।
दौं, जै० अग्नि की गर्मी, भभक ।

ध

धंध, धंधा, व्योहार ।
धणी, जै० धनी, मालिक, परमात्मा ।
धर, धरती । आधार अपरोक्षित अनात्म पदार्थ । पृष्ठ ५६६ ।
धरणि, धरती ।
धरणीधर, ईश्वर, विष्णु, शेष ।
धाय, दौड़कर ।
धाह, जै० विलाप, चिल्लाहट ।
धिजाना, जै० चुप करना ।
धीजना, विश्वास करना ।
धीदाता, बुद्धि का देने वाला ।
धुर, ठिकाना, अंत ।
धू, ध्रू, तारा विशेष ।
धूतो, गु० ठगा ।

धोरी, जै० धारण करने वाला, निबाहने वाला, बैल जो गाड़ी का जुआ धारण करता है, मालिक, ३४-४८।
धोवती, जै० धोती।
धौं, वा, अथवा।
ध्रू, तारा विशेष।

न

नफ्स, फा० पेट, मनोराज्य।
नबेरना, जै० निबेड़ना, सुलझाना।
नमाइ, जै० न अमाय, न समाय।
नर्क, मैला, सड़ा गोबरादि।
नाले, काटे, तोड़े।
नव, गु० नहीं।
नवधा, भक्ति।
नवाप, गु० उत्तम। २७-२१
नवेला, नवीन, नवा, (शब्द १२२)।
नखसिख, पैरों के नाखूनों से लेकर सिर की चोटी तक। ४-१७८
नसाय, बिगड़ जाय, नाश हो।
नांइ, नांव, नाम।
नांउं, नाम।
नांव, नाम।
नांवै, जै० नमावै, नवांवै, झुकै।
नागर बेल, पान, तांबूल।
नाठना, जै० भागना, छोड़ देना।
नाठी, जै० नष्ट हुई, नाश हुई।
नाद, शब्द, आवाज।
नादबिंद, अमीरस जो अनाहद शब्द से झरता है।
नाल, पं० साथ।
नाल कमल, कुमोदनी, नार, नीलोफ़र।
नाखना, जै० डालना, फेंकना।
नाह, गु० पति, कंथ।
नाहर, एक जात का सिंह, शेर।
निंद्या, जै० निंदा, अविद्यमान दोषों का कथन।
निगमागम, वेद शास्त्र।
निगुर्रा, जै० अन अधिकारी, कृतघ्नि, निमक हराम, गुण न मानने वाला, निगुण।
निघट, खाली, चुक जाना।
निधणी, जै० ला वारिस, (३५-४७)
निधि, खज़ाना, दौलत।
निपजना, जै० उपजना।
निपना, जै० सुलझा, शुद्ध हुआ।
निबेरा, जै० सफ़ाई।
निमति, जै० निमित्त, लिये।
निमष, निमेष, क्षण मात्र।
नियरे, नेरे, नजीक, समीप।
निर्बंध, बंध रहित, स्वतंत्र।
निरंतर, हमेशा, सदा, अंतर रहित।
निर्वेद, पछिताव, अपने किये पर निराश, दुःखी, वा शर्मिंदा होना।

निरसंध,जोड़ बिना,संधि रहित। ४-१०५
निरामय, निरोगी।
निवरा, जै० निकम्मा, खाली।
निवाजै, पाले, नवाज़िश करे।
निवान, तला, नीचा भाग।
निवारा, नियारा, न्यारा, अलग।
निषर, खरा, सच्चा, पक्का। ४-३१३
निस, रात्रि। ४-७
निश्चल, शांत, अचल।
निहारी, देखना।
निहोरा, खुशामद, याचना।
नौका, उलग।
नीझर, झरना, सोता।
नीधना, जै० निर्धन।
नीर, जल, पानी।
नीला, जै० हरा रंग।
ने, गु० को।
नेटि, गु० अवश्य, निश्चय करके, नेति।
नेण, गु० नैन, नेत्र।
नेरा, समीप।
नौतम, नवीन।
न्याव, न्याय, इनसाफ़।

प

पंक, कीचड़।
पंगुल, पगहीन, लगड़ा।
पंगुल ज्ञान, पांच इंद्रियों के विषयों से निर्मल एकाग्र ज्ञान, (२८-७)।
पच, पंच इंद्रिया। १-१४२।
पंथीड़ा, बटाऊ, (पद १४६-५०)।
पद, फ़ा० शिक्षा, नसीहत।
पंध, सिं० फ़ासला, दूराई (३१-७)।
पगार, चमकारा, (९-२६,१२-११४)
पचना, जै० थकना, मेहनत करना।
पथि, जै० पथ्य, खाने में परहेज़।
पटंतर, तुल्य, सदृश, बदले, उपमा।
पटंबर, रेशमी वस्त्र।
पटम, पाखंड, दिखावा ढोंग।
पटल, पड़दे।
पतंग, सलभा, कीड़ा।
पति, मान, इज्ज़त, बड़ाई, भर्ता।
पतीजना, विश्वास करना।
पतेर, जै० बहन।
पधरा, मददगार, सहायक, गु० पधर से बना, (२४-७८)।
पयाल, पाताल। २-११६।
पर, दूसरे का, बेगाना, पराया।
परआतम, परमात्मा। ४-७२।
पर्चा, फ़ा० कागज़, लेख।
परचा, जै० परिचय, पहिचान, भेट,मिलाप
परजलै, प्रज्वलै, जलै, बलै।

परचै, जै० विग्रह करै।

परतष, प्रत्यक्ष, साक्षात्, सामने।

परमांन, प्रमाणित, मुख्य।

परमोष, गु० परमोदवुं = मनाना, प्रबोध करना। १-१४९

परष, परिष, परीक्षा। १४-३८।

परस, स्पर्श, मिलाप, छूना।

परसंग, प्रसंग, विषय।

परसन, स्पर्श, भेट मिलाप।

परसेद, पसीना, (पद ४०७)।

परापरं, परात्परम्, परमेश्वर। १-२।

परापरी, परमात्मा, परात्पर। १-४१।

परिमल, सुगंध, आनंद, सुवास।

परिमित, प्रमाण, हद्।

परिवान, परमांन, प्रवीन।

परिहर, त्याग, छोड़।

परै, गु० पार।

परोहण, नौका, वाहन।

प्रलाण जै० ऊंट की काठी। २५-२९.

पष, पक्ष, संप्रदाय, जमात, साथ, तरफ़ १६—५८।

पषालना, धोना, प्रक्षालना।

पस, सिं० देख।

पसरना, फैलना।

पसाव, बख़्शीश, दान।

पहरा, रखवाली।

पहली, पहले, पूर्व।

पहुंता, पहुंचा।

पाइया, पं० पाया, प्राप्त हुआ।

पाडे, पंडित।

पाणी, जल, पानी।

पाति, पंक्ति, मंडली, जमात, नाता। १३-१२३

पाक, फ़ा० पवित्र।

पाट, पाटा, तख़्ता, दरवाजा।

पाद, गु० पहाड़, शिला (१३-५१)।

पाण, सिं० आप।

पाने, जै० पाले, हिस्से, ज़िम्मे, माथे।

पापनिछेदन, पापों का हरनेवाला।

पाम, गु० पावै, मिलै।

पामाल, फ़ा० पैरों के नीचे मसलना।

पाम्यौ, गु० पाया।

पामूं, गु० पाऊं।

पारधी, शिकारी।

पारस, पत्थर जिस के स्पर्श से लोहा सोना होता है।

पारिष, परखनेवाला, परीक्षक।

पाल, जै० तालाब के किनारे का बांध ४—७।

पालउ, पलई, डाल, शाखा।

पालवे, गु० पल्ला, -वस्त्र का खूंट।

पाषर, लड़ाई के बख़्तर।

पाषें, गु० बिना।

पास, फांसी, बंधन, फंदा।

पासबान, फ़ा० रक्षक।

पासी, फांसी, फंदा।

पाहन, पत्थर, पाषाण।

पाहुणां, जै० महमान, जवाई, दामाद, २५-३२।
पिंजर, पिंजरा, शरीर।
पिंड, स्थूल शरीर।
पिदर, फ़ा० पिता।
पीर, फ़ा० गुरू। १३-११५
पीरन, सिं० ईश्वर।
पीरी, सिं० परमेश्वर।
पुंज, ढेरी, समूह।
पुनि, पुण्य। १८-४
पुणग, जै० चंद्र।
पुरवै, सम्पूर्ण करै।
पुरातन, प्राचीन, अगला।
पुलक, हर्ष, खुशी।
पुहप, जै० पुष्प, फूल।
पूंगी, प्रारब्ध।
पूगना, जै० पहुंचना।
पूता, पवित्र।
पूर, नदी का चढ़ाव, धारा।
पूरणहारा, इच्छाओं का पूर्ण करने वाला, अन्नदाता।
पूरिक पूरा, पूर्ण करने वाला, पालन करने वाला, रक्षिक।
पेड़ाइत, जै० पीड़ा देने वाले, दुष्टजन, (१२—१८)।
पेया, सिं० पड़ा।
पेरे, गु० तरह, रीति, भांति।
पेलना, ढकेलना, त्यागना, दौड़ना।
पेलीं, गु० परली, उसपार।
पेषना, देखना।
पेहीं, सिं० पीव।
पैंडा, प० रास्ता, राह, मार्ग, सफर।
पै, पर, परतु (पद २९६ / अमृत ४-३४०)।
पैका, सिं० कौडी, पैसा १३-१११, अनायास २२—२०
पैसना, पैठना, प्रवेश करना।
पोच, पोला, कायर, दुर्बल, हीन।
पोटा, गठरी, बोझ (२५-७६)।
पौढ़ा, प्रौढ़, युवावस्था से पूर्व।
प्यंड, पिंड, शरीर।
प्रतिपाल, रक्षा।
प्रतिबिंब, छाया, परछाहीं।
प्रीतड़ी, प्रीति।
प्रभात, प्रकाश, नैर्थिस्तान।
प्रवाण, प्रवाच, प्रसिद्ध रूप।

फ

फंध, फंदा, जाल।
फ़क़ीर, फ़ा० वैरागी, उपराम।
फटिक, स्फटिक, बिल्लौर।
फ़र्मान, फ़ा० हुक्म, आज्ञा।
फ़ारिग़, फ़ा० मुक्त, निस्संदेह।
फ़ाल, फलांग।
फ़िल, फ़ा० दमखरोश, कृपा।
फुनि, पुन, फिर।
फुनिग, सर्प (गुरु ४१९)।

फूल्यौ, जै० फूला, आनंदित।
फोक, खोखला, सार निकाले पीछे जो गाद रहे, निस्सार। १६-१२९

ब

बंटै, बांटै।
बंद, ठिकाना।
बंसा, बांस
बकमना, चमाकरना, देना।
बग, बक, बगुला पत्ती।
बगर्मी, अमली, नशेबाज़। १३-२११
बच्छ, वत्स, बछड़ा।
बजारी, बाज़ारी, झूटे।
बटपार, टग, डकैत।
बटाऊ, पथिक, राहगीर।
बणिजना, बेचना।
बदकार, फ़ा० दुराचारी।
बधना, बढ़ना,।
बधाये, बढ़ाये, बधाई, मंगलचार।
बनराइ, वृक्ष, वेलड़ी।
बपु, स्वरूप।
बबेक, विवेक, विचार।
बर, श्रेष्ठपदार्थ।
बरण, रंग, जाति भेद।
बरत, मोटी रस्सी जिस पर नट नाचते हैं।
बरदा, फ़ा० आदमी, मनुष्य, (छन्द ८३)।
बराबरि, बराबरि, समता।
बरियां, समय, वायत, वक्त।
बलाय, आफ़त, वैरी, दुर्घटना, भूत प्रेत।
बलिजाऊ, अपने आपको अर्पण करूं।
बलि बलि वारणे, निछावर, भेट।
बलिया, बलवान, सामर्थ।
बस्त, वस्तु, चीज़वस्त।
बसाइ, बस, ज़ोर, उपाय।
बहलड़ी, बहन।
बहाय, फेंकना, जलमें बहादेना, भुलाना, भटकाना।
बहिया, बहता।
बहिश्त, फ़ा० स्वर्ग।
बहोर, समय, काल (३५-३४)
बांडी, दुहागणी, स्त्री जिसका पति तिरस्कार करै।
बांबी, सर्प का बिल।
बाकुला, छिलका, बुकला।
बाचाबधी, गूंगे, वचन रहित, पशू।
बाछ, बछरा, वत्स, पुत्र। १-१५२।
बाजी, माया, इंद्रजाल।
बाजीगर, बाजीगर।
बाझै, लिपटै, लिपायमान हो।
बाट, राह, गैल, मार्ग।
बांठा, बांटा।
बाण, तीर, बाम, आदत।
बाणक, मेल, संयोग, चारपाई की बिनावट, आरंभ।

बाणि, आदत, बात।
बाद, व्यर्थ, बेफायदा।
बाना, बनाव, भेष।
बापुड़ा, बापुरा, जे० मूर्ख, बेचारा, दीन, गरीब।
बाय, वायु, पवन।
बार, समय, ढील, फेर, देर।
बारैंणे, गु० दरवाजे पर।
बारहबाट, सर्व प्रकार से।
बाव, वायु।
बासिग, वासुकि नाग, पद २२१।
बावना, बोना, उगाना, वृक्ष लगाना।
बासदेव, अग्नि।
बासन, बर्तन, पुरुष।
बाहना, जोतना, फेंकना, सींचना।
बाहर, कुमक, मदद।
बाहि, डाल दे, फेंक दे।
बाहिरा, वायु, पवन, आंधी (१५-१०७)।
बाहिरा, गु० छोड़ कर, जुदा करके।
बाहुड़ना, पीछे आना, बहुरना।
बाहै, बहकावे। १२-८३, १०-१२१।
बिकट, कठिन, दुष्कर।
बिकसना, फूलना, खिलना।
बिकृत, विरूप, भयानक।
बिगास, बिकाश, खिलना, खुशी।
बिगोया, अप्रक्रिया, मोया। १२-११०,
बिघ, भेड़िया। ४-२४७
बिच, बीच, मध्य।
बिछूटीं, बिछड़ीं, अलग हो।
बिछोह, बियोग, जुदाई।
बिटंब, गु० बिटम्बणा, बिडम्बना, दुःख, बेइज्जती, १२-२०९,
बिड़द, गु० बिरद, प्रतिज्ञा। ३-५४
बिडारण, तोड़ने वाला, नाशकर्ता।
बितड़ना, बांट देना।
बिथा, दुःख, दिक्कत।
बिनांनी, बिज्ञानी।
बिमल, निर्मल, पवित्र।
बिमांसण, पछितावा, दुःख, कसौटी (शब्द १५८)।
बिया, गु० बीजा, दूसरा।
बिरचे, निराला होय।
बिरष, जे० वृक्ष, पेड़।
बिरह, इश्क, भक्ति, मुमुक्षता।
बिलसना, भोगना, आनंदित होना।
बिलाई, बिल्ली, अविद्या।
बिषम, कठिन।
बिषहर, बिषवाले जीव।
बिसमिल, फ़ा० घायल।
बिसाहना, खरीदना, मोल लेना।
बिहँडे, बिछुड़े, छूटे, जुदा हो।
बिहरना, हरलेना, चीरना, फाड़ना।
बिहाय, व्यतीत हो।

बिहलवणी, गु० भयानक (पद २५३)।
बिहूणां, जै० रहित, बिना।
बीछड़या, बिछड़ा, जुदा हुआ
१०—१२६, २५—२५।
बीज, बिजली, तड़ित, फलके दाने।
बीजौ, गु० दूसरा।
बीष, कदम भर।
बूझ, समझ, बुद्धि, ज्ञान।
बूड़ै कालीधार, सर्व प्रकार से नाश हो।
बेगर, बेगर्ज, विरक्त।
बेगा, जै० जल्दी।
बेगाना, बिराना, पराया।
बेद, गु० व्यथा, क्लेश।
बेदन, क्लेश, दुःख।
बेदिल, फ़ा० कठोर हृदय।
बेपरवाह, स्वतंत्र, बेगर्ज।
बेमिहर, फ़ा० कठोर हृदय।
बेली, गु० मित्र, रक्षक, सहायक।
बेसास, विश्वास।
बेसणो, बैठने का स्थान।
बैसना, बैठना।
बोध, ज्ञान, समझ।
बोहिथ, जहाज़, नाव।
बौरावना, धोखा देना, फुसलाना।

भ

भंजन, वर्त्तन।
भरांति, भ्रांति, भेदभाव, परहेज़।

भरमाड़, गु० भनाओ।
भलका, बाण, तीर, भाला।
भवन, भुवन, लोक।
भाड़ा, बर्तन।
भांवता, अनुकूल, प्यारा, यथेष्ट।
भाग, हिस्सा, प्रारब्ध।
भाजन, बर्तन।
भान, भंजन करना, तोड़ना।
भानणा, तोड़ना।
भामिनी, सुंदरी।
भाय, भाव, स्थिति, प्रकार, तरह।
भाव, श्रद्धा, रुचि, आदर, सत्कार, प्रेम।
भावठी, भट्ठी।
भावे, चाहे, रुचे।
भाह, जै० दाह, अग्नि, जलन।
भिरे, फेरे।
भींटना, जै० छूना।
भीड़, तकलीफ़, दुःख, मुसीबत।
भीना, भीगा, गीला, गलतान।
भीर, पत्त, तर्फ़, साथ।
भुंइ, धरती।
भुरकी, चुटकी, मंत्रप्रयोग।
भुवंगम, सर्प।
भूचना, लूटना, चाहना।
भूधर, राजा, गिरिधर (पद २८५
भेद, रहस्य, तात्पर्य, फ़र्क़, आशय, ठिकाना, पता।

मेरा, नाव, किश्ती।

भेरि, शहनाई का बाजा, दुंदुभी, पपीहरा (१२-१४)।

भेल, गु० झमेला, (शब्द १५६)।

भेलना, मिलाना।

भेळ समेळे, मिले मिलाये, येनगतांव, भेष, बाना, पहरावा।

भोमि, भूमि, पृथिवी, धरती।

भौरे, सि० टुकड़े।

भौरें, जै० भूलने, भोलेपन से, व्यर्थ, अकाज।

भौ, भव, संसार।

भौरी, जै० भोला, मूर्ख।

भृंगी, हस्तोरा, कीड़ा।

म

मंछर, मत्सर, अहंकार। २३-५

मंझ, सि० कमर, (२१-७)।

मंझारि, भीतर।

मंडल, आकाश, कुंडल।

मंत, महंत।

मगहर, महापापी खेत जो काशी के समीप गंगा पार है। ११-५३

मचु छाने (१२-४३)।

मड़हट, मरघट, श्मशान। १०-२८

मड़ा, घायल।

मणके, माला के दाने, गुरिया।

मति, नहीं, बुद्धि।

मदीठ, देखने के अयोग्य, (२४-२१)

मध्य, बीच, निरंतर।

मधि, बीच, अंदर, मध्य।

मनमुखी, मनमानी, यथेष्ट।

मनष, जै० मनुष्य।

मनसा, इच्छा, आकांक्षा, स्वाहिश।

मनामनी, जै० मन की स्फुरता, मनमानी, मेरातेरी, अहंभाव (२३-३१)।

मनिषा, जै० मानुषी।

मनी फा० मन की कल्पना, खुदी, आपा, २३-३३, शब्द ७०।

मने, गु० मुझ को।

मर्कट, बंदर (१२-३६)।

मर्दन, फा० मसलना।

मर्म, हृदय, भेद।

मरकत, मणी विशेष, पन्ना।

मरजीवा, मुक्त, माया से निवृत्त।

मर्नूं, गु० मिलूं।

मसकीन, फा० दीन, गरीब।

मसाइक, मूसा के अनुयायी। १४-३३।

मसान, श्मशान।

मसि, दवात।

मसीत, मसजिद, मुसलमानोंका मंदिर १६-५२, ४-२२०।

महबूब, फा० प्यारा। २०-२।

महिमाय, देवी।

महियल, धरती बाले, पद १९७।

मां, जै० में

मांडी, जै० आरंभ की, लगायी, मुकर्रर की

मांजर गु० बिल्ली, मार्जार।

माफ़ी, घोर, कठिन।
मांदल, पखावज, ढोलक।
मांहिले. जै० भीतर के।
मांहें, जै० भीतर, अंदर।
मा, गु० मत, नहीं।
माणुस, जै० मनुष्य, आदमी।
माता, मग्न, रत।
मादर, फा० माता।
माधइयो, गु० माधव, विष्णु, कृष्ण, पद २८५।
मानसरोवर, एक झील। ४–७।
माबूद, फा० ईश्वर।
माय, अमाय, समाय।
मारिया, जै० मारा।
मारे, गु० हमारे।
मापण, मक्खन, नवनीत।
माहरो, गु० हमारा।
माहवे, गु० महीना, मास।
मिहीं, सूक्ष्म, बारीक।
मिट्ठा, पं० मीठा।
मित, परिमाण, अंदाज़, हद्द।
मिल्या, जै० मिला।
मिलवो, मिलावो।
मिहर, फा० कृपा, दया।
मींडक, जै० मेंडक।
मींत, मीच।
मीनी, मिन्नी, बिल्ली। ४–३४७
मीर, फा० सरदार।
मीरां, फा० सर्दार, मालिक।

मुआ, मरा।
मुर्द, फा० मुर्दा, श्राप। १३–१९।
मुकते, बहुत, काफ़ी।
मुक्ता, मुक्त, जीवन मुक्त, मोती।
मुक्ताहल, मोती।
मुक्ति, सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य, सारूप्य।
मुग्ध, मूर्ख, भोला, अज्ञानी।
मुरदन, फ़ा० मारना।
मुर्शद, मुरशद, फा० पीर, गुरू। १३–११५।
मुलकत, मुसकराना।
मुल्लां, फा० मुसलमानों का पुरोहित।
मुष्टी, मूठी।
मुसल्लम, फा० मज़बूत।
मुहरा, जहर मुहरा।
मुंहिंडे, पं० मेरे।
मूंगी, हरा, मूंग की सी हरियाली।
मूंवां, जै० मरेपर।
मूकी, गु० छोड़कर, मुकवुं = छोड़ना, त्यागना।
मूठि, मुष्टि मुट्ठी।
मूये, मरे।
मूर, मूल, कारण।
मूस, गु० मूष=चुराना।
मेदनी, दुनियां, जगत, लोग।
मेर, पर्वत, पहाड़।

मेलना, गु० फेंकना, छोड़ना, डालना, त्यागना।
मेल्या, जै० धरा, रक्खा।
मेलवूं, गु० छोड़ना।
मेल्हना, डालना, देना।
मेहर, फा० करुणा, दया।
मैं, ममभाव, अहंकार। ४-४४, २३-३४
मैंगल, गु० मस्त हाथी।
मैंड, मेड़, राह, मर्यादा।
मैंडा, पं० मेरा।
मैंणी, जै० मैंनें=भीतर, ११-७८
मैमंत, मस्त, मतवाला।
मोट, गठरी।
मोटा, बड़ा उमर में।
मोमिन, कोमल हृदयवान।
मोहब्बत, फ़ा० प्यार।
मौजूद, फा० हाजिर।
मृतक भोजन, मांगा पदार्थ (१८-२७)
मृत्तिका, मट्टी, धर्ती।

य

यक़ीन, फ़ा० विश्वास, भरोसा, निश्चय।
यूं, जै० इसतरह।
येणे, गु० इसको।
यौं, जै० इस तरह।

र

रजनी, रात।
रज़ाय, रज़ा, इच्छा।
रतिवंती, प्रेमी। २-२
रती, प्रीति, चाह (१४-१९)।
रब, फ़ा० परमात्मा। १-५८
रबाणी, सिं० रबका, परमेश्वर का।
रमना, खेलना, भजन करना, (पद ३०)।
रमाड गु० खिलाड़ी, (शब्द १५४)।
रमाडे, गु० रमावे, खिलावे।
रलीं, इच्छा, आशा।
रवल्यौ, गु० भटका।
रषपाल, रक्षक, पालक।
रष्या, रक्षा, परवरिश।
रसन, जाप।
रसना, जीभ, ज़ुबान, स्वाद इन्द्रिय।
रसातल, लोक।
रहणि, चाल, आचरण, रीति। १६-१८
रहबा, रहना।
रहमान, परमेश्वर।
राच, रचना।
राज़िक, फा० जीविका देनेवाला, परमात्मा। १८-२०, ५४।
रातामाता, मग्न, रतहुआ, मस्त।
रामरस, अमृत, ब्रह्मानन्द।
रामति, रमन, फिरना, विचरना।

रावत, सूरवीर ।
रासि, राशि ढेरी, गु० संग, संबन्ध ।
रिंद, फ़ा० स्वेच्छाचारी, जो शरा को न माने ।
रिज़क़, फ़ा० जीविका, रोटी । १६–२०
रिदै, हृदय, दिल ।
रिपु, बैरी, शत्रु ।
रीगे, जै० रहि गये ।
रीझना, प्रसन्न होना ।
रीता, ख़ाली ।
रुड़ूं, गु० भला, उत्तम, श्रेष्ठ ।
रुति, गु० ऋतु, मौसम (१६–२७) ।
रूंषडा, जै० वृक्ष, पेड़ (३६–७) ।
रूह, फ़ा० मन, आत्मा ।
रोज़ा, फ़ा०मुसलमानों के व्रत, उपवास।
रोपना, लगाना, जमाना, गाड़ना ।
रोष, रीस, ग़ुस्सा ।

ल

लंगर लोग, ख़ुशामदी, चापलूस ।१३–६
लधा, सिं० लद्धा, पाया (३१–७) ।
लखना, समझना, देखना ।
लहना, प्राप्तकरना, लेना ।
लहुरा, छोटा उमर में ।
लांबी, अधीरता, अस्थिरता, वे सबरी ।
लाट, लपट, अग्नि ।
लापर्द, फ़ा० पर्दे बिना, खुला ।
लाया, लगाया ।
लार, जै० पीछे, साथ ।
लावै, लगावै ।
लहड़ा, गु० लाहा, लाभ (शब्द८३) ।
लाहा, लाभ, ब्याज ।
ली, जै० गी, (शब्द ४२९) ।
लीधुं, गु० लिया (सं० लब्ध) ।
लीन, एकरस, मिलाहुआ ।
लुब्ध, इच्छा, १२–३१ ।
लेवाद, गु० लेनेदे ।
लै, सुरति, दृष्टि, लय ।
लोई, लोगी ।
लोका भावटकूट, लोकाचार, उत्पत्ति प्रलय । १३–१४५
लोचन, नेत्र, आंख ।
लोय, लोक में ।
लोहरवाड़ा, ग्राम विशेष टौंक राज्य में ।१२-६८
लौरूं, पक्षी ।
ल्यौ, जै० लय, वृत्ति, दृष्टि, सुरति।

व

वंजणा, पं० जाना ।
वंजाइ, सिं० त्याग ।
वंडना, पं०, सिं०, बांटना । ३–६०
वज़ू, फ़ा० हाथ मुंह धोना नमाज़ के लिये ।
वण, गु० विना ।
वत्तां, सिं० फिरूं मैं ।
वतैं, सिं०फिरता है तू (४–२२–,२४)।

वली, गु० भी, और भी।
वां, जै० वहां।
वांछनां, चाहना।
वांडी, दुहागणी स्त्री जिसका पति तिरस्कार करे।
वाट, गु० राह।
वाटड़ी, गु० बाट, राह।
वायक, वाक्य, वचन।
वार, निछावर, देरी।
वारणे, वारी, बलिहारी।
वारे, गु० बचावे।
वाल्हा, गु० पीव, पति।
वाहला, गु० प्यारा, प्रीतम।
विगति, चाल, लीला, कृत्य।
विलूधा, गु० विलुब्ध।
विरक्त, गु० विरक्त, त्यागी।
वीनवे, गु० प्रशंसा करे। पद १६६।
वेगळो, गु० जुदा, अलग।
वेदन, पीड़ा, दर्द।
वेला, पं० समय, वक्त।
वेलो, गु० समय, वक्त।
वेह्ला, गु० जल्दी।
वै, जै० वह।
वैलो, जै० इस ओर, उरली तरफ।
व्याधी, रोग, बीमारी।

श

शब्दी, शब्द मात्र का उचारण करने वाला, अर्थ न जानने वाला।
शहीद, फा० धर्म पर प्रान देने वाला।
शिष्ट, श्रेष्ठ।
शील, राग द्वेष रहित, स्वभाव।
शून्य, द्वैत शून्यरूप ब्रह्म, अद्वैत ब्रह्म। ४-५०।
शोधन, गु० खोजना, शुद्ध करना, पता लगाना।
शोर, फा० शब्द, हल्ला।

ष

षजीना, खजाना, धन, भंडार।
षटदर्शन, छः भेष साधुओं के।
षड़भड़, गड़बड़।
षबर, फा० हाल, समाचार।
षय, क्षय, जीर्ण, नाश।
षर, फा० गधा।
षरा, सचा।
षाड़ाबूजी, खाड़ाबूरी, गड्ढे में छिपायी या दबायी हुई, गुप्त वा धोखे का काम वा वस्तु, (१२-६८)।
षाधी, गु० खाई।
षान, फा० सरदार।
षालिक, फा० सिरजन हार, ईश्वर, कर्तार।
षिन, क्षण, पल।
षितमतगार, फा० सेवक।
षिरना, गलकर, घिसकर या सड़कर झरना।
षिलषाना, खिलवत खाना, पोशीदा जगह, निजस्थान।

खीन, क्षीण, दुर्बल।
खीर, क्षीर, दूध।
खीला, जै० खूंटा, कीला।
खुध्या, जै० क्षुधा, भूख।
खुरदन, फ़ा० खाना।
खूंदन, रौंदन पैरों से।
खूटना, जै० कम पड़ना, घटना, समाप्त हो जाना।
खूटा, गु० घट गया।
खूटीपूगी, जै० प्रारब्ध का क्षय (११-३४)।
खूब, फा० श्रेष्ठ, परमात्मा। २०-३
खूह, पं० कूआ। पद ४२१
खेदाना, जै० भेजना।
खेतरपाल, जै० भैरवादि देवी देवता।
खेम, क्षेम, रक्षा।
खेवट, मल्लाह।
खेह, रज, मिट्टी।
खोटा, जै० भटकै, भुलावै।
खोड़श, सोलह, १६।

स

संकल, जंजीर।
संख्या, गेंडा।
संघ, जोड़।
संपट, डब्बा, दो पत्थरों का मेल।
संबल, संभल, होशियार, सावधान।
संबाहि, संभाल।
सभार्यो, गु० याद करे, स्मरण करे।
संवारना, संभालना।
संघ, सिंह।
संसा, संशय, संदेह, चिंता, फिकर, शक-१-१११।
सकरा, तंग, ओछा।
सगला, सब।
सगुणा, गुण मानने वाला, कृतज्ञ, शुकुरगुजार।
सगाई, संबंध, नाता।
सजीवन, जीता, जिंदा, जीवन्मुक्त।
सदईसदा, सदैव सदा, हमेशा।
सदका, निछावर, मसावत।
सन, संग, कासन = किस से।
सनेही, स्नेही, मित्र, स्नेहयोग्य, (पद ३५६)।
सपरना, नहाना, स्नान।
सपीड़ा, पीड़ा सहित।
सबल, बलवान।
सबने, सम्पूर्ण, सब।
सबाहणहार, खेंचने वाला।
सभी, सिं० सब।
सभोई, सिं० सब।
समंद, समुद्र।
समता, मन की समावस्था।
समा, गु० समय, काल।
समाई, सहारै, बरदाश्त करै।
सयांणो, होशियार, चतुर, प्रवीण।
सर, तीर, बाण, तालाब।
सर्ग, पुष्प, माला, स्वर्ग।

सरग, स्वर्ग।
सरभर, तुल्यता, बराबरी।
सरना, सिद्ध होना, सुधरना।
सरवर, तालाब, सरोवर। ४-६७
सरवै, देवै, निकालै, सरै।
सरसी गु० सरीखा, सदृश।
सरीखा, समान, सदृश।
सलोना, अच्छा।
सवारथ, स्वार्थ।
ससकना, कांखना दुःखसे स्वास लेना। ३-५७
ससिहर, चंद्रमा।
सह, बादशाह, परमेश्वर।
सहज सुंनि, परमात्मा, परमार्थ सत्ता ४-५६।
सहनांण, जै० लीक, निशानी, चिन्ह।
सहस, सहस्र, हजार।
साइर, गु० सायर, सागर, समुद्र (पद ६२)।
सां, सिं० से।
सांकड़ो, गु० कठिन, तंग।
सांधना, संधान करना, जैसे कमान पर तीर चढ़ाते हैं।
सांभल, गु० सुनना, संभालना, घ्यान देना।
साकत, विषयासक्त, असाध, मूर्ख, गृहस्थ (१२-९७ १५-७०, १२—६७, १७-१८)।

साचा, सच्चा।
साजना, बनाना, सजावट करना।
साटा, अदल बदल, सट्टा, सौदा।
साटे, बदले।
साड़ना, पं० जलाना। ३-५९
साण, सिं० साथ, मित्र।
साद, गु० स्वाद।
साध, साधन ज्ञान के, साधू
सान्हा, सांधा, लगाया हुआ।
सानै, मिलावै।
साफिल, सफल।
साबति, सावधान, पूरा।
साम्हां, जै० सामने।
सामीप्य, मुक्ति, (ब्रह्म समीप वृत्ति)
सामो, गु० सामने।
सायुज्य, मुक्ति (ब्रह्म में लयरूप)
सार, चलाना, (शब्द ४०१)।
सारंग, मृग, हिरन,।
सारंग प्राणि, विष्णु, धनुषधारी।
सार्दूल, सिंह, शेर।
सारा, भरोसा, सम्पूर्ण, बस। सही सलामत ३-८०
सारूप्य, मुक्ति (चतुर्भुजादि रूप की प्राप्ति)।
साल, कांटा, सार, कपड़ा बुनने का स्थान (पद २९९)।
सालिक, फा० दरवेश, शरापर चलनेवाला।

सालिहां, फ़ा॰ नेक मर्द।
सालोक्य, मुक्ति (ब्रह्म लोक में वास)
साव, स्वाद।
साषी शब्दी, तोते की तरह शब्द उच्चारण करने वाला, अज्ञानी।
साहिब, परमात्मा।
सिंगी, नरसिंया, हिरन के सींग का पपीहा।
सिंघोर, नारियल।
सिजदा, फ़ा॰ दंडवत, प्रणाम, सिर नवाना।
सिध, सिद्ध, सिद्धिवान, महात्मा।
सिफ़ाती, फ़ा॰ सिफ़तवाला, गुण वाला, विशिष्ट।
सिरजनहारा, सृष्टिकर्त्ता।
सिरजि, जीविका, जिंदगी, रोज़ी।
सिरताज, मालिक।
सिरमौर, शिरोमणि, उत्तम, श्रेष्ठ।
सिरोमणि, उत्तम, श्रेष्ट।
सिला, पत्थर की पाट।
सिष्ट, सृष्टि। श्रेष्ट ११—६
सिषर, चोटी।
सिष साषां, चेलों की मंडली। १–११
सी, जैसी, सदृश।
सींगी, सींगकी बजानेकी पपीहरी २५–२?
सींभला, सुरझला, सुधरला, १३–२७ साजना, बनाना।
सीधा, सिद्धान्न, बना बनाया भोजन १९–२१।
सीदाणी, गु॰ मुरझाई, कुम्हलाई।
सीर, साझी, शरीक।
सीष, शिक्षा, उपदेश।
सींष्यूं, सीखने से।
सीस नवाइ, चिमगादड़ की तरह उलटा लटकना।
सु, सो।
सुंनि, शांत निर्वाण पद, ब्रह्म रूप (४–५०)
सुंनि मंडल, दशवें द्वार से आगे।
सुकृत, पुण्य।
सुच्या, शौच।
सुण्या, जै॰ सुना।
सुध, शुद्ध।
सुधसार, अमृत सार।
सुधा, अमृत।
सुधि, स्मृति, चेतना।
सुनहा, स्वान, कुत्ता।
सुपिना सुष, झूठा सुख।
सुबहान, फ़ा॰ बड़ा, उच्च।
सुभाय, स्वभाव।
सुमिरण, ध्यान, माला जाप।
सुयं, स्वयम्, आप ही आप।
सुर, स्वर, बाजा।
सुरता, श्रोता, सुनने वाला।
सुरम, श्रम, थकान (२२–२०, १८–६, २१–३१)।
सुरसती, सरस्वती नदी, सुरति, (पद ४०७)।

सुरिजिन, परमेश्वर। पद ४१९
सुलछिन, सुलक्षण, उत्तम, श्रेष्ठ।
सुलतान, फ़ा० बादशाह, राजा।
सुलाक, छेद, सुराख़।
सुवटा, सुवा, तोता, पक्षी।
सुवारथ, स्वार्थ।
सुहदा, बेकल।
सुहदायी, सौदायी, मस्त। ३–९८
सुत्र, श्रोत्र, कान।
सूका, सूखा, काल।
सूत, सलाह, मेल।
सूध, सूधा।
सूधा, सहित, सुधा।
सूफी, फा० फ़कीर।
सूवस, उत्तम वास।
सूमर, उत्तम प्रकार से भरा हुआ।
सूर, सूर्य, मुमुक्षु, वीर, साधक।
सूरातन, सूरवीरता, मुमुक्षता।
सूल, पीड़ा।
सूषिम, सूक्षम, महीन, बारीक, छोटा।
सेइ, सेवन।
सेई, वेही, वही।
सेंबल, सेमर का वृक्ष।
सेज्या, सइया, सेज।
सेझा, झरना, पानी का सोत। ४–३१
सेत, स्वेत, सुफ़ैद। २५–६१
सेरी, रास्ता, खिड़की, मार्ग (२१–२९)
सेल, माला।
सेवड़ा, भेषधारी, साधु।
सेस, शेष नाग।
सैंदेही, देही सहित, सैंदा, जान—
पहचान वाला।
सैन, इशारा, समझ।
सों, से।
सोधना, ढूढना, जाचना, खोजना, शोधना।
सोधी, सुध, सम्हाल। १–११९
सौं, से।
सौं, गु० शूं, क्या।
सौंज, गु० पूजन, सेवा, आचार,
चाल चलन।
स्थन, थन, स्तन।
स्याबत, साबित, अखंडित।
स्वांगी, तमाशा करने वाला, भेष धारी।

ह

हंझ, सिं० संत।
हंदा, सिं० है।
हंसला, हंसवाला।
हजूरी, फ़ा० हाज़िर रहने वाला, मौजूद।
परमेश्वर का ४—१२८
हदीस, हद्द, मर्यादा।
हयात, फा० ज़िंदगी।
हरि, मेंढक।
हलाहल, विष।
हवे, गु० अब।
हाढना, भटकना।
हाजत, फ़ा० आवश्यकता, ज़रूरत।

हाट, बज़ार।
हाना, जै० हानि, १३–१३८, १८२)।
हाफ़िज, फ़ा० कुरान को कंठाग्र करने वाला।
हासिल, फ़ा० प्राप्त।
हिक, पं० एक।
हितकारी, मित्र।
हिरस, फ़ा० लालच, राग।
हियड़ा, हृदय, दिल।
हीणा, हीन रहित।
हुण, पं० अब, इसकाल।
हुता, जै० था।
हुताशन, गु० अग्नि।
हुलसें, सिं० मासि (पद ३५४)
हूं, भी, जैसे "टारचौ हूं न करै" (पद २९६), गु० मैं।
हूणां, जै० होना. होनहार।
हेज, गु० प्रेम, प्यार, हेत।
हेम, बर्फ़।
हेल, गु० बोझा।
हेला, जै० हांक, पुकार।
है, घोड़ा।
हैवान, फ़ा० जानवर पशु।
होर, पं० और।
हौं, जै० मैं।
हौंस, चाह, इच्छा, हविस।
हौद, फ़ा० पानी का कुंड। ४–२२८

त्र

त्रय, तीन।
त्रिषा, प्यास।

ज्ञ

ज्ञान गुफ़ा, दसवां द्वार, मस्तक में ध्यानाकार वृत्ति का स्थान।